भारत का आर्थिक भूगोल

(कामर्स और आर्ट्‌स के विद्यार्थियों के लिए)

लेखक

डा० रामनाथ दुबे, एम० ए०, डी० लिट्०

अध्यक्ष, भूगोल विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

कि ता ब म ह ल, इ ला हा बा द

बम्बई : दिल्ली : कलकत्ता : हैदराबाद : भूपाल

भूमिका

प्रथम संस्करण

इस पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण पहले से ही विद्यार्थियों ने अपनाया है। इस स्वतन्त्रता के युग मे उपयोगिता बढ़ाने के लिए हम इसे अब अपनी मातृभाषा में छाप रहे हैं। इस पुस्तक का ध्येय केवल यही है कि हमारे विद्यार्थीगण अपने देश की भौगोलिक परिस्थिति का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकें और इस प्रकार अपने भावी नागरिक धर्म का पूर्ण प्रकार पालन कर सकें। आधुनिक युग में यह जानना आवश्यक है कि जिस देश मे हमारा जन्म हुआ है उसमे हमारा भविष्य क्या है? प्रकृति का दिया हुआ हमारा धन क्या है? उसका उपयोग हम कैसे करें कि संसार में हम किसी देश से पीछे न रहें? 'भारत का आर्थिक भूगोल' इन प्रश्नों का उत्तर देने की केवल चेष्टा मात्र है।

भूगोल विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय
अगस्त २, १९५३

चतुर्थ संस्करण

चतुर्थ संस्करण में कुछ आवश्यक सुधार करके यह पुस्तक विद्यार्थियों के समक्ष फिर प्रस्तुत है। आशा है कि पहले की भाँति यह फिर लाभप्रद होगी।

सितम्बर १९५९ लेखक

विषय-सूची

सामान्य परिचय

भारत को ब्रिटिश राजमुकुट का एक रत्न कहा जाता था। परन्तु जब हम एक ओर भारत की जनता की गरीबी और दुर्दशा को देखते हैं और दूसरी ओर देश के अपार स्रोतों को देखते हैं तो यह कहे बिना नही रहा जाता कि उस रत्न के पहरुए अपना कर्तव्य निभाने मे बुरी तरह असफल रहे। यह तथ्य कि भारत जैसा आर्थिक स्रोतों मे धनी देश निर्धन हो उसके शासकों की प्रतिष्ठा को किसी प्रकार नहीं बढाता।

भारत की गरीबी का कारण यही है कि देश के स्रोतों का उचित विकास नहीं किया गया है। उनका ठीक से पता भी नहीं लगाया गया है। हाल में ही दोनों विश्व युद्धों को जीतने के लिए सरकार का ध्यान सपत्ति-स्रोतों का किंचित पता लगाने और उनको विकसित करने की ओर गया था। परन्तु लड़ाई के पहले जर्मनी और जापान जैसे छोटे देशों ने जिस वेग से उन्नति की उसे देखते हुए भारत में की गई कोशिशें बेमानी-सी लगती हैं।

अपार किन्तु अविकसित स्रोतों के कारण भारत एक 'भविष्य का देश' हो गया है जो अपने स्रोतों के विकसित हो जाने पर ससार मे अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। भारत को अपना महान स्थान प्राप्त कर लेने मे योग देने के लिये भारतीयों को सबसे पहले उसके स्रोतो के बारे में पूरी जानकारी कर लेनी चाहिए। हमें देश के वर्तमान तथा सभावित स्रोतों के भौगोलिक वितरण का पूरा ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान देश के आर्थिक भूगोल के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है।

परन्तु बाहर की दुनिया का भी भारत से दृढ़ सम्बन्ध है। ससार की जनसंख्या के मानचित्र में कुछ सघनतर जनसख्या के क्षेत्र देखे जाते हैं। एशिया में ऐसे प्रदेश दो हैं: भारत और चीन। इनमें से भारत मे संसार की कुल जनसख्या के $\frac{1}{5}$ जनता बसी हुई है। इसलिए संसार से एक ऐसे देश के रूप मे सम्बन्ध है जिसमें उसकी जनसख्या के एक विशाल अनुपात को शरण मिली है।

भारत ने ही आर्य सभ्यता को शरण दी और यहीं की जमीन में जड़ जमाकर वह दूर-दूर तक फैली और एक काल तक ससार की अन्य सभ्यताओं से उन्नतर

बनी रही। इसलिए आर्य सस्कृत का पालन-क्षेत्र होने के कारण भी भारत ससार की उत्सुकता का केन्द्र है।

भारत की उत्तरी सीमा ससार का सबसे ऊँचा पहाड़ है जिसकी सबसे ऊँची चोटी १९५२ मनुष्य के लिए अगम रही थी। इसलिए साहसिक अभियानों का देश होने के नाते भी भारत ससार की उत्सुकता का केन्द्र है।

आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी होने के नाते हमारी भारतविषयक उत्सुकता उसके उन विशाल आर्थिक स्रोतों के कारण है जो अब तक अविकसित रहे हैं।

आर्थिक स्रोतों को विकसित करने का विचार भारत के लिए नया है। यह विचार पश्चिमी राष्ट्रों से सम्पर्क होने के कारण ही इस देश मे आया है क्योंकि यह मानना ही चाहिए कि अतीत के अध्यात्मपरक भारत मे पदार्थमूलक सस्कृति का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि इस तथ्य को सिद्ध करने के अनेक उदाहरण हैं कि पुराने जमाने में भारतीयों ने अत्यन्त उन्नत कलाओं का अभ्यास किया था परन्तु उन कलाओं का अभ्यास कला के लिए ही हुआ था न कि किसी वैयक्तिक लाभ के लिए। इसीलिए इन कलाओ का देश में पूरी तरह प्रसार नही हो सकता था। आधुनिक अर्थ में पदार्थ-मूलक सस्कृति के दो महत्वपूर्ण तत्वों—पूँजी और 'बाजार'—का तब अभाव रहा होगा। स्पष्टतः एक अध्यात्मपरक सस्कृति का पूँजी और बाजार से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन चीजो का एक ऐसे समाज में कोई जिक्र ही नहीं उठता जहाँ यातायातादि की अत्यन्त कुशल सुविधाएँ सुलभ न हों। एक व्यापारी को नित्य जनता की दैनिक आवश्यकताओं के सम्पर्क मे आकर उनका अध्ययन करता रहता है वह वही व्यक्ति हो सकता है जो आर्थिक स्रोतों के विषय में अत्यन्त सचेत हो, वह संसार से पलायन करने वाला सन्यासी कदापि नही हो सकता।

भारत को ऐसे व्यापारी का ससर्ग केवल कुछ सौ साल पहले ब्रिटेन निवासियों द्वारा प्राप्त हुआ। इसीलिए हमारे आर्थिक स्रोतों पर अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों से ही जबसे भारतीयों ने वृद्धिशील संख्याओं में योरप और अमेरिका जाकर स्वय ही वहाँ की आर्थिक तथा भौतिक उन्नति देखना शुरू किया है, हमारा ध्यान अपने आर्थिक स्रोतों के पर्यलोकन तथा विकास की ओर गया है।

यह पर्यलोकन अभी तक अधूरा है और विकास की समस्या अभी तक उलझी हुई है।

पाकिस्तान के अतिरिक्त भारत की प्राचीन सीमाओं पर के सभी देश पहाड़ी तथा अर्ध शुष्क हैं। प्राकृतिक स्रोतो की दृष्टि से वे सम्पन्न नही हैं परन्तु उनका शुष्क जलवायु स्वास्थ्यप्रद है इसलिए वहाँ मजबूत योद्धा उत्पन्न होते है। भारत के सम्पन्न मैदानों के प्रति सदैव ही इन निर्धन किन्तु बलिष्ठ पड़ोसियो को आकर्षण रहा है। इसलिए भारत पर सारे हमले उत्तर-पश्चिम से हुए जहाँ प्रकृति ने पहाड़ों की ऊँची दीवाल में खैबर जैसे दर्रे बना दिये हैं। शाति कालो मे इन्हीं दर्रों द्वारा भारत का सुदूर देशों से व्यावसायिक सम्बन्ध होता था।

भारत हिन्द महासागर के सिरहाने स्थित है। किसी भी दूसरे महासागर का नाम किसी देश पर नहीं पडा है। केवल हिन्द महासागर का ही नाम एक देश के नाम पर पड़ा है। यहाँ दो और बाते भी महत्वपूर्ण हैं। भारत यूरेशिया के विशाल भू भाग के दक्षिणी किनारे पर स्थित है। इस कारण यह स्वाभाविकतया एशिया क वायुभार से शृखलाबद्ध हो गया है।

आधुनिक ससार मे स्वेज नहर के खुल जाने से भारत की स्थिति और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। हिन्द महासागर मे जहाजों के ठहरने लायक द्वीप बहुत कम हैं इसलिए आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाजो को भारत या लका के किसी न किसी बन्दरगाह पर रुकना पड़ता है। परन्तु तटरेखा सीधी होने के कारण भारतीयों को इस विशाल महासागर के तट पर स्थित होने का बहुत कम लाभ प्राप्त हुआ है। यह ठीक है कि पहले समुद्री नावों द्वारा भारत के कुछ भाग पश्चिम मे अरब तथा पूर्व में दक्षिणी-पूर्वी एशिया से सम्बद्ध थे। परन्तु यह सम्बन्ध अनिवार्यतः सीमित था क्योकि यह अवश्य याद रखना चाहिए कि भारत के महत्वपूर्ण कार्य-केन्द्र तट से बहुत दूर सिन्धु-गंगा क्षेत्र मे स्थित थे। अँग्रेजों के आने से सब कुछ बदल गया। ब्रिटेन सामुद्रिक राष्ट्र था इसीलिए अब भारत का बाहरी ससार से समुद्री सम्बन्ध स्थापित हो गया और स्थल सम्बन्ध टूटने लगे। अब महत्वपूर्ण कार्य-केन्द्र समुद्र तट पर स्थित हो गए जहाँ ब्रिटेन के जहाज आते थे। भारतीय तट के सुविधापूर्ण नगर अच्छे बन्दरगाह बन गए। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास प्रमुख बन्दरगाह तथा भारत मे यूरोपीय सभ्यता के केन्द्र बने। नया, वातावरण, मुख्यतः अँग्रेजी शिक्षा तथा अतर्देश और बन्दरगाहों को सम्बद्ध करने के लिए बनाई गई रेल, बन्दरगाहों से होकर धीरे-धीरे अतर्देश मे फैल गया।

भारत के धरातल का क्षेत्रफल लगभग १२,५६,७६७ वर्गमील है। इस क्षेत्रफल के कारण भारत की गणना ससार के विशालतम देशो के साथ की जाती है। निम्नलिखित सारिणी मे ससार के कुछ विशालतम देशों के क्षेत्रफल की तुलना की गई है :—

एशिया में

साइबेरिया*	१६	लाख	वर्गमील
चीन	१५	”	”
मंगोलिया	१३	”	”
भारत	१२	”	”
	अन्य		
रूस (योरप में)	७६	”	”
कनाडा	३८५	”	”
ब्राजील	३२८	”	”
सयुक्त राज्य अमेरिका	३६०	”	”
आस्ट्रेलिया	२६	”	”

भारत के क्षेत्रफल के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उसका अधिकाश भाग मानव-उपयोग के लिए सुलभ है। रूस और कनाडा में विस्तृत क्षेत्र निरन्तर बर्फ से ढँके रहते हैं। आस्ट्रेलिया मे बड़े-बड़े रेगिस्तान हैं जो कि मनुष्य के किसी काम के नही हैं। ब्राजील में बहुत बड़े-बड़े क्षेत्र उष्णदेशीय वनों द्वारा ढँके रहते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे भी ११ लाख वर्गमील से अधिक भू-भाग पश्चमी राज्यों में है जिनका अधिकाश रेगिस्तान है। इस प्रकार देखने पर भारत का स्थान ससार के देशों में प्रमुख हो जाता है।

जनसख्या के दृष्टिकोण से भारत का ससार मे महत्वपूर्ण स्थान है। निम्नलिखित सारिणी में उन देशों का सन् १९५५ की जनसख्या दी हुई है जिनके क्षेत्रफल की तुलना हम ऊपर कर आए हैं :—

---

*साइबेरिया का वर्तमान प्रशासनिक क्षेत्रफल पुराने क्षेत्रफल से घट गया है क्योंकि उसका अधिकाश योरप के रूस में सम्मिलित कर लिया गया है।

	करोड़
भारत	३७.७
साइबेरिया	१२ ०
चीन	५८ ३
मगोलिया	७.५
रूस	२१ ६
कनाडा	१ ५
ब्राजील	५ ८
सयुक्त राज्य अमेरिका	१६·५
आस्ट्रेलिया	६·२ लाख

इसी विशाल क्षेत्रफल और विशाल जनसख्या को देखकर कुछ लोगों ने भारत को भू-महाद्वीप या उप महाद्वीप (Sub-Continent) कह डाला है। इन लोगों ने स्पष्टतः जनता के उन पारस्परिक अन्तरो पर जोर दिया है जो कि इतनी विशाल जनसख्या मे स्वाभाविक है। ईश्वर ने किन्हीं दो व्यक्तियों को भी पूरे तौर से एक-सा नही बनाया है। परन्तु हम एक परिवार के सदस्यों के पारस्परिक अन्तरों पर जोर देते हैं या उनकी एकताओं पर ? अन्तरों पर जोर देकर हम परिवार को नष्ट ही करेंगे। इसी प्रकार हम देश और समाज को भी विनष्ट कर सकते हैं। यदि एक बार यह एकता नष्ट हो गई तो हमारे आर्थिक स्रोतों का क्रमबद्ध विकास असम्भव ही हो जायगा।

संसार में कौन ऐसा देश है जिसमे अन्तर नही हैं ? ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश तक में जिसकी जनसख्या भारत की जनसख्या के आठवे भाग से भी कम है, जनता मे पारस्परिक अन्तर विद्यमान हैं। वेल्स निवासी, स्काटलैंड निवासी तथा इंग्लैंड निवासी सभी बातों पर एक-दूसरे से सहमत नही रहते। उनक अवयवों के गठन मे भी विभिन्नता है। जरा सोचिए कौन-कौन विभिन्न जातियाँ इग्लैंड गई जिनसे मिलकर आज के अँग्रेजी राष्ट्र का निर्माण हुआ। स्कैंडीनेवियन, जर्मन, फ्रासीसी सभी वहाँ गए। कौन बता सकता है कि आज के अँग्रेज मे कौन रक्त प्रवाहित होता है ? देश के विभिन्न भागों मे भूमि के उभार तथा जलवायु के स्थानीय अन्तर भी हैं। वेल्स निवासियों, स्काटलैंड निवासियों तथा आयलैंड निवासियों की अपनी-अपनी भाषा है जो अँग्रेजी से भिन्न है। परन्तु हम ग्रेट ब्रिटेन को महाद्वीप तो नहीं कहते। रूस को भी, जिसमें मुसलमान, ईसाई, यहूदी तथा अन्य लोग साथ-साथ रहते हैं, हम महाद्वीप

नहीं कहते । तब भारत को ही क्यो इसके उपयुक्त समझा जाय ? यह भी नही कहा जा सकता कि ऐसा भारत के विशाल आकार के कारण है क्योकि भारत से विशालतर देश भी अनेक हैं ।

जीवन की आवश्यकताओ के सर्वनिष्ठ रूप को ही इसका निर्णय करने की कसौटी माननाँ चाहिए कि भारत एक देश है या महाद्वीप । भारत की सीमाएँ इतनी सुनिश्चित हैं कि हमारे मन मे इस प्रश्न पर कोई सदेह ही नही रह जाता है कि भारत एक देश, एक जुदी इकाई है । भू-सीमान्तों की ओर पर्वत-सीमाएँ तथा दूसरी ओर समुद्र भारत को एशिया से लगभग बिल्कुल अलग कर देते हैं ।

भौगोलिक कारणों से कृषि ही भारतवासियों—हिन्दू-मुसलमानो सभी का—प्रमुख उद्योग है । वे एक-सी फसले बोते हैं और उनका खेती करने का ढग भी समान है । जब मानसून से वर्षा नहीं होती है तब हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी के लिए नही होती है । इसलिए भारतीय कृषि की रक्षा करने मे सब का हित है ।

हाँ विभिन्न जातियों तथा राज्यो की भाषा तथा सस्कृत मे वास्तव में अन्तर है । परन्तु भारत की विशिष्ट भौगोलिक विशेषताओं के कारण उनका महत्व सदैव क्षीण होता रहा है । शासकों की भाषा का सदा ही स्थानीय भाषाओं पर प्रभुत्व रहा है और भारत के दो राज्यों के व्यक्तियों को राज्यकीय भाषाओ के अन्तर के कारण एक-दूसरे को समझने मे कभी कठिनाई नहीं हुई । इसलिए भारत ससार के किसी भी अन्य देश की भाँति ही एक देश है । जो लोग इसको उप महाद्वीप कहते हैं उनका ध्येय यही है कि वे ससार को यह दिखायें कि भारत एक राष्ट्र नही है, उसमे एकता नहीं है । ब्रिटेन एक राष्ट्र है, पर भारत नहीं ।

वर्तमान आर्थिक विकास में पिछड़ा होने पर भी भारत का अपना आर्थिक महत्व है । उसके करोड़ों निवासियों को सारा ससार सभावित क्रेताओं के रूप मे देखता है । यूरोपीय उत्पादकों के लिए भारतीय बाजार का क्या महत्व है इस पर इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है । अभ्रक और लाख जैसी वस्तुओं के उत्पादन में भारत का ससार भर में एकाधिकार है । उसकी रुई, लोहा, मैंगनीज, चाय, तिलहन आदि वस्तुओं की संसार के बहुत से भागों में माँग है । उसके विकासशील उद्योगों को मशीनों तथा कुशल मजदूरों की आवश्यकता है । इसलिए भला ऐसा कौन देश है जिसके पास काफी मशीन और कौशल है और तब भी वह इस विकास में सहायक होकर अपना लाभ नहीं करना चाहता है ?

आगे के पृष्ठो मे भारत के आर्थिक महत्व के आधार का परिचय देने का प्रयास है। पाकिस्तान बन जाने से इस आर्थिक महत्व को काफी क्षति पहुँची है। बॅटवारे के कारण भारत ने सबसे अधिक उपजाऊ और उन्नत कृषि-क्षेत्र गॅवा दिये है। यह तथ्य निम्नलिखित सारिणियो से स्पष्ट हो जायगा जिनमे पाकिस्तान मे प्रति एकड़ होने वाली अधिकतर पैदावार तथा बॅटवारे के कारण होने वाले भारत के क्षति का अकन है।

प्रति एकड़ पैदावार (पौडों मे)

१९४५-४६

	भारत	पाकिस्तान
धान	७०३	८३७
गेहूँ	५४१	६६८
रुई	७५	१७०
जूट	१०२९	१३६५
तम्बाकू	७२६	१०४७

बॅटवारे के परिणाम

(सन् १९४५-४६ के आँकड़े, लाखो मे)

	भारत	पाकिस्तान	भारतीय क्षति
क्षेत्रफल (वर्गमील)	१२	३½	२२%
जनसख्या	३३२७	६६१	१७%
जगल (एकड़)	६२५	५२	८%
कृषि योग्य भूमि (एकड)	२०६८	५५२	२१%
सिंचित भूमि (एकड़)	३९०	१९५	३३%
अन्न (एकड़)	१७७९	४११	१९%
,, (टन)	४०७	१३५	२५%
गन्ना (एकड़)	३२	९	१६%
,, (टन)	४५	८	१५%
तिलहन (एकड़)	२३०	१५	६%
,, (टन)	५०	२	४%

	भारत	पाकिस्तान	भारतीय क्षति
रुई (एकड़)	११३	३३	२२%
,, (गाँठें)	२१	१४	४०%
जूट (एकड़)	५	१८	७८%
,, (गाँठें)	१४	६३	८२%
तम्बाकू (एकड़)	१०	३	१७%
,, (टन)	३	१	२५%
धान (एकड़)	५८०	२२७	२८%
,, (टन)	१२०	८५	३२%
गेहूँ (एकड़)	२४४	१०५	३०%
,, (टन)	५६	३१	३४%

ऊपर दी गई सारिणियों की गणना भारत सरकार-प्रकाशनों से की गई है।

औद्योगिक कच्चे माल का छूट जाना रुई और जूट तक ही सीमित नहीं है, चमड़ा, नमक और कागज-उद्योग के कच्चे माल को भी काफी धक्का पहुँचा है। जहाँ तक निर्माण-सामर्थ्य, खनिजों (नमक के अतिरिक्त) तथा बन्दरगाहों का प्रश्न है भारत की क्षति उपेक्षणीय है।

ऊपर की बातों से एक तथ्य बहुत स्पष्ट हो जाता है कि भारत और पाकिस्तान एक-दूसरे की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकते। यदि भारत को पाकिस्तान के कच्चे जूट की आवश्यकता है तो पाकिस्तान को भारत के कोयला, कपड़ा तथा अन्य निर्मित वस्तुओं की आवश्यकता है।

अध्याय १

जलवायु

(Climate)

आर्थिक भूगोल के अध्ययन मे जलवायु का स्थान मूलभूत है। एक ओर यह किसी हद तक वस्तुओं के उत्पादन को नियत करता है और दूसरी ओर यह मनुष्यो की आवश्यकताओं को नियत करके वस्तुओ के बाजारों को बनाता और उन पर नियत्रण करता है। किसी भी अन्य देश मे वस्तुओ का उत्पादन जलवायु पर इतना निर्भर नहीं है जितना भारत मे। गर्मी के महीनों में लाखों किसान आसमान की ओर बादलों की आशा मे निहारते हैं क्योंकि वर्षा द्वारा ही उनके वर्ष भर के कृषि-कार्य प्रारम्भ होते हैं। आजकल की आर्थिक उन्नति के दिनों मे भी यदि दुर्भाग्यवश वर्षा नही होती है या जलवायु सम्बन्धी किसी अन्य कारण से फसलें नष्ट हो जाती हैं तो भारतीय किसान को अकथनीय कष्टों का सामना करना पड़ता है। जलवायु भारतीय जीवन के कृषि सम्बन्धी ही नहीं वरन् अन्यान्य पहलुओं पर भी असर डालती है। हमारे कपड़े, घर, सड़कें, रेलें, खाना, स्वास्थ्य और कार्य-शक्ति सभी कुछ जलवायु पर निर्भर रहते हैं।

भारत का जलवायु निम्नलिखित कारणों द्वारा उत्पन्न होता है :

(अ) उसका एशिया के विस्तृत भूखड से सम्बन्ध,

(ब) उसका हिन्द महासागर से सबध और

(स) स्थानीय धरातलीय आकार जिसमें (१) पर्वतों की स्थिति, (२) बंगाल की खाड़ी का फैलाव, (३) सिन्धु-गंगा का मैदान और (४) प्रायद्वीप महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय जलवायु मानसूनी जलवायु के अंतर्गत आती है, जो कि मध्य-एशिया में जाड़े तथा गर्मी के महीनों मे पैदा होने वाले असाधारण वायु-भार का प्रत्यक्ष परिणाम है। मानसून शब्द अरबी 'मौसिम' से लिया गया है तथा इसका अर्थ 'प्रचलित पवनों का मौसमी परिवर्तन' है। जाड़ों में चलने वाली हवाएँ थल से समुद्र की ओर चलती हैं तथा गर्मी में चलने वाली हवाएँ समुद्र से थल की ओर चलती हैं। हवाओं का थल से समुद्र की ओर तथा फिर समुद्र से थल की ओर चलना यही परिवर्तन मानसून जलवायु की विशेषताओं का कारण है।

अतएव भारतीय जलवायु को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम मध्य

तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के वायु-भार का अध्ययन करें जिनके कारण ही हवाओं का यह परिवर्तन होता है।

मानचित्र न० १ मे एशिया मे जनवरी मास के वायु-भार का वितरण दिया है। इसमें यह प्रदर्शित है कि इस काल मे एशिया की भूमि पर एक प्रतिचक्रवात (anti-Cyclone) चलता है। इस प्रतिचक्रवात का केन्द्र साइबेरिया में बैकाल झील के निकट है। इस काल मे इरकुटस्क मे औसत दबाव ७७७ मिलीमीटर रहता है। इस प्रतिचक्रवात का एक गौण केन्द्र पाकिस्तान मे है। पेशावर मे दबाव ७६५ मिलीमीटर रहता है।

चित्र १—शीतकाल में वायुभार
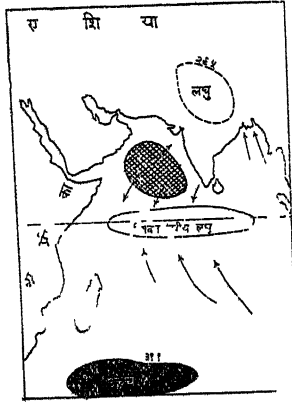
इसके विपरीत उत्तरी प्रशान्त महासागर में स्थिर क्यूराइल द्वीप-समूह में तथा विषुवतरेखीय प्रदेशो से लेकर दक्षिण तक निम्न दबाव रहता है। सुदूरतर दक्षिण, आस्ट्रेलिया में भी निम्न दबाव रहता है, क्योकि वहाँ गर्मी रहती है। जब उच्च दबाव प्रदेशो से निम्न दबाव प्रदेशों की ओर हवाएँ चलती हैं तब दबाव वितरण के अनुसार पूरा का पूरा पूर्वी तथा दक्षिणी एशिया स्वभावतः थल पवनों के प्रभुत्व में आ जाता है। इन पवनों को 'शीत-कालीन मानसून' (Winter Monsoons) कहते हैं। ये हवाएँ साधारणतः शुष्क और समुद्र की ओर प्रवाहमान होती हैं। ये अपने क्षेत्र के एक अश में उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक पवनों से सम्मिलित हो जाती हैं। शीतकालीन मानसून को शुष्क मानसून कह सकते हैं। जैसा कि चित्र द्वारा स्पष्ट है, ये हवाएँ दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय प्रदेश की अपेक्षा अधिक नियमित रूप से चलती हैं और भारतीय प्रदेश में ये क्षीण तथा अनियमित रहती हैं।
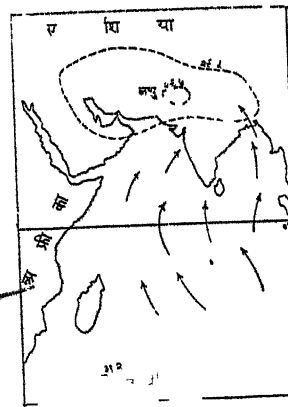
चित्र २—ग्रीष्मकाल में वायुभार

अब चित्र नं० २ देखिए जिसमें जून मास के दबाव-वितरण को अंकित किया

गया है। सूर्य द्वारा अधिकाधिक गर्मी पाते रहने के कारण तथा परिणामस्वरूप एशिया के विशाल क्षेत्र के गरम हो जाने के कारण समूची दशा बदल गयी है। अब उच्च दबाव का क्षेत्र जापान के दक्षिण मे प्रशान्त महासागर मे हो गया है। दूसरा उच्च दबाव क्षेत्र हिन्द महासागर मे आस्ट्रेलिया मे है जहाँ अब जाड़े की ऋतु है। एशिया महाद्वीप मे अत्यन्त गरम होने के कारण लगभग पूरा का पूरा निम्न दबाव क्षेत्र रहता है, इसके तीन केन्द्रों में मुख्य रूप से निम्न दबाव रहता है, इनमे से एक मुलतान के निकट पाकिस्तान में है जहाँ का दबाव लगभग ७४७ मिलीमीटर है। यह दबाव तीनो केन्द्रो मे निम्नतम है। इसलिए हवाएँ समुद्र से थल की ओर चलने लगती हैं।

चित्र ३—जनवरी में तापक्रम
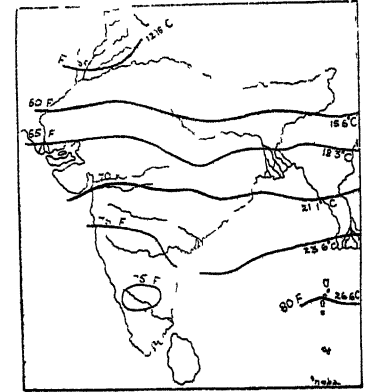
प्रारम्भ मे जब ग्रीष्म के तापमान बढने लगते है तब ये समुद्री हवाएँ समुद्र की थोड़ी दूरी से ही खिच कर आती हैं। परन्तु धीरे-धीरे जैसे-जैसे पाकिस्तान पर निम्न दबाव बढ़ता है, दक्षिणी गोलार्ध मे चलने वाली दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनें भी उस निम्न दबाव की ओर होने वाले वायु के सामान्य प्रवाह में सम्मिलित हो जाती हैं। मई में पाकिस्तान मे लगभग २९.५५" दबाव रहता है, जून मे २९.५०" हो जाता है, और जुलाई मे इतना कम कि मुलतान के निकट २९.४०" हो जाता है। इससे मानसून का जोर बढ़ता है। दक्षिणी गोलार्ध से आने वाली ये पवनें हमारे यहाँ लगभग यकायक ही आती हैं। इनको दक्षिणी-पश्चिमी या ग्रीष्म कालीन मानसून' (Summer Monsoons) कहते हैं।

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के विकास मे बङ्गाल की खाड़ी का अधिक महत्व है। यह खाड़ी बहुत चौड़ी है जो स्थल के भीतर विस्तार में फैल गई है। इसकी वायु और इसके किनारे के थल का वायु में सम्पर्क एक बड़े क्षेत्र मे होता है। खाड़ी की वायु नम होती है और थल की वायु शुष्क होती है। दोनों वायु की भिन्नता के कारण यहाँ अनेक बड़े-बड़े चक्रवात उत्पन्न होते हैं। ये चक्रवात देश के भीतर प्रवेश करके मानसून को सारे देश में फैला देते हैं।

धीरे-धीरे जब सूर्य अपनी दक्षिणी यात्रा की ओर प्रवृत्त होने लगता है तब भारत का तापमान गिरने लगता है और वायु भार की पूर्व दशाएँ फिर से स्थापित होने लगती हैं। अतएव दक्षिणी-पश्चिमी मानसून क्षीण पड़ जाती है और फिर से शीतकालीन अर्थात् शुष्क मानसून चलने लगती है। ग्रीष्मकालीन से शीतकालीन मानसून मे परिवर्तन होने का अन्तरिम काल सितम्बर से दिसम्बर तक होता है। उसके पश्चात् लगभग मई तक शीतकालीन मानसून पूर्वरूप से शक्तिशाली बनी रहती है। इस प्रकार जून से दिसम्बर तक सहस्रों मील गर्म समुद्र से होकर आती हुई दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनों के प्रभाव मे भारत रहता है। जनवरी से मई तक थल से समुद्र की ओर जाने वाली शुष्क मानसूनों का प्रभाव यहाँ रहता है। अतएव इन मानसूनो के समुद्रीय तथा स्थलीय गुण ही क्रमशः भारत के जलवायु की विशेषताओं का निर्णय करते हैं।
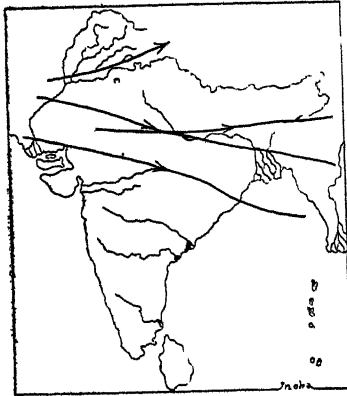
चित्र ४—शीतकाल के चक्रवात

शीतकालीन (शुष्क) मानसून में मौसम

मोटे तौर पर शीतकालीन अर्थात् शुष्क मानसून के दिनों में भारत के मौसम की विशेषता नारमण्ड के अनुसार "साफ आसमान, सूखा मौसम, कम नमी और धीमी चलने वाली उत्तरी हवाएँ हैं।" परन्तु इस सरल वक्तव्य में तथा वास्तविक दैनिक अनुभव में बड़ा अन्तर है। उत्तर-

चित्र ५—जाड़े की ऋतु की वर्षा
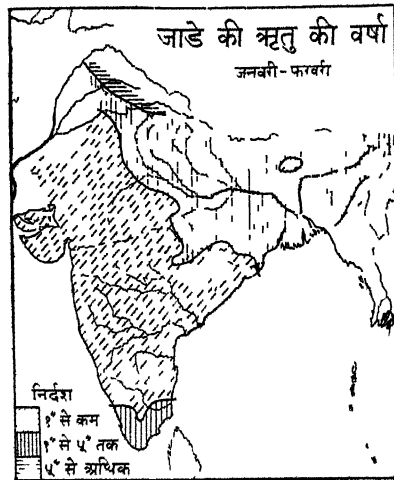
पश्चिम भारत मे चलने वाला प्रति-चक्रवात, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, समय समय पर क्षीण होता रहता है। इसका कारण यह है कि अनेक चक्रवात उत्तर भारत के शीतकालीन मौसम की दशाओ मे एक परिवर्तन उपस्थित कर देते है। इन चक्रवातों मे प्रायः दस मे से नौ भूमध्य सागर मे ईरान होते हुए आते हैं और शेष मध्य भारत या अरब-सागर में उत्पन्न होते हैं। इनका मार्ग साधारणतः हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ होता है। २१° अक्षांश के दक्षिण का प्रदेश साधारणतः उनके प्रभाव के बाहर रहता है। ये चक्रवात योरोपीय चक्रवातो से मिलते जुलते हैं परन्तु उतने प्रबल नही होते। इनमें से अधिकाश के कारण समूचे उत्तर भारत मे थोडी-सी वर्षा होती है तथा उच्च हिमालय में खूब हिम-वृष्टि होती है। इन चक्रवातो के साथ-साथ तापमान मे स्पष्ट परिवर्तन होने हैं। उनके आने के साथ ही तापमान कुछ बढ़ता है तथा समाप्त होने पर गिर जाता है। ऐसे अवसरों पर कुहरा हो जाता है। इन चक्रवातो द्वारा पहाड़ों पर होने वाली हिमवृष्टि उनके अन्तर्गत नमी के ऊपर निर्भर रहती है। जब उनमे नम अरब-सागरीय हवा अधिक होती है, तब पहाड़ियों पर काफी हिमवृष्टि हो जाती है। यह तभी सम्भव होता है जब उनके मार्ग की प्रवृत्ति दक्षिण को अधिक होती है। इन चक्रवातों का मार्ग विषुवतरेखीय, शान्त पेटी (Doldrums) द्वारा निर्धारित होता है। जब शान्त पेटी की स्थिति उत्तर की ओर अधिक होती है तब भारत में चक्रवातो का मार्ग उत्तर की ओर अधिक होता है इसलिए तब उनमे अरब सागर की हवा कम रहती है। परन्तु जब शान्त पेटी की स्थिति दक्षिण की ओर अधिक होती है तब चक्रवातो का मार्ग दक्षिण की ओर अधिक होता है। इस प्रकार चक्रवातों में नम हवा अधिक आ जाती है और परिणामस्वरूप पहाड़ों पर भीषण हिमवृष्टि होता है।

चित्र ६—मई मे तापक्रम

पहाड़ों पर भीषण हिमवृष्टि हो जाने से चक्रवातों के बाद का मौसम बहुत ठंडा हो जाता है। चक्रवात के निम्न दबाव के चारों ओर वायु घूमती है,
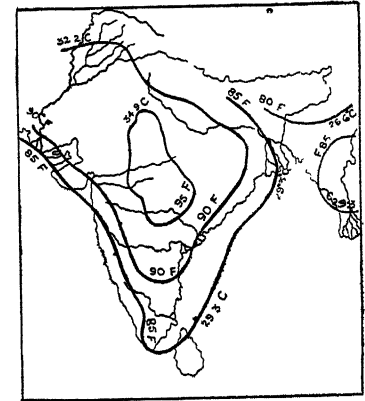
इसलिए बर्फीले पहाड़ो की ठडी हवा भारत के मैदान मे ठडी-लहर के रूप मे आ जाती है।

शुष्क मानसून के प्रथम काल की विशेषता होती है, निम्न तापमान। विषुवत रेखा के निकटतर दक्षिणी प्रदेशों की अपेक्षा उत्तर-पश्चिम में, जहाँ प्रतिचक्रवात चलते हैं, तापमान बहुत नीचे होते है। इस काल मे सपूर्ण सिन्धु-गगा मैदान मे दक्षिण भारत की अपेक्षा बहुत निम्नतर तापमान रहता है। यह तथ्य निम्नाकित तालिका द्वारा स्पष्ट है :—

शीत तथा ग्रीष्म के तापमान*

	शीत (जनवरी)		अन्तर	ग्रीष्म (मई या जून)		
	अधिकतम	न्यूनतम		अधिकतम	न्यूनतम	अन्तर
	फा°	फा°		फा°	फा°	
देहरादून	६६	४४	२२	९६ (जून)	७०	२६
अम्बाला	६९	४३	२६	१०३ (जून)	७०	३३
दिल्ली .	७०	४८	२२	१०४	८०	२४
इलाहाबाद . . .	७४	४८	२६	१०७	८०	२७
नागपुर	८३	५५	२८	१००	८२	१८
मद्रास	८५	६७	१८	९८	८१	१७

इसके परार्द्ध काल मे, जिसका आरभ मार्च से माना जा सकता है, तापमान में विशेष वृद्धि होती है क्योंकि सूर्य उत्तर की ओर बढ़ता है। चित्र न० ४ में यह दर्शित किया गया है कि मई में भारत के अधिक भागों में उच्चतम तापमान रहता है। ये तापमान दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ते हैं। इस प्रकार भारत के उच्चतम तथा निम्नतम तापमान इस शुष्क तथा थल से चलने वाली मानसून के काल में ही होते है। देश को इस मानसून काल में समुद्र का कोई लाभ नहीं मिल पाता।

ठडे से गरम मौसम के परिवर्तन काल मार्च के महीने मे अनेक स्थानीय तूफान आते हैं। ये साधारणतः निकटवर्ती समुद्रों से आई हुई नम हवा और स्थलीय सूखी हवा के मिलने के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय देश के भीतरी भाग मे भी

---

*India, 1958, p. 3-4

कभी-कभी तूफान बन जाते है। दिन भर धूप मिलने के बाद स्थलीय भाग बहुत गर्म हो जाता है फलतः वहाँ की वायु गर्म होकर ऊपर उठती है। ऊँचाई पर उससे बादल बनते हैं क्योकि वहाँ पर उसका मेल समुद्र से आई हुई वायु से होता है। इन बादलों से प्रायः ओले भी गिरा करते हैं।

शुष्क मानसून के अन्त होने के समय ऊपरी गंगा के मैदान के मौसम की विशेषता शुष्क और गरम पछुआ हवाओं मे है। इन हवाओं का स्थानीय नाम 'लू' है। ये हवाएँ मैदानों पर दिन में असामान्य गर्मी पडने के कारण चलती हैं, और रात को बन्द हो जाती हैं। दिन के तीसरे पहर से सध्या तक 'बवडर' और आँधी चलती है। वे भी स्थानीय गर्मी से ही उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी आँधी का वेग भयानक (७०-८० मील प्रति घटा) होता है। इन आँधियों से प्रायः बहुत हानि होती है।

केवल उत्तर मे ही लू चलती है। दक्षिण में समुद्र से निकटता के कारण समुद्री हवाएँ स्थल तक आ जाती हैं। जैसे ही तापमान पर्याप्त अंशों मे चढ़ जाता है वैसे ही इनसे थोड़ी-बहुत वर्षा हो जाती है। यह जलवृष्टि मानसूनी जलवृष्टि का भाग नहीं है। ये वर्षाएँ बड़ी हलकी होती है क्योकि हवाएँ थोड़े से समुद्र पर से ही हो कर आती हैं। अतः दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनों के बराबर नम नहीं होती है। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून काफी देर में चलती हैं जब विषुवत रेखा की ओर भारत के दक्षिण मे निम्न दबाव लुप्त हो जाता है और दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवनें दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनों के रूप में खिंच आती हैं।

जाड़े की ऋतु मे भारत मे पवनें बहुत कम वेग से चलती हैं क्योंकि उस ऋतु में प्रति चक्रवात का प्रभाव यहाँ होता है। ये पवनें उत्तरी भारत में पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम की दिशा से चलती हैं परन्तु दक्षिणी भारत मे ये पवनें उत्तर से चला करती हैं। ग्रीष्म ऋतु मे भी, जब तक मानसून में परिवर्तन नहीं होता है, पवनों की दिशा यही रहती है। परन्तु मानसून बदलते ही पवनें अधिकतर 'पुरवा' हो जाती हैं अर्थात् वे समुद्र से थल की ओर चलती हैं। उनका वेग भी कुछ अधिक होता है।

ग्रीष्मकालीन (आर्द्र) मानसून में मौसम

ग्रीष्मकालीन (आर्द्र) मानसून भारतीय प्रायद्वीप के विशिष्ट आकार के कारण दो शाखाओं मे विभाजित हो जाता है : (१) अरब सागरीय शाखा तथा (२) बंगाल

की खाड़ी की शाखा। बगाल की खाड़ी की शाखा काफी दूर जल पर चल कर स्थल को छूती है और देश के विशालतर भाग पर पानी बरसाती है। अरब सागरीय शाखा यद्यपि अधिक सशक्त होती है। परन्तु पश्चिमी घाट को पार करते-करते वह बहुत कुछ क्षीण हो जाती है क्योंकि पश्चिमी घाट के पहाड़ उसकी बहुत कुछ नमी खींच लेते हैं। अरब सागरीय शाखा की कुछ धाराएँ नर्बदा नदी-मार्ग से होकर प्रायद्वीप में प्रवेश कर जाती हैं। वे छोटा नागपुर में बगाल की खाड़ी की शाखा की धारा में सम्मिलित हो जाती हैं। इसी प्रकार पालघाट मार्ग से भी यह मानसून प्रायद्वीप के अन्दर पहुँचती है।
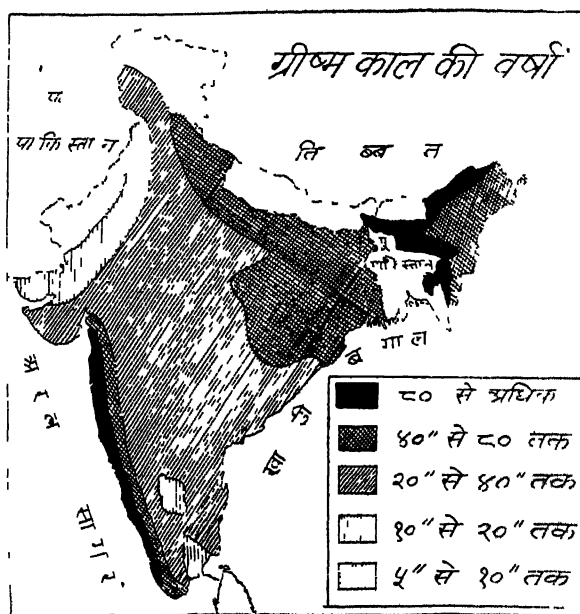
चित्र ७—ग्रीष्मकाल की वर्षा

ग्रीष्मकालीन या आर्द्र मानसून को दक्षिणी-पश्चिमी मानसून भी कहते हैं क्योंकि वह मूलतः दक्षिण-पश्चिम से ही प्रवाहित होती है। परन्तु भारत की भूमि पर इसकी दिशा में निम्न दबाव की स्थिति के कारण किंचित परिवर्तन हो जाता है। इस

निम्न दबाव की स्थिति उत्तर पश्चिम की ओर है और यह मानसून स्वाभाविकतया उस दिशा मे तथा पर्वतो की दिशा मे विशेषतः अराकान पहाड़ियों तथा हिमालय की ओर आकृष्ट हो जाती हैं। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून वस्तुतः पूर्व से आती है।

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के आने से तापक्रम काफी कम हो जाता है। फिर भी हवा की अत्यन्त नमी के कारण असहनीय कड़ी गर्मी पड़ती है। वस्तुतः ये दिशाएँ विषुवतीय प्रदेशों की दिशाओं से मिलती-जुलती हैं।

पश्चिमी या दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का प्रमुख महत्त्व उसकी वर्षा के कारण है। यह मानसून हजारो मील गर्म समुद्र के ऊपर से होकर आती है इसलिए यह काफी अधिक भाप लाने मे समर्थ रहती है। इसलिए स्थल पर आने के समय यह खूब जल से लदी रहती है। बगाल की खाड़ी की शाखा अराकान तट से टकराती है और तब गारो और खासी के कूपीय मार्ग मे प्रवेश करती है (चित्र न० ५ मे प्रदर्शित)। इन वायु धाराओं के इस मार्ग मे पहुँचने के कारण चेरापूँजी मे ४२५ इच औसत वार्षिक
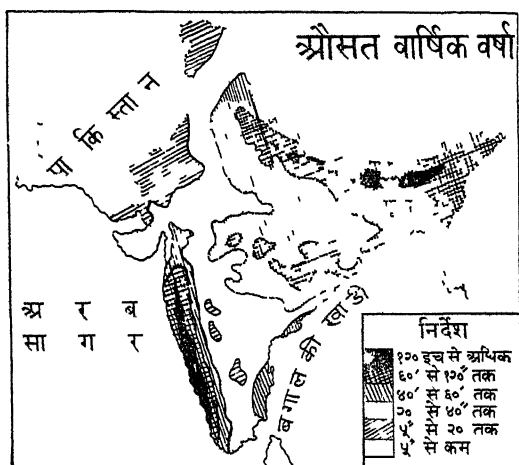
चित्र ८—वार्षिक वर्षा

वर्षा होती है। यदि यह पानी जमा हो जाय तो उसमे एक आधुनिक चौमजिला मकान डूब सकता है। इस मार्ग से निकलते-निकलते यह मानसून बहुत कुछ खाली हो जाती

है। इसीलिए चेरापूँजी से केवल पच्चीस मील दूर बसे हुए शिलॉग मे केवल ५५ इच वार्षिक वर्षा होती है। इसके पश्चात् ये मानसून धाराएँ हिमालय के सहारे आगे बढ़ती हुई पजाब पहुँच कर अरब सागरीय शाखा के दूसरे भाग से मिलती हैं। जैसे-जैसे ये धाराएँ देश के भीतर प्रवेश करती जाती हैं, वैसे-वैसे वर्षा कम होती जाती है क्योंकि उनकी नमी धीरे-धीरे घटती जाती है। हिमालय तथा बगाल के तट के निकट भीतरी या हिमालय से दूरस्थ प्रदेशों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

भारत में मानसून द्वारा होने वाली वर्षा का कुछ भाग पर्वतीय (Orographical) होता है, तथा कुछ भाग झंझावातीय (Convectional)। हिमालय तथा पश्चिमी घाट में सभी जगह मानसून धाराएँ पहाड़ों को पार करने मे प्रयत्नशील रहती हैं जिनके परिणामस्वरूप उनकी नमी से बादल बन कर वर्षा हो जाती है। पर्वतीय वर्षा मे पहाड़ों के पवन-मुखी ढालो पर पवन-विमुख ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। चक्रवातीय (Cyclonic) वर्षा अनेक चक्रवातो के कारण होती है। इनमें से कुछ चक्रवात स्थानीय उष्णता के कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं तथा अन्य पड़ोसी समुद्रो से उठ कर स्थल की ओर आते हैं। चक्रवात अपने-अपने क्षेत्र में वर्षा को केन्द्रीभूत तथा घनीभूत करते हैं। इसलिए भारत के किसी स्थान विशेष मे जब अधिक या कम वर्षा होती है तो उसका कारण चक्रवात की प्रचडता होती है। परिणामस्वरूप ग्रीष्म-कालीन मानसून द्वारा भारत के किसी भाग में निरतर वर्षा नहीं होती। साधारण जल-वृष्टि की ऋतु में अनावृष्टि मे अन्तर पड़ जाया करते हैं। चक्रवातों की प्रचडता के कारण ही बाढ़ें आती हैं। मानसूनी वर्षा का अंतर दे-देकर बरसना उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। आर्थिक दृष्टि से यह फसलों की समुचित पैदावार के लिए महत्व पूर्ण है क्योंकि यदि वर्षा लगातार होती रहे तो न तो किसान खेत को जोत बो सकता है और न फसल ही उग सकती है। समयान्तर वर्षा ही खेती के लिए लाभदायक है। झंझावातीय वर्षा कभी-कभी स्थानीय गर्मी के कारण भी होती है। इस गर्मी के कारण आठों पहर मुकुटधारी (Cumulous) बादल बन जाते हैं। इस प्रकार की वर्षा नितान्त स्थानीय होती है। अधिकतर यह पतझड़ या वसन्त ऋतु (अर्थात् अक्टूबर और मार्च) में होती है। गर्मी द्वारा हवा में एक स्थानीय वायु तरग उत्पन्न हो जाती है इसके कारण हवा ऊपर उठती है। इस ऊपर उठने वाली वायु की नमी ऊपर पहुँच कर बादल बन जाती है। ये बादल जब और ऊपर उठते हैं तब उनसे बड़े जलकण बन कर वर्षा होने लगती है। भारत में होने वाली झंझावातीय वर्षाएँ बड़ी हल्की होती है क्योंकि ये

एक ऐसे समय मे होती हैं जब भारत के उन स्थानों का तापक्रम बहुत अधिक नही होता। इसलिए स्थानीय गर्मी ऐसी अत्यन्त प्रबल वायु तरगे उत्पन्न करने मे असमर्थ रहती है जो काफी ऊपर उठ कर काफी पानी बरसा सके।
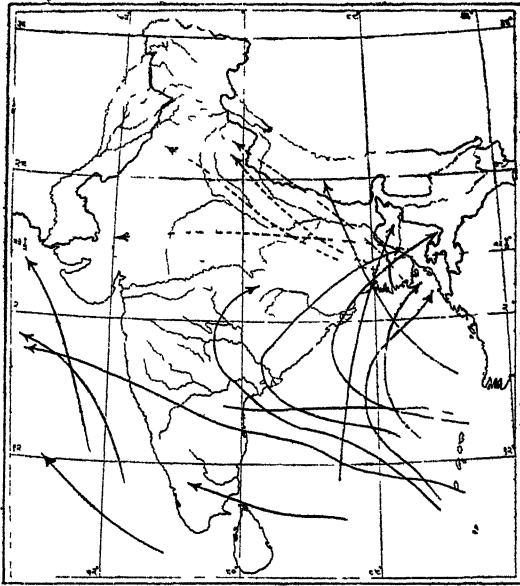
चित्र ६—ग्रीष्मकालीन तूफानो के मार्ग

चक्रवातों के कारण ही पहाड़ों से बहुत दूर के प्रदेशों पर भी वर्षा होती है। क्योकि सामान्यतः मानसून हवाएँ हिमालय को पार करने के लिए ही प्रयत्नशील रहती हैं और अपनी समस्त वर्षा को वही केन्द्रित किये रहती हैं। केवल चक्रवातों के कारण ही नम मानसून मैदानों से होकर गुजरती है और वहाँ पानी बरसाती है। चक्रवातों के लिए स्थल मे आने के लिए नदियों की घाटियाँ सुगम मार्ग बनाती हैं। बगाल की खाड़ी के चक्रवात गगा की घाटी तथा महानदी की घाटी से होकर प्रायः देश के भीतर पहुँचते हैं। कभी-कभी नर्बदा की घाटी से होकर अरब सागर का कोई चक्रवात भी यहाँ आ जाता है।

आमतौर पर पानी बरसाने वाली मानसून धाराओं की शक्ति जून से जुलाई तक

बढ़ती रहती है और फिर अगस्त के अत तक स्थायी बनी रहती है। इसके पश्चात् धाराएँ क्षीण पडने लगती हैं और भीतरी भागो तक नही पहुँच पाती अर्थात् लौटने लगती है। मानसून के लौटने का कारण यह है कि सूर्य दक्षिणी गोलार्ध की ओर लौटने लगता है। निम्नाकित सारिणी में वे तिथियाँ दी हुई हैं जिनके लगभग दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का भारत मे प्रारभ तथा अत होता है :—

मानसून कालक्रम

राज्य	प्रारभ	अंत	काल (दिन)
बम्बई	५वी जून	१५वीं अक्टूबर	१३०
बगाल	१५वी जून	१५वीसे ३०वी अक्टूबर	१३२-१३७
उत्तर प्रदेश	२५वी जून	३०वी सितम्बर	६७
पजाब	१ली जुलाई	१४-२१ सितम्बर	७५-८२

अरब सारगीय मानसून-धारा दक्षिण दिशा मे राजस्थान, गुजरात और दक्कन होकर अनेक बार रुकती हुई लौटती है। इसी प्रकार बंगाल की खाडी वाली धारा गंगा के मैदान के दक्षिण की ओर लौटती है। उत्तर भारत का नीचा वायुभार अक्टूबर तक वहाँ से विलीन होकर नवम्बर के प्रारम्भ होते-होते बङ्गाल की खाड़ी मे पहुँच जाता है। मानसून के लौटने के बाद उत्तर भारत मे शीतल और शुष्क मौसम प्रारम्भ हो जाता है। मद्रास और उड़ीसा के तटीय जिलों मे वर्षा होती है अक्टूबर तथा नवम्बर वहाँ के सबसे अधिक वर्षा के महीने हैं।
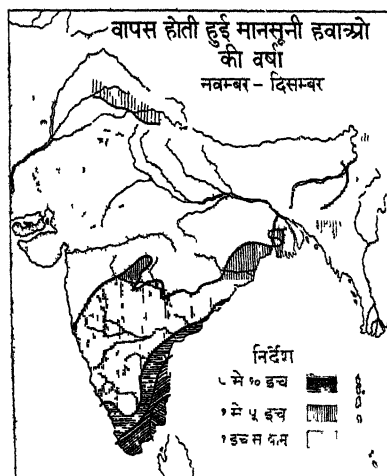
चित्र १०—वापस होती हुई मानसूनी वर्षा

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के लौटने के समय अनेक तूफान आते हैं। उनका सम्पर्क तट से (विशेषकर बङ्गाल की खाड़ी के तट से) ही हो पाता है। इन तूफानों के कारण कभी-कभी समुद्र मे बड़ी-बड़ी ज्वार-तरगें आती हैं जिनके

कारण तट के निकट के निम्नस्थ क्षेत्रो को बड़ी क्षति पहुँचती है। सन् १८७६ में बाकरगज तूँफान मे जो उच्च ज्वार तरङ्ग आई थी वह अब तक की सबसे अधिक हानिकारक तरङ्ग मानी जाती है। मेघना नदी के जलोढ कछार में बसे हुए लगभग एक लाख व्यक्ति आधे घन्टे के अन्दर डूब गये थे। कुछ समय पूर्व बङ्गाल क ऊपर से एक ऐसा ही तूफान गुजरा था। निम्नलिखित समाचार मे उसका विस्तारपूर्वक वर्णन है :

"अक्टूबर १६४२ को बङ्गाल की खाड़ी से उठकर एक भीषण तूफान बङ्गाल के कई जिलो पर से गुजरा। यह १५ अक्टूबर को ७-८ बजे सबेरे प्रारम्भ होकर १७ अक्टूबर की सुबह समाप्त हुआ। १६ तारीख को तीसरे पहर तूफान के कारण खाडी से उठकर एक उच्च ज्वार तरङ्ग जमीन पर आ गई जिससे मिदनापुर के दक्षिणी भाग तथा चौबीस परगना को अपार क्षति पहुँची। तूफान के साथ-साथ मूसलाधार वर्षा भी हुई। कहीं-कही तो चौबीस घन्टों के अन्दर १२ इच तक पानी गिरा। इन जिलो की सभी नदियों मे ज्वार तरङ्ग, जलवृष्टि और वायुवेग के कारण भयानक बाढ़ आ गई। जिन क्षेत्रों मे सबसे अधिक नुकसान हुआ है वहाँ बहुत से आदमियों की जानें गई—वर्तमान अनुमान के अनुसार मिदनापुर जिले मे १०,००० व्यक्ति तथा चौबीस परगना जिले मे १,००० व्यक्ति मरे। जानवरो की क्षति इस सख्या से लगभग ७५% अधिक हुई। जहाँ तक घरो का प्रश्न है, लगभग प्रत्येक कच्चा घर या तो बुरी तरह टूट गया या नष्ट ही हो गया।"

ताप विवरण

मोटे तौर पर कर्क रेखा भारत को दो समान भागो मे बाँट देती है : उष्ण-शीतोष्ण तथा उष्ण। परन्तु मानसूनी जलवायु होने से कारण भारत के तापक्रम-वितरण पर कर्क रेखा का बहुत प्रभाव पड़ता है। केवल सुदूर दक्षिण ही भारत का ऐसा भाग है जहाँ तापक्रम पर अक्षाश रेखा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परन्तु वहाँ भी देश के प्रायद्वीप के आकार के कारण समुद्री प्रभाव तापमानों को बहुत कुछ बदल देता है।

उत्तर-भारत अर्थात् कर्क रेखा के उत्तर की ओर स्थित भू-भाग के तापमान जाड़े के दिनों में सूर्य की तिरछी किरणों के अतिरिक्त उस प्रदेश पर चलने वाले प्रति-चक्रवात द्वारा निर्धारित होते हैं। तापमान ५५° फा० और ६५° फा० के बीच में बदलते हैं।

जब भी चक्रवात प्रतिचक्रवातों मे बाधा पहुँचाते हैं तब कुछ परिवर्तन हो जाता है। चक्रवात के आ जाने से कुछ घन्टों के लिए तापमान कुछ-कुछ बढ़ जाते हैं और उनके चले जाने पर दो-एक दिन के लिए तापमान किंचित गिर जाते हैं। यह याद रखना चाहिए कि स्थानीय लेखा के अनुसार निम्नतम शीतकालीन तापमान चक्रवात के अन्त के दिनों में ही होते हैं।

दक्षिणी भारत अर्थात् कर्क रेखा के दक्षिण की ओर स्थित भूभाग मे शीतकालीन तापमान विषुवत रेखा से निकटतया तथा समुद्री प्रभावों द्वारा निर्धारित होते हैं। कर्क रेखा के निकट का तापमान ६५° फा० रहता है और वह दक्षिणी सीमा पर ८८° फा० तक बढ़ता है। समुद्र की सतह से ऊँचाई तथा समुद्र से निकटता के कारण कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ भी होती हैं। चित्र न० ३ (जिनमें जनवरी की समताप रेखाएँ दी हुई हैं) समताप रेखाओं के दक्षिणवर्ती झुकाव द्वारा यह प्रदर्शित करता है कि पूर्वी तट के शीतकालीन तापमान पश्चिमी तट की अपेक्षा उष्णतर रहते हैं। इसका कारण पश्चिम की अधिकतर ऊँचाई है। ऊँचाई का प्रभाव इस तथ्य द्वारा और भी स्पष्ट हो जाता है कि ७५° फा० की समताप रेखा मैसूर के पठार को भी घेर लेती है।

उत्तर भारत के ग्रीष्मकालीन तापमानो के अधिकाश कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) उत्तर गोलार्ध मे चमकने के कारण सूर्य की तीरछी किरणे।

(२) स्थानीय प्रभाव समुद्र से दूर होने के कारण थल का प्रभाव।

(३) प्रतिचक्रवात निरंतर ऊँचे तापमानों को बनाये रखता है।

(४) वर्षा लाने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के आने से तापमान में कुछ कमी।

जैसे ही सूर्य विषुवत् रेखा को पार करके उत्तर को ओर चलता है वैसे ही भारत में तापमान बढ़ने लगता है। परन्तु चित्र न० ४ (जिसमे मई की समताप रेखाएँ दी हुई हैं) यह प्रदर्शित करता है कि उत्तर तथा दक्षिण भारत के ग्रीष्मकालीन तापमानों में कोई अन्तर नही होता है। ९०° की समताप रेखा भारत के अधिकांश भाग को ढँकती है। समुद्र के निकट ये समताप रेखाएँ तट की दिशा मे उन्मुख होती हैं। इसका कारण समुद्रीय प्रभावों का होना है।

जून में जब सूर्य ठीक कर्क रेखा पर चमकता है तब उसी प्रदेश में उष्ण

तापमान रहते हैं। इस रेखा से उत्तर मे स्थित क्षेत्रों मे स्थलीय प्रभाव के कारण उच्चतम तापमान होता है। इसलिए जून और जुलाई मे भारत का उष्णतम तापमान दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, सिन्ध मध्य प्रदेश तथा राजस्थान मे रहता है। दक्षिण मे स्थित समुद्र के निकटवर्ती क्षेत्रों मे जहाँ दक्षिणी-पश्चिमी मानसून इस समय तक प्रवेश कर जाती है तापमान काफी कम हो जाते है। ऊपर कही हुई बातों से यहा का ग्रीष्मकालीन ताप-वितरण निम्नलिखित कारणो से सम्बन्धित है :—

(१) सूर्य की सीधी किरणो से सम्बन्ध, (२) स्थलीय प्रभाव से सम्बन्ध और (३) जलवर्षा से सम्बन्ध।

दैनिक ताप—भारत के विभिन्न भागो मे दैनिक तापमानो का वितरण ऊपर के सरल कथन से बिल्कुल भिन्न है। उत्तरी-पश्चिमी भाग के किसी स्थान मे दिन मे १००° फा० से अधिक तथा रात मे ४०° फा० से कम तापमान हो सकता है। अधिकतम तापमान पश्चिमी राजस्थान मे श्री गगा नगर मे १३४° फा० तक हो जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारत में तापक्रम का वितरण अक्षांशों पर अधिक निर्भर है। परन्तु यह प्रभाव जाड़े की ऋतु मे ही स्पष्ट है। गर्मी की ऋतु में मानसून का प्रभाव अधिक बलवान रहता है और समताप रेखाएँ टेढ़ी हो जाती है।

कर्क रेखा भारत से होकर गुजरती है इसलिए यहाँ अधिक नीचे ताप नहीं होते हैं। हिमालय मे, शीत काल को छोड़कर, साधारणतः निम्न तापमान नहीं होते। जाड़ो में भारत का तापमान ६०° फा० के लगभग रहता है। गर्मियों के आरम्भ मे उत्तर भारत का तापमान बहुत अधिक रहता है परन्तु वर्षा होते-होते वह ६०° फा० के आस पास आ जाता है। दक्षिणी पठार के रात्रि के तापमान उसके विशेष लक्षण हैं। गर्मियों मे भी पठार पर रात्रि शीतल और हवादार होती है। पठार की ऊँचाई के कारण ताप मे सदा अन्तर रहता है। पठार मे छोटी-छोटी पहाड़ियाँ है। रात्रि को ये पहाड़ियाँ शीतल हो जाती हैं। इसलिए उन पर स्थित वायु भारी हो जाती है और नीचे पठार के ऊपर उतर आती और बहने लगती है। इसीलिए पठार में रात्रि शीतल और हवादार होती है।

ऋतु ताप—मालाबार के अतिरिक्त, भारत भर मे शीत तथा ग्रीष्म के तापमानों में बड़ा अन्तर रहता है। मालाबार का तापमान विषुवतीय तापमान के अन्तर्गत कहा जा सकता है। वहाँ शीत तथा ग्रीष्म के तापमानों मे बहुत कम अन्तर रहता है।

जैसे-जैसे दक्षिण से उत्तर की ओर अन्तर्देश मे प्रवेश करते जाइए तापमान का अन्तर बढ़ता जायगा। मालाबार के उष्णतम तथा शीततम महीनों के तापमान का अन्तर केवल ६° फा रहता है, दक्षिणी-पूर्वी मद्रास मे यह अन्तर १२° फा० रहता है तथा दक्षिणी-पश्चिमी पञ्जाब में ४०° फा० से अधिक।

अचानक गर्मी से सर्दी या सर्दी से गर्मी होना इस तापमान-वितरण का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। इसलिए भारत मे बसन्त तथा पतझड़ का काल अधिक समय तक नहीं रहता है। उत्तर मे दक्षिण की अपेक्षा यह लक्षण अधिक स्पष्ट है। निम्नांकित सारिणी में तीन विभिन्न क्षेत्रो के तापमान दिये हुए हैं, इनमे दक्षिणी-पश्चिमी मानसून काल की सापेक्षिक स्थिरता तथा बसन्त और पतझड़ में होने वाले तापमान के अचानक परिवर्तन का दिग्दर्शन है :—

फा० अंशो मे औसत मासिक तापमान

क्षेत्र	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
पजाब (द० प०)	५४	४८	६९	८०	९०	९४	९३	९०	८७	७८	६६	५६
बगाल	६५	६९	७५	८३	८४	८४	८३	८३	८३	८०	७३	६६
मद्रास (द० पू०)	७६	७९	८३	८६	८८	८७	८५	८४	८३	८१	७९	७६

ऊपर दी हुई सारिणी के अनुसार पजाब में फरवरी से मई तक ३०° फा० तापमान चढ़ता है फिर सितम्बर से दिसम्बर तक उसी प्रकार गिरता है। अन्य दो उदाहरणों में भी यही प्रवृत्ति विद्यमान है।

तापमान-वितरण का यह लक्षण भारत की फसलों की पैदावार के लिए बहुत

महत्त्व का है। सब से अधिक वर्षा के काल मे एक-सा अधिक तापमान गर्मी की फसल अर्थात् खरीफ के उगने और शीघ्र पकने में बहुत सहायक होता है। भारतीय किसान के भोजन-भण्डार, जो उस समय तक लगभग खाली हो चुके हैं, इस प्रकार फिर से भर जाते हैं। गर्मी से यकायक सर्दी आ जाने के कारण किसान को रबी की फसल बोने में आसानी होती है क्योंकि वर्षा के कारण धरती को जो नमी मिली हुई होती है वह अब तक सूख नही जाती तथा नई फसलों को उगने के लिए सुलभ रहती है। परन्तु एकदम सर्दी से गर्मी का आ जाना फसलो के ठीक तौर से पकने मे हानिकर सिद्ध होता है।

वर्षा-वितरण

नीचे दी हुई तालिका मे भारत की मासिक वर्षा दिखाई गई है। इस तालिका से यह ज्ञात होता है कि भारत मे लगभग ६० प्रतिशत वर्षा दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से प्राप्त होती है। इसी तालिका से यह भी ज्ञात होता है कि वर्ष की लगभग ७८ प्रतिशत वर्षा ग्रीष्म ऋतु के चार महीनों, (जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर) में होती है अर्थात् वर्ष का प्रायः दो-तिहाई भाग सूखा ही जाता है।

भारत की मासिक वर्षा

मास	मात्रा (सेन्ट्स मे)	प्रतिशत	विशेष
जनवरी	३६४१	१	
फरवरी	५१५६	१ ५	
मार्च	५८२०	१ ८	
अप्रैल	८३८८	२ ५	आसाम पूर्वी हिमालय में और पश्चिमी तट पर
मई	१६२७७	५ ६	
जून	५५६५६	१६ ३	
जुलाई	८६१३०	२६ २	७८ ७%
अगस्त	७४६८२	१२ ४	
सितम्बर	४७२४४	१३ ८	
अक्टूबर	१८६५०	५·५	पश्चिमी तट आसाम और मद्रास तट पर
नवम्बर	८५७२	२·५	
दिसम्बर	३३३१	६	

नीचे दी हुई सूची में भारत के मौसम-विभाग और उनकी जलवर्षा दी है :—

विभाग	नगर	वार्षिक जलवर्षा (इंच)
आसाम	डिब्रूगढ़	१००
	गौहाटी	६३
बङ्गाल	कलकत्ता	६२
	आसनसोल	५६
ओड़ीसा	कटक	६०
छोटा नागपुर	राँची	५८
बिहार	पटना	५८
उत्तर प्रदेश, पू०	गोरखपुर	५०
,, प०	मेरठ	३२
पंजाब	दिल्ली	२६
राजस्थान, प०	बीकानेर	११
,, पू०	जयपुर	२४
,, द० पू०	उदयपुर	२३
मध्य प्रदेश	इन्दौर	३५
,,	सतना	४५
,,	जबलपुर	५८
गुजरात	भावनगर	२९
कच्छ	राजकोट	१४
कोंकन	बम्बई	७१
दक्कन	पूना	२६
हैदराबाद	हैदराबाद	२७
आन्ध्र (तटीय)	मछलीपट्टम	४१
,, (भीतरी)	कुर्नूल	२५
तामिलनाड (उत्तर)	मद्रास	५०
,, (दक्षिण)	कोयम्बटूर	२३
मालाबार	मंगलोर	१३०
मैसूर	बंगलोर	३४
केरल	अलेप्पी	११९

भारत मे मानसूनी वर्षा प्रायः चार महत्वपूर्ण ढङ्गो से साधारण क्रम से विचलित होती है :—

(१) देश के बहुत बड़े भाग या पूरे देश मे वर्षा का पिछड़ना।

(२) जुलाई और अगस्त मे जब गर्मी की फसले, जिन्हे अत्यधिक नमी की जरूरत होनी है, उग रही होती है तब कई-कई दिनो तक वर्षा का न होना।

(३) अपने साधारण समाप्ति काल के पहले ही वर्षा का समाप्त हो जाना। इससे खड़ी फसलो को भी बहुत हानि पहुँचती है और रबी की फसल का बोना भी कठिन हो जाता है।

(४) देश के किसी भाग मे असाधारण भारी वर्षा तथा दूसरे भाग में असाधारण कम वर्षा का होना।

भारत मे वर्षा-काल मे मूसलाधार वर्षा के बाद पानी बहुत जोर से बह चलता है, जिसका परिणाम होता है कि विस्तृत भूक्षेत्रों से मिट्टी कट जाती है। उदाहरण के लिए लदन की २४ इच वार्षिक वर्षा १६१ दिनों मे हल्की फुहारों के रूप मे होती है जिसक परिणामस्वरूप अधिकाश मेह का जल धरती मे सोख जाता है जब कि बम्बई की ७२ इच वार्षिक वर्षा केवल ७५ दिन मे हो जाती है और अधिकाश वर्षा का पानी धाराएँ बनकर बह जाता है।

शुष्क और नम मौसमों का एक के बाद एक होना भारतीय जलवायु का मूलभूत लक्षण है। भारत जैसे गर्म देश मे, जहाँ का जीवन अधिकाशतः कृषि पर निर्भर है, इस एकान्तरण के कारण वर्षा-वितरण की स्वाभाविकतया बहुत महत्व दिया जाता है। चित्र न० ७ में यह दिग्दर्शित है कि देश के अधिकाश भाग मे जून से अक्टूबर तक के काल में वर्षा होती है। वर्षा की दृष्टि से नवम्बर और दिसम्बर मद्रास और उड़ीसा के तटों पर ही महत्वपूर्ण हैं। जनवरी और फरवरी मे शिशिर-कालीन चक्रवातो द्वारा साधारणतः पजाब और गगा-सिन्धु की घाटी मे हल्की वर्षा होती है।

चित्र न० ६ के अनुसार अधिकतम वर्षा के क्षेत्र ये हैं :—

(१) पश्चिमी घाट पर्वतश्रेणी के पश्चिमी ढाल तथा

(२) आसाम की पहाड़ियों तथा पूर्वीय हिमालय के दक्षिणी ढाल (इन स्थानो पर १०० इच वार्षिक से अधिक वर्षा होती है)।

न्यूनतम वर्षा के दो क्षेत्र हैं :—

(१) थर रेगिस्तान (और पाकिस्तान का सिन्ध) तथा

(२) उड़ीसा का थोड़ा सा भाग (यहाँ १० इञ्च से कम वार्षिक वर्षा होती है)।

देश के शेष भागों मे २० इञ्च से लेकर ८० इञ्च तक वार्षिक वर्षा होती है। तट या हिमालय के निकटस्थ प्रदेशों में उन स्थानों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है जो इनसे दूर स्थित हैं।

मानचित्र नं० ८ मे यह दिग्दर्शित है कि भारत तथा पाकिस्तान के विशाल क्षेत्रो मे वर्षा की अनियमितता (Variability) काफी मिलती है। इस चित्र से यह स्पष्ट होता है कि न्यूनतम औसत वर्षा मे अपेक्षाकृत अधिक अनियमितता होती है।

सिन्ध स्थित नौशेरा मे, जहाँ केवल ५ इञ्च वार्षिक वर्षा होती है ५३% अनियमितता है परन्तु कानपुर मे, जहाँ ३४ इञ्च वार्षिक वर्षा होती है वहाँ, यह अनियमितता केवल २०% है। कलकत्ता मे ६५ इञ्च वर्षा होती है और वहाँ अनियमितता ११%
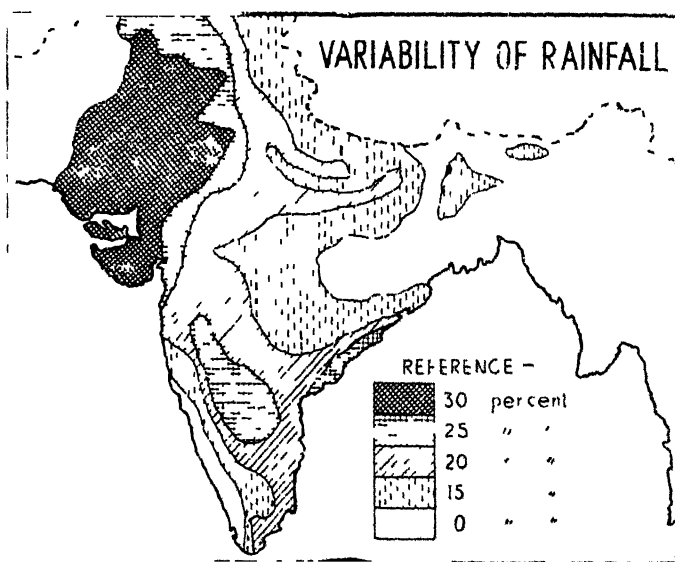
चित्र ११—Variability of Rainfall

है। कम वर्षा के क्षेत्रों में अधिक अनियमितता खेती के लिए उतनी हानिकर नहीं है जितनी उन क्षेत्रों की कम अनियमितता हानिकर है जहाँ उतनी ही वर्षा होती है जो

खेती के लिए काफी हो। ऐसे क्षेत्रों में वर्षा मे कमी होने से खेती असभव हो जाती है और परिणामस्वरूप अकाल पड़ जाता है।

वर्षा की अनियमितता अधिकतम तथा न्यूनतम वर्षा-क्षेत्र मे महत्वपूर्ण नहीं होती। अधिकतम वर्षा के क्षेत्रो में सदैव ही कुछ फसले उगाने के लिए काफी पानी रहता है। शुष्क क्षेत्रों में फसले उगाने के लिए नहरों का एक जाल सिंचाई के लिए प्रस्तुत रहता है। परन्तु अन्य क्षेत्रों को भारी क्षति पहुँचती है। ऐसे क्षेत्र देश के मध्य भाग मे हैं और इनमे साधारणतया ३०" से ५०" तक वार्षिक वर्षा होती है। यह भारत का 'अकाल कटिबन्ध' (Famine Zone) है। इन क्षेत्रो मे सामान्य वर्षों मे सिचाई के लिए काफी वर्षा हो जाती है। इसीलिए यहाँ सिंचाई की अन्य व्यवस्थाएँ नही होती। इसी कारण सूखा के दिनों मे उन्हे भयानक कष्टों का सामना करना पडता है।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि भारत का जलवायु मानसूनी ढग का है। वहाँ जाड़ों तथा प्रारभिक गर्मियो मे स्थलीय हवाएँ तथा ग्रीष्म ऋतु में उत्तरकाल मे समुद्री हवाएँ चलती हैं। परिणामतः ग्रीष्म ऋतु का उत्तर काल वर्षा ऋतु हो जाता है। मानसून जलवायु में यह वर्षाकाल एक अलग ऋतु मानी जाती है। पानी बरसाने वाली मानसून को दक्षिणी-पश्चिमी मानसून कहते हैं। भारतीय प्रायद्वीप के विशेष आकार के कारण इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं: अरब सागरीय शाखा तथा बङ्गाल की खाड़ी की शाखा। देश की भूमि की विशिष्ट उभार दशाओं के कारण बङ्गाल की खाड़ी की शाखा अतर्देश मे प्रवेश कर जाती है। ये विशिष्ट उभार दशाएँ पर्वतों की साधारण दशाएँ हैं जिनके कारण मानसून भारत मे ही लगभग सीमित हो जाता है तथा गगा और महानदी की घाटियाँ हैं जिनके ऊपर से ही बगाल की खाड़ी के चक्रवात चलते हैं। ये चक्रवात भारत की स्थली वायु तथा बगाल की खाड़ी की समुद्री वायु के संपर्क के कारण बनते हैं। भारत के वर्षा-वितरण पर उनका बहुत प्रभाव पड़ता है। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून की अरब-सागरीय शाखा पश्चिमी घाट पहाडों से टकरा कर लगभग बिल्कुल सूखी हो जाती है। इसलिए भारत के साधारण वर्षा वितरण पर इसका प्रभाव नाम मात्र को पडता है।

भारत के वर्षा-वितरण में यह बात विशेष रूप से स्पष्ट है कि पहाड़ों के पवन-मुखी ढालों (Windward Slope) पर बहुत अधिक वर्षा होती है। पीछे दिये हुए चित्र न० ६ से ज्ञात है कि ऐसे स्थानो पर १००" वार्षिक वर्षा होती है। इसी चित्र

मे देश के भीतर उत्तर-दक्षिण फैली हुई पेटी भी दिखाई गई है जहाँ ३० से ४०" इन्च तक की सामान्य वर्षा होती है। वर्षा-वितरण की दृष्टि से यह पेटी स्पष्ट है। यह पेटी देश का मध्य भाग है। इस पेटी के पूर्व मे पहाड़ों तक ५०" से ८०" तक वार्षिक वर्षा होती है। इसके पश्चिम मे, पश्चिमी घाट पहाड़ को छोड़ कर, ३०" से कम वर्षा होती है। थर मरुभूमि और राजस्थान के रेगिस्तान मे १०" से भी कम वर्षा होती है। वर्षा के लिए शीतकालीन चक्रवातों का महत्व भी ध्यान देने योग्य है। अकाल पड़ना भारतीय वर्षा का सहज अंग है।

मानसून विषयक भविष्यवाणियाँ

भारत मे ग्रीष्म कालीन मानसूनो की शक्ति चार कारणों पर निर्भर रहती है :—

१. मई के अन्त तक हिमालय मे जमे हुए हिम का परिमाण। यदि यह परिमाण अधिक होता है तो विशेषकर देश के उत्तरी-पश्चिमी भाग मे मानसून के क्षीण होने की प्रवृत्ति होती है।

२ मई मे मोरीशस द्वीप मे वायु-भार जिससे हिन्द महासागर के वायु-भार की दशा मालूम होती है। यदि यह भार अधिक होता है तो मानसून क्षीण होती है क्योंकि इसके कारण भारत मे प्रति चक्रवातीय हवाएँ उत्पन्न हो जाती है।

३ अप्रैल और मई में पूर्वी अफ्रीका तथा जंजीबार मे होने वाली वर्षा जिससे कि विषुवतीय शान्त पेटी की दशाओं का संकेत मिलता है क्योंकि शान्तपेटी मे तभी काफी वर्षा हो सकती है जब हवा की ऊपर उठने वाली तरगें अधिक हो। ऐसी तरगें पवनों को दक्षिणी हिन्दमहासागर से भारत की ओर प्रवाहित होने से रोकती है।

४. मार्च, अप्रेल और मई में चिली (दक्षिणी अमेरिका) मे वायु-भार। यदि यह भार अधिक होता है तो मानसून अच्छी होती है क्योकि इसके कारण हिन्दमहासागर में निम्न भार उत्पन्न हो जाता है और परिणामस्वरूप भारत में चक्रवातिक दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

आर्थिक जीवन पर प्रभाव

भारत के जलवायु के अनेक महत्वपूर्ण लक्षण उसके आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

(१) शीत काल मे भी भारत के किसी भाग में तापमान बहुत निम्न नहीं रहते। इसके कारण फसलों को उगने के लिए एक विस्तृत काल-भाग प्राप्त हो जाता है क्योंकि स्थानीय रूप से यदा-कदा के अपवादों को छोड़ दें तो भारत मे कहीं भी

पाला नहीं पड़ता है। इस कारण से भारत में शीतकाल मे शीतोष्ण फसले तथा ग्रीष्म-काल मे उष्णप्रदेशीय तथा शीतोष्ण प्रदेशीय फसले पैदा होती हैं। वास्तव मे मई और जून के शुष्कतम महीनों को छोड़कर भारत मे सभी महीनों में फसले उगती हैं। बगाल, आसाम और प्रायद्वीप प्रदेश में, जहाँ सिचाई के लिए पानी सुलभ रहता है, इन शुष्क महीनो मे भी फसले उगा करती हैं। इस प्रकार इन प्रदेशों में धान की तीन फसलें तक उगाई जा सकती हैं।

(२) जून, जुलाई और अगस्त ग्रीष्म के इन तीन महीनों में सबसे अधिक वर्षा होती है। इसका उपयोग ज्वार, बाजरा और मक्का जैसी फसलों को शीघ्रता से उगाने के लिए किया जाता है। इस काल की गर्म और नम जलवायु के कारण पौधों की वृद्धि होती है जिससे जानवरों के लिए काफी चारे की उपलब्धि हो जाती है।

(३) ग्रीष्मकालीन तापमान उच्च होते हैं और अचानक बढ़ जाते हैं। इसलिए भारत मे फसले शीघ्रता से पकती हैं। शीघ्रता से पकने के कारण वे घटिया प्रकार की होती हैं। इसीलिए भारत गुणात्मक उत्पादक (quality producer) नहीं वरन् परिमाणात्मक उत्पादक (quantity producer) है। यह बात जाड़ों और गर्मियों दोनों की फसलो के लिए लागू होती है क्योंकि दोनों ही के पकने का समय गर्मियों मे ही आता है।

(४) कुछ महीनों में वर्षा के केन्द्रित हो जाने के कारण अन्य महीने सूखे रह जाते हैं। इस कारण भारत में बड़े-बड़े घास के मैदान नही बन पाते। वर्षा में जो कुछ घास उग भी आती है वह शुष्क मौसम मे सूख जाती है। इसलिए भारत मे चरागाही कम और निम्न श्रेणी की है। इसीलिए जानवरों को जमा किया भूसा खिलाना पड़ता है।

(५) भारत से वर्षा का भौगोलिक वितरण ऐसा है कि उपजाऊ जलोद मिट्टी के क्षेत्र (पंजाब और उत्तर प्रदेश) जहाँ के शीत तापमान इतने काफी ठढे होते हैं कि उन पर शीतोष्ण प्रदेशीय फसलें उग सके उनमे ३०″ की साधारण वार्षिक वर्षा होती है। इस कारण वहाँ काफी गेहूँ पैदा होता है।

(६) कड़ी गर्मी के बाद होने वाली प्रचण्ड वर्षा के कारण बहुत-सी बीमारियों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। वर्षाकाल में तथा उसके बाद मलेरिया, सग्रहणी आदि जैसी बीमारियाँ फैल जाती हैं। इस कारण मानसून प्रदेशों मे रहने वालो की जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है।

(७) गर्मी के महीनो की उष्ण और नम जलवायु केवल हमारे स्वास्थ्य पर ही बुरा प्रभाव नहीं डालती वरन् हमे आरामपसन्द भी बना देती है। इसके विपरीत शीतोष्ण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अपने शरीर में गर्मी बनाये रखने के लिए शारीरिक रूप से सक्रिय रहना पड़ता है। इस जलवायु सम्बन्धी कमी के कारण भारत का श्रम अकुशल हो जाता है। यह कमी भारत के सभी भागों में समान रूप से प्रभाव नहीं डालती। शुष्क जलवायु में पला हुआ एक पंजाबी उष्ण तथा नम जलवायु में पले हुए एक बंगाली और मद्रासी से सर्वथा भिन्न होता है।

(८) वर्षा की अनियमितता के कारण खेतिहर जनता को जो अपार कष्ट और भुखमरी सहनी पड़ी है। उसके कारण वह परम्परा-पूजक हो गई है। वह बहुत शीघ्र घबरा जाती है और अपने भाग्य के समक्ष असहाय पाती है।

प्रश्न

१ आप मानसूनी जलवायु से क्या समझते हैं? यह किन कारणों पर निर्भर है?

२. भारत के आर्थिक भूगोल को समझने के लिए उसके जलवायु का अध्ययन क्यो आवश्यक है?

३. दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मई महीने के वायुभार की विवेचना कीजिए। उसका भारत की मौसमी दशाओं पर क्या असर पड़ता है?

४. भारतीय वर्षा की क्या विशेषताएँ हैं? सुचारु रूप से विवेचना कीजिए।

५. भारतीय जलवायु में शीतकालीन चक्रवातों का क्या महत्त्व है?

६. भारत भर में वर्षा का वितरण एक समान क्यों नही है?

७ यह कहा जाता है कि एक भारतीय बजट, 'मानसून पर लगाया हुआ दाँव है'। क्या आप इससे सहमत हैं? अगर हाँ, तो क्यों?

८. कौन-कौन-से कारण भारत के तापक्रम-वितरण को (१) शीत तथा (२) ग्रीष्म में प्रभावित करते हैं? क्यो?

९ भारतीय मानसून-विषयक भविष्य-वाणियों को जो-जो बातें प्रभावित करती हैं उनका वर्णन कीजिए।

अध्याय २

भौतिक आकृतियाँ

(Physical Features)

भारत के ढाँचे का मुख्य भाग प्रायद्वीपीय भारत है। प्रायद्वीपीय भाग सबसे पुराना है। उसकी अपेक्षा दूसरे भाग काफी नवीन हैं। इसलिए वहाँ के ढाँचे में जो भी परिवर्तन हुए हैं वे धरातल के तनाव और उसके टूटने के कारण ही हुए हैं। प्रायद्वीप में जो भी पर्वत मिलते हैं वे अधिकाशतः अवशिष्ट (relict) पर्वत हैं। वे भू-उत्थान-जनित सच्चे पहाड़ नही हैं वरन् वे धरातल के ऐसे उठे हुए कठोर भाग हैं जिनमे घर्षण क्रिया कम हुई है। उनके चारों ओर की मुलायम चट्टाने कटकर बह गई हैं। अति प्राचीन होने के कारण इस प्रायद्वीप प्रदेश में हमें 'नवोदित' उभार, जो कि भारत के अन्य प्रदेशों की विशेषता है, न मिल कर परिपक्व उभार देखने को मिलता है। इसकी नदियों की घाटियाँ चौड़ी और छिछली हैं तथा उनके ढाल कम हैं क्योंकि उनकी 'घाटी क्षरण के आधार-स्तर' (Base-Level) तक पहुँच गई हैं।

भौगर्भिक इतिहास

भारत के भौगर्भिक इतिहास के दो काल हैं जो कि प्रायद्वीपीय भारत की भौतिक आकृतियों के निर्माण मे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पहला काल तो वह है जब पृथ्वी की गति के कारण उसके धरातल मे अनेक दरारें पड़ीं और बहुत से सीधे भू-भाग नीचे बैठ गए। इसके कारण अनेक पात्रों के आकार के भू गर्त (Depression) बन गए। धरती पर से पानी के साथ बह कर आए हुए अवसादो (Sediment) के कारण ये भू-गर्त अंततः भर गए। फिर ये अवसाद कड़े होकर चट्टान बन गए जिन्हें हम भूगर्भ-विज्ञान मे 'गोंडवाना' चट्टानो के नाम से जानते हैं। इस प्रकार की चट्टाने नर्बदा नदी के दक्षिण मे स्थित गोंड प्रदेश मे पाई जाती हैं। इस मलवे (Debris) के नीचे जो अपार वनस्पति दब गई वही आगे चल कर

कोयले की मोटी तहों में परिवर्तित हो गई जो कही-कही २० फीट से ५० फीट तक मोटी है। भूगर्भशास्त्रियों के पास इस निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए अनेक कारण हैं कि भारत के भौगर्भिक इतिहास के इस काल मे प्रायद्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और पेटागोनिया जैसे सुदूर देशों से मिला हुआ था। इसी काल मे महादेव तथा सतपुड़ा पर्वत श्रेणी मे पाये जाने वाले बलुए-पत्थर के विशाल कोशों का निर्माण हुआ।

दूसरा महत्त्वपूर्ण काल वह है जब दकन मे घनीभूत ज्वालामुखी प्रक्रिया हुई। धरती की दरारों से बड़े परिमाण में लावा निकल कर प्रायद्वीप के एक बहुत बड़े भाग में भर गया। अततः लावा ने प्रायद्वीपीय भारत के अधिकाश भाग को ऊँचा उठा कर पठार कर दिया। घर्षण क्रिया (Denudation) के कारण अब यह पठार अनेक विलग, चपेट और चौकोर आकार की पहाड़ियों के समूहों मे विभाजित हो गया। पश्चिमी घाट पहाड़ में ये विशेषताएँ मिलती हैं।

प्रायद्वीप के उत्तर और पूर्व के भूभागों का इतिहास अनेक रूपात्मक रहा है। वे अनेक बार समुद्र के अन्दर ढँके रह चुके है। यह समुद्र भूमध्य सागर का विस्तार था जो कि कभी चीन के दक्षिण-पश्चिमी कोने तक था। भूगर्भशास्त्री इसे 'टेथिज' (Tethys) कहते हैं। विशाल हिमालय उस समुद्र के सामुद्रिक कोशों द्वारा बना है। जब दकन लावा के वृहद् परिमाणों से ढँक गया तब ऐसा लगता है कि अनेक भूगर्भिक शक्तियाँ छूट गई और उन्होंने धीरे-धीरे टेथिज के समुद्रीय कोशों को दबाकर और मरोड़ कर ससार के सबसे ऊँचे पहाड़ हिमालय में परिवर्तित कर दिया। समुद्र पश्चिम की ओर लौट गया और वहाँ पर सिंधु, गगा, ब्रह्मपुत्र नदियों का वेला-सगम (इसचुअरी) बन गया। नव-निर्मित हिमालय से जो पानी का नया बहाव हुआ वह विशाल परिमाण में मलवा खींच लाया जिससे कि यह वेला-सगम शीघ्र ही भर गया। भूत्थान होता रहा और नदियों का कोश मुड़कर शिवालिक पहाड़ियों के रूप में परिवर्तित हो गया।

हिमालय के उत्थान में लगी हुई भूगर्भिक शक्तियों ने प्रायद्वीप के उत्तर में एक भूगर्त उत्पन्न कर दिया। प्रायद्वीप और हिमालय के बीच की चौड़ी द्रोणी (Trough) में कुछ काल के लिये समुद्र की एक भुजा विद्यमान रही। इसलिए इस द्रोणी में इन दोनों क्षेत्रों के पानी का बहाव होता रहा। बाद में इस बहाव को असम भूगर्भिक शक्तियों के कारण बाधा पहुँची और उन्होंने नदियों के पुराने जाल को सिन्धु, गंगा

और ब्रह्मपुत्र, इन तीन नदी-जालो मे परिवर्तित कर दिया। जो भूगर्त अब भी शेष था वह गगा और सिन्धु की अनेक सहायक नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से भरने लगा। पर्वतों के प्रत्येक नवोत्थान ने इन धाराओं को नव-जीवन दिया होगा। इसके द्वारा उनकी काटने तथा बहाने की सामर्थ्य मे वृद्धि हुई होगी और इस प्रकार सिन्धु गगा भूगर्त शीघ्र ही भर गया होगा। सिन्धु-गगा भूगर्त मे उपजाऊ मिट्टी की गहराई अत्यत अधिक है। अनुमानतः यह ६,५०० फीट से १५,००० फीट तक है। यह द्रोणी अपनी लम्बाई भर मे एक सी गहरी नहीं है, यह कदाचित् दिल्ली और राजमहल पहाड़ियो के बीच सबसे अधिक और राजपूताना तथा आसाम के बीच सबसे उथली है।

परन्तु कुछ भूगर्भ-शास्त्रियो का यह मत है कि सिन्धु-गगा क्षेत्र वर्तमान नर्बदा घाटी के ढँग की एक फटी घाटी (Fault valley) है जो कि हिमालय से अपार परिमाण मे मिट्टी आदि आने के कारण भर गई। इस मिट्टी की अपार गहराई मे उस फटी घाटी की खड़ी ढालें छिपी हुई होंगी।

हिमालय में उत्थान की शक्तियाँ अब भी सक्रिय हैं। इस घाटी की उत्तरी सीमा पर जहाँ पर वह हिमालय की निचली पहाड़ियों के कटिबन्ध से मिल जाती है, अन्तर्भौतिक खिचाव (Tectonic Stress) बहुत काफी है। वहाँ पर इसी सीमा से मिली हुई कई दरारे हैं जिनको सीमान्त दरारें कहते हैं। भारत का ज्वालामुखी कटि-बन्ध इन्हीं सीमान्त दरारों के उत्तरी किनारे के साथ-साथ फैला हुआ है।

भौगोलिक विभाग

भौगर्भिक इतिहास के अनुसार भारत को निम्नलिखित चार भौगोलिक विभागों में विभाजित किया जाता है। इन विभागों मे हिमालय और दकन के पठार का मूलभूत महत्व विचारयोग्य है। इन्ही दो विभागो से लगे हुए भारत के वे मैदान बने हैं जो कि आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये विभाग इस प्रकार हैं:—

१—हिमालय तथा उससे सम्बन्धित पहाड़;

२—दक्षिणी पठार;

३—सतलज-गगा मैदान;

४—तटीय मैदान।
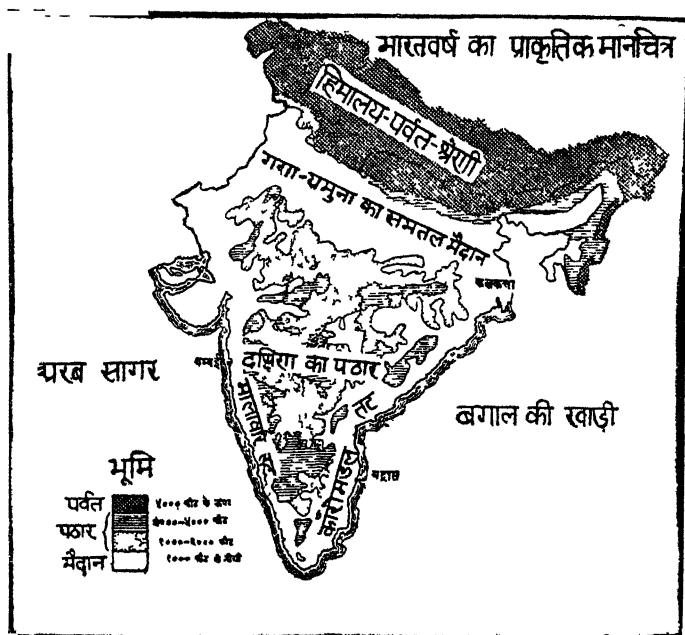
१२—भारत का प्राकृतिक मानचित्र

१. हिमालय

भारत की सीमा पर एक विशाल पर्वत-समूह स्थित है उसमें अनेक पर्वत श्रेणियाँ हैं। इन श्रेणियों में हिमालय सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियाँ इस पर्वत-समूह को तीन भागों में बाँट देती हैं : (१) हिमालय (२) हिमालय के उत्तर-पश्चिम के पर्वत तथा (३) हिमालय के दक्षिण-पूर्व के पर्वत। सिन्धु-गगा मैदान और प्रधान पर्वत समूह के बीच नमक की पहाड़ी और शिवालक नामक छोटी पर्वत श्रेणियाँ हैं। इन छोटी पर्वत श्रेणियों और हिमालय के मध्य कही-कही ऊँचे मैदान हैं जिन्हें दून-मैदान कहते हैं।

हिमालय पर्वत श्रेणी मोड़दार पर्वतों की श्रेणी है। यह संसार का सबसे नवीन पहाड़ है। नये होने के कारण ही इसे संसार की उच्चतम चोटी 'एवरेस्ट' नाम प्राप्त है। एवरेस्ट (२६,१४१ फीट); कंचनचंगा (२७,८१५ फ़ीट); धवलागिरि

(२६,८१६ फीट) आदि अनेक उच्चतम चोटियाँ इस पर्वत श्रेणी में हैं। इनकी तुलना उत्तरी अमेरिका के रॉकी पहाड़ की उच्चतम चोटी माउन्ट मैकिन्ले (२३,१०० फीट), दक्षिणी अमेरिका के एण्डीज पहाड़ की उच्चतम चोटी एकोन्केगुआ (२३,००० फीट) तथा आल्प्स पहाड़ की उच्चतम् चोटी माउन्ट ब्लैक (१५,७८१ फीट) से की जा सकती हैं। हिमालय की लगभग १४० चोटियाँ आल्प्स की उच्चतम चोटी माउन्ट ब्लैंक से अधिक ऊँची हैं। हिमालय की घाटियाँ अधिकतर हल्के ढाल वाली U-आकार की हैं। इन घाटियों में नदी का जल धीरे-धीरे ऊपर की ओर पहाड़ को काटता रहता है। प्राय: प्रत्येक ओर से कोई न कोई नदी ऊपर की ओर अपना रास्ता चौड़ा करती रहती है। अन्त मे कही-कहीं दोनों ओर से आई हुई नदियाँ एक-दूसरी में मिल जाती हैं। इन नदियों की घाटियों से पहाड़ो को पार करना सहज हो जाता है। वास्तव मे नदियों का होना हिमालय की दुर्गम पहाड़ियो के आर-पार आवागमन के साधन बना देता है। जहाँ पर पहाड़ों के ऊपरी ढालो पर प्राचीन समय मे बर्फ जमी रहती थी वहाँ पर खड़े ढाल वाली V-आकार की घाटियाँ हैं। ऐसी घाटियो में चलना कठिन होता है। ऐसी घाटियाँ हिम नदियो (Glacier) के प्राचीन अथवा वर्तमान मार्ग हैं।

हिमालय की बनावट मे निम्नलिखित आकार मुख्य हैं :—(१) पर्वत श्रेणी जो मीलो लम्बी होती है; (२) श्रेणी, उच्च स्थान या चोटियाँ जो प्राय. तिकोने आकार की होती है और जहाँ टूटे-फूटे पत्थर बहुत होते है; (३) श्रेणी को काटने वाली नदियों की घाटियाँ; (४) घाटी को सीमित करने वाले ढाल अर्थात् श्रेणी के उभार (Spur) लगभग १२,००० फीट से अधिक ऊँची चोटियो पर सदा बर्फ पडी रहती है। कहीं-कही कई चोटियों को बर्फ मिल जाती है और इस प्रकार हिमालय के पाँचवें आकारस्वरूप हिम नदी बन जाती है। हिमालय का छठा आकार दर्रा (Col.) है जिससे एक श्रेणी को पार करके दूसरी श्रेणी पर जाया जाता है।

विशाल हिमालय पर्वत-माला, जो सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक फैली हुई है, उसकी विशेषता उन ऊँचाइयों मे है जो वर्ष भर बर्फ से ढकी रहती है। हिमालय की उच्चतम चोटियाँ इसी पर्वतमाला में हैं। इस हिमालय पर्वत-माला के दोनो ओर, तिब्बत की ओर तथा सिन्धु-गगा मैदान की ओर, भी ऊँचाई की पर्वत मालाएँ हैं। तिब्बत की ओर ऐसी पर्वत-मालाओ के उदाहरणस्वरूप लदाख और जस्कर पर्वत-मालाएँ तथा मैदान की ओर पीर पंजाल पर्वत-मालाएँ हैं। इनके उभार और श्रेणियाँ तथा मुख्य पर्वत-मालाएँ सब ओर फैली हुई हैं जो देखने से पहाड़ियों और घाटियो का एक समूह-सी

मालूम होती हैं। इन घाटियो और उभारों मे आर्थिक दृष्टि से केवल वे ही महत्वपूर्ण हैं जिनसे मैदानों का सींचने वाली नदियाँ निकलती हैं। भारत मे मानसूनों को रोक रखने और तिब्बत की ओर से ठढी उत्तरी हवाओ को यहाँ न आने देने के कारण हिमालय एक जलवायु सम्बन्धी अवरोध है। हिमालय के कारण भारतीय क्षेत्र एशिया के अन्य जलवायु क्षेत्रों से अलग हो गया है। वास्तव मे इस पर्वत के कारण हमारे देश की जलवायु हमारे देश मे ही बनती है। ऊँचे दर्रों के कारण हिमालय व्याव-सायिक तथा सामाजिक अवरोध भी बना रहा है। हिमालय के दर्रों की औसत ऊँचाई १६,००० से लेकर १८,००० फीट तक है। इतनी ऊँचाई पर ओषजन बहुत कम होती है जिससे सहज ही आदमी तथा जानवर थक जाते हैं। भारत मे जितने भी बाहर से आक्रमण हुए हैं उनमे से कोई भी इन ऊँचे दर्रों से नहीं हुआ। इसकी तुलना आल्प्स के महत्वपूर्ण दर्रों से कीजिए। इटली और आस्ट्रिया के बीच का ब्रूनर दर्रा ४,४८४ फीट ऊँचा है इटली और स्विट्जरलैंड के बीच का सिम्पलन दर्रा ६,५९२ फीट, तथा इटली और फ्रास के बीच का दर्रा माउन्ट सेनिस ६,८५० फीट ऊँचा है।

हिमालय में केवल उतना ही पर्वतीय भाग माना जाता है जितना सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियो की घाटियों के बीच में है।

सिन्धु और ब्रह्मपुत्र के बीच ये पहाड़ लम्बे और लगभग १५० से ३०० मील चौड़े हैं। लगभग १,५०० मील इस विस्तृत प्रसार मे प्रायः सभी दिशाओं में घाटियाँ और श्रेणियाँ हैं। हिमालय की दिशा उत्तर-पश्चिम मे प्रायः उत्तर-दक्षिण और पूर्वी भाग में प्रायः पूर्व-पश्चिम है। इसलिए उत्तरी-पश्चिमी भाग में नदियाँ पूर्व-पश्चिम की ओर तथा पूर्वी भाग मे उत्तर-दक्षिण की ओर बहती हैं। कोई ऐसी लगातार घाटी नहीं है जो मुख्य श्रेणी को गौण श्रेणियों से विलग कर दे।

हिमालय मे बहने वाली नदियाँ दो प्रकार की हैं: (१) हिमालय की प्रधान श्रेणी (ग्रेट हिमालयन रेञ्ज) के उत्तरी भाग से आने वाली, तथा (२) इस प्रधान श्रेणी के दक्षिणी भाग से तथा पास की अन्य श्रेणियों से आने वाली नदियाँ।

पहले प्रकार की नदियाँ इस प्रधान श्रेणी को तथा अन्य श्रेणियों को काट कर सिन्धु-गगा के मैदान मे आती हैं। ऐसी नदियों में मुख्य सिन्धु, सतलज, अरुण तथा ब्रह्मपुत्र हैं। ये नदियाँ बहुत दूर तक प्रधान श्रेणी के साथ साथ बहती हैं और

अनुकूल अवस्था पाकर श्रेणी को चीर कर मैदान की ओर आ जाती हैं। जहाँ पर ये नदियाँ पहाड़ को चीरती हैं वहाँ बहुत सकरी घाटी है जिसके दोनो ओर हजारों फीट ऊँची दीवारे है। सिन्धु की सकरी घाटी की दीवारों की ऊँचाई १८,००० फीट से अधिक है।

दूसरे प्रकार की नदियो मे मुख्य पजाब की नदियाँ (झेलम, चिनाब; रावी और व्यास) गगा, यमुना, घाघरा, गडक और कोसी आदि हैं। इन्हीं नदियों द्वारा हिमालय का अधिकतर जल बहता है। नदियों द्वारा बनाई हुई घाटियों के अतिरिक्त हिमालय की प्रधान तथा गौण पर्वत-मालाओं से घिरी हुई दो चौड़ी घाटियाँ हैं जो पूर्णरूप से 'नदी की घाटियाँ' नहीं है। ये हैं काठमाडू और प्रसिद्ध काश्मीर की घाटियाँ। समुद्र से ५,००० फीट से अधिक ऊँचाई पर स्थित ये घाटियाँ विस्तृत मैदान हैं जो चारों ओर पहाड़ो से घिरे हुए हैं। ऐसा अनुमान है कि इनकी उत्पत्ति विशाल झीलों के मिट्टी से भर जाने के कारण हुई है। काश्मीर में हम वूलर झील तथा श्रीनगर के निकटस्थ डल झील में उन वृहद् झीलों के अवशेषों को देख सकते हैं। वूलर झोल पहले एक बहुत बड़ी झील थी जिसमे चारों ओर से मिट्टी आ-आकर जमा होती थी। अन्त मे झेलम नदी ने इस झील से अपना निकास बना लिया और इस-लिए उसका अधिकतर जल बह गया। जल बह जाने से सूखा मैदान बन गया।

हिमालय-परिवार मे जो नवीनतम वृद्धि हुई है वह शिवालक* पहाड़ियाँ हैं। ये हिमालय या उसकी निकटवर्ती अन्य पर्वत-मालाओं की भाँति लगातार श्रेणी नहीं है। ये उतनी ऊँची भी नहीं हैं, केवल २-३ हजार फीट की इनकी ऊँचाई की, हिमालय की औसत १८,००० फीट की ऊँचाई से, कोई तुलना नही है। ये पहाड़ियाँ हिमालय से बह कर आये हुए मलवे से बन गई हैं। इसलिए इन पहाड़ियों में मिट्टी का अनुपात अधिक है। इसीलिए शिवालक पर हरियाली भी अधिक है। ये पहाड़ियाँ केवल हिमालय के मध्य-भाग मे ही पाई जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में शिवालक पर्वत-माला के विभिन्न नाम हो गए हैं। उदाहरणार्थ गोरखपुर के पास इन्हें 'डुँडवा' तथा दूर पूर्व मे 'चुड़िया' पर्वत-माला कहते हैं।

शिवालक और हिमालय के बीच में कुछ घाटियाँ हैं जिन्हें कहीं-कही 'दून' कहते हैं, इसीलिए देहरादून नाम पड़ा है। 'दून' हिमालय से नदियों द्वारा लाई हुई

*शिवालक = शिव + अलक, अर्थात् कैलाशवासी भगवान शिवजी की भौंहें।

बालू तथा पत्थरो से ढके हुए हैं। अधिकतर ये नदियाँ शिवालक-पहाड़ियों द्वारा अवरुद्ध हो जाती है। इसलिए वे अपने साथ लाई हुई बालू आदि को हिमालय की तलहटी की पहाड़ियो और शिवालक मे जमा करती रहती हैं। 'दून' मे कही-कहीं उन टीलों की चोटियाँ दिखाई दे जाती हैं जो मिट्टी जमा होने के कारण ढक गए हैं। साधारणतः ये चोटियाँ घने जगलों से ढकी हुई हैं। अधिकतर नदियाँ शिवालक पहाड़ियो को गहरी घाटियो से होकर पार करती हैं। कही-कही विशाल नदियाँ शिवालक के भिन्न-भिन्न टुकड़ों के बीच से बहती हैं। यह उल्लेखनीय है कि शिवालक पर्वत मे अभी तक उसकी नदियाँ घाटी नहीं बना पाई है। शिवालक मे स्थित घाटियाँ उसके बाहर हिमालय से आने वाली नदियों की बनाई हुई है।

इस प्रकार, हिमालय पर्वत के तीन भाग किये जाते हैं : (१) भीतरी हिमालय जिसमे प्रधान श्रेणी स्थित है, (२) बाहरी हिमालय और (३) शिवालक पहाड़।

उत्तर-पश्चिम की ओर, सिन्धु के उस पार, पर्वतश्रेणियाँ भारत की सीमा के बाहर है। इन पर्वतों मे हिन्दूकुश पर्वत को काबुल नदी सुलेमान पर्वत से अलग करती है। सुलेमान पर्वत कई छोटे छोटे भागो में विभाजित है। इनका ढाल सिन्धु नदी के मैदान की ओर खड़ा है। इनको ऊँचाई कहीं-कहीं ८,००० फीट के लगभग है। सुलेमान पहाड़ के पश्चिम की ओर किर्थर नामक नीची पहाड़ियाँ हैं जिनकी दिशा उत्तर-दक्षिण है।

हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर तथा पश्चिम मे छोटी छोटी पहाड़ियों का प्रदेश है। यह पहाड़ी प्रदेश पश्चिम की ओर अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बीच में बसने वाले कबीलों का प्रदेश है। यह भी भारत से बाहर है।

इन पहाड़ों का ढाल सिन्धु नदी की ओर बहुत अधिक है इसलिए यातायात केवल उन्हीं दर्रों द्वारा सम्भव है जो अफगानिस्तान की ओर से आती हुई किसी न किसी नदी के साथ-साथ बन गए हैं। ऐसा दर्रा खैबर दर्रा है जिससे होकर इन पहाड़ों के पार तक बहने वाली सबसे बड़ी नदी काबुल नदी बहती है। यह दर्रा समुद्र से लगभग ६,००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है और इसको पार करना हिमालय के ऊँचे दर्रों की भाँति कठिन नहीं है।

पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र हिमालय को ब्रह्मा और आसाम की पहाड़ियों से अलग कर देती है। ये पहाड़ियाँ बहुत ही नीची हैं।

गारो, खासी तथा जयन्तिया पहाड़ियाँ आसाम में पश्चिम से पूर्व की ओर

फैली हैं। आसाम की पहाड़ियाँ भारत के दक्षिणी भाग मे स्थित पूर्वीघाट के पहाड़ के सदृश हैं और लगभग उतनी ही पुरानी भी हैं। इन पहाड़ियों से लगे हुए कई पठार हैं जिनमें शिलाङ्ग का पठार मुख्य है। आसाम की पहाड़ियो मे चेरापूँजी की आकृति महत्वपूर्ण है।

भारत और ब्रह्मा की सीमा पर उत्तर मे दक्षिण की ओर कई ऊँचे पहाड़ हैं जिनका सीधा ढाल भारत की ओर है। उत्तर से इन पहाड़ और पहाड़ियों के नाम नानकिन पहाड़, पटकोई पहाड़, नागा पहाड़ी, लुशाई पहाड़ी और आराकान योमा हैं। इन पहाड़ियों में पहले मार्ग मिलना कठिन था। परन्तु गत युद्ध-काल में भारत और चीन के बीच सड़क बन जाने से (Lado Road) मार्ग की सुविधा हो गई है। परन्तु इस क्षेत्र का अधिकतर भाग अब भी दुर्गम है। यहीं विश्व मे सबसे अधिक (४२५″) जलवृद्धि होती है। इन पहाड़ियो के पास के मैदान प्रायः दलदली हैं; क्योंकि वहाँ पानी बहुत बरसता है और कम ढाल होने के कारण ठीक से बह नही पाता।

हिमालय तथा अन्य पहाड़ी प्रदेश जहाँ वे मैदानों से मिलते हैं, बीहड़ पाये जाते हैं जिन्हे स्थानीय रूप से 'भाबर' या 'घर' कहते हैं। इनमें तेज पहाड़ी नालों से लाई गई बालू और रोड़े जमा रहते है। बरसात के अतिरिक्त इन नालों के मार्ग सूखे पड़े रहते हैं। उनमे छोटी-छोटी धाराओं का पानी सोख जाता है और बालू के नीचे-नीचे बहता है। भाबर क्षेत्र पर केवल विशालतर नदियाँ ही ऊपर बहती हैं। ये भाबर क्षेत्र उत्तरी-पश्चिमी हिमालय के निकट पूर्व की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं।
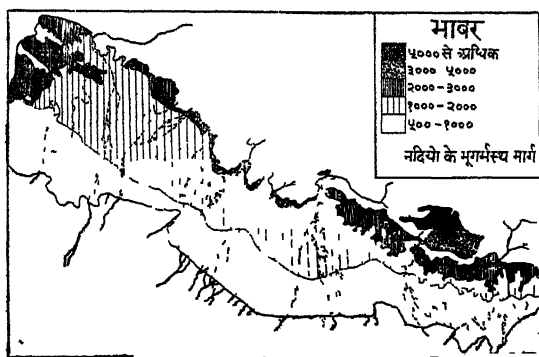
चित्र १३—भाबर प्रदेश

जब पानी भाबर मे सोख जाता है वह मैदानो के प्रारम्भ होते ही फिर धरातल पर निकल आता है। यह पानी पहाड़ी प्रदेश के नम भागों के विस्तृत क्षेत्र को दलदल बना देता है। इसको 'तराई' कहते हैं। यह क्षेत्र रुके हुए पानी तथा घने जङ्गलों का प्रदेश है। चूँकि पूर्वी हिमालय के निकट प्रदेशों मे वर्षा अधिक होती है इसलिए वहाँ पश्चिम की अपेक्षा अधिक तराई है।

२ दक्षिणी पठार

प्रायद्वीपीय प्रदेश, जो कि भारत का प्राचीनतम भाग है, अनेक छोटे बड़े पठारों मे विभाजित है। ये पठार समुद्र की सतह से लगभग २,००० फीट की ऊँचाई पर हैं। इनकी विभाजक रेखा नीची पहाड़ियो द्वारा निर्मित हैं। ये पहाड़ियाँ या तो पुराने पहाड़ो क अवशेष हैं (जैसे अरावली की पहाड़ियाँ) या स्वय पठार के ही कठोरतम भाग हैं जो क्षरण से बचे रह सके हैं (जैसे पश्चिमी घाट पठारों के अन्तर्देश में अनेक नदियाँ हैं जो चौड़ी और चपटी घाटियो से होकर बहती हैं)। इनके किनारे काफी टूटे-फूटे हुए है। इस पठार का धरातल टीलेदार या लहरदार है। अन्तर्देश में भी बहुत से अकेले टीले पाये जाते हैं परन्तु पठारों की चारों ओर पहाड़ियों के निकट ऐसे टीले अनेक हैं।

जिस फटी घाटी से होकर नर्बदा नदी बहती है वह पठारी प्रदेश को दो त्रिकोणाकार भागों मे बाँट देती है। उत्तरी भाग '<u>मालवा पठार</u>' कहलाता है। मालवा पठार के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे अरावली की पहाड़ियाँ हैं जो लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में काफी दूर तक फैली हुई हैं। ये उत्तर पूर्व की ओर सँकरी होकर टीले मात्र रह जाती हैं और दिल्ली के पास आकर समाप्त हो जाती हैं। अरावली पहाड़ियों को अनेक ऐसी नदियाँ पार करती हैं, जो बरसात के अतिरिक्त सदैव सूखी रहती है। इनमें प्रमुख ये हैं : माही और लूनी जो अरब सागर में गिरती हैं, तथा बनास जो चबल में मिलकर गंगा के मैदान में पहुँचती है। अरावली पहाड़ टूटे-फूटे हैं। उनमें सबसे अधिक ऊँचाई उत्तरी-पूर्वी बहिष्कृत भागों में है जहाँ आबू पहाड़ सबसे अधिक ऊँचा है। यह समुद्र की सतह से ५,६५२ फीट ऊँचा है। अरावली के पश्चिम की ओर थर मरुभूमि और राजस्थान की मरुभूमि हैं। इन मरुभूमियों मे बालू के ढेर बहुत मिलते हैं।

राजस्थान में अरावली के निकट पथरीली भूमि प्रकट होती है। इससे उस लम्बी अवधि का प्रमाण मिलता है जब तक अरावली क्षेत्र में क्षरण होता रहा है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि अरावली, भारत के प्राचीनतम पर्वतों के अवशेष हैं।

• राजस्थान के पूर्वी-भाग मे अरावली का, एक छोटा भाग बूँदी की पहाड़ियों के नाम से फैला है। इस भाग का अन्त आगरा के निकट फतहपुर सीकरी मे होता है।

मालवा पठार के दक्षिण में विंध्याचल है। यह पहाड़ भी कई भागों मे विभाजित है। इसका पूर्वी भाग कैमूर की पहाड़ी कहलाता है जो सोन नदी के उत्तरी किनारे पर है। विन्ध्य पहाड़ वास्तव मे नर्बदा की फटी घाटी के उत्तरी खड़े ढाल (Escarpment) हैं। ढाल के कट-फट जाने से ही ये पहाड़ की भाँति दीखने लगे हैं। दक्षिण की ओर इनका ढाल अधिक खड़ा है परन्तु उत्तर की ओर इनका ढाल बहुत मुलायम है और मालवा की सपाट भूमि मे मिला है। दक्षिण के अन्य पठारों की ही भाँति मालवा पठार भी नदियों के निकट या जहाँ यह गगा नदी की घाटी के सम्पर्क में आता है वहाँ टूटा फूटा है। इन टूटे-फूटे क्षेत्रों को बीहड़ (Ravines) कहते हैं। इनके उदाहरण बुन्देलखण्ड के टूटे-फूटे क्षेत्रो में तथा चबल और बनारस की घाटियों मे मिलते हैं। अन्तर्देश में जहाँ कही छोटे-छोटे टीले आ गये हैं वहाँ के अतिरिक्त धरातल प्रायः चपटा है। मालवा पठार का अधिकाश ढाल गगा की घाटी की ओर है।

नर्बदा के दक्षिण का प्रदेश 'दक्षिणी पठार' कहलाता है। यह भी त्रिकोणाकार है और चारों ओर नीची पहाड़ियों से घिरा हुआ है। उत्तर की ओर सतपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं जिसमें महादेव पहाड़ियाँ सबसे अधिक ऊँची हैं। उन्हीं पर मध्य प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी पचमढ़ी बसी हुई है। ये पहाड़ियाँ पूर्व की ओर लगातार चली गई है जहाँ जाकर ये छोटा नागपुर पठार की पहाड़ियों, अमरकण्टक में मिल जाती हैं। इन पहाड़ियों को अनेक स्थानीय नाम दे दिये गये हैं। दक्षिणी पठार की सतपुड़ा तथा अन्य पहाड़ियो में एक यह विशेषता है कि उनमें हिमालय जैसी तिकोनी चोटियाँ चपटी और चौड़ी हैं। अतीत में सतपुड़ा प्रदेश में अनेक दरारे पड़ गई थी। परिणामस्वरूप उसकी सभी नदियाँ गहरी फटी घाटियों से होकर बहती है। ये गहरी घाटियाँ नदियों के आकार के अनुसार बड़ी या छोटी हैं। नदियों ने इन गहरी घाटियों के रूप का काफी निर्माण किया है। ये नदियाँ जब ऊँचे पठारों पर से उतरती हैं तब जल-प्रपात बनाती है। उदाहरणार्थ जबलपुर के पास नर्बदा नदी का धुँआधार नामक जल-प्रपात सतपुड़ा के उत्तर मे नर्बदा की फटी घाटी है तथा दक्षिण में ताप्ती की। नर्बदा और ताप्ती के सपाट मैदान लावा मिट्टी के प्रदेश मे हैं जिसमें कहीं-कहीं लावा से ढँके हुए टीले दिखाई पड़ जाते हैं। नर्बदा और ताप्ती पठार के सामान्य

ढाल के विरुद्ध प्रवाहित होती हैं क्योंकि जिन दरारो मे होकर वे बहता ह उनका ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है।

दक्षिणी पठार का पश्चिमी किनारा पश्चिमी घाट द्वारा आवृत्त है। उनके एक भाग को सह्याद्रि पहाड़ियाँ भी कहते हैं। सागर की ओर पश्चिमी घाट पहाड का ढाल सीधा है। पूर्व की ओर यह ढाल मुलायम है। पश्चिमी घाट का अरब सागर की ओर दीवाल जैसा ढाल इस बात का प्रमाण है कि कभी ऐसी विभगत हुई थी जब भारतीय प्रायद्वीप उस प्रदेश से विलग हो गया था जो अब अरब सागर के अन्दर डूबा हुआ है। पश्चिमी घाट उत्तर-दक्षिण की ओर फैले हुए लगातार पर्वत हैं। इन्हें पार करना केवल कुछ ही स्थानो पर सम्भव है जहाँ अन्तर आ गये हैं या जहाँ दर्रे हैं। उत्तरी भाग मे स्थित दो दर्रे 'भोर घाट' और 'थाल घाट' का रास्ता सुरगो से हो कर है। दक्षिण मे 'पालघाट' मे सपाट मैदान है जहाँ पहाड़ों का अन्त है। पश्चिमी घाट पहाड़ बिल्कुल तट के किनारे-किनारे उठे हुए हैं। उनके और समुद्र के बीच केवल एक सँकरी तटीय मैदान की पट्टी है। जहाँ ये पहाड़ समुद्र के बहुत निकट हैं वहाँ चट्टानें समुद्र के भीतर तक पहुँच गई हैं। इसीलिए वहाँ नावों और जहाजों का चलाना खतरनाक है। पश्चिमीघाट पहाड़ मे अनेक नदियाँ पश्चिमी ढाल पर तथा अनेक पूर्वी ढाल पर उदय होती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों के लिए समुद्र तक पहुँचने के लिए बहुत कम दूरी रहती है इसलिए वे बहुत तेजी से बहती हैं और उनके मुहाने पर बहुत कम मिट्टी जमा हो पाती है। पूर्व की ओर वाली नदियों को अपेक्षाकृत अधिक दूरी पार करनी पड़ती है और इसलिए उनके निचले भाग मे अधिक चौड़ी घाटियाँ बन गई हैं तथा उनके मुहाने के पास बड़े-बड़े डेल्टा बने हैं। प्रायः जहाँ-जहाँ ये नदियाँ पूर्व की ओर पठारों पर या पश्चिम की ओर मैदानों पर उतरती हैं वहाँ बड़े-बड़े जल-प्रपात बन जाते हैं। मैसूर राज्य में महात्मा गाँधी जल-प्रपात इसका उदाहरण है।

पठार के पूर्व में पूर्वी घाट पहाड़ हैं। ये पश्चिमी घाट पहाड़ से बिल्कुल भिन्न हैं। पूर्वी घाट पहाड़ टीलों की एक शृंखला है जो चौड़े अन्तरों द्वारा एक-दूसरे से अलग हैं। इस अन्तर में पश्चिमी घाट पहाड़ या सतपुड़ा पहाड़ से आने वाली नदियों के मार्ग हैं। केवल सुदूर दक्षिण में जहाँ ये नीलगिरि से मिल जाते हैं पूर्वी घाट पहाड़ कुछ दूर के लिए लगातार श्रेणी हो जाते हैं, वहाँ पर इनका नाम अन्न-मलय है। अरावली की भाँति पूर्वी घाट भी पुराने मोड़दार पर्वतों के अवशेष हैं। वे

पश्चिमी घाट पहाड़ की भाँति पठारों के खड़े ढाल नहीं हैं। उत्तर-पूर्व की ओर पूर्वी घाट पहाड़ छोटा नागपुर के पठार की पहाड़ियों मे सम्मिलित हो जाते हैं। अपने सारे प्रसार में पूर्वी घाट पहाड़ समुद्र से दूर रहते हैं और इस प्रकार एक चौड़ी तट की पट्टी छोड़ते चलते हैं। चिलका झील के निकट ये समुद्र से निकटतम होते हैं। पूर्वी घाट नीलगिरि पहाड़ियों द्वारा पश्चिमी घाट से मिलते हैं तथा छोटा नागपुर पहाड़ियों द्वारा सतपुड़ा से; इस प्रकार पठार की त्रिकोणाकार चहार-दीवारी बन जाती है।

नीलगिरि के दक्षिण मे अन्नमलय पहाड़ियाँ हैं जो पालघाट के दर्रे द्वारा नीलगिरि से अलग हैं। यह अन्तर बीस मील चौड़ा है और इसके द्वारा भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तट का मार्ग सुगम हो जाता है। अन्नमलय की एक पलनी पहाड़ियाँ नामक शाखा उत्तर-पूर्व दिशा मे फैली हुई है। दूसरी शाखा, इलायची का पहाड़, दक्षिण मे फैली हुई है। यह दक्षिणी छोर तक चली गई है।

इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत की भौतिक आकृतियाँ अंशतः अति प्राचीन पहाड़ों द्वारा बनी हैं जो लावा सग्रहों के ऊपर भी खुली हुई हैं तथा अंशतः उन लावा-सग्रहों द्वारा ही बनी हैं जिन्होने पुरानी चट्टानों को नीचे ढँक दिया है और प्रायद्वीप ने एक बड़े भाग को एक विशाल पठार में परिणत कर दिया है।

प्रायद्वीप मे पुराने पहाड़ों के अवशेष अरावली, सतपुड़ा और पूर्वी घाट हैं। ये अधिकांशतः गोल या चपटी चोटियो वाली असम्बद्ध पहाड़ियाँ हैं। वे अधिकांशतः पुराने बलुए पत्थर द्वारा निर्मित हैं यद्यपि चूने के पत्थर तथा स्लेटी पत्थर भी उनमें प्रायः मिलते हैं। अतीत मे भारत के प्रायद्वीपीय भाग मे काफी दरारे हुई हैं। इसके कारण अनेक फटी घाटियाँ बन गई हैं। इन विभग घाटियों में से कुछ मे नदियाँ हैं जैसे नर्बदा तथा ताप्ती नदियाँ। इन दरारों के कारण बृहदाकार प्रायद्वीप अनेक छोटे-छोटे पठारों मे विभाजित हो गया है जैसे मालवा पठार, दकन पठार, छोटा नागपुर का पठार तथा मैसूर का पठार आदि। इन छोटे पठारों को विलग करने वाली घाटियों के सम्मुख स्थित अन्तःस्थल श्रृंगों में बहते हुए जल की क्षरण प्रक्रिया के कारण कट-कट कर दरारें बन गई हैं। इसलिए घाटी से देखने पर वे पहाड़ी जैसी दिखाई देती हैं। विन्ध्य, कैमूर और भड़ेर की पहाड़ियाँ इस प्रकार के कटे हुए अन्तःस्थल श्रृङ्गों के उदाहरण हैं।

नीलगिरी की सबसे ऊँची चोटी दोदाबेट्टा ८,६४० फीट से अधिक ऊँची है तथा

अन्नमलय की सबसे ऊँची चोटी अनैाई मुडी ८,८०० फीट से अधिक ऊँची है। ये पहाड़ पूर्वी घाट की शृङ्खला में ही आते हैं।

पठार की धरातल बहुत कम ही चपटी मिलती है। ये साधारणतः टीलेदार या लहरीली है। यदा-कदा कुछ टीले भी हैं जो बहुत समय से कटते आए हैं। इन टीलों में से कुछ (जैसे ग्वालियर की दुर्ग-चट्टान) घर्षित पर्वतो के उदाहरण हैं। ये टीले अपने चारों ओर के प्रदेश से ऊपर उठे हुए हैं क्योंकि वहाँ की नरम चट्टाने बह गई हैं। पठारों में बहने वाली नदियो ने अपने लिए गहरी तथा चौड़ी घाटियाँ काट ली हैं, इनके तल लगभग चपटे हैं। जहाँ ये नदियाँ पठार को छोड़ती हैं वहाँ तेज धाराएँ या जल-प्रपात बन गए हैं। उदाहरण के लिए कावेरी नदी पर स्थित शिव-समुन्द्रम जल प्रपात है।

प्रायद्वीप की सबसे अधिक प्रमुख विशेषता पश्चिमी घाट मे है। वे अरब सागर के सम्मुख के लावा पठार के काफी त्वरित अन्तःस्थल शृङ्ग है।

साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रायद्वीपीय भारत मे पुरानी और कड़ी चट्टाने प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। ये चट्टाने मुख्यतः परिवर्तित मेटामारफोज्ड चट्टाने, जैसे धारवाड़ चट्टानें तथा आग्नेय चट्टानें, (जैसे ग्रैनाइट और बैसाल्ट,) तथा बलुए पत्थर और चूने के पत्थर की परतदार चट्टानें हैं। बैसाल्ट चट्टान पहाड़ियों की चोटियों पर एक हलकी परत के रूप में भी मिलती है।

प्रायद्वीप की चट्टानों का एक लम्बे समय से क्षयीकरण होता रहा है। इसलिए भारत के इस भाग की पठार होने की प्रवृत्ति रही है क्योंकि ऊँचाइयाँ धीरे-धीरे मिटती रही हैं। एक बहुत बड़े भू-भाग मे काफी गहराई तक लावा जम जाने के कारण भी यह पठार बन गया है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रायद्वीप भारत की भौतिक आकृतियों में बड़ी विभिन्नताएँ हैं।

३ सतलज-गंगा के मैदान

सतलज-गगा के मैदान चिपटे दिखाई देते हैं उनमे हिमालय से हलका ढाल है। मीलों तक उनमें कोई उभार की आवृत्ति नहीं दिखाई देती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह देखने को मिलेगा कि हिमालय से आती हुई अनेक नदियों द्वारा फट

कर यह मैदान अनेक नीचे तथा ऊँचे मैदानो मे बॅट गया है। नदियों द्वारा कछार के प्राचीनतर संग्रह जो अब ऊँचे मैदान बन गए हैं, 'बांगर' कहलाते हैं। नए कछार जो नीचे मैदान हैं, 'खादिर' कहलाते हैं। नए तथा पुराने कछार नदी तटों द्वारा एक-दूसरे से अलग होते हैं। ये तट कहीं-कहीं तो १०० फीट तक ऊँचे हैं। नदियों के पास के ऊँचे किनारे विस्तृत बीहड़ों में कट गये हैं। ये बीहड़ नदियों के दोनों किनारों पर मीलों तक फैले हुए हैं। वनस्पति के आवरण के नष्ट हो जाने के कारण इन्हे भूमि क्षरण से काफी नुकसान हुआ है।

निचले मैदान तथा भूगर्त गङ्गा के समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते प्रमुख हो जाते हैं। गङ्गा का डेल्टा संसार का सबसे बड़ा डेल्टा है। इसका क्षेत्रफल ३१,८८० वर्ग मील है। गङ्गा के मैदान के इस निचले भाग मे अनेक भू-गर्त पुरानी नदियों के मार्ग हैं जो नदियों के मार्ग बदल जाने के कारण अब सूख गए हैं। बङ्गाल मे इन्हें 'बिल' कहते हैं तथा नदी के तटों को 'चर्स' कहते हैं। डेल्टा प्रदेश मे चर्स का इस दृष्टि में बहुत महत्व है कि ऊँचाई के कारण गाँव बसे है, क्योंकि बरसात मे सारे भू-गर्त डूब जाते हैं।

४. तटोय मैदान

दक्षिणी पठार सब ओर से निचले मैदानों द्वारा घिरा हुआ है। पठार की कड़ी चट्टानों के सामने मैदान बन गए हैं। उत्तर में सतलज-गङ्गा मैदान है। पूर्व मे गङ्गा मैदान तथा पूर्वी तटीय मैदान हैं। दक्षिण में भी पूर्वी तटीय मैदान है तथा पश्चिम में पश्चिमी तटीय मैदान है जो आगे चलकर थर के रेगिस्तानी मैदान से मिल जाता है।

पूर्वी तटीय मैदान, जिनके पूर्वी भाग को 'कारोमंडल' और दक्षिणी भाग को 'पायन घाट' भी कहते हैं, दो भाग मे बाँटा जा सकता है। निचला भाग जिसमें नदियों के डेल्टा हैं, तथा ऊपरी भाग जो अधिकतर नदियों के ऊपरी मार्ग मे पड़ते हैं। निचला भाग पूर्णरूप से कछार है परन्तु ऊपरी भाग अशतः कछार अवशिष्ट मैदान (Peneplain) है, जो कि उभरे हुए भू-भाग के क्षयीकरण द्वारा बन जाता है। यह अवशिष्ट मैदान कही-कहीं नदियों की हल्की उपजाऊ मिट्टी से ढँका हुआ है तथा शेष स्थानों पर पुरानी चट्टानें ऊपर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। निचले भाग के समुद्र के निकटवर्ती किनारों पर बालुकूटों की एक श्रृङ्खला मिलती है। ये बालुकूट

लहरों के कारण बन गए हैं। कुछ भागो मे इन बालुकूटों से घिरे हुए लैगून हैं जिनमें समुद्र का जल भर गया है। पुलीकट और छिलका झीलें इस प्रकार के लैगून ही हैं। समुद्र के बाढ़ सारे समुद्रतट पर एक विस्तृत बालुका तट (Beach) फैला हुआ है। पायनघाट पालघाट के अन्तर से होकर पश्चिमी तटीय मैदान तक फैला हुआ है।

पश्चिमी तटीय मैदान मालाबार तट से आरम्भ होकर दक्षिण से उत्तर तक सारे अरब सागर के किनारे फैला हुआ है। दक्षिण की ओर उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ पश्चिमी घाट पहाड़ के पीछे हट गए हैं यह मैदान बहुत सँकरा है। दक्षिणी भाग में लम्बे और सँकरे लैगून भी हैं जिनमें सैकड़ों मील तक नौगमन सम्भव है। कोचीन का बन्दरगाह ऐसे ही एक लैगून पर स्थित है। ये लैगून पूर्वी तट के लैगूनों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि पूर्वी तट के लैगून उथले होने के कारण अधिकतर दलदल हैं। पश्चिमी तटीय मैदान उत्तर की ओर चौड़ा होकर नर्बदा-ताप्ती का कछार बनाता हुआ गुजरात चला गया है। सौराष्ट्र के तटीय मैदान का एक भाग तथा कच्छ पेनी मैदान है। वहाँ अब भी धरातल पर पुरानी चट्टानें दिखाई दे जाती हैं। गुजरात और सौराष्ट्र के मैदान अंशतः लावा की काली मिट्टी से ढँके हुए हैं।

पश्चिमी तटीय मैदान चरम उत्तर में थर और राजस्थान के रेगिस्तानों से मिल जाते हैं। बालू मिट्टी के विशाल सग्रह जो पुराने नदी मार्गों के सूख जाने के कारण तथा कुछ समुद्र के अन्दर से मैदानो के उभर आने के कारण क्योंकि समुद्र धीरे-धीरे यहाँ से हट रहा है, बन गए हैं, वे यहाँ की विशेषता हैं।

पश्चिमी तथा उत्तरी भागों में थर तथा राजस्थान के रेगिस्तान में बालुकूट विशेष रूप से मिलते हैं, उनके द्वारा सैकड़ों वर्गमील का क्षेत्र ढका हुआ है। ये बालुकूट साधारणतः पड़ोसी शुष्क मैदानों से हवाओं द्वारा उड़ कर आई बालू द्वारा बने हैं।

प्रश्न

हिमालय का आर्थिक महत्व क्या है?

शिवालक पहाड़ियाँ हिमालय से किस प्रकार भिन्न हैं? उनका आर्थिक महत्व क्या है?

'दून' क्या है? उसकी भौतिक विशेषताएँ क्या हैं?

४. दक्षिणी पठार की घाटियाँ हिमालय की घाटियों से किस प्रकार भिन्न हैं ? इस भिन्नता का आर्थिक महत्व क्या है ?

५. सिन्धु-गंगा मैदान की भौतिक विशेषताएँ क्या हैं ?

६. बीहड भूमि का क्या अर्थ है ? वे भारत में कहाँ पर सबसे अधिक पाये जाते हैं और क्यों ?

७. पायन घाट मैदान सिन्धु-गंगा मैदान से किस प्रकार भिन्न है ? क्या यह अंतर किसी भी प्रकार इन दोनों मैदानों की कृषि को प्रभावित करता है ? कैसे ?

८. पूर्वी घाट पहाड़ की प्रमुख आकृतियों का वर्णन कीजिए और यह बताइए कि वे यातायात को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

९ पश्चिमी तटीय मैदानो की भौतिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा उनके कारण समझाइए ।

१०. अरावली पहाड़ियो की क्या विशेषताएँ हैं ? ये किस प्रकार विंध्य पहाड़ियों से भिन्न हैं ?

अध्याय ३

वनस्पति

(Vegetation)

भारत में प्राकृतिक वनस्पतियों की बड़ी विविधता है। जलवायु तथा भौतिक आकृतियों को ध्यान में रखते हुए ऐसी आशा करना ठीक ही है। उष्णप्रदेशीय, शीतोष्णप्रदेशीय तथा पर्वतीय सभी प्रकार की वनस्पतियाँ इस देश में पाई जाती हैं।

उष्णप्रदेशीय वनस्पति

देश के अधिकाश भाग में उष्णप्रदेशीय वनस्पति है। सामान्यतः संसार के अन्य भागो में उष्णप्रदेशीय वनस्पति नमी के आधार पर निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित की जाती है :—

(अ) सदाबहार वन (Evergreen) ; (ब) पतझड़ी मानसूनी वन (Deciduous); (स) उष्णतृणीय वनस्पति (Savannah); (द) कँटीले जगल (Thorn Forest), तथा (क) शुष्क तृणीय मैदान (Steppes)

चैम्पियन* के मतानुसार भारत में ठीक अर्थों में उष्णप्रदेशीय घास के मैदान नहीं हैं यद्यपि चराई अथवा शुष्कता के पश्चात् वनस्पति की विकास-अवस्था में अनस्थायी तथा साधारण घास के मैदान काफी मिलते हैं। अन्य देशों की विशिष्ट उष्णतृणीय वनस्पति (सवन्ना) भी यहाँ नहीं हैं क्योंकि यहाँ पतझड़ वन (डेसीडुअस) बिना किसी घास के मैदान की अवस्था को पार किये ही कँटीले जगलों में मिल जाते हैं।

Sub-Tropical vegetation

(1) उपोष्णप्रदेशीय वनस्पति (Sub-Tropical Vegetation)

भारत में उपोष्णप्रदेशीय, शीतोष्णप्रदेशीय या पर्वतीय वनस्पतियाँ केवल पहाड़ों पर ही मिलती हैं। यहाँ उपोष्णप्रदेशीय दशाएँ अक्षाशों के अन्तर पर नहीं

*चैम्पियन : ए प्रिलीमिनरी सर्वे ऑव द फॉरेस्ट टाइप्स ऑव इंडिया एण्ड बर्मा।

वरन् ऊँचाइयों के अन्तर पर प्रकट होती हैं। ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ ताप में कमी होने से वे पहाड़ी प्रदेशों में विकसित होती हैं। वास्तव में उष्ण कटिबन्ध से शीतोष्ण कटिबन्ध के मार्ग में ही उपोष्ण कटिबन्ध आता है। इसीलिए कभी-कभी इसे ठीक-ठीक ज्ञात करना कठिन भी हो जाता है। हल्की मानसूनी वर्षा के कारण पश्चिमी तथा मध्य हिमालय में चीड के जगलों में इसका स्पष्ट दर्शन होता है। पूर्वी हिमालय में भी, जहाँ कभी ग्रीष्मकालीन वर्षा होती है, उष्णप्रदेशीय वनस्पति तथा शीतोष्ण-प्रदेशीय बलूत (Oak) के जगलों के बीच में उष्णप्रदेशीय जगलों की एक पेटी देखने को मिलती है। परन्तु दक्षिणी भारत की पहाड़ियों में उष्णप्रदेशीय तथा शीतोष्ण-प्रदेशीय प्रकारों में कोई वास्तविक विभाजक रेखा नहीं दिखाई देती है केवल वनस्पतियों की प्रचुरता में कमी दिखाई पड़ने लगती है। इसका कारण यह है कि वहाँ दैनिक तथा ऋतुओं के समतापों में पारस्परिक अंतर अधिक नहीं है। Temperate Vegetation

शीतोष्णप्रदेशीय वनस्पति (Temperate Vegetation)

शीतोष्णप्रदेशीय वनस्पति भारत में केवल पहाड़ों पर मिलती है। चूँकि भारत मध्यवर्ती अक्षांशों मे नहीं आता इसलिए यहाँ शीतोष्णप्रदेशीय घास के मैदान नहीं हैं।

भारत के शीतोष्णप्रदेशीय जगलों के तीन भेद किये जा सकते हैं। उनमें से दो तो मुख्यतया नुकीली पत्ती वाले है तथा तीसरे में चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों की प्रधानता है। ये वर्ग मुख्यतया वनस्पति के उगने की ऋतु मे होने वाली वर्षा पर निर्भर हैं। अर्थात् गर्मी के महीनों की वर्षा पर जब औसत तापमान ५५° फा० रहता है। अत्यन्त वर्षा मे होने वाली वनस्पति, जिसकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं, दक्षिणी तथा उत्तरी पहाड़ियों में पाई जाती हैं। परन्तु नम तथा शुष्क वर्ग की वनस्पति, जो नुकीली पत्तीदार होती है, केवल हिमालय में मिलती हैं।

पर्वतीय वनस्पति (Alpine vegetation)

भारत में पहाड़ी वनस्पति केवल हिमालय या अन्य सम्बद्ध पर्वत श्रेणियों में पाई जाती है। वृक्ष रेखा के पार करने पर उच्चप्रदेशीय जगलों की जगह पहाड़ी वनस्पति ले लेती है। इस वनस्पति के प्रकार प्राप्त नमी के परिणाम के अनुसार बदलते हैं। हिमालय के जगलों में बर्च तथा रोडेनड्रान के पेड़ सबसे अधिक मिलते हैं। ये जंगल

सदाबहार हैं, यद्यपि चौड़ी पत्ती वाले कई जाति के पेड़ों में पतझड़ भी-आता है। ये जगल ६,५०० फीट से लेकर ११,५०० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

मैदान की वनस्पति

भारत के मैदान की प्राकृतिक वनस्पति घने जगल हैं। परन्तु आजकल ये जगल देखने में नहीं आते। मैदानो के बड़े-बड़े क्षेत्र लगभग वृक्ष रहित मिलते हैं और उन पर केवल कहीं-कहीं थोड़ी-सी घास उगती मिलती है। आबादी के बढ़ने के लिए तथा खेती के लिए ये जगल काट डाले गये हैं। महाभारत और रामायण के समय के इतिहास को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि सिन्धु-गंगा के मैदान मे पहले बहुत घने जगल पाये जाते थे। परन्तु उन क्षेत्रों मे आजकल प्रायः खेत और नगर ही दिखते हैं, इस समय वहाँ पर जगल का नाम भी नहीं है। वनों के उगने में बहुत समय लगता है और इसलिए उनके एक बार काटने पर उनकी दूसरी बार वृद्धि कठिन हो जाती है। कभी पशु उगते हुए पेड़ों को खा जाते हैं, अथवा मनुष्य उन्हें नष्ट कर देता है।

अधिक चराई और सूखा पड़ने से भी प्राकृतिक जगल नष्ट हो जाते हैं। भारत में सबसे अधिक शुष्कता जाड़े के मौसम में होती है। उस समय घास सूख जाती है और वायु भी शुष्क रहती है।

झूम प्रणाली (झूमिंग)

जगल को नष्ट करने में मनुष्य का भाग बहुत महत्वपूर्ण रहा है। ससार के सभी भागों में बिना सोचे-विचारे जगल काट डालने की प्रथा प्रचलित है परन्तु इसके अतिरिक्त भारत में आसाम के जंगलों में झुमने की रीति चली आती है जो कि कबीले वाले खेती के लिए जमीन साफ करने के लिए करते हैं। केवल कुछ ऊँचाइयों पर ही झुमने की क्रिया की जा सकती है। ८,००० फीट से ऊपर यह क्रिया नहीं की जाती क्योंकि उतनी ऊँचाई पर फसले नहीं पक सकतीं। पहाड़ी लोग ५,००० फीट के नीचे बीमारी तथा गर्मी के डर से नहीं जाते। सूर्य की गर्मी से लाभ उठाने के विचार से दक्षिण-पूर्व, दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम की ओर के क्षेत्र ही चुने जाते हैं और सभी पेड़ (यहाँ तक कि बड़े से बड़े पेड़ तक) सर्दी की ऋतु में काट डाले जाते हैं। गर्मी के मौसम में झुमना के सबसे निचले भाग मे आग लगा दी जाती है। लपटें ऊपर को बढ़ती हैं और आग पहाड़ी पर पहुँच जाती है। आग के बुझने पर वहाँ केवल

सबसे बड़े पेड़ों के अधजले तने शेष रह जाते हैं। जब राख ठंडी हो जाती है तब धान, मक्का, कुम्हड़ा आदि उसी राखी से मिली हुई जमीन में बो दिए जाते हैं। बरसात के बीच मे कटाई के पहले खेत की एक या दो बार निराई होती है। दूसरे वर्ष तथा उनके बाद भी खेत बोया जाता है और जब भूमि की सारी उपजाऊ शक्ति मुख्यतः वर्षा तथा भूमि-क्षरण के कारण समाप्त हो जाती है तब उस क्षेत्र को छोड़ दिया जाता है। खेतो के अन्त हो जाने पर वहाँ एक विशेष प्रकार की झाड़ीदार वनस्पति उग आती है या तृणक (weeds) उग आते हैं। जिन क्षेत्रों में भूमि का वास्तविक अभाव है वहाँ झूमिए कुछ वर्षों के बाद फिर पुराने खेतों पर लौट आते हैं जिसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि उस क्षेत्र के पेड़ों को उगने का फिर अवसर ही नहीं मिलता।
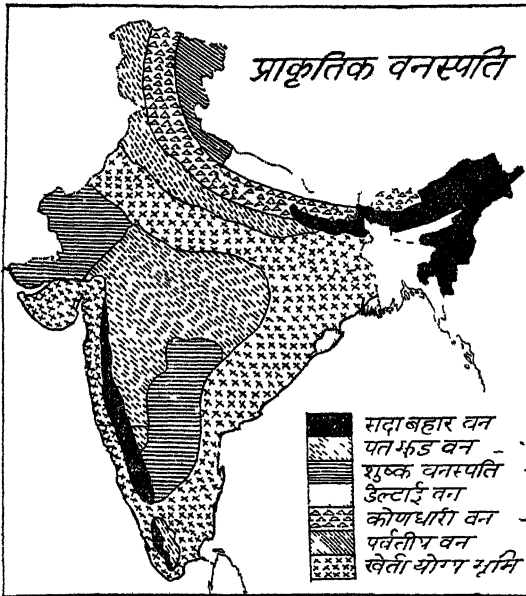
चित्र १४—प्राकृतिक वनस्पति

वनों के प्रकार (Types of Forests)

मोटे तौर पर भारतीय जगलों को निम्नलिखित मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) शुष्क जगल (Dry or Arid Forest)—ये जंगल राजस्थान के बहुत बड़े भाग में तथा पजाब के दक्षिण में उन शुष्क क्षेत्रों में जहाँ २०" से कम वार्षिक वर्षा होती है, पाए जाते हैं। इस प्रकार के जगलों में केवल थोड़े से ही वृक्ष-परिवार पाए जाते हैं। इनमें से सर्वप्रमुख बबूल या कीकड़ का पेड़ है जो शुष्कतम क्षेत्रों में केवल नदी की बाढ़ों के कारण जीवित रहता है।

(२) पतझड़ जगल (Deciduous or Monsoon forest)—इस प्रकार के जगलों मे अधिकाश पेड़ वर्ष के किसी भाग में पत्रहीन हो जाते हैं। इस प्रकार के जगल मे साधारणतः ग्रीष्म-ऋतु के आरम्भ में पतझड़ हो जाता है। इसी समय कहीं-कहीं आग लग जाती है जिससे भूमि पर उगने वाली घास जल जाती है। जहाँ-कहीं चिकनी मिट्टी के होने के कारण मिट्टी मे नमी होती है वहाँ विशिष्ट वंशों वाले पेड़, जो इन क्षेत्रों की आरम्भिक शुष्क दशाओं को सहन नहीं कर पाते उग आते हैं। ये जगल उप-हिमालय क्षेत्र के बड़े-बड़े क्षेत्रों में फैले हुए हैं और सबसे अधिक महत्वपूर्ण जगलों में से हैं। सागौन तथा साल के जगलों का अधिकाश भाग इसी प्रकार के जंगलों के अन्तर्गत है। भारत के पतझड़ वनों को मानसून वन भी कहते हैं। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि शुष्क ऋतु में यहाँ घास-फूस और झाड़ियों का अभाव रहता है।

(३) सदाबहार वन (Evergreen Forest)—ये जगल अत्यधिक वर्षा के प्रदेशों में पाए जाते हैं (जैसे प्रायद्वीप का पश्चिमी तट तथा पूर्वी उपहिमालय प्रदेश) वनस्पति की विविधता तथा अधिकता इनकी विशेषता है। इन जंगलों में कुछ पेड़ १५० फीट तक या उससे भी अधिक ऊँचे होते हैं तथा उनके ऊपर घनी छतरीनुमा फुनगी होती है। इन पेड़ों के नीचे आस-पास बेंत, बाँस या ताड़ उगते हैं। नीलगिरि, अन्नमलय आदि पर्वतों पर इस प्रकार के वन लगभग ४,००० फीट की ऊँचाई तक मिलते हैं। वहाँ इनको 'शोला वन' कहते हैं।

(४) डेल्टा वन (Tidal or Mangrove Forest)—ये उष्णप्रदेशीय सदाबहार वन की भाँति होते हैं। यहाँ उगने वाले पेड़ों की नीची डालें भूमि में पहुँच कर जड़ें बन जाती हैं और भूमि में समा जाती हैं। ये वन बहुत घने होते हैं। भारत के पूर्वी तट पर स्थित डेल्टों में इस प्रकार के वन मिलते हैं। गङ्गा के डेल्टा के सुन्दर वन प्रसिद्ध डेल्टा वन हैं।

(५) पर्वतीय वन (Montane Forest)—ये वन ऊँचाई तथा वर्षा के अनुसार उपोष्ण-प्रदेशीय अथवा शीतोष्ण-प्रदेशीय प्रकार के होते हैं। पूर्वी हिमालय और आसाम में ये जगल विशेष रूप से ओक, मैग्नोलिया तथा लारेल के पेड़ों के हैं। आसाम में ३,००० फीट से ७,००० फीट की ऊँचाई पर 'खसिया चीड़' बहुतायत से उगता है। उत्तरी-पश्चिमी हिमालय में उपयोगी मुख्य पेड़ देवदार होता है। यह लगभग ६,००० से ८,००० फीट की ऊँचाई पर होता है। देवदार अक्सर ओक और नीले चीड़ के साथ भी पाया जाता है। अपनी ऊपरी सीमा पर यह सिलवर फर के पेड़ों से मिल जाता है तथा इसकी निचली सीमा पर चीड़ के विस्तृत जंगल हैं जिनसे लीसा (Resin) निकालते हैं।

भारत में वन-व्यवसाय

यदि रूस, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्राज़ील को जिनमें प्रचुर मात्रा में जगल हैं, छोड़ दें तो भारत में ससार का सबसे अधिक वन-क्षेत्र है।

नीचे की तालिका में प्रमुख देशों में वन-क्षेत्रों का विस्तार और प्रतिशत भाग बताया गया है :—

वन-क्षेत्र

देश	दस लाख हैक्टेअर	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति पीछे
रूस	७४३	३४	३·५
सं० रा० अमरीका	२५३	३३	१·८
ब्राज़ील	४८०	५७	८·६
इंडोनेशिया	१२१	६४	१·६
भारत	७३	२२	०·२
जापान	२३	६२	०·३
फिनलैंड	२२	७१	५·३

फिर भी भारत के जंगलों का महत्व उनके क्षेत्र के कारण नहीं है बल्कि इस कारण से है कि उनमें कुछ ऐसी चीजें उत्पन्न होती हैं जिनका आर्थिक महत्व बहुत

अधिक है तथा जो ससार के अन्य देशों में नहीं उत्पन्न होती हैं। विशिष्ट प्रकार के शुद्ध (जैसे चन्दन का तेल) तेल तथा लाख भारतीय जगलों में ही पैदा होते हैं। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत में २·८१ लाख वर्ग मील का क्षेत्र जंगल है। देश में वन-क्षेत्रों का वितरण भी असमान है। उदाहरणार्थ, आसाम मे ४२ प्रतिशत भूमि पर वन मिलते हैं जबकि बम्बई में केवल १३%, मध्य प्रदेश में ३१%, उड़ीसा में २६%, उत्तर प्रदेश मे ११%; पश्चिमी बंगाल में ६% और पंजाब में केवल ३% पर ही वन मिलते हैं। हमारी विशाल जनसंख्या को देखते हुए ये आँकड़े काफी कम हैं। साथ ही साथ हमारे जंगलों का बहुत-सा भाग अगम्य है तथा उसमें विकास-योजनाएँ कार्यान्वित नहीं की जा सकतीं। इस कारण हमारी वन-सम्पत्ति की स्थिति और भी शोचनीय है। उदाहरणार्थ, यातायात के उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण हिमालय तथा सुन्दरवन के अपार स्रोतों का लाभ नहीं उठाया जा सकता है। जंगलों का मुख्य उत्पादन लकड़ी है जो कि भारी होती है। इसलिये बिना यातायात के अच्छे साधनों के उसका वन से बाहर निकालना कठिन है। यूरप और अमेरिका के कुछ देशों में शीतकालीन हिम के द्वारा सस्ता और सरल यातायात सम्भव हो जाता है। यह हिम जब बड़ा हो जाता है तो लकड़ी के लट्ठों को फिसलाने के लिए अच्छा मार्ग बन जाता है। ये लट्ठे नदियों तक खींच लाये जाते हैं; क्योंकि नदी भी जमी हुई रहती हैं। नदी के पानी के पिघलते ही ये लट्ठे भी उसके साथ नीचे बह आते हैं। प्रकृति ने हमें यह सुविधा नहीं दी है। हमारे जंगलों के उत्पादनों को निकालने और ढोने में काफी कठिनाई होती है और जहाँ लकड़ी के यातायात का प्रश्न होता है वहाँ इजीनियरिंग-सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, और बड़ी विशिष्ट निपुणता की आवश्यकता पड़ती है।

भारत में वनों से लकड़ी निकालने के लिए जो यातायात के उपाय काम में लाए जाते हैं वे स्थानीय दशाओं के अनुसार बदलते रहते हैं। स्वाभाविकतया ये दो मुख्य भागों में विभाजित किए जा सकते हैं: (१) स्थल तथा (२) जल-यातायात। स्थल-यातायात में निम्न ढङ्ग प्रचलित हैं:—

(१) स्थल-यातायात में (अ) मानव-यातायात, (ब) प्राणी-यातायात, यान्त्रिक-यातायात आदि सम्मिलित हैं।

(अ) मानव-यातायात—इसमें ईंधन आदि को थोड़ी-थोड़ी दूरियों पर सिर पर रख कर ढोना या अन्य किसी प्रकार ढोना सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त हिमालय

में बड़े-बड़े स्लीपरों को जगल से निकाल कर ढालों या बहती हुई जलधाराओं तक लाना और उन्हीं स्थानों में ढालों तथा धाराओं से लकड़ी के कुन्दों को निकालना भी सम्मिलित है।

(ब) प्राणी-यातायात—इसके अन्तर्गत जंगलों के उत्पादन को, जहाँ सड़कें हैं, गाड़ी द्वारा खींच कर ले जाना सम्मिलित है; जैसे मैसूर और अण्डमन द्वीप मे भारी लकड़ी खींचने के लिए हाथी का उपयोग किया जाता है। इस काम के लिए भैसो का भी उपयोग किया जाता है। वे हाथियों से सस्ते मिलते हैं।

(स) यान्त्रिक-यातायात—इसके अन्तर्गत ट्रामवे, रोपवे, औ स्पिडर्स हैं। भारत के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण ट्रामवे आसाम के गोपालपारा डिवीजन में तथा पजाब के चगा-मगा मे हैं। रोपवे जो कि मुख्य रूप से आकर्षण-शक्ति द्वारा कार्यान्वित होते हैं, हिमालय के विभिन्न भागो में मिलते हैं।

(२) जल-यातायात के अन्तर्गत किसी प्रकार लट्ठों को पानी के ढालों से वहाँ तक फिसला ले जाना, जहाँ से स्लीपर बहाए जा सकते हैं तथा छोटी धाराओं से, जिनमें अधिक जल नहीं रहता, ठेल कर लट्ठों को बहा देना, तथा सामान्य रूप से बहाना या नावों द्वारा ले जाना, ये सभी उपाय आते हैं। जल यातायात का उपयोग अधिकाशतः सुन्दरवन तथा आसाम में और पंजाब की सतलज नदी और काश्मीर की झेलम नदी में होता है।

मन्द व्यवसाय के मूल कारण

भारत में वन-व्यवसाय की मन्द प्रगति के मूल कारण निम्नलिखित हैं:—(१) जगलों की दुर्भेद्यता, (२) यातायात की कमी तथा (३) उद्योगों की कमी होने से देश में लकड़ी का कम उपयोग। देश के वनों का केवल २·२६ लाख वर्गमील ही वाणिज्य के योग्य है शेष ·५० वर्गमील अप्राप्य होने से किसी काम का नहीं। डाक्टर ग्लेजिगर* के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष २५ पौण्ड औद्योगिक लकड़ी का उपयोग है। इसके विरुद्ध यूरप में १,००० पौण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में २५,०० पौण्ड का लेखा है। लुब्दी का उपभोग भारत में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग दो पौण्ड,

---

*फ़ारेस्ट्री डेवलपमेन्ट इन रिलेशन टु द इकानमी ऑव एशिया, यूनाइटेड नेशन्स, १९५०।

पश्चिम योरप में ६० पौंड और उत्तरी अमेरिका में २२५ पौंड है। यूरप और अमेरिका में बहुत से मकान ऊपर से नीचे तक लकड़ी के बनाए जाते हैं। हमारे जलवायु मे यह सम्भव नहीं है। यहाँ पर गर्मी पाकर लकड़ी फट जाती है। यहाँ तक कि जो थोड़ी-बहुत लकड़ी का प्रयोग हम करते भी हैं उसे भी निरन्तर देख-रेख की जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त चूहे और कीड़े भी भारत में लकड़ी की उम्र को काफी घटा देते हैं। हम अन्य देशों के बराबर लकड़ी का सामान प्रयोग में नहीं लाते हैं। इस कारण भी हमारी लकड़ी की माँग कम है।

दुर्भेद्यता और लकड़ी की माँग की कमी के अतिरिक्त यह भी कठिनाई है कि भारतीय जंगलो में से बहुत कम ऐसे हैं जिनमें एक ही जाति के पेड़ साथ-साथ, समूह में उगते हों, कि उन्हें सरलता से काट कर आर्थिक उपयोग में लाया जा सके। उदाहरण के लिए हम अपने इमारती लकड़ी के पेड़ों को ले लें। सागौन का पेड़ अनेक ऐसे पेड़ों के साथ उगता है जिनका कोई भी व्यावसायिक महत्व नहीं है। वे विशाल क्षेत्रों में नहीं उगते। इस कारण सस्ते श्रम के होते हुए भी लकड़ी महँगी पड़ती है। हमारे जंगलों में लुब्दी बनाने योग्य लकड़ी बहुत कम मिलती है और जो मिलती भी है वह हिमालय की अगम ऊँचाइयों पर है। यह दुर्भाग्य ही है क्योंकि हम लुब्दी के रूप में उसका उपयोग नहीं कर पाते। हमारे यहाँ कागज बनाने के लिए लुब्दी की बड़ी माँग है अतः हमें लुब्दी बाहर से मँगानी पड़ती है।

जगलों की दुर्भेद्यता, पेड़ों की मिश्रित वृद्धि, लुब्दी बनाने योग्य लकड़ी की कमी तथा देश की औद्योगिक उन्नति के पिछड़े होने के कारण माँग की कमी, आदि भारत के वन-व्यसाय के पिछड़े हाने के लिए उत्तरदायी हैं।

वन-उपज (Forest Produce)

भारत के जंगलों के उत्पादनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) मुख्य उपज : जैसे इमारती लकड़ी तथा (२) गौण उपज : जैसे विविध उप उत्पादन या घास, बीज, रेशे और रेजिन आदि कम मूल्य वाली वस्तुएँ। भारतीय जंगलों में अनेक अच्छी इमारती लकड़ी वाले पेड़ पाये जाते हैं। परन्तु जिन किस्मों का उपयोग व्यावसायिक रूप से किया जाता है वे सीमित हैं। आजकल जिन पेड़ों की किस्मों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपयोग होता है वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) हिमालय के सिलवर-फर—ये हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भागों तथा

पूर्वी भागों में ७,५०० से १०,००० फीट तक की ऊँचाई पर मिलते हैं। ये ऊँचे सदा-बहार नुकीले, चिकने, कोमल, अनतिदृढ़ लकड़ी वाले होते हैं तथा पटरी बनाने, पैकिंग करने तथा लुब्दी व दियासलाई बनाने के काम आते हैं। आजकल इनका बहुत कम यात्रा में उपयोग किया जाता है यद्यपि इनकी प्राप्य मात्रा बहुत अधिक है। ये अभी तक लगभग अगम्य हैं।

(२) देवदारु—यह भारत की सबसे अधिक महत्वपूर्ण लकड़ियों में है। इसका पेड़ बहुत बड़ी सदाबहार और नुकीली पत्ती वाला होता है। साधारणतः यह ६० से १२० फीट तक ऊँचा होता है। यह हिमालय में ५,५०० फीट से ८,००० फीट की ऊँचाई तक गढ़वाल से लेकर पश्चिम की ओर जौनसार, पंजाब की पहाड़ियों और काश्मीर तक अभिसिंचित श्रेणियों और शुष्क कटिबन्धों के बीच में होता है। देवदारु के जंगल अत्यधिक मानसूनी वर्षा के प्रदेशों की बाहरी श्रेणियों से हटकर होते हैं। ठंडे प्रदेशों में वे काफी नीचे ढालों पर भी पाये जाते हैं। परन्तु इन पहाड़ियों पर जहाँ सूर्य की किरणें खूब पड़ती हैं ये अधिक ऊँचाई पर ही पाए जाते हैं। इनका जंगल लगभग कुल देवदारु का होता है केवल जहाँ-तहाँ कुछ नीले चीड़ तथा छोटे फर के पेड़ मिल जाते हैं। उत्तर-पश्चिमी हिमालय में काम में आने योग्य देवदारु लगभग २,००० वर्ग मील में है। परन्तु सिल्वर फर की भाँति देवदारु क्षेत्र का अधिकाश भाग पंजाब में है। देवदारु की लकड़ी पीलापन लिए हुए भूरी, हल्की, कड़ी, तैलयुक्त, अति सुगन्धयुक्त और बहुत मजबूत होती है। यह अधिकतर भारतीय रेलवे द्वारा अनेक कार्यों के लिए प्रयोग में आती है।

(३) नीला चीड़—भारत का दूसरा महत्वपूर्ण कोणधारी पेड़ है। यह हिमालय की लम्बाई भर में तिब्बत की चुम्बी घाटी से पूर्व की ओर पाया जाता है। यह ६,००० फीट से १२,००० फीट तक की ऊँचाई पर होता है। नीले चीड़ के शुद्ध क्षेत्र ऊँचे तथा नीचे प्रदेशों में अधिक हैं; परन्तु बीच के प्रदेशों में मिश्रित कोणधारी पेड़ों के समूह मिलते हैं। इसकी लकड़ी गुलाबी और कुछ कड़ी होती है। इसका उपयोगी क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं है यद्यपि धीरे-धीरे अब इस क्षेत्र में वृद्धि की जा रही है। इसका व्यवसाय अधिकतर पंजाब में होता है।

(४) चीड़—चीड़ विशाल आकार के कोणधारी पेड़ों में एक महत्वपूर्ण पेड़ है। यह ६० फीट से १०० फीट तक ऊँचा होता है तथा ३,००० से ६,००० तक की ऊँचाइयों पर पाया जाता है। निचली ऊँचाइयों पर यह उष्णप्रदेशीय पतझड़ वनों में

मिल जाता है तथा अधिक ऊँचाई पर शीतोष्ण-प्रदेशीय वनों में। यह काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश और नैपाल में बहुतायत से पाया जाता है। मैदान की ओर स्थित हिमालय की बाहरी श्रेणी के दक्षिणी ढालों पर चीड़ के जगलों का न होना ध्यान देने योग्य है। इसका कारण यह है कि यहाँ बहुत गर्मी पड़ती है और मानसूनी वर्षा भी बहुत होती है। चीड़ का लकड़ी हल्की लाली लिए भूरी होती है और मुलायम होती है। यह अधिकतर चाय के बक्स बनाने के काम में आती है। काम मे आने लायक चीड़-क्षेत्र लगभग ३,००० वर्गमील है जो कि पजाब और उत्तर प्रदेश में लगभग समान रूप से बँटा हुआ है। अब उत्तर प्रदेश और पजाब मे तारपीन तथा रेजिन बनाने के लिए चीड़ का बहुतायत से प्रयोग होता है।

(५) साल—इमारती लकड़ियों में एक अन्य महत्वपूर्ण पेड़ साल, रेलवे स्लीपरों के रूप मे बहुतायत से प्रयुक्त होने के कारण अग्रगण्य हो गया है। साल के जगल अधिकतर गङ्गा की घाटी मे पाये जाते हैं, जहाँ रेलों का जाल भी भारत भर में सबसे अधिक है। इसलिए साल के जंगलों के उपयोग में यह भी एक बड़े लाभ की बात है कि रेलवे स्लीपरों के लिए, इमारत बनाने या अन्य व्यापारों से अधिक रुपया दे सकता है। साल भारत का अत्यत अधिक घना उगने वाला पेड़ है। यह उत्तरी भारत तथा मध्यप्रदेश मे, तथा उप-हिमालय क्षेत्र काँगड़ा से आसाम के दराग और नौगाँव जिलों तक और गोरु पहाड़ियों मे पाया जाता है। यह छोटा नागपुर और उड़ीसा में भी पाया जाता है। साल की लकड़ी भूरी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है। परन्तु यह खुरदुरी और टेढे रेशे वाली होने के कारण चिकनी देर में होती है। साल में जगलों के काम में आने योग्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश में लगभग ३,००० वर्ग मील में है। इसमें से केवल एक-तिहाई काम का है, शेष में छोटे-छोटे पेड़ ही मिलते हैं। उत्तर प्रदेश में केवल साल के जगलों का किसी हद तक उपयोग होता है। इन जगलों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—पहाड़ी जंगल, भाबर जंगल और तराई या मैदान के जगल। इनमें भाबर जगल सबसे अच्छे हैं। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अच्छे साल के जंगल केवल छोटा नागपुर में मिलते हैं।

(६) सागौन—जब तक ब्रह्मा के जगल भारत के जंगल समझे जाते थे तब तक सागौन के जगल भारत में सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे। परन्तु अब उनका महत्व समाप्त हो गया है, क्योंकि भारत की आजकल की सीमा के भीतर जो सागौन के जगल मिलते भी हैं वे ब्रह्मा के जंगलों के सदृश श्रेष्ठ नहीं हैं। भारत में अधिकतर सागौन के

जंगल पश्चिमी घाट, नीलगिरि, और मध्य प्रदेश में मिलते हैं। ये अकेले या अन्य जातियों के साथ मिश्रित रूप मे मिलते हैं। शुद्ध सागौन के जंगल पहाड़ियों के निचले ढालों, नदी के किनारे के चिपटे कछारों या तग घाटियों मे पाए जाते हैं। पहाड़ियों के ऊँचे ढालों पर सागौन के पेड़ अन्य पेड़ों से मिश्रित मिलते हैं। सागौन-उत्पादन के सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान मध्य प्रदेश के होशगाबाद तथा चाँदा जिले और बम्बई के खानदेश जिले हैं। सागौन के जगल नर्बदा के उत्तर और महानदी के पूर्व में अधिक नहीं हैं। पश्चिमी घाट के क्षेत्र में थोड़ी-सी सागौन की लकड़ी का निर्यात होता है। यह बड़े अधिक मूल्य मे बिकती है। इसलिए इसी का वृक्षारोपण भारत मे सबसे अधिक हुआ है। आजकल भारत में सागौन के उगाए हुए जगलों का क्षेत्र लगभग ३०० वर्गमील है।

(७) **बबूल और शीशम**—ये देश के शुष्कतर भागों में विशाल क्षेत्र मे फैले हुए हैं। इनसे स्थानीय रूप से प्रयोग करने के लिए अच्छी इमारती लकड़ी मिल जाती है। इनकी छाल चमडा रँगने के काम आती है।

गौण उत्पादन (Minor Produce)

भारतीय जगलों का महत्व उनके गौण उपज मे अधिक है। उनमे से कुछ की माँग तो ससार भर में है। इन गौण उत्पादनों का महत्व उनकी वर्तमान स्थिति में उतना नहीं है जितना उनकी भावी सभावनाओं में है। बाँस कुछ प्रकार की घासें, तेल और चमड़ा पकाने का सामान आदि जो हमारे जगलों मे पाया जाता है, उसका औद्योगिक महत्व बहुत है। इन वस्तुओं की महान् राशि वनों से प्राप्त हो सकती है। ये वस्तुएँ वनों में प्रति वर्ष उगती हैं जिससे इनकी प्राप्ति में अधिक समय के लिये कमी होने की सभावना नहीं। इमारती लकड़ी से भिन्न इन कच्चे मालों की नवीन राशियाँ बहुत जल्दी उत्पन्न की जा सकती हैं।

भारतीय जगलों में गौण उपज की इतनी अधिकता है कि केवल कुछेक, जो व्यावसायिक रूप से उपयोगी हैं, का ही उल्लेख किया जा सकता है। अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं में से कुछ निम्नलिखित हैं : बाँस, घास, चारा तथा बीड़ी के लिए पत्तियाँ, रेशे, बीज, चमड़ा पकाने तथा रगने का सामान, तेल, गोंद, लीसा (रेजिन), रबड़, दवाइयाँ और मसाले आदि। इन गौण उत्पादनों में से अधिकांश प्रायद्वीपीय भारत मे होते हैं। हिमालय के जगल इमारती लकड़ी और रेजिन के लिए ही महत्व-

पूर्ण हैं। शुष्कतम प्रदेशों को छोड़ कर बाँस तो जंगलों के सभी भागों में बहुलता से पाए जाते हैं। अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में बाँस बहुत अधिक होता है। बीजों में महुवा का बीज सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। महुवा को सबसे अधिक अनुपात मध्य प्रदेश और बम्बई में होता है। गोंदों में लाख तथा बबूल का गोंद मुख्य हैं। लाख अधिकतर छोटा नागपुर के प्रदेश में होती है। तेलों में चन्दन का तेल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, यह अधिकतर मैसूर मे होता है। चमड़ा पकाने के सामानों में हर्रा, तथा कुछ पेड़ों की छालें, विशेष रूप से बहेड़ा की, प्रमुख हैं। इन सामानों का महत्व बहुत अधिक बढ़ सकता है, यदि दक्षिणी अमेरिका के क्यूबा के पेड़ की भाँति उनसे निस्सार (इक्सट्रैक्ट) निकाल लिए जाया करें।

सन् १६३५-३६ में इमारती लकड़ी और ईंधन का कुल उत्पादन ३७ करोड़ घनफुट से कुछ अधिक था; १६५०-५१ में ५५·७ करोड़ घनफुट और १६५४-५५ में ५०·८ करोड़ घनफुट। १६३५-३६ में गौण उत्पादनों द्वारा १ करोड़ रुपये की आमदनी हुई। १६५० ५१ में ६ ६ करोड़ और १६५४ ५५ में ७·७ करोड़ रुपये की।

भारत में जंगलों का वास्तविक महत्व चराई तथा ईंधन के लिए है। भारत ऐसा देश है जहाँ जानवरों के चरने के लिए कहीं भी चरागाह नहीं हैं। इसलिए जंगलों से जानवर पालने में बहुत सहायता मिलती है। घरेलू कामों के लिए भारत में कोयले का अधिक उपयोग नहीं होता। इसलिए लकड़ी का ईंधन बहुत आवश्यक है। भारतीय आर्थिक संगठन में वन इतना आवश्यक है जितना कि योरप के किसी भी देश में नहीं।

प्रशासनिक वर्गीकरण

सुचारु उपयोग और रक्षा के विचार से भारतीय वनों को तीन भागों में बाँट दिया गया है : (१) सुरक्षित (Reserved), (२) रक्षित (Protected) और (३) अवर्गीकृत (Unclassed)। १६५४-५५ में सम्पूर्ण वन क्षेत्रफल में से १३८,०५६ वर्गमील सुरक्षित; ६२,६०४ वर्गमील रक्षित और ८०,२३६ वर्गमील अवर्गीकृत वनो के अन्तर्गत था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत में न केवल वन प्रदेशों का औसत क्षेत्रफल ही कम है वरन् देश के विभिन्न राज्यों में भी इनका विस्तार बहुत ही कम है। अतः १६५२ की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार भारत सरकार ने यह निश्चित किया कि वनों

का प्रतिशत देश की कुल भूमि का कम से कम ३५ प्रतिशत तक बढ़ाया जाय। इस हेतु यह माना गया कि पहाड़ी क्षेत्रों में और दक्षिण के पठारी भागों में ६०% और मैदानी क्षेत्रों में २०% भूमि पर वनों का होना आवश्यक है। अतएव प्रथम पचवर्षीय योजना में वन लगाने, वनों में आने-जाने के लिए सड़कें आदि बनाने और छोटे-छोटे बागान लगाने की अनेक योजनायें आरम्भ की गईं। ७५००० एकड़ से अधिक भूमि में फिर से वन लगाये गए; जंगलों में ३ हजार मील से अधिक लम्बी सड़कें बनाई गईं और २ करोड़ एकड़ से अधिक गैर-सरकारी वन प्रदेश को सरकार ने अपने नियन्त्रण में ले लिया। दियासलाई की लकड़ी के प्रतिवर्ष ३ हजार एकड़ के बागात लगाये गये।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में वन विकास के लिए २७ करोड़ रुपये का आयोजन किया गया है। इसके अन्तर्गत ३·८ लाख एकड़ के इलाके में जो जगल खराब हो गये हैं उन्हें ठीक करना होगा; ५० हजार एकड़ भूमि में ठीक व्यापारिक जैसी महत्व की लकड़ियों के बागान लगाना; १३ हजार एकड़ भूमि में वाटल और सरपत के पौधे; ५०००० एकड़ में दियासलाई की लकड़ी और २ हजार एकड़ भूमि में औषधियों के पेड़ लगाये जाएँगे। इनके अतिरिक्त नहर की पटरियों, और सड़कों के किनारे, बाढ़ अथवा मरुभूमि रोकने के लिए और बजर भूमि में भी वन लगाये जाएँगे तथा वन साधनों की पड़ताल की जायगी।

देश में वनों के महत्वों की दृष्टि से १९५० से ही वन महोत्व आन्दोलन चालू है। इसके अन्तर्गत अब तक लगभग १५ करोड़ वृक्ष लगाये गये हैं किन्तु पूरी प्रकार देखभाल न होने से इनमें से केवल ६०% वृक्ष ही पनप सके हैं।

भूमि क्षरण को रोकने में वन सहायक होते हैं। यह अनुभव करने के कारण ही द्वितीय योजना में ३१ लाख एकड़ भूमि में उर्वर भूमि सरक्षण कार्यक्रम पर विशेष रूप से ध्यान दिया जा रहा है। इसमें से २० लाख एकड़ भूमि कृषि योग्य है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ३·५ लाख एकड़ भूमि पर रेत के टीलों को वश में किया जायेगा; महत्वपूर्ण नदी घाटियों में ३·२ लाख एकड़ भूमि में; पहाड़ी प्रदेशों में १·७ लाख एकड़, १·५ एकड़ से अधिक बीहड़ भूमि में और १ लाख एकड़ से अधिक पड़ती भूमि में आग फैलने से रोकने और अन्य कार्यक्रम किये जाएँगे इससे उर्वर भूमि का क्षरण रोका जा सकेगा।

१९५३ में केन्द्रीय उर्वर भूमि संरक्षण सगठन स्थापित किया गया है जिसका

मुख्य कार्य भूमि-सम्बन्धी योजनाएँ बनाना और भूमि क्षरण वाले क्षेत्रों की जाँच-पड़ताल कर राज्य सरकारों को उचित परामर्श देना है। देहरादून, कोटा, बैलारी, जोधपुर और डरकमड़ तथा छत्तरा मे अनुसन्धान केन्द्र विभिन्न प्रकार के भूमि क्षरण का कार्यक्रम कर रहे हैं। १६८६ तक लगभग २००० लाख एकड़ भूमि से क्षरण के प्रभावों को दूर किया जा सकेगा। इस बीच में ये लक्ष्य १६६१ मे ४० लाख एकड़ १६६६ में ११५ लाख एकड़ और १६७१ में २०० लाख एकड़ भूमि तक सीमित रहेंगे। जोधपुर में अनुसन्धानशाला भूमि के सुधार में जंगलों की पेटियाँ लगाने की योजना कार्यान्वित कर रही है। मरुस्थल को आगे बढ़ने से रोकने के लिए ५५ किलोमीटर लम्बी और ७ किलोमीटर चौड़ी वृक्षों की पेटियाँ लगाई गई हैं। भारत सरकार भारतीय जङ्गलों के विधिपूर्ण विकास की ओर काफी ध्यान दे रही है। उसने जङ्गलों की सुरक्षा और सुचारु उपयोग के लिए साधारण प्रशासनिक तन्त्र के अतिरिक्त देहरादून में एक अन्वेषण-शाला (फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीच्यूट) भी खोली है जो भारतीय वन सम्बन्धी वैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन करती है।

प्रश्न

१. भारतीय वनों की विशेषताएँ क्या हैं ? भौगोलिक कारण उनके लिए कहाँ तक उत्तरदायी हैं ?

२. किन कारणों से भारत में जङ्गलो के स्थान पर घास की वृद्धि होती है ?

३ भारत के मैदानों से जङ्गलों के मिट जाने के क्या कारण हैं ?

४. भारतीय जङ्गल की कौन-कौन मुख्य किस्में हैं ? वे कहाँ पाई जाती हैं ?

५. भारत के जङ्गलों की मुख्य उपज क्या है ? उनके मुख्य क्षेत्र कौन हैं ?

६. भारतीय जङ्गलों में गौण उपज का क्या महत्व है ? ये अधिकतर कहाँ पाई जाती हैं ?

७. भारत के साल तथा देवदारु के जङ्गलों का क्या महत्व है ?

अध्याय ४

मिट्टियाँ

(Soils)

हमारी जनसंख्या का अधिकाश भाग खेती पर निर्भर है। खेती का मिट्टी पर निर्भर रहने के कारण, भारतीय मिट्टियों का अध्ययन हमारे लिए बहुत आवश्यक है। अभाग्यवश भारत की मिट्टियों के अध्ययन के लिए सन्तोषजनक काम बहुत ही कम हुआ है, इसलिए तत्सम्बन्धी जो भी सामग्री प्राप्य है. वह बहुत ही कम है।

सामान्यतः मिट्टियों पर चट्टानों तथा जलवायु का स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ता है। श्री वाडिया तथा कुछ अन्य महोदयों ने भारत की मिट्टियों पर भौगर्भिक प्रभावों का रूप-रेखात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इंडियन काउन्सिल ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च ने इसका अध्ययन जलवायु के आधार पर प्रारम्भ किया है। अभी तक काउन्सिल इस निश्चय पर पहुँची है कि भारत की मिट्टियों के कटिबन्ध वर्षा के प्रभाव के अनुसार उत्तर दक्षिण दिशा में फैले हुए हैं। परन्तु यह जलवायु के आधार पर इसका कारण नही स्पष्ट कर पाती कि कुछ विशेष मिट्टियाँ दूसरी मिट्टियों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से कृत्रिम खादों को क्यों आत्मसात कर लेती हैं।

इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, दिल्ली, भारत की मिट्टियों को निम्न-लिखित मुख्य वर्गों में विभाजित करती है :—

(१) कछार, (२) कड़े कछार, (३) परिवर्तित चट्टानों पर की लाल मिट्टी, (४) लाल-कड़ी मिट्टी, (५) काली मिट्टी, (६) गहरी काली मिट्टी, (७) ट्रैप* चट्टानों पर की हल्की मिट्टी और (८) गहरी काली कछार की मिट्टी। इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च ने भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण इस भाँति किया है :—(१) लाल मिट्टी, (२) लैटेराइट, (३) कपास की काली मिट्टी; (४) कछार मिट्टी, (५) पहाड़ी और वन प्रदेशो की मिट्टी, (६) क्षारयुक्त मिट्टी और (७) दलदली मिट्टी।

उत्तरी भारत के कछार को (१) सिन्धु के कछार, (२) गङ्गा के कछार और (३) ब्रह्मपुत्र के कछार में विभाजित किया गया है।

---

*ज्वालामुखी-निर्मित एक किस्म की काली चट्टानें।

भारत की मिट्टियाँ अनेक देशों की मिट्टियों से स्पष्टतः भिन्न हैं क्योंकि वे बहुत पुरानी और पूर्णतः परिपक्व हैं तथा उनमें जन्मकाल की आरम्भिक प्रक्रियाएँ तथा मिट्टी और उसके चट्टानी उपस्तर के निकट के सम्बन्ध नहीं दिखाई देते। ऋतुच्युत सामग्री विभिन्न कारणों द्वारा बड़ी-बड़ी दूरियों तक चली गई है। भारत की मिट्टियों में से अधिकाश प्राचीन कछारी वश की हैं। उनकी परीक्षा करने से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि उनमें से कुछ की प्रकृति और बनावट उन्हीं मौलिक चट्टानों की बनावटों को प्रतिबिम्बित करती हैं, जिनसे उनका निर्माण हुआ है, तथापि अधिकाशतः वे
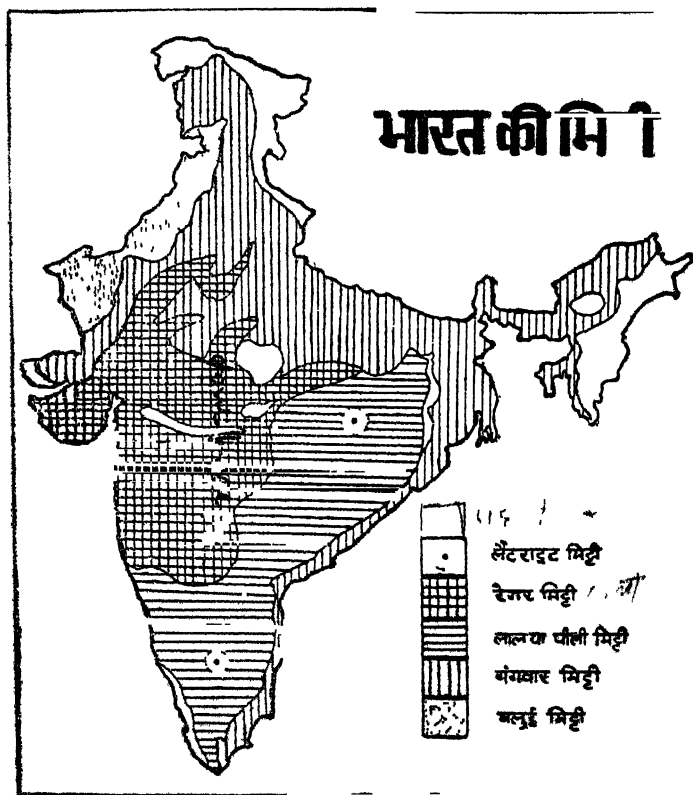
चित्र १५—भारत की मिट्टी

जलवायु के परिणामस्वरूप बनी हैं, विशेषकर वर्षा के परिमाण और उसके मौसमी विभाजन के अनुसार। भारत में जो मानसूनी वर्षा और कड़ी गर्मी पड़ती है वह धरातल की चट्टानों के प्रकारों और उनके वायु द्वारा नग्नीकरण को काफी प्रभावित करती हैं।

शीतोष्ण-कटिबन्धों की मिट्टियों से तुलना करें तो हम यह देखेंगे कि भारत की मिट्टियों के तापमान उनसे अपेक्षाकृत १०° सें० (सेंटीग्रेड) से २०° सें० तक का अन्तर मिलता है। इसलिए यहाँ मिट्टियों के निर्माण मे जो भी रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती है वे अधिक घनीभूत रूप मे होती हैं। उच्च तापमान और नमी का काम इतनी तेजी से होता है कि रासायनिक विघटन (डीकम्पोजीशन) चट्टानों के टूटते ही आरम्भ हो जाता है। वह विशेषता भारत के मैदानों की मिट्टी के निर्माण मे बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

वनस्पति को भोजन देने की दृष्टि से मिट्टियाँ दो समूहों में विभाजित की जा सकती हैं, (१) तेजाबी अर्थात् खट्टी (acid) और (२) क्षारक (alcaline) अर्थात् मीठी मिट्टी। यह विभाजन रासायनिक प्रतिक्रिया के आधार पर किया गया है। क्षारक मिट्टियो की विशेषता यह होती है कि उनमें चूने तथा सोडियम मिश्रणों का अश बहुत परिमाण मे वर्तमान रहता है। तेजाबी मिट्टियों में हाइड्रोजन की मात्रा अधिक रहती है जो चूने और सोडियम की जगह ले लेती है।

जलवायु की दशाओं के अतर्गत जहाँ पर जितना पानी भाप बनता है उससे अधिक सोखता है। वहाँ भूमि की पर्तों में नीचे की ओर पानी के सोखने के कारण काफी उद्विलयन (लीचिंग) हो जाता है। नीचे सोखे हुए जल के साथ ऊपरी मिट्टी के रसायन घुलकर नीचे पहुँच जाते हैं। इस प्रक्रिया मे विशेष रूप से मिट्टी के चूने वाले आधार विलीन हो जाते हैं और उनकी जगह हाइड्रोजन ले लेती है। इस प्रकार तेजाबी मिट्टियाँ बन जाती हैं। किसान लोग इस तेजाब अर्थात् खट्टेपन को दूर करने के लिए मिट्टी में चूना मिला देते हैं पर चूना मिलाने की प्रथा भारत में बहुत प्रचलित नहीं है।

चट्टानों के आधार पर भारत की मिट्टियों के दो मोटे विभाग हैं : सतलज-गगा मैदान की मिट्टियाँ जो नवीन चट्टानों से बनी हैं तथा प्रायद्वीपीय भारत की मिट्टियाँ जो प्राचीन चट्टानों से बनी हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि नवीन

तथा प्राचीन चट्टान का प्रभाव मिट्टी पर इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि वहाँ की जलवायु का।

सतलज-गङ्गा मैदान की मिट्टियाँ

सतलज-गंगा मैदान की मिट्टियाँ अधिकाशतः तलछटी अर्थात् कछारी (alluvial) हैं। ये (१) बुलई, (२) कॉप (क्ले) तथा (३) दुमट (लोम) मिट्टियों मे वर्गीकृत की जाती हैं। ये हिमालय से आए हुए मलवा से बनी हैं। ये मिट्टियाँ भारत भर मे सबसे अधिक गहरी, अच्छी तथा सबसे अधिक उपजाऊ हैं। उनमें अधिकाशतः दुमट (लोम) रहती है जो कि बालू तथा कॉप (क्ले) से मिलकर बनती है। निचले कछारों अर्थात् सर्वप्रमुख नदियों के मुहानों के पास दुमट में कॉप की मात्रा बढ़ जाती है इसको चिकनी दुमट (हैवी लोम) कहते हैं। सतलज-गंगा मैदान की मिट्टियों का स्वरूप घाटी के उस स्थान पर निर्भर रहता है जहाँ वे पाई जाती हैं। घाटी के सबसे ऊपर के हिस्से मे मिट्टियाँ मोटे कण वाली हैं बीच के भाग में मिश्रित कण वाली हैं तथा सबसे निचले हिस्से में अत्यन्त छोटे कणों वाली चिकनी मिट्टी है। चूँकि बालू बड़े कण वाली है इसलिए स्वाभाविक तथा नदियों के प्रवाह के ऊपरी क्षेत्र मे उसका प्रभुत्व रहता है। नदी के निचले बहाव में मिट्टी के अत्यन्त बारीक कणों वाला अश, कॉप और दुमट की ही अधिकता रहती है। स्थानीय रूप से घाटी के किसी भी भाग में बालू या कॉप जमा हो सकती है। परन्तु जहाँ बालू जमा हो वहाँ उभार का होना आवश्यक है तथा जहाँ काँप जमा हो वहाँ भूगर्त का होना आवश्यक है जिससे बाढ़ों के कारण कॉप जमा हो जाय।

नदियों के ऊपरी बहावों में बालू की प्रमुखता रहती है। वह हिमालय से आती हुई बाढ़ों द्वारा सदैव पुनर्नवीन होती रहती है। विशेषकर नदियों के फैलावो मे, जिन्हें भावर भी कहते हैं, रोड़े और बड़े-बड़े पत्थर भी पाये जाते हैं। नदियों के मैदानों के मध्यवर्ती भाग में सबसे अधिक गहरे दुमट के कछार मिलते हैं। उनमें, जहाँ-जहाँ भू-गर्त होते हैं, कॉप की प्रमुखता होती है। नदियों के मैदानों के निचले भाग में साधारणतः काँप-प्रमुख कछार ही पाया जाता है। यहाँ कछार बहुत गहरा नहीं होता परन्तु समय-समय पर नवीन मिट्टी के जमने के कारण वहाँ उपजाऊ शक्ति बहुत अधिक रहती है। उत्तर के कछारों की उपजाऊ शक्ति का कारण नौषजन (नाइट्रोजन) पूर्ण पदार्थ अर्थात् ह्यूमस की अधिकता नहीं, वरन् हिमालय की नई चट्टानों के

मलवा का मिश्रण है। कछार विभिन्न चट्टानों से आई हुई सामग्री से बनते हैं इसलिए उनमें नमकों की बड़ी विभिन्नता होती है। नमकों की यह विविधता ही इन मिट्टियों की उपजाऊ शक्ति का आधार है। कछार पर खादों के प्रयोग की प्रतिक्रिया अत्यन्त शीघ्र होती है। वे आसानी से जोते भी जा सकते हैं और इसीलिए वे भारत के सबसे अच्छे कृषि-क्षेत्र हैं।

इस कछारी मिट्टी में कई दुर्गुण भी हैं। प्रमुख रूप से बलुई ढेर (सैण्ड ड्यून) जिन्हें 'भूड़' कहते हैं, तथा रेह और कल्लड़ नामक क्षारक मिट्टी के विस्तार सतलज-गगा के मैदान की मिट्टियों में विशेष दुर्गुण हैं। इसके अतिरिक्त कॉप-प्रधान क्षेत्रों में कहीं-कहीं चूना के कण एकत्रित हो गये हैं। इन कणों को 'ककड़' कहते हैं। ये कंकड़ आरम्भ मे भूमि के भीतर ही होते हैं परन्तु बढ़ते-बढ़ते ये धरातल के ऊपर आ जाते हैं। ककड़ के कोश बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से मिलते हैं। उपरोक्त दुर्गुणों से मैदान का अधिक क्षेत्र किसानों की अपनी ही असावधानी से खेती के अयोग्य हो गया है। रेह या सज्जी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। सिंचाई करते समय नहरों का अधिक ज़ल खेतों में भर देना ही रेह बढ़ने का कारण है।

कछारों के अतिरिक्त पजाब मे कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ हवा से उड़ कर आई हुई बहुत महीन 'लोयस' नामक मिट्टियों ने कछारों को ढॅक लिया है। ये लोयस मिट्टियाँ बहुत चिकने कणों की तथा छिद्रपूर्ण होती हैं। ये मिट्टियाँ बहुत उपजाऊ होती है।

सतलज-गंगा मैदान तथा भारत के अन्य भागों के कछारों में नाइट्रोजन-पदार्थ (ह्यूमस) की कमी है। उदाहरणार्थ, पजाब की मिट्टियों में केवल ०.०२५ प्रतिशत से ०.१०० प्रतिशत तक नाइट्रोजन-पदार्थ पाया जाता है जब कि रूस की सर्वोत्तम स्टेप्स मिट्टियों में यह पदार्थ २० प्रतिशत मिलता है। फिर भी भारतीय मिट्टियाँ नाइट्रोजन पदार्थ की कमी को रूसी मिट्टियों की अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से पूरा कर लेती हैं। भिन्न-भिन्न विधियों से वे नाइट्रोजन को बहुत तेजी से प्राप्त कर लेने में समर्थ हैं।

सतलज-गगा मैदान के कछार पोटाश, फास्फोरिक ऐसिड, चूना और कृमि-पदार्थों से पूर्ण हैं।

प्रायद्वीपीय भारत की मिट्टियाँ

प्रायद्वीप की अधिकतर मिट्टियाँ स्थानबद्ध (dilluvial) मिट्टियाँ हैं जो

उत्तर के कछारों से भिन्न हैं। ये मिट्टियाँ वहीं बनी रहती हैं जहाँ उनका निर्माण होता है और इस प्रकार उनमें विभिन्न चट्टानों के पदार्थों का मिश्रण नहीं हो पाता। इन मिट्टयों की उपजाऊ शक्ति उन चट्टानों के रासायनिक अंशो पर निर्भर रहती है जिनके ऊपर उनका निर्माण होता है। प्रायद्वीप की मिट्टियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है :—

(१) 'रेगड़' या कपास वाली काली मिट्टी।
(२) लाल या पीली मिट्टी।
(३) लैटराइट मिट्टी।
(४) कछार।

(१) 'रेगड़' या काली कपास उपजाने वाली काली मिट्टी प्राचीन लावा से बनी है। इसलिए वह भारत की सबसे अधिक उपजाऊ मिट्टियों में से है। इसे 'ट्रैप' मिट्टी (आवेष्ठक मिट्टी) भी कहते हैं क्योंकि लावा के उद्गारों ने पुरानी मौलिक चट्टानों को ढक लिया था। इसमें वनस्पति को पालने की इतनी अधिक शक्ति है कि हजारों वर्ष से बिना किसी खाद का उपयोग किए इस पर खेती की जा रही है। इसका मुख्य क्षेत्र पश्चिम में बम्बई से पूर्व में अमरकटक तक, तथा उत्तर में गूना से दक्षिण में बेलगाम तक फैला है। यह क्षेत्र लगभग २ लाख वर्गमील में फैला है। इस क्षेत्र में काली मिट्टी सबसे अधिक गहरी है। सबसे अधिक गहराई के स्थानों पर मिट्टी की गहराई लगभग २० फीट है। इन भागों में यह मिट्टी सबसे अधिक उपजाऊ है। क्षेत्र के किनारों के पास और ढालों पर मिट्टी की तह पतली है और वहाँ नीचे दबी हुई चट्टानें अक्सर ऊपर दिखाई दे जाती हैं। इस प्रमुख क्षेत्र के अतिरिक्त भी काली मिट्टी प्रायद्वीप के अन्य भागों में बिखरी हुई मिलती है। उदाहरणार्थ, बुन्देलखण्ड में, मद्रास के तिनेवल्ली जिले में तथा अरावली पहाड़ियों के निकट। भारत की रेगड़ सयुक्त राज्य अमेरिका के एरीजोना की काली मिट्टियों के सदृश ही है। वे भी लावा से ही बनी हैं। किन्तु ये रूस के यूक्रेन की तथा उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज की काली मिट्टियों से भिन्न हैं क्योंकि उनके कालेपन का कारण उनमे नौषजन-तत्व (ह्यूमस) की अधिकता है। नौषजन-तत्वयुक्त मिट्टी मुलायम होती है और इसको जोतना आसान है। लावा वाली भारतीय काली मिट्टी चिकनी है जिसे जोतना (विशेषकर जब वह भीगी हो) बहुत कठिन है।

प्रायद्वीप के कुछ भागों में (जैसे गुजरात या मद्रास में) काली मिट्टियों की

उत्पत्ति के कारण वे प्राचीन लैगून बताए जाते हैं जिनमें नदियों ने लावा से ढँके हुए प्रायद्वीप के अन्तर्देश से विभिन्न पदार्थों को लाकर भर दिया।

क्रेब्स* का मत है कि रेगड़ आवश्यक रूप से एक परिपक्व मिट्टी है जिसकी उत्पति उभार तथा जलवायु के द्वारा हुई है न कि लावा जैसी एक विशेष प्रकार की चट्टान द्वारा। उनके अनुसार जहाँ वार्षिक वर्षा २०" से ३२" तक होती है तथा वर्षा के दिन ३० से ५० तक होते हैं वहीं यह मिट्टी पाई जाती है। पश्चिमी दकन को वह एक अपवाद मानते हैं क्योंकि वहाँ ४०" वर्षा होती है तथा वर्षा के दिनों की संख्या ५० से ऊपर है।

भारत की काली मिट्टी में लोहा, चूना तथा एल्यूमिनम के अंश प्रचुर हैं। परन्तु उनमें फास्फोरस तथा कृमि-पदार्थ कम हैं। पोटाश की मात्रा भिन्न है परन्तु अधिक नहीं। इस प्रकार यह देखा जाता है कि काली मिट्टी में वे रासायनिक तत्व कम मिलते हैं जो भारत की अन्य प्रकार की मिट्टियों मे प्रचुर हैं।

इन मिट्टियों के काले रंग के बारे मे कुछ लोगों की यह राय है कि यह लोहा और अल्यूमुनियम के मिश्रण के कारण है। इन मिट्टियों में खेती के दृष्टिकोण से जो सबसे भारी कमी है वह यह है कि सूखने पर इनमें दरारें पड़ जाती हैं। ये जम कर कड़ी भी हो जाती हैं और तब इन पर हल चलाना कठिन हो जाता है।

काली मिट्टियों के उपजाऊपन का कारण उनकी नमी रोके रखने की शक्ति, चिकनापन और रासायनिक तत्वों (विशेषतः चूने) से सम्पन्न होना है। चूने के कारण इस काली मिट्टी मे छोटे-छोटे कंकड़ बहुत हैं परन्तु वे इतने घने नहीं हैं कि उनसे हल चलाने में कठिनाई हो। इस मिट्टी में पर्याप्त नमी होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। खाद का प्रयोग भी उसमें कम किया जाता है क्योंकि उसमें रासायनिक तत्व अधिक हैं। आजकल कहीं-कहीं गन्ने की खेती का प्रचार हो जाने से नहरों से सिंचाई भी होने लगी है और खाद भी दी जाने लगी है।

(२) लाल तथा पीली मिट्टियाँ उन चट्टानों की विशेषता हैं जिनमें लोहे के प्रचुर अंश विद्यमान रहते हैं। समान रूप से उच्च तापमान की दशाओं में लोहा विघटित होकर सारी मिट्टी में समान रूप से फैल जाता है और उसे लाल या पीला

---

*क्रेब्स : क्लाइमेट एण्ड स्वायल फार्मेशन इन साउथ इण्डिया। द बाइटा आर्ड कुंडे, बर्लिन १९३९।

रग दे देता है। इसलिए ये मिट्टियाँ उष्ण कटिबन्ध में आमतौर से पाई जाती हैं। इनका मुख्य विस्तार ताप्ती के दक्षिण में है यद्यपि ये छिटपुट रूप मे ताप्ती के उत्तर तथा आसाम मे भी पाई जाती हैं। ये साधारणतः पूर्वी-घाट पहाड़ से सम्बद्ध पाई जाती हैं। ये बहुत छिद्रपूर्ण होती हैं तथा केवल वहीं उपजाऊ होती हैं जहाँ काफी गहरी होती हैं तथा महीन कणवाली होती हैं। उभारों पर ये मिट्टियाँ मोटे कणवाली होती हैं और नीचे क्षेत्रों में गहरी और महीन कणवाली। इनमे नाइट्रोजन, फास्फोरस और ह्यूमस की आमतौर पर कमी पाई जाती है। चूना भी इनमें कम होता है।

(३) हल्के लाल रग की लैटराइट मिट्टियाँ अत्यन्त अन-उपजाऊ होती हैं। लैटराइट प्रायः उन प्रदेशों मे मिलती है जहाँ कोई वनस्पति नहीं होती। लैटराइट के क्षेत्र बड़े ऊसर हैं। इनकी ऊपरी सतह ककड़ीली होती है। यद्यपि ये लाल रग की होती हैं परन्तु लाल मिट्टियों से इनके अन्तर को स्पष्ट रूप से ग्रहण कर लेना चाहिये। इनमें थोडा-सा कॉप का अश होता है और शेष लाल चट्टान का चूरा होता है। लैटराइट मिट्टियों मे फास्फोरिक एसिड की बड़ी कमी होती है। यह एसिड बहुत महत्वपूर्ण खाद है। लैटराइट मिट्टियाँ ऐसे क्षेत्रों मे पाई जाती हैं जहाँ अत्यन्त वर्षा के कारण सिलिका (बालू) का अश बह जाता है और केवल एल्मूनियम के हाइड्रेट रह जाते हैं। लैटराइट मिट्टी विशेष रूप से दकन, मध्य प्रदेश, राजमहल, उड़ीसा के पूर्वी-घाट वाले भाग, दक्षिण बम्बई, मालाबार और आसाम के कुछ भागों में पठारों और पहाड़ियों की चोटियों पर मिलती हैं। इस दक्षिणी मिट्टी मे खेती नहीं होती है।

(४) कछार, साधारणतः नदियों के बहाव में आई हुई मिट्टी से बने हैं। दकन की अधिकाश नदियाँ काली मिट्टी के क्षेत्र से आरम्भ होती हैं। अतः उसके बहुत बड़े अंश को वे अपने मुहाने तक ले जाती हैं। इन मिट्टियों की सामान्य विशेषताएँ सतलज-गगा के मैदान के सदृश ही हैं। दक्षिणी भारत में कछार का बहुत बड़ा क्षेत्र नदियों के डेल्टा में पाया जाता है। ये डेल्टा एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ गये हैं कि उनकी एक कछारी पट्टी समुद्र तट के किनारे-किनारे फैली है।

हिमालय प्रदेश की मिट्टियाँ

हिमालय प्रदेश में मिलने वाली मिट्टियाँ अधिकतर जल द्वारा बहाई हुई हैं और इसलिए उनमें भिन्नता बहुत है। साधारण दृष्टि से हिमालय प्रदेश की मिट्टियों में मोटे कण अधिक होते हैं और इसलिए वे अधिक उपजाऊ नहीं हैं। नदियों के

वेगवती होने के कारण उनकी घाटियों मे स्थित मिट्टी का उपजाऊ भाग शीघ्र बह जाता है। इसलिए वे भी कम उपजाऊ हैं। ढालों पर तथा घाटियों मे भी चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़े वहाँ के खेतों के विशेष दृश्य हैं। ऊँचाई पर और ढाल पर जहाँ कहीं ग्रेनिट नामक चट्टान से मिट्टी बनी है वहाँ प्रायः लाल मिट्टी है। अन्य स्थानों में फेल्स-पार-युक्त चट्टान से बनी मिट्टी भूरे रंग की है। परन्तु जहाँ-जहाँ प्राचीन झीलों की तलहटी है, जिनमें प्राचीन बारीक मिट्टी जमी है, वहाँ हिमालय प्रदेश से भी उपजाऊ मिट्टी है। काश्मीर और काठमाण्डू इसके उदाहरण हैं।

भारत में मिट्टी की उपजाऊ शक्ति

भारतीय मिट्टियाँ संसार की अधिक उपजाऊ मिट्टियों मे गिनी जाती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें आवश्यक रूप से प्रति एकड़ बहुत अधिक पैदावार होती है; इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वे फसले उगाने के लिए उपयुक्त हैं। अधिक पैदावार गहरी खेती में ही सभव है जिसमें उचित समयों पर अच्छी खाद डाली जाती है। उचित खाद मिलाये बिना कोई भी मिट्टी चाहे कितनी ही अच्छी वह क्यों न हो अधिक अन्न नहीं उपजा सकती है।

उपजाऊपन के आधार पर मैरीकर ने मिट्टयों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया था। विभाजन इस प्रकार था :—

दस हजार पौंड मिट्टी में पौधों के खाद्य-तत्व :—

मिट्टी का वर्ग	नाइट्रोजन	फास्फोरिक एसिड	पोटाश
खराब मिट्टी	५ पौंड	५ पौंड	५ पौंड
सामान्य मिट्टी	१५—२५ "	१०—१५ "	१०—१५ "
अच्छी मिट्टी	२४—४० "	१५—२५ "	१५—२५ "
बहुत अच्छी मिट्टी	४० " से अधिक	२५ " से अधिक	२५ " से अधिक

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय मिट्टियों में फास्फोरिक, एसिड और पोटास प्रचुर मात्रा में हैं परन्तु नाइट्रोजन की कमी है। इस कमी का ध्यान रखते हुए ही भारत की खेती की व्यवस्था हुई है। दाले (जैसे अरहर और उड़द) तथा तेलहन (जैसे मूँगफली) हमारी खेती में मिट्टी को नाइट्रोजन पहुँचाने के लिए बोई जाती है। ये फसलें हवा से नाइट्रोजन ग्रहण करके किन्हीं कीटाणुओं द्वारा अपनी लम्बी जड़ों में नाइट्रोजन एकत्रित करके

बनाती हैं। गरीबी के कारण भारतीय किसान मिट्टी में नाइट्रोजन पहुँचाने के लिए रासायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं कर पाता। गाँव में काफी ईंधन की लकड़ी न होने के कारण जानवरों की बहुमूल्य खाद खेतों में डाली जाने के स्थान पर चूल्हों में जल जाती है। इस प्रकार, भारत में मिट्टियों का मूलभूत महत्व होते हुए भी उनकी उत्पादकता को बनाए रखने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है।

भूमि-क्षरण (Soil Erosion)

भूमि-क्षरण से भारत को कितनी हानि हो रही है इस पर पूरा-पूरा ध्यान न दिया जाना भारतीय खेती की गभीरतम समस्या है। हजारों टन अच्छी मिट्टी प्रति वर्ष बह कर सागर में समा जाती है और उसे रोकने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता है। भारतीय वर्षा की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि यह हानि भारत में अन्य सभी देशों की अपेक्षा अधिक होती है। देश में भीषण वर्षा के कारण छोटी-बड़ी सभी नदियों में बाढ़ आ जाती है और उनके साथ देश के एक भाग की मिट्टी दूसरे भाग में और अन्ततः समुद्र में चली जाती है। नदियों के पास की गहरी तंग घाटियाँ अर्थात् बीहड़ इस हानि के प्रमाण हैं। मिट्टी कट जाने से ही ये बीहड़ बन गये हैं। दुख की बात यह है कि मिट्टी के बह जाने में हम ही सहायक होते हैं। मिट्टी के वनस्पति-आवरण को नष्ट करके या अधिक चराई करवा कर या जगल काट कर हम मिट्टी को दीर्घ-क्षरण के लिये बिल्कुल अरक्षित छोड़ देते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस ने इस
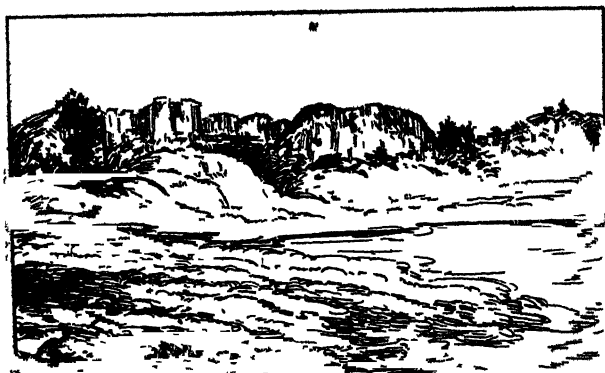
और इसलिए ...

में मोटे कण अधिक होते ह ... किनारे मिट्टी का क्षरण

समस्या पर विजय प्राप्त कर ली है। परन्तु भारत में अभी तक कोई भी उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है।

भूमि-क्षरण की समस्या एक जटिल समस्या है। चूँकि मिट्टी की विशेषताओं, भूमि के ढाल, उसके वनस्पति-आवरण, उसके वर्तमान उपयोग तथा उस पर होने वाली वर्षा की प्रकृति तथा परिमाणों के अनुसार क्षरण का आकार-प्रकार बदलता रहता है इसलिए इस समस्या का सुलझाना किसी एक निश्चित उपाय द्वारा नहीं वरन् अनेक उपायों द्वारा होगा। इन उपायों में उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान रखा जायगा। मुख्य ध्येय मिट्टी के बह जाने को रोकना है। विदेशों में भूमि-क्षरण को रोकने के लिए पेड़ लगाना, नियमित चराई करना, बीहड़ प्रदेशों के आर-पार बाँध बनाना तथा समोच्च रेखा-जलरोध* (कन्टूर प्लाउइङ्ग) आदि उपाय काम में लाये गये हैं।

प्रश्न

१. प्रायद्वीपीय भारत की मिट्टियाँ सिन्धु-गङ्गा के मैदान की मिट्टियों से किन रूपों में भिन्न हैं? व्याख्यापूर्ण उत्तर लिखिये।

२. भारत की रेगड़ मिट्टी की क्या विशेषताएँ हैं? वे उस प्रदेश की कृषि को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

३ सिन्धु-गङ्गा के मैदान की मिट्टियों का पूरा वर्णन कीजिये।

४ भूमि-क्षरण क्या है? भारत में भूमि-क्षरण रोकने के कुछ उपाय बतलाइए।

---

*समोच्च रेखा—जलरोध का अर्थ उभरी हुई भूमि पर समोच्च-रेखाओं की ही दिशा में उनके विरुद्ध नहीं, ऊँचे धरातल के क्षेत्र बनाना है। इस प्रकार उन क्षेत्रों से होकर पानी के बहने की गति धीमी हो जाती है और भीषण क्षरण रुक जाता है।

अध्याय ५

खेती

(Agriculture)

खेती भारतवासियो का सर्वप्रधान उद्योग है। चीन को छोड़ कर संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसमें इतनी सख्या में लोग अपनी जीविका के लिये खेती पर निर्भर रहते हों। हमारी कुल जनसख्या का लगभग ७० प्रतिशत इस उद्योग में लगा हुआ है तथा राष्ट्रीय आय का ४८% कृषि उत्पादन से ही प्राप्त होता है। देश के उद्योग के लिए कच्चा माल भी खेतो से मिलता है। लाख उत्पादन में भारत का एकाधिकार है तथा मूँगफली और चाय उत्पन्न करने में भारत का स्थान दूसरा है। चावल, जूट, गन्ना, राई, तिल और रेड़ी का उत्पादन भारत में दूसरे स्थान पर होता है। इतने पर भी भारत की वर्तमान खेती को विज्ञान-सम्मत खेती नहीं कहा जा सकता। उसमें व्यावसायीकरण का प्रारम्भ भर हो रहा है। जब तक वह पूरी तरह नहीं हो जाता तब तक विशेषीकरण असम्भव है। विशेषीकरण ही विज्ञान-सम्मत खेती का मार्ग बनाता है। खेती के पिछड़े होने के कारण भारतीय किसान ससार के निर्धन-तम वर्ग में गिना जाता है।

भारतीय खेती में कुछ ऐसी विशेष बातें हैं, जो पश्चिम के उद्योगपूर्ण देशों की खेती में नहीं मिलतों। वहाँ खेती के उत्पादनों में कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की आवश्यकताओं का ही प्राधान्य रहता है। भारतीय खेती की विशेषताएँ ये हैं :—

(१) भारत में अधिकाश भूमि का उपयोग अनाजों के उगाने में होता है। यह विचारणीय है कि (१) यहाँ कुल कृषिक्षेत्र का लगभग ⅘ भाग खाद्यान्नों की खेती में है। (२) ऐसी कोई भी फसल नहीं है जो सिर्फ पशुओं के चारे के लिए उगाई जाती हो। भारत में जानवरों का चारा अधिकांशतः खाद्यान्नों की फसलों की एक गौण उपज भूसा आदि है। (३) खादों का प्रयोग बहुत कम और अव्यवस्थित है। गोबर, जिससे सर्वोत्कृष्ट खाद बनती है, अधिकांशतः जला दिया जाता है क्योंकि प्रधान कृषि-क्षेत्रों में लकड़ी के लिए जङ्गलों की कमी है। (४) प्रति एकड़ उपज

इसीलिए बहुत कम है। (५) भारतीय बैल, जिनके कन्धों पर सारी खेती का भार है काफी छोटे और निर्बल होते हैं और गहरी जुताई के उपयुक्त बड़े हल नहीं खींच सकते। (६) इसके अतिरिक्त; गहरी जुताई भारतीय खेती के उपयुक्त भी नहीं है क्योंकि गहरी खेती से जो उत्तम मिट्टी ऊपर आ जाती भीषण वर्षा में उसके बह जाने का डर रहता है। (७) शीत या शीतोष्ण देशों की अपेक्षा भारत में एक वर्ष में एक से अधिक फसलें उगाते हैं। (८) सिंचाई व्यवस्था न होने के कारण भारतीय खेती को सूखा पड़ने से बहुत हानि होती है। नीचे के चित्र से स्पष्ट होगा कि भारत में कितने प्रकार की खेती की जाती है :—
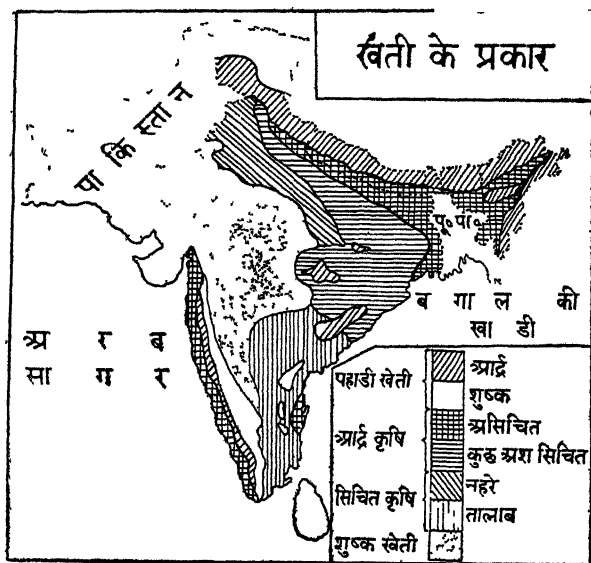
चित्र १७—खेती के प्रकार

देश का क्षेत्रफल ८०.६३ करोड़ एकड़ है किन्तु भूमि-उपयोग सम्बन्धी आँकड़े केवल ७१.९५ करोड़ एकड के ही मिलते हैं। इसमें से १२.५ करोड़ एकड़ पर वन; ३६.३ करोड़ एकड़ पर खेती की जाती है (इसमे से ५.९ करोड़ एकड़ पड़ती रहती है); ११.८ करोड़ एकड़ खेती के लिए अप्राप्य है और ९.६ करोड़ एकड़ बंजर पड़ी रहती है।

भारत के कुल क्षेत्रफल के लगभग ५३% पर खेती हो सकती है। परन्तु प्रति वर्ष कुल क्षेत्रफल का लगभग ९% परती छोड़ दिया जाता है और इसलिए केवल ४४% पर ही खेती होती है। कुल खेती के क्षेत्रफल के आधे से कुछ कम क्षेत्र सतलज-गंगा मैदान में ही हैं।

भारत मे बोई जाने वाली फसलों के दो-तिहाई से अधिक निम्नलिखित तीन फसलें हैं:—धान, मोटा अनाज (ज्वार, बाजरा, चना और राई) और गेहूँ। अन्य फसलों में तेलहन और कपास महत्वपूर्ण हैं।

नीचे की तालिका में प्रमुख फसलों का उत्पादन बताया गया है:—

उपज	क्षेत्रफल (हजार एकड़)		उत्पादन	
	१९५१-५२	१९५७ ५८	१९५१-५२	१९५७-५८
चावल	७३,७१३	७९,०२७	२०,९६४ ह. टन	२४८२१ ह टन
ज्वार	३९,३९९	४१,४११	५,९८१ ,,	८,०५६ ,,
बाजरा	२३,५२२	२७,४५३	२,३०९ ”	३,५६५ ”
मकई	८,१७९	९,७६२	२,०४३ ”	३,०६४ ”
रागी	५,४१०	५,८९७	१,२९१ ”	१,७१६ ”
छोटा अनाज	११,७७१	११,९७९	१,८८५ ”	१,७५९ ”
गेहूँ	२३,४०४	२९,६५७	६,०८५ ”	७,६५४ ”
जौ	७,८०७	७,५३१	२,३३० ”	२,१७५ ”
चना	१६,८७६	२२,४०५	३,३३४ ”	४,७५४ ”
तूअर	६,०४५	५,५९८	१,८०१ ”	१,३९६ ”
अन्य दालें	२३,४७३	२६,६५२	३,१५२ ”	३,०६६ ”
तम्बाकू	७१३	९२६	२०६ ”	२५२ ”
गन्ना	४,७९२		६०,६६० ”	
मूँगफली	१२,१५१	१४,४५७	३,१४२ ”	४,२७१ ”
रेंड़ी	१,४३७	१,३२५	१०६ ”	९७ ”
तिल	५,९४२	५,२६८	४४५ ”	३६३ ”
राई सरसों	५,९:४	६,०५०	९२८ ”	९०५ ”
अलसी	३,४०९	३,३१८	३२८ ”	२७१ ”
कपास*	१६,२०१	२०,१५८	३,१३३ ह० गाँठें	४,७५३ ह. गाँठें
जूट	१,९५१	१,७५४	४,६७८ ”	४,०८८ ”
चाय	७८२	७९२(१९५६)	६४१.०७९ह.पौ.	६५७,८००ह०पौं
कहवा	२३०	२५४ (”)	५५,५३८ ”	४२,४०० ”

उपयुक्त जलवायु होने के कारण भारतवर्ष में एक ही खेत में क्रमानुसार कई फसलें बोई जाती हैं। इस प्रकार, खेती का वास्तविक क्षेत्रफल यहाँ खेती की भूमि से अधिक हो जाता है। १९५५-५६ में यहाँ खेती की भूमि का क्षेत्रफल ३१९८ लाख एकड़ था, परन्तु कुछ खेतों के दो अथवा तीन बार बोने के कारण वास्तविक क्षेत्रफल ३६३३ लाख एकड़ था। १९५५-५६ में खेती के क्षेत्र का लगभग ८ प्रतिशत इस प्रकार दुबारा बोया गया था। देश के कुछ राज्यों में खेती की भूमि का वितरण निम्नलिखित था :—

राज्य	कृषि योग्य भूमि	कृषि भूमि	कुल बोया गया क्षेत्रफल	एकसे अधिक बार बोया गया क्षेत्रफल	कुल सिंचित क्षेत्र	कुल बोये गये क्षेत्र का सिंचित भाग %
आंध्र	४२	३२	२७	२	६	२४
आसाम	१०	६	५	१	२	३०
बिहार	२८	२३	१९	५	४	२१
बम्बई	८५	६९	६६	३	३	५
केरल	६	४	४	१	१	१९
मध्यप्रदेश	५८	४०	३८	४	२	५
मद्रास	२२	१७	१४	३	५	३७
मैसूर	३५	२७	२५	१	२	७
उड़ीसा	२३	१६	१४	१	२	१४
पंजाब	२२	१९	१८	५	८	४६
राजस्थान	६४	३३	२७	२	३	११
उत्तर प्रदेश	५३	४२	४२	१०	१२	२९
बंगाल	१६	१३	१३	२	३	२२
योग भारत	४७६	३४६	३१६	४०	५४	१७

भारत में खेती के सबसे बड़े क्षेत्र तीन हैं; (१) सतलज-गंगा का मैदान,

(२) समुद्री तट के मैदान और (३) कपास वाली काली मिट्टी का क्षेत्र। इन क्षेत्रों का लगभग आधा भाग खेती में लगा हुआ है। पठारी भाग में अधिक भाग परती प्रति वर्ष छोड़ना पड़ता है क्योंकि वहाँ की भूमि कम उपजाऊ है। देश में सबसे अधिक परती भूमि का क्षेत्र आन्ध्र, मद्रास और बम्बई राज्यों में है। १९५५-५६ में इन तीन राज्यों में देश की कुल परती भूमि का आधे से अधिक भाग था।

देश के अधिकाश भागों मे दो फसलें पैदा होती हैं—खरीफ और रबी। खरीफ की फसलों में चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, उर्द, मूँग, गन्ना, कपास और मूगफली हैं। यह गर्मी में बोई जाकर बरसात के बाद काटी जाती है। रबी की फसलो में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, मटर मुख्य है। यह वर्षा के बाद बोई जाकर सर्दी में काटी जाती है।

भारतीय फसलों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) भोज्य पदार्थ—चावल, गेहूँ, जौ-चना-मोटा अनाज, मक्का, गन्ना—तिलहन।

(ख) पेयपदार्थ—चाय, कहवा, तम्बाकू।

(ग) रेशेदार पौधे—कपास, जूट

(घ) फुटकर फसले।

(क) भोज्य पदार्थ (१) धान (Rice)

धान की सफल खेती के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ होती हैं :—

(१) उपजाऊ चिकनी मिट्टी, जिसमें धान की झकड़ा जड़ बँधी रहे और पौधा खड़ा रहे।

(२) समतल भूमि जिसमे पानी समान गहराई मे भरा रहे।

(३) उच्चताप लगभग ८०° फ०, जिससे पौधे की उन्नति शीघ्र हो।

(४) अधिक जल वर्षा लगभग ५० इंच या अधिक जिससे पौधा समान रूप से बढ़े और दाना शीघ्र पड़े।

(५) सस्ते और बहुसंख्यक श्रमिक जिससे खेती का काम पिछड़े नहीं।

चीन के बाद भारत संसार का सबसे बड़ा धान-उत्पादक देश है। निम्नलिखित सारिणी में कुछ देशों की १९५६-५७ की धान की पैदावार दी हुई है :—

चीन	४८३ लाख मेट्रिक टन
भारत	३१३ ,,
पाकिस्तान	११८ ,,
जापान	११३ ,,
इंडोनेशिया	६५ ,,
थाईलैण्ड	७२ ,,
इंडो-चाइना	५१ ,,
बर्मा	५५ ,,

आलू को छोड़ कर; ससार में अन्य कोई ऐसी फसल नही है जिसकी प्रति एकड़ उपज से इतने अधिक लोग पल सकते है, जितने कि धान से। आलू के लिए भारत का जलवायु अधिक अनुकूल नहीं है पर धान के लिए प्रायः सभी बातें अनुकूल हैं। इसीलिए कृषि क्षेत्रफल पर निर्भर मनुष्यों की संख्या की दृष्टि से धान भारत की सबसे अधिक महत्वपूर्ण खेती है। धान मानसूनी प्रदेशों की विशेष उपज है। वहीं पर इसे पनपने की आदर्श सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। काफी उच्च तापमान, अधिक वर्षा तथा उपजाऊ कछार इन सब का जुटाव संसार के अन्य किसी देश मे कम मिलता है। इस आदर्श जुटाव के अतिरिक्त इन प्रदेशों की आबादी भी घनी है इसलिए यहाँ सस्ते श्रमिक अधिकता से प्राप्य हैं। धान की खेती में यन्त्रों का प्रयोग कम होता है। उसके लिए मानव-श्रम अधिकता से चाहिये। भारत मे पानी के कारण ही धान की खेती सीमित हो जाती है। यहाँ पर जहॉ कहीं भी पानी की बहुतायत है वहीं धान की खेती होती है। पहाड़ी ढालों पर बॉध बना कर तथा दलदली प्रदेशों के पानी को निकाल कर जहॉ-जहाँ धान की खेती भर के लिए पानी मिल सकना संभव है वहाँ धान के खेत बना लिये गये हैं। जहॉ पर वर्षा काफी नहीं है और फिर भी धान बोना आवश्यक है वहाँ सिंचाई की व्यवस्था की गई है।

बंगाल में धान

भारत में बंगाल में सबसे अधिक धान होता है। अधिकाश धान 'अमन' फसल में होता है जो जून में बोई और नवम्बर में काटी जाती है। निम्न सारिणी से यह विदित हो जायगा कि इस काल मे बगाल में प्रचुर वर्षा होती है :—

बंगाल में वर्षा और तापमान

मास	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर
वर्षा (इञ्च)	३·२	७·६	१४·५	१४ ६	१४	१०·७
तापमान (फा०)	८३·५	८१	८४	८३	८३	८३

बराबर उच्च तापमानों द्वारा बंगाल में धान की फसल के लिए आवश्यक दूसरी शर्त भी पूरी हो जाती है। परन्तु उच्च तापमान उतना आवश्यक नहीं है जितना कि अधिक वर्षा क्योंकि धान हिमालय के ढालों पर समुद्र से ८,००० फीट की ऊँचाई पर भी उगाया जाता है जहाँ तापमान बहुत उच्च नहीं होते।
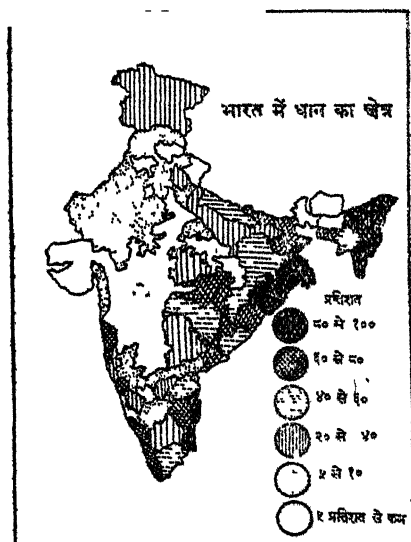
चित्र १८—भारत में धान का क्षेत्र

बंगाल तथा निकटवर्ती क्षेत्रों की फसलें इस प्रकार हैं :—

बंगाल की धान की फसलें

	फसल	बोने का समय	पौधे लगाने का समय	कटाई का समय
१.	औस	अप्रैल-मई	छितरा कर एक ही बार बोई जाती है	अगस्त सितम्बर
२.	अमन	जून	जुलाई अगस्त	नवम्बर-जनवरी
३	बोड़ो	अक्टूबर	दिसम्बर	मार्च

चीन के अतिरिक्त, जहाँ के विश्वसनीय आँकड़े भी प्राप्त नहीं है, कदाचित् भारत संसार में सबसे अधिक धान का उत्पादन करता है और उपभोग भी। १९५६-५७ में भारत में धान का कुल क्षेत्रफल ७८,१७ लाख एकड़ और उपज २,८१४ लाख टन थी। भारत के धान की अधिकांश उपज (६०% के लगभग) मद्रास, बिहार और उड़ीसा से प्राप्त होती है। नीचे की तालिका में चावल का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

चावल का उत्पादन (१९५७-५८)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उत्पादन
आंध्र	५,९७४	२,४६८	१,११४ पौंड
आसाम	४,२०७	१,५८६	८४४ ,,
बिहार	१२,२१५	२,१९८	४०३ ,,
बम्बई	४,१२४	१,३७३	७४६ ,,
केरल	१,९१२	८७४	१,०२४ ,,
मध्य प्रदेश	६,६६४	२,०९३	७८५ ,,
मद्रास	५,६०५	३,१३४	१,२५२ ,,
मैसूर	२,२५७	१,११८	१,११० ,,
उड़ीसा	९,४७६	१,७५५	४१५ ,,
उत्तर प्रदेश	९,६३७	२,२८४	५३१ ,,
प० बंगाल	१०,७७१	४,१८५	८७० ,,
पंजाब	७८८	२९६	८४१ ,,
योग भारत			७०४ ,,

१९५७-५८ में चावल की खेती का क्षेत्रफल ७९० लाख एकड़ और उपज २४८ लाख टन थी।

पृष्ठ २२ के वर्षा सम्बन्धी चित्र तथा पृष्ठ ८५ के धान सम्बन्धी चित्र की तुलना करने से यह विदित हो जायगा कि भारत में धान की खेती वर्षा पर कितना निर्भर रहती है। अतर्देश में प्रवेश करने पर ज्यों-ज्यों वर्षा कम होती जाती है त्यों-त्यों धान की फसल भी कम होती जाती है। यह तथ्य ऊपर के चित्र न० १८ में स्पष्ट है। बंगाल और आसाम के बाहर बोये जाने वाले धान के अधिकाश में सिंचाई आवश्यक है। ऐसा विशेषकर वहाँ है जहाँ वर्षा अनियमित या थोड़ी है। धान की फसल अधिक देर तक सूखी ऋतु नहीं झेल सकती है। उत्तर प्रदेश और पंजाब के अतिरिक्त सभी जगहों पर धान की दो या तीन फसले बोई जाती हैं : शरद्, शीत और बसन्त मे।

साधारणतः धान को भारत में जाड़े की फसल मानते हैं क्योंकि देश भर में इसकी कटाई मुख्य रूप से नवम्बर से जनवरी तक होती है। अधिकाश किस्मों की बोआई अप्रैल से अगस्त तक की जाती है। परन्तु धान उपजाने के मुख्य क्षेत्रों (बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा और मद्रास मे) शरद् और ग्रीष्म में भी धान की फसल होती है। पहली फसल मई से दिसम्बर तक बोई जाती है और सितम्बर से अप्रैल तक काटी जाती है। दूसरी फसल अक्टूबर और मार्च के बीच मे बोई जाती है और जनवरी और जून के बीच काटी जाती है।

जब धान ऊँचे मैदानों या सूखे प्रदेशों में बोया जाता है जो वर्षा-ऋतु में पानी से डूबे नहीं रहते, तब उसमें पौध नहीं लगाते वरन् खेत पर ही छिटका कर धाम बो दिया जाता है। परन्तु जब यह निचले प्रदेशों में बोया जाता है, जहाँ वर्षा ऋतु में पानी भरा रहता है, तब यह पहले छोटी-छोटी क्यारियों में बोया जाता है। एक फुट तक के पौधे हो जाने पर उन्हें उखाड़ कर खेतों में रोपा जाता है।

ऐसे निचले प्रदेशों में जहाँ पानी इतना गहरा रहता है कि पौध नहीं लग सकती वहाँ वर्षा ऋतु आरम्भ होने के पहले ही फरवरी या मार्च में धान छिटका कर बो दिया जाता है। यह फसल तभी काटी जाती है, जब वर्षा ऋतु के बाद पानी सूख जाता है।
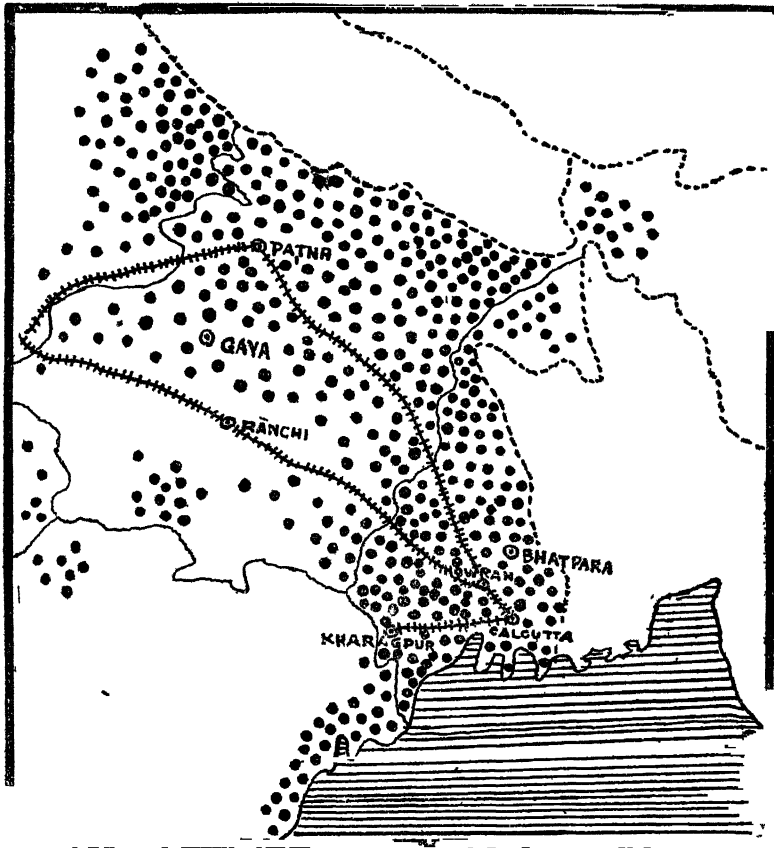
चित्र १९—धान के प्रधान क्षेत्र

(१) औस या शरद की धान की फसल अप्रैल या मई में अपेक्षाकृत ऊँचाई पर स्थित भूमि पर बोई जाती है और अगस्त या सितम्बर में काटी जाती है। औस के पौधे ऐसी जमीन पर नहीं उग सकते जहाँ बरसात में दो फीट से ज्यादा पानी इकट्ठा हो जाता है। जहाँ यह फसल उगाई जाती है वहाँ की मिट्टी साधारणतः कम चिकनी और मुलायम होती है अर्थात् उसमें चीका का अंश कम होता है।

(२) अमन या जाड़े की फसल मई से जून तक बोई और नवम्बर से जनवरी

तक काटी जाती है। यह पूरी की पूरी पानी में डूब जाती है और इसे पानी के तेज जड़ उखाड़ बहाव का सामना करना पड़ता है। पानी की सतह के उठने के साथ साथ इसकी ऊँचाई भी बढ़ती है।

'अमन' बंगाल की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। कुल धान-क्षेत्र तथा कुल धान-उत्पादन के ⅘ से अधिक इसी फसल मे होता है। निम्नलिखित सारिणी में प्रत्येक फसल का भाग दिया हुआ है :—

औसत—१९५२-५३

फसल	एकड़%	उत्पादन%	प्रति एकड़
अमन	८६	८७	११ मन
औस	१३	१०	६ ,,
बोड़ो	१	३	१०½ ,,

(३) बोड़ो या बसंत ऋतु की धान की फसल गर्तों और नम स्थलों में अक्टूबर में बोई जाती है जब बरसाती पानी उतरने लगता है। यह मार्च में काटी जाती है। यह शुष्क मौसम में उगती है और अपनी उपज के अंतिम काल में इसे सूखे का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उस समय गर्तों में पानी सूखता होता है। इस धान की प्रति एकड़ पैदावार सबसे अधिक होती है।

बङ्गाल तथा अन्य क्षेत्र में जहाँ सिंचाई का चलन नहीं है धान की पैदावार को बरसात की अनिश्चितताओं के कारण कुछ क्षति पहुँचती है। बङ्गाल की धान की फसल को कभी-कभी उत्तर प्रदेश में देर से या अधिक बरसात हो जाने से गंगा में असामयिक बाढ़ आ जाने के कारण भी हानि पहुँचती है। इन बाढ़ों के कारण गंगा के किनारों के गर्तों में पानी भर जाता है और वह पानी बोआई के मौसम तक सूख नहीं पाता। इस-लिए वहाँ जाड़े के धान की बोआई नहीं हो सकती।

बङ्गाल में धान की खेती लगभग बिल्कुल ही बिना खाद डाले होती है। हाल में ही हरी खाद की बात का समर्थन किया जाने लगा है। सौभाग्यवश बङ्गाल का बहुत बड़ा भाग बाढ़ में आ जाता है जिससे प्रति वर्ष अच्छी मिट्टी जमा हो जाती है और जमीन का उपजाऊपन फिर से लौट आता है। किसान को नुकसान से बचाने के लिए कृषि विभाग ने खोज द्वारा जल्दी पक जाने वाला तथा अधिक उपज
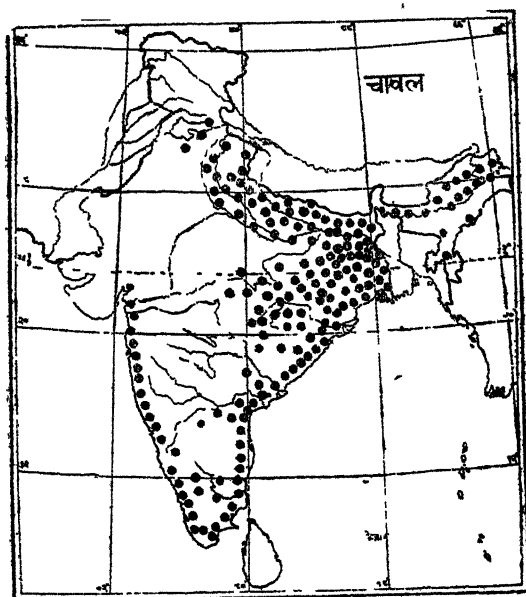
चित्र २०—चावल के क्षेत्र

देने वाले धान की उन्नति की है। इन धानों में बङ्गाल के 'धैरल' का नाम उल्लेखनीय है जिसकी प्रति एकड़ उपज ३२ मन (२,५६० पौंड) तक होती है।

१९५२-५३ में बङ्गाल में कुल ४४ लाख टन चावल हुआ था जिसमें ३६ लाख टन अमन की फसल थी और लगभग ५ लाख टन ओस की फसल। ऐसा अनुमान है कि प्रति वर्ष लगभग ३८ लाख टन चावल की आवश्यकता बङ्गाल को होती है। इस प्रकार अब बङ्गाल चावल के लिए प्रायः स्वतन्त्र है। चित्र (नं० २०) से यह विदित होता है कि भारत में दो क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ लगभग बिल्कुल ही धान नहीं पैदा होता। ये क्षेत्र हैं : (१) कपास वाली काली मिट्टी के क्षेत्र तथा (२) थर और राजस्थान के मरुस्थल तथा अर्द्धमरुस्थल। इन क्षेत्रों मे धान उपजाने के लिए काफी जल नहीं है।

पंजाब में नहरों द्वारा सींचे जाने वाले क्षेत्रों में केवल गर्मियों में धान की उपज होती है।

हिमालय के सारे तराई क्षेत्र में धान की फसल महत्वपूर्ण है। नदियों की घाटियों में भी धान की फसल होती है। काश्मीर भी एक महत्वपूर्ण उत्पादक है। इन भागों में धान की दो फसलें होती हैं क्योंकि वे ऐसी किस्मे होती हैं जो जल्दी पक जाती हैं।

उत्तर प्रदेश में पूर्वी जिले तथा उप-पर्वतीय तराई के जिले धान के प्रमुख उत्पादक हैं। नहर-सिंचित क्षेत्रों मे भी कुछ धान की खेती होती है। इस प्रदेश में धान की केवल एक फसल होती है। जब भी बरसात कम या अनियमित रूप से होती है पूर्वी जिलों की फसल अनिश्चित हो जाती है। इन जिलों में धान की सिंचाई के लिए पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं। धान के लिए पानी की बहुत आवश्यकता होती है। उतना पानी उत्तर प्रदेश के इन जिलों मे आमतौर पर पाए जाने वाले कुओं से आसानी से नहीं निकाला जा सकता। यही कारण है कि यहाँ पर केवल वर्षा ऋतु में ही और उस समय भी केवल नीची भूमि मे ही जहाँ पानी भर जाता है, धान बोया जाता है।

उपज में वृद्धि

धान की फसल में काफी भूमि लगी होने पर भी भारत में धान की प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है। भारत के ८२ अनुसंसान केन्द्रों* ने चावल के बारे में १३ नयी किस्मों का पता लगाया है। इनमें से कुछ ऐसे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं जहाँ पानी इकट्ठा हो जाता है। नयी किस्मो की उपज प्रति एकड़ २३०० से लेकर ४,००० पौंड तक है। भारत में प्रति एकड़ औसत पैदावार ११४० पौड है जबकि जापान में ४२२६ पौंड है। यहाँ हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जापान में संसार में सबसे अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस कारण वहाँ काफी मछली धान के खेतों में खाद के रूप में उपयोग की जाती हैं। मछली की खाद अद्वितीय होती है। भारत में धान की अधिकतम पैदावार बङ्गाल में होती है। इस कम उपज का कारण भारत में खाद डालने के प्रचलन का अभाव है। आगे दी हुई सारिणी से यह विदित होता है कि भारत अपनी आवश्यकता भर के लिए धान नहीं उपजाता। वहाँ लगभग २४ लाख टन धान की कमी पड़ती है। जनसख्या की वृद्धि के साथ यदि पैदावार न बढ़ी तो यह कमी बढ़ती ही जायगी। हम यह देख चुके हैं कि वर्षा के कारण भारत में धान की खेती का

*आन्ध्र में १३, आसाम में ३, बिहार में ६, बम्बई १५, काश्मी ३, केरल ८, मध्य प्रदेश २, मद्रास ८, मैसूर ७, उड़ीसा ३, पजाब २, प० बङ्गाल ५, उत्तर प्रदेश में ४ अनुसंधान केन्द्र हैं।

क्षेत्र सीमित है। इसलिए पैदावार बढ़ाने का एक ही उपाय है। वह है प्रति एकड़ उपज को बढ़ाना। वर्तमान उपज को खाद के प्रयोग द्वारा ही बढ़ाया जा सकता है। भारत सरकार ने अपनी द्वितीय पचवर्षीय योजना द्वारा १९६०-६१ तक धान की उपज मे ३० से ४० लाख टन की वृद्धि करने का निश्चय किया है। उपज में वृद्धि करने के लिए आजकल सरकार की ओर से जापान मे धान की खेती की पद्धति का प्रसार किया जा रहा है। अपनी देशी पद्धति की अपेक्षा इस नई पद्धति में धान की प्रति एकड़ उपज मे बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

जापानी पद्धति के अनुसार चावल की खेती मे (१) उत्तम प्रकार के बीजों का अधिक उपयोग किया जाता है। (२) बीज को पहले नर्सरी मे उत्पन्न किया जाता है। (३) पौधे के बड़े हो जाने पर उन्हें नई क्यारियों मे लगभग १०" की दूरी पर रोपा जाता है जिससे पौधे के बीच के घास-फूस को सरलता से हटाया जा सके और खाद देने की सुविधा रहे, (४) हरी खाद, रासायनिक खाद और कम्पोस्ट की खाद अधिक दी जाती है। जापानी पद्धति का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। १९५२ ५३ मे ४ लाख एकड़ भूमि में इस पद्धति का उपयोग किया गया। १९५६-५७ में यह पद्धति २३ ७४ लाख एकड़ मे काम मे ली गई। इस पद्धति द्वारा धान का प्रति एकड़ उत्पादन १९.९ मन होता है जबकि देशी पद्धति में केवल १३ ३ मन धान ही पैदा होता है।

अभी हाल ही मे भारतीय कृषि अनुसधान सस्था ने देश के विभिन्न भागो में धान के खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु कई परीक्षण किये। एक फसल वाली भूमि मे फी एकड़ १½ मन अमोनियम सल्फेट डालने से धान की उपज में ४ मन २४ सेर और दो फसल वाली भूमि मे २½ मन अमोनियम सल्फेट डालने से लगभग ६½ मन की वृद्धि हुई। फी एकड १½ अमोनियम सल्फेट और १½ मन सुपर फास्फेट मिलाकर डालने से फी एकड़ उपज मे ६½ मन की वृद्धि हुई है।

भारत मे गत वर्षों मे चावल का उत्पादन एव क्षेत्रफल इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	लाख एकड़	लाख टन
१९४७-४८	६४७	२१७
१९५३-५४	७७३	२७८
१९५४-५५	७५९	२४५
१९५५-५६	७६९	२६८
१९५६-५७	७८२	२८१
१९५७-५८	७९०	२४८

नीचे दी हुई तालिका में १९५६ की प्रति एकड़ उपज दिखलाई गई है :—

जापान	४,२६४ पौंड
कोरिया	२,५५७ ,,
चीन	२२२१ ,,
इण्डोनेशिया	२०७१ ,,
मलय	१,३५७ ,,
इटली	२६४० ,,
पाकिस्तान	११३५ ,,
बर्मा	१४४५ ,,
थाईलैण्ड	१२७५ ,,
भारत	११४० ,,
ब्राजील	१४१७ ,,
सं० राज्य अमेरिका	१४८५ ,,

धान का व्यापार

ससार में अन्न का व्यापार अब मुक्त नहीं रहा। धान का व्यापार अब सरकारी लेखा-जोखा के अनुसार होता है। भारत सरकार जिस देश से सौदा पटा लेती है उसी से धान मँगाती है। सन् १९४८-४९ मे ९ लाख टन धान का आयात हुआ, जिसमे लगभग ८ लाख टन बर्मा, स्याम और ब्राजील से आया है। १९५६-५७ में कुल मिलाकर ३६ लाख टन अनाज का आयात हुआ जिसमे से ७ लाख टन धान, २८ लाख टन गेहूँ था।

१९५४ में ६·३ लाख टन, १९५५ में २·६ लाख टन; १९५६ में ३·२ लाख टन और १९५७ में ७·४ लाख टन चावल का आयात किया गया। चावल के उत्पादन में कमी होने का मुख्य कारण उत्तरी-पूर्वी भारत में वर्षा का अभाव होना था। १९५७ में बिहार में चावल का उत्पादन १५ लाख टन, उड़ीसा में ४ लाख टन और बङ्गाल में ४ लाख टन कम रहा।

भारत के धान उपजाने वाले भागों की विशाल जनसंख्या के कारण इस देश में धान की उपज का कोई भी अंश निर्यात के लिए नहीं बचता। इस देश में धान के व्यापार का अधिकाश अन्तरदेशीय है। कम बसे हुए मध्य प्रदेश से ही सबसे अधिक मात्रा में धान देश के दूसरे प्रदेशों में जाता है। सबसे अधिक धान मद्रास, केरल,

आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, बम्बई और बङ्गाल में जाता है जहाँ चावल खाने वालों की सख्या बहुत कम है और जहाँ स्थानीय उपज काफी नहीं है।

धान कूटने की मशीनों द्वारा पहले धान की भूसी निकाल दी जाती है, तब चावल बाजार मे आता है। कुल उत्पादन का लगभग ५६.५% गाँवों मे ही खप जाता है और ४०.५% मडियों में व्यापार के लिए लाया जाता है। धान उपजाने के क्षेत्रों मे बहुत-सी धान कूटने की मशीनें हैं। इनकी सख्या बङ्गाल मे सबसे अधिक है। इन कारखानों मे कहीं-कहीं भूसी को ही जलाकर धान की मशीन को चलाते हैं तथा कुछ में मिट्टी के तेल का इञ्जन चलता है। धान का पौधा सूखने पर कड़ा हो जाता है; क्योंकि जहाँ धान उगता है वहाँ की मौसमी दशाएँ गर्म और नम रहती हैं। इसलिए इसे चारा के लिए नही इस्तेमाल किया जा सकता। यह जलाने के लिए, छतें छाने के लिए या चटाइयाँ बनाने के लिए प्रयोग मे आता है। देश का औद्योगिक विकास होने पर धान के पुआल का उपयोग विभिन्न कामों के लिए किया जा सकता है; जैसे दफ्ती कागज बनाना, प्लास्टिक बनाना आदि। इन उपयोगों से किसान को काफी पैसा मिल सकता है। गरीब किसान की निर्धनता दूर करने के लिए भारत में विशाल परिमाण में औद्योगिक उन्नति के पक्ष में यह एक मुख्य तर्क है।

(२) गेहूँ (Wheat)

गेहूँ भारत का सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक अन्न है। इसका महत्व उन क्षेत्रों में है जिनमे धान का महत्व नहीं है क्योंकि दोनों के उपज के लिए वाञ्छित जलवायु में अन्तर है। गेहूँ के लिए उपजाऊ दुमट या कोई भी अन्य उपजाऊ मिट्टी चाहिये परन्तु वह बहुत नम न हो। यह शीतल और नम जलवायु मे सबसे अच्छा बढ़ता है तथा गर्म और शुष्क जलवायु मे सबसे अच्छा पकता है। गेहूँ के लिए २० या ३० इञ्च वार्षिक वर्षा के प्रदेश, जहाँ जाड़े के आरम्भ में ५०°-६०° फ० तापमान और जाड़े के अन्त में ७०°-८०° फ० तापमान हो और जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध हो और उपजाऊ मिट्टी हो सर्वश्रेष्ठ हैं। भारत में गेहूँ के खेत सबसे अधिक सतलज-गगा के मैदान के शुष्कतर तथा उच्चतर भागों में पाये जाते हैं। सन् १९५६-५७ मे भारत के कुल गेहूँ-क्षेत्र, अर्थात् ३ करोड़ २८ लाख एकड़ भूमि में से २ करोड़ एकड़ अर्थात् कुल का लगभग ६०% सिंधु गगा घाटी मे बनारस के पश्चिम में था और केवल दस लाख एकड़ गंगा-घाटी मे बनारस के पूर्व में अधिकांशतः बिहार मे था।

अत्यधिक नमी से अधिक हानिकर गेहूँ के लिए कोई भी बात नही है। गंगा की घाटी के पूर्वी भाग में गेहूँ के लिए यही सबसे बड़ी बाधा है। सिंधु-गंगा के मैदान के अतिरिक्त मध्य प्रदेश, मध्य भारत, राजस्थान और बम्बई आदि भी थोड़ा-बहुत गेहूँ पैदा करते हैं। ये सभी भाग प्रायद्वीप के अन्तर्देशीय भागों मे स्थित हैं और तटवर्ती नम प्रदेशों से दूर हैं।

इस प्रकार मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत में गेहूँ की खेती दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती जाती है, अर्थात् दक्षिण और पूर्व के नम वातावरण और नम मिट्टियों से गेहूँ दूर भागता है। लाल तथा पीली मिट्टियों में गेहूँ नहीं के बराबर होता है। थर का मरुस्थल एक और क्षेत्र है जहाँ गेहूँ नहीं होता है। १९५६-५७ मे भारत मे गेहूँ का कुल क्षेत्रफल २८९ लाख एकड़ और कुल उपज ९१ लाख टन थी।

नीचे की तालिका में गेहूँ के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है।

(१९५७-५८)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० एकड़)	प्रति एकड़ उत्पादन
आंध्र	५४	४	१६६ पौंड
बिहार	१,१८८	२४३	४५८ ”
बम्बई	३,३०५	५०८	३४४ ”
मध्यप्रदेश	६,६१८	१,०८७	३६८ ”
मैसूर	७४४	७२	२१७ ”
उड़ीसा	१३	३	५१७ ”
पंजाब	५,००९	२,०१०	८९९ ”
राजस्थान	२,६४९	८२१	६९४ ”
उत्तर प्रदेश	९,२७७	२,७१४	६५५ ”
प० बंगाल	८५	१९	५०१ ”
दिल्ली	७२	१७	
हिमाचल प्रदेश	३३०	७६	५१६ ”
योग भारत	२९,६५७	७,६५४	५९८ पौंड

गत वर्षों में गेहूँ का उत्पादन इस प्रकार रहा है:—

वर्ष	क्षेत्रफल (लाख एकड़)	उत्पादन (लाख टन)
१९४७-४८	२०८	५६
१९५२-५३	२४२	७४
१९५३-५४	२६३	७९
१९५४-५५	२७५	८८
१९५५-५६	३०३	८९
१९५६-५७	३२८	९१
१९५७-५८	२९७	७७

पंजाब में गेहूँ

विभाजन के पूर्व पंजाब अपनी उपजाऊ कछारी मिट्टी, थोड़ी वर्षा, शीतल ताप और सिंचाई के समुचित प्रबन्ध के कारण भारत में गेहूँ उपजाने वाला सब से बड़ा क्षेत्र गिना जाता था। दस वर्षों (१९३०-३१ से १९३९-४० तक) के औसत के अनुसार गेहूँ का १ करोड़ एकड़ क्षेत्र पंजाब में पड़ता था। यह भारत के कुल गेहूँ के क्षेत्र का २९% था। पजाब में गेहूँ का अधिकाश क्षेत्र उत्तरी पंजाब में था। इस प्रकार पाँच जिले (अर्थात् लायलपुर, मुलतान, अटक, फीरोजपुर और माँटगोमरी में) राज्य का एक-तिहाई गेहूँ का क्षेत्र था। उत्तरी पंजाब में ही सिंचाई की सुविधाएँ बहुतायत से पाई जाती हैं। इसी कारण वहाँ पर गेहूँ की पैदावार भी अधिक है। क्षेत्रफल की दृष्टि से ही नहीं उपज की मात्रा की दृष्टि से भी पंजाब का स्थान प्रथम था। पजाब में ३० लाख टन (अर्थात् भारत की कुल उपज का ३०%) गेहूँ पैदा होता था। यद्यपि कुल पैदावार की दृष्टि से पजाब का नाम सर्वप्रथम रहा है तथापि इसकी प्रति एकड़ पैदावार अपेक्षाकृत कम थी। यदि प्रति एकड़ औसत पैदावार के दृष्टिकोण से तुलना की जाय तो पजाब का स्थान छठवाँ था। पंजाब की सबसे अधिक औसत पैदावार भी अन्य राज्यों की सबसे अधिक पैदावार की तुलना में कम थी। पंजाब में अब तक सबसे अधिक पैदावार जलधर में १,२५० पौं प्रति एकड़ हुई है, सिन्ध के नवाबशाह के १,३७४ पौंड प्रति एकड़ और उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर के १,३०० पौंड से इसकी तुलना की जा सकती है। विभाजन के बाद पजाब का जो भाग भारत में है उसका स्थान केवल उत्तर प्रदेश के पीछे है क्योंकि उसका गेहूँ का क्षेत्रफल अधिकतर पाकिस्तान में हो गया है।

उत्तर प्रदेश में गेहूँ

गेहूँ में उत्तर प्रदेश का आजकल भारत में पहला स्थान है। यहाँ १०० लाख एकड़ भूमि में गेहूँ की खेती होती है। यह क्षेत्रफल भारत के सम्पूर्ण गेहूँ-क्षेत्र का ३४ प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश की कुल उपज ३० लाख टन है जो कि भारत की कुल उपज का ३६ प्रतिशत है। वास्तव मे उत्तर प्रदेश और पजाब में सब मिलाकर भारत के कुल गेहूँ क्षेत्र का आधा और कुल गेहूँ की उपज का दो-तिहाई भाग है। उत्तर प्रदेश में गेहूँ का अधिकाश क्षेत्र गगा और घाघरा नदियों के दोआब मे पड़ता है। गगा और यमुना के दोआब का स्थान इसके उपरान्त है। उत्तर प्रदेश के पठारी और पहाड़ी भागों को छोड़कर यहाँ के पूरे मैदान का महत्व गेहूँ के लिए है। घाघरा के पूर्ववर्ती जिले भी गेहूँ की खेती की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि वहाँ की मिट्टी उपजाऊ है और कुओं द्वारा सिंचाई की वहाँ सुविधा है। वास्तव मे उत्तर प्रदेश में गेहूँ का सबसे बड़ा क्षेत्र गोरखपुर जिले मे है। इसका मूल कारण यह है कि उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों की अपेक्षा गोरखपुर मे सबसे अधिक खेती का क्षेत्र है। यहाँ गेहूँ की खेती वाला भाग कुल क्षेत्र का केवल ⅙ है। इसकी तुलना मेरठ और बुलन्द-शहर से की जा सकती है, जहाँ कुल क्षेत्र के क्रमशः ⅓ तथा ¼ भाग में गेहूँ की खेती होती है। अन्य उत्पादक क्षेत्र देहरादून, इटावा, सहारनपुर, मेरठ, मुरादाबाद, बदायूँ, शहाजहाँपुर और नैनीताल हैं।

उत्तर प्रदेश में प्रति एकड़ औसत उपज अन्य प्रदेशों की तुलना में सबसे अधिक है लगभग ७८६ पौंड। केवल गंगा-यमुना के दोआब तथा घाघरा के पूरबी जिलों में ही अच्छी पैदावार होती है, क्योंकि वहाँ सिंचाई की व्यवस्था अच्छी है। बिना सिंचाई वाले क्षेत्रों के कारण ही उत्तर प्रदेश की औसत उपज कम हो जाती है।

अन्य क्षेत्र

भारत में गेहूँ के भौगोलिक वितरण के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सतलज-गगा मैदान के कछार में तथा प्रायद्वीप की काली मिट्टी में होता है यदि वहाँ वर्षा ४० इंच से कम हो।

गेहूँ का सापेक्षिक महत्व सब प्रदेशों के लिए एक-सा नहीं है। कहीं इसका महत्व अधिक है, तो कहीं कम। बिहार में इसका क्षेत्रफल कुल का केवल ५% है। मध्य भारत में ४% है। दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रदेशों अर्थात् पंजाब और उत्तर

प्रदेश में, यह प्रतिशत क्रमशः २६ और २२ है। यह जान लेना चाहिए कि गेहूँ एक 'मुद्रादायक फसल' (Cash crop) है। इसलिए इसे गन्ना तथा कपास जैसी मुद्रादायनी फसलों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। सर्वोत्तम भूमि पहले ऐसी ही फसलों के लिए रक्खी जाती है। किस वर्ष कौन फसल अधिक बोई जाय इसका निर्णय वर्ष की जलवर्षा पर, तथा उस फसल के सस्ते व मँहगे होने पर निर्भर है। जलवर्षा समय पर और समुचित न होने से गेहूँ के खेत मे प्रायः उस वर्ष मोटे अनाज ही बोये जाते हैं।

भारत में गेहूँ की विशेषताएँ

भारत की गेहूँ की फसल की यह एक विशेषता है कि संसार के सबसे अधिक गेहूँ उपजाने वाले क्षेत्रों के विपरीत भारत में गेहूँ एक जाड़े की फसल है। उसी ऋतु में गेहूँ उपजाने योग्य यहाँ तापमान रहता है। भारत के विभिन्न भागों मे गेहूँ
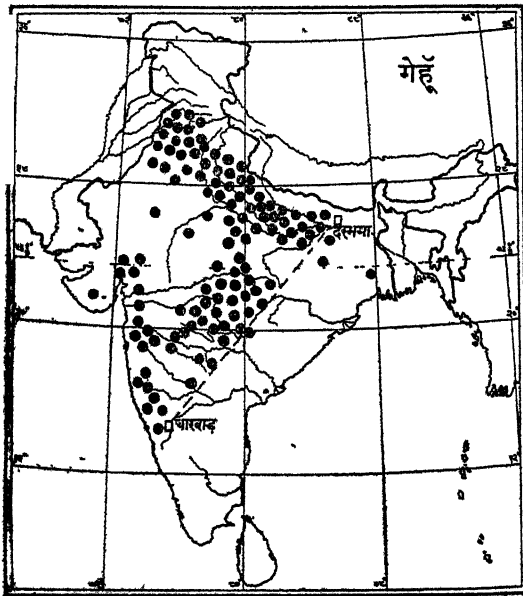
चित्र २१—गेहूँ के क्षेत्र

अक्टूबर से दिसम्बर तक बोया और मार्च से जून तक काटा जाता है। चूँकि उन क्षेत्रों में जाड़ों के मौसम में पानी नहीं बरसता इसलिए भारत में गेहूँ की खेती के सम्बन्ध

में सिंचाई का बड़ा महत्व है। किसी-किसी वर्ष जब मानसून की वर्षा ठीक नहीं होती है तब बोआई करने के लिए भी सिंचाई की शरण लेनी पड़ती है। यूरोप और अमेरिका में गेहूँ गर्मियों में बोया जाता है। उस समय वहाँ पानी बरसता रहता है। इसलिए उन देशों में सिंचाई का कोई महत्व नहीं है। केवल आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी भागों में ही जो लगभग रेगिस्तान है इस फसल को सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। मानसूनी वर्षा के लगभग १५ दिन बाद अक्टूबर में उत्तरी भारत मे जब राते इतनी ठंडी होने लगती हैं कि खेतों मे ओस पड़ने लगती है तब पहले से तैयार कर लिए गये खेतों मे गेहूँ की बोआई होती है। गेहूँ पुराने कछार की दुमट मिट्टी मे ही बोया जाता है। गेहूँ के लिए वाँछित खेत मे सामान्यतः गर्मियों में कोई फसल नही बोई जाती है। उस काल में उनमें कुछ खाद भी डाली जाती है। वर्षा होने पर खेत की जुताई कई बार की जाती है। अधिकाश गर्मी की फसलों के विपरीत जो कि छितरा कर बो दी जाती है गेहूँ हल की सहायता से बड़ी सावधानी से बोया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय किसान की दृष्टि मे गेहूँ का व्यावसायिक महत्व कितना अधिक है। जाड़े की बरसात और सिंचाई की सुविधाएँ गेहूँ की फसल को इस देश में सहायता पहुँचाती हैं; क्योंकि उनके द्वारा बढ़ते हुए पौधे को नमी मिलती है जो कि दिसम्बर की सर्दी से मिलकर पौधे को छितरने में सहायक होती है। एक-एक बीज मे कई-कई अकुर निकल आते हैं। फरवरी के अन्त तक (जब दाना पड़ जाता है) तापमान बढ़ने लगता है। इससे फसल को पकने में सहायता मिलती है।

भारतीय गेहूँ की खेती मे कुछ जलवायु-सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं। ये त्रुटियाँ अधिकतर कटाई के समय अनुभव होती हैं। भारत में जाड़े के बाद लगभग अचानक ही गर्मी आ जाती है। रूस या कनाडा या अन्य गेहूँ-उत्पादक देशों की भाँति यहाँ तापमान की वृद्धि क्रमिक नहीं होती। इसलिए फसल क्रमिक रूप से नहीं वरन् यकायक पक जाती है। इस अचानक पकने के कारण भारत का गेहूँ निम्न कोटि का होता है। तापमान के बढ़ने के साथ-साथ शुष्क हवाएँ भी आती हैं जिनके कारण दाना जल्दी सूख जाता है। इस प्रकार यह अन्य देशो की भाँति पूर्ण विकसित और सुडौल नहीं बल्कि पतला और सिकुड़ा हुआ हो जाता है। हवा भी इस समय अधिक वेग से चलती है। उससे भी फसल को बहुधा क्षति पहुँचती है क्योंकि डठल कमजोर होने से पौधे भूमि पर गिर जाते हैं। उत्तरी भारत में मार्च और अप्रैल के महीनों में

स्थानीय तूफान भी वर्षा और तुषार के साथ आते रहते हैं। उनके कारण फसल को समेटने मे भी बहुत कठिनाई पड़ती है।

अमेरिका में केवल दाना ही खलिहान से उठाते हैं मगर भारत में पूरे पौधे को ही उठाते हैं क्योंकि भारत में भूसा भी बहुत महत्वपूर्ण है। साधारण दशा मे गाँवों में अन्न तो खरीदा जा सकता है परन्तु पशुओं के लिए भूसा खरीदना कठिन होता है।

भूसा और अन्न दोनों को ही एक साथ खलिहान से हटाने के कारण भारतीय गेहूँ में काफी कूड़ा-करकट मिल जाता है जिसके कारण ससार मे अभी तक भारतीय गेहूँ तिरस्कृत समझा जाता है।

चित्र नं० २२ मे जलवायु की वे दशाएँ दिखाई गई हैं जिनके अन्तर्गत पञ्जाब और कनाडा में गेहूँ की पैदावार होती है। दोनो वक्र रेखाओं को ध्यानपूर्वक देखने
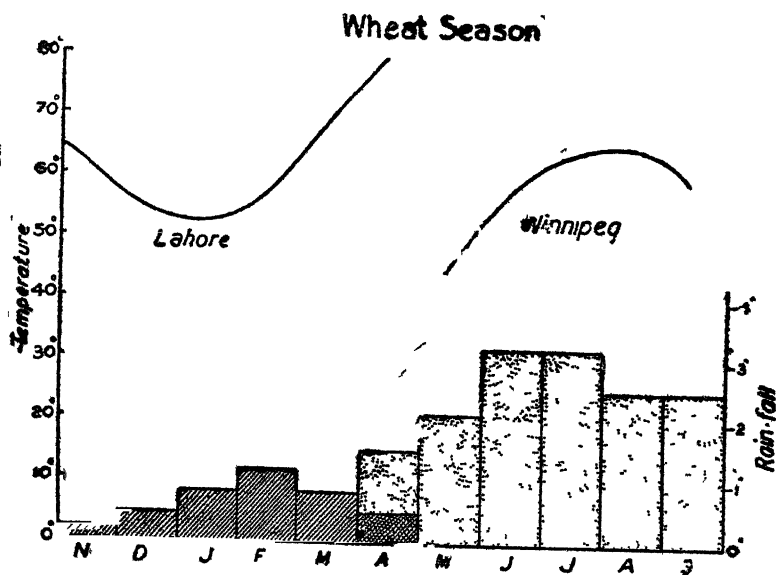
चित्र २२—पञ्जाब और कनाडा में गेहूँ उत्पादन में जलवायु की दशाएँ

से पता चलता है कि एक देश में अचानक तथा दूसरे देश में क्रमशः तापमान बढ़ता

है। भारत में यकायक बढ़ती हुई गर्मी में फसल पकती है और कनाडा में धीरे-धीरे गिरते हुए तापमान में पकती है। फसल के उन्नति-काल में जितना पानी बरसता है उसको देखने से भारत में सिंचाई की आवश्यकता स्पष्ट है। कनाडा में फसल के उन्नति-काल में समय-समय पर पर्याप्त जलवर्षा होती है जिससे वहाँ सिंचाई अनावश्यक है।

भारत की जलवायु का निरीक्षण करने पर यह विदित है कि यहाँ गेहूँ के उगने के लिये दशाएँ 'अनुकूल' हैं पर उसके परिपक्वण के लिए दशाएँ 'प्रतिकूल' है।

भारत का किसान निर्धन है। वह खाद का समुचित प्रयोग नही कर सकता है। इसीलिए भारत मे प्रति एकड़ गेहूँ की पैदावार बहुत कम है। उदाहरण के लिए भारत में गेहूँ का प्रति एकड़ उत्पादन ५८६ पौंड और कनाडा मे १०५० पौंड, आस्ट्रेलिया में ६७७ पौंड, फ्रास मे १६५४ पौंड और रूस में ८३० पौंड है। यद्यपि यहाँ की खेती घनी खेती है जिसमें प्रति एकड उपज अधिक हुआ करती है तथापि अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया जैसे नये क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ विस्तृत खेती होती है और इसलिए प्रति एकड़ उपज बहुत अधिक नहीं होती भारत मे गेहूँ की प्रति एकड़ उपज कम है। पश्चिमी यूरोप मे घनी खेती वाले प्रदेशों की प्रति एकड़ उपज लगभग भारत की तिगुनी होती है। भारत में सबसे अधिक प्रति एकड़ उपज उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में होती है तथा सबसे कम छोटा नागपुर में होती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ससार के बड़े-बड़े गेहूँ उपजाने वाले देशो मे प्रति एकड़ उपज कम है। रूस, सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, भारत और अर्जेन्टीना, सभी-जगह प्रति एकड़ उपज कम होती है। इसका कारण यह है कि उक्त देशो मे गेहूँ के योग्य उपजाऊ भूमि इतनी अधिक है कि उस पर बिना अधिक श्रम किए और पूँजी लगाए ही पूर्ण उपज बहुत है। इसीलिए अभी तक अमेरिका तथा अर्जेन्टीना आदि में घनी खेती प्रचलित नहीं है। इसीलिए प्रति एकड़ उपज भी अधिक नहीं है। भारत में उपज कम होने का प्रमुख करण यन्त्रीकरण का अभाव, उत्तम बीज की कमी, आर्थिक कठिनाइयाँ और कृषकों का अशिक्षित होना तथा गेहूँ में रतुआ (Rust) और स्मट (Smut) नामक रोगों का लग जाना है।

उपज में वृद्धि

जनसख्या की वृद्धि तथा जीवन-स्तर ऊँचा हो जाने के कारण भारत में गेहूँ

की कमी है। इसलिए देश मे गेहूँ की मात्रा की वृद्धि की सम्भावनाओ की ओर हमारा ध्यान गया है। यह स्पष्ट है कि भौगोलिक कारणो से गेहूँ की उपज भारत के कुछ ही क्षेत्रों में हो सकती है। परन्तु गेहूँ भारत की व्यावसायिक फसल है और अधिकाशतः मुद्राप्राप्ति के लिए ही उगाई जाती है। इसलिए इसे गन्ना तथा कपास जैसी दूसरी व्यावसायिक फसलों का सामना करना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों मे कपास और गन्ना के मूल्य बढ़ जाने से गेहूँ की खेतो कम हा गई है।

इसलिए भारत के गेहूँ की मात्रा उसकी जनसख्या की अभिवृद्धि के साथ-साथ बढ़ी नहीं है। सामान्य परिस्थितियों मे अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार यह कमी गेहूँ क मूल्य में वृद्धि होने से कालान्तर में हो सकती है। परन्तु भारत मे इस समय गेहूँ की ही कमी नही वरन् रुई और शकर की भी माँग अधिक है। माँग बढ़ती जा रही है, परन्तु खेती का क्षेत्र सीमित है। ऐसी दशा मे गेहूँ की मात्रा बढ़ाने के निम्नलिखित उपाय हैं :—

(१) सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाई जायँ जिससे अधिकाधिक क्षेत्र गेहूँ की खेती के अन्तर्ग आ सक और,

(२) बीज, खाद आदि मे सुधार करके वैज्ञानिक खेती का प्रचार किया जाय जिससे गेहूँ की प्रत एकड़ उपज बढ़े।

चित्र (सिंचाई से यह विदित होता है कि भारत में गेहूँ की फसल में केवल ⅓ भाग की सिंचाई होती है उसका दो तिहाई भाग यों ही रह जाता है। यदि फसल के इस अश की भी सिंचाई हो तो मात्रा मे अवश्य ही वृद्धि होगी।

गेहूँ क खेत मे, भारतीय कृषि अनुसन्धान सस्था के परीक्षण स्वरूप, १⅓ मन अमोनियम सल्फेट डालने से फी एकड़ उत्पादन २ मन हुआ। फी एकड अमोनिया सल्फेट १⅓ मन और सुपर फास्फेट डालने से उपज फी एकड़ ४ मन ८ सेर उपज बढ़ी।

सरकार ने गेहूँ की खेती मे सुधार करने के हेतु कुछ क्षेत्रों को गहरी खेती प्रारम्भ करने के लिए चुना है। कृषि क्षेत्रों का प्रयोग सिंचाई के विकास, उत्तम बीज एव रासायनिक खादों का प्रयोग कर उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। द्वितीय पचवर्षीय योजना में २० से ३० लाख टन अतिरिक्त गेहूँ उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

गेहूँ का व्यापार

सामान्यतः गेहूँ के मुख्य देशों मे भारत का चौथा स्थान है। रूस, संयुक्त राज्य

अमेरिका, कनाडा और भारत में ससार की सबसे अधिक गेहूँ की उपज होती है। भारत की पूर्ण उपज रूस की उपज की तिहाई और संयुक्त राज्य अमेरिका की उपज की आधी है। पहले भारत की फसल का व्यावसायिक महत्व इसमे था कि जब और देशों की फसलें खेतों मे पकती ही होती थीं, तभी यह योरप की मण्डियों मे पहुँच जाता था। अब इस तथ्य का कोई महत्व नहीं है; क्योंकि विश्व की मण्डियों में गेहूँ के बड़े-बड़े भण्डार सदैव भरे रहते है। इसके अतिरिक्त, भारत के पास बाहर भेजने के लिए अब गेहूँ है ही नहीं। पहले भारतीय गेहूँ की माँग अधिकाशतः इसलिए थी कि उसे दूसरे प्रकार के गेहूँ से मिला कर बड़ी रोटी बनाई जाती थी। अधिकाश निर्यात ग्रेट ब्रिटेन, बेलजियम, जर्मनी और इटली का होते थे।

प्रथम युद्ध-काल तक भारत से गेहूँ का निर्यात किया जाता था किन्तु इसके बाद से ही स्थिति प्रतिकूल होती गई। सन् १९४७ में विभाजन के फलस्वरूप पजाब और सिन्ध के उपजाऊ क्षेत्र पाकिस्तान में चले गए तथा देश के विभिन्न भागों में प्रतिकूल जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं मे कारण गेहूँ की कमी पड़ने लगी। फलतः १९५३ में १६.८ लाख टन, १९५४ में १.९ लाख टन; १९५५ में ४.३ लाख टन, १९५६ में १०.९ लाख टन और १९५७ में २८.४ लाख टन गेहूँ सयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और रूस से आयात किया गया। सन् १९५८ में २३ लाख टन गेहूँ के आयात होने की व्यवस्था है (जिसमें से जुलाई १९५८) तक १४.७ लाख टन गेहूँ प्राप्त हो चुका है।

देश के अन्दर गेहूँ और आटा उन्हीं स्थानों से दूसरे स्थानों को सबसे अधिक जाता है जहाँ उसकी उपज सबसे अधिक होती है अर्थात् पंजाब, उत्तर प्रदेश से माल कलकत्ता को सबसे अधिक जाता है क्योंकि वहाँ पर उत्तर की बहुत बड़ी गेहूँ खाने वाली जनता बसी है। बम्बई और राजस्थान भी गेहूँ की माँग के केन्द्र हैं। ये स्वयं भी गेहूँ उपजाते हैं परन्तु वह पूरा नहीं पड़ता। अब गेहूँ का सारा व्यापार सरकार द्वारा निर्धारित होता है और देश भर में आवश्यकतानुसार गेहूँ का आना-जाना लगा रहता है।

(३) जौ और चना (Barley and Gram)

जौ और चना ये दो भी उत्तर भारत की जाड़े की फसलें हैं और इनकी गणना भी गेहूँ के साथ-साथ उत्तर भारत के प्रमुख व्यावसायिक अन्नों के साथ होती है।

इसके साथ-साथ इनका क्षेत्र भी लगभग गेहूँ के बराबर ही है। इन फसलों की सबसे अधिक उपज सतलज-गगा के मैदान के उस भाग में होती है जहाँ रबी में गेहूँ नहीं उपजता है। इसलिए बलुए शुष्क, काँप वाले तथा सिंचाई के साधनों से रहित क्षेत्रों में इन अनाजों की पैदावार होती है। उत्तरी भारत में जहाँ धान काफी नहीं होता जौ और चना मिला कर गरीब आदमियों का भोजन है। भारत के कुल जौ का दो-तिहाई और कुल चने का आधा भाग उत्तर प्रदेश में पैदा होता है। उत्तर प्रदेश में जौ के मुख्य उत्पादक जिले मुजफ्फरपुर, सारन, चम्पारन, आजमगढ़, बलिया, प्रतापगढ़, गढ़वाल, गोरखपुर, गाजीपुर, प्रयाग है। थोड़ा जौ पजाब और राजस्थान में भी बोया जाता है। १९५७-५८ में ७५ लाख एकड़ भूमि पर २१ लाख टन जौ उत्पन्न किया गया और भारत में जौ का प्रति एकड़ उत्पादन केवल ८०२ प.ड ही है, जबकि डेनमार्क मे २६५६ पौंड, जर्मनी मे १,६३२ पौंड, इग्लैंड मे १,८६६ पौड और जापान मे १,६१६ पौड जौ पैदा होता है। इन अनाजों की, विशेषकर जौ की, प्रति एकड़ उपज गेहूँ की उपज से अधिक होती है। उनके लिए गेहूँ जैसी देखभाल की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु ये अन्न सस्ते होते हैं और इनसे गेहूँ की भाँति लाभ नहीं होता है। इसलिए प्रकृति द्वारा विवश होने पर ही भारतीय किसान इनकी खेती करता है। साधारण दशा में उत्तर भारत में किसान गेहूँ बोना ही पसन्द करता है।
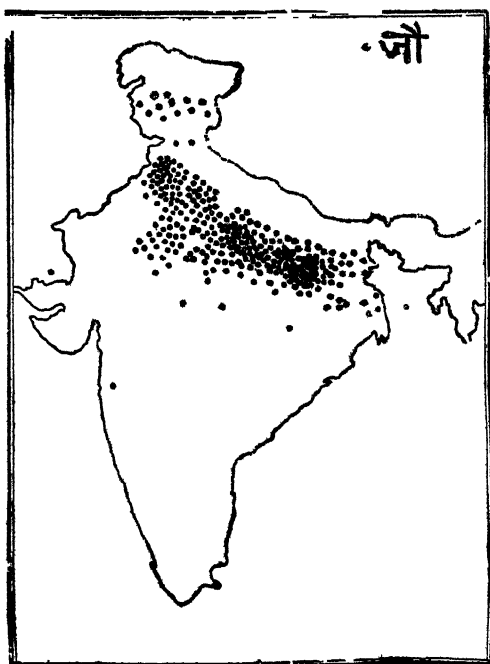
चित्र २३—जौ के क्षेत्र

जौ और चना में व्यापार बहुत कम होता है। बहुत थोड़े से जौ का प्रयोग मदिरा (बियर) बनाने में होता है। थोड़ा-सा चना घोड़े या दूसरे जानवरों को खिलाया जाता है। शेष मनुष्यो के ही भोजन में काम आता है। १९५७-५८ में २२४ लाख एकड़ भूमि पर ४८ लाख टन चना प्राप्त किया गया। दालों में चना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह उत्तर प्रदेश मे बहुतायत से पैदा किया जाता है। चना बिहार, मध्य प्रदेश, पजाब, बम्बई, आन्ध्र, राजस्थान और मैसूर मे भी पैदा किया जाता है।

(४) मोटा अनाज (Millets)

मोटे अनाज मे कई निकृष्ट कोटि के अन्न सम्मिलित हैं जिनमें ज्वार, बाजरा और रागी प्रमुख हैं। इन अन्नों का क्षेत्र धान के अतिरिक्त सभी अन्नों के क्षेत्रों से अधिक है। ये मोटे अनाज उन सभी क्षेत्रों मे बोए जाते हैं जहाँ की भूमि अपेक्षाकृत अनुपजाऊ है। इनका क्षेत्र प्रायद्वीपीय भारत में सबसे अधिक है; बम्बई और मद्रास मे सबसे अधिक क्षेत्र है। बगाल मे इनका क्षेत्र सबसे कम है। ज्वार के लिए अधिक नमी और अधिक काँपदार मिट्टी अच्छी होती है। बाजरा शुष्कतर तथा अधिक बलुई जमीन मे उगता है। जिन क्षेत्रों में धान नही होता है, वहाँ के लिए मोटा अनाज गर्मी की प्रमुख फसल है। इनका महत्व केवल इसी कारण नही है कि ये प्रायद्वीपीय प्रदेश अधिकाश जनता के वर्ष भर के लिए तथा उत्तर भारत में जाड़ों में प्रमुख खाद्य हैं, वरन् इसलिए भी कि इनसे भारत की बहुत बड़ी चारे की आवश्यकता भी पूरी होती है। ज्वार के चारे की इतनी माँग है कि उत्तर प्रदेश और पंजाब के कुछ भागों में तो केवल इसीलिए इसे सिंचाई करके उगाते हैं। डाक्टर वोयलकर ने अपनी कृषि रिपोर्ट में ज्वार के पौधे की चारे के लिए बड़ी प्रशसा की है और बहुत पोषक बतलाया है। मोटे अनाजों का व्यापार बहुत कम होता है।

बम्बई का प्रदेश ज्वार की उपज में प्रमुख है। इस क्षेत्र में ज्वार खरीफ की अपेक्षा रबी में अधिक महत्वपूर्ण है। भारत में बम्बई ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ ज्वार खरीफ और रबी दोनों फसलों में बोई जाती है। जहाँ काली तथा मिश्रित काली मिट्टियों का प्राधान्य है तथा वर्षा सामान्य तथा सुवितरित है, वहाँ ज्वार प्रमुख व्यावसायिक फसल है। जहाँ पानी खूब बरसता है वहाँ ज्वार के स्थान पर धान की पैदावार होती है। बलुई तथा कम गहरी मिट्टी में बाजरा होता है। उत्तर प्रदेश और पंजाब मे ज्वार चारे के लिए भी बोई जाती है। तब इसे 'चरी' कहते हैं

और आवश्यकतानुसार सींचते भी हैं। ज्वार, बाजरा, रागी और अन्य छोटे अनाजों का उत्पादन और क्षेत्रफल इस प्रकार है:—

उपज	(१९५६-५७) में क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	१९५७ ५८ क्षेत्रफल क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
ज्वार	४१,३१४	७,४२७	४१,४११	८,०५६
बाजरा	२७,५४२	२,९२६	२७,४५३	३,५६५
रागा	५,६७४	१,९१४	५,८९७	१,७१६
छोटे अनाज	१२,२०९	२,०१०	११,९७९	१,७२९

(५) मकई (Maize)

दूसरे मोटे अनाजों की भाँति मकई भी भारत का एक निकृष्ट अनाज माना जाता है। इसके लिए उपजाऊ दुमट मिट्टी अच्छी होती है। यह अधिकतर उत्तर प्रदेश तथा पजाब मे होती है। फसल के ½ से अधिक भाग सतलज-गगा के मैदान में होता है। गर्मी की वर्षा आरम्भ होने के साथ ही इसे बोया जाता है और बरसात के अन्त होते ही इसकी कटाई हो जाती है। वर्षा का आरम्भ देर से होने में इसकी खेती को क्षति पहुँचती है। इसके उन्नति-काल में पानी शीघ्र-शीघ्र न बरसने से फसल मारी जाती है। भारत में मकाई तथा कुछ मोटे अनाजों की खेती मिली-जुली खेती है अर्थात् इसमें कई फसलों को मिलाकर एक साथ बोते हैं। इनके साथ कुछ तरकारियाँ (जैसे कोंहड़ा और ककड़ी आदि) कुछ दालें (जैसे उड़द, मूँग और अरहर) तथा टिल आदि भी बो देते हैं। अरहर के अतिरिक्त अन्य फसलों की कटाई प्रमुख फसल के तैयार होने के पहले ही हो जाती है। अरहर के पकने में पूरा जाड़ा लग जाता है और उसकी कटाई रबी के साथ होती है।

भारतीय खेती में इस 'मिली-जुली खेती' (Inter culture) का एक आर्थिक तथा वैज्ञानिक महत्व है। अरहर जैसी कुछ फसलों की जड़ें मूसला जड़ें (roots) होती हैं। उन पर विशेष प्रकार के कीटाणु उत्पन्न होते हैं जिनसे नाइट्रोजन मिलती है और मिट्टी उपजाऊ हो जाती है। इस प्रकार यह 'मिली-जुली खेती' कृषि की दृष्टि से बहुमूल्य है। तरकारियों की फसल जल्दी ही तैयार हो जाती है और इस प्रकार किसान को एक ऐसे समय खाद्य की प्राप्ति हो जाती है जब उसका भण्डार बिल्कुल खाली होता है। इस प्रकार, 'मिली-जुली खेती' आर्थिक दृष्टि से बहुमूल्य है।

मकई से केवल स्थानीय व्यापार ही होता है। इसके डठल भी सूखने पर कड़े हो जाते हैं और चारे के लिए नहीं इस्तेमाल किये जा सकते। साधारणतः उन्हें या तो जला डालते हैं या छप्पर छाने के लिए काम मे लाते हैं।

भारतीय जलवायु मे मकाई की खेती बड़े परिमाण मे होना संभव नही है। बोने के समय बहुत उच्च तापमानों का रहना इसके लिए मुख्य अड़चन है। संयुक्त
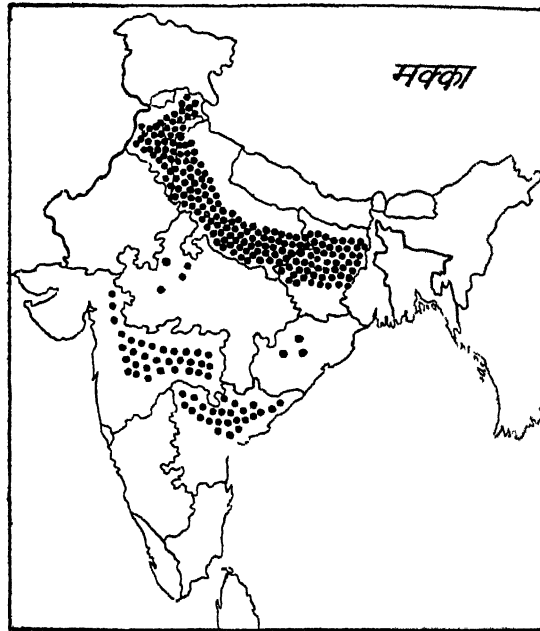
चित्र २४—मक्का के उत्पादन क्षेत्र

राज्य अमेरिका में, जो मकई का प्रमुख उत्पादक है और जहाँ संसार भर की मकई का अधिकाश पैदा होता है, औसत ग्रीष्म तापमान ७०° से ८०° फा० तक रहता है। भारत में औसत तापमान ८५° से अधिक रहता है। प्रतिकूल जलवायु ही भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा मकई की प्रति एकड़ कम उपज के लिए उत्तर-दायी है। संयुक्त राज्य अमरीका में प्रति एकड़ उत्पादन २२३५ पौंड, अर्जेनटाइना

में १५८५ पौंड और भारत में ८०० से १००० पौंड तक है। १९५७-५८ में ९७ लाख एकड़ भूमि से ३० लाख टन मकाई प्राप्त की गई।

(९) गन्ना (Sugarcane)

राजकीय संरक्षण से चीनी-उद्योग के पनप उठने के कारण भारत में गत वर्षों में गन्ने की खेती की अधिक उन्नति हुई है। योरप मे चुकन्दर की खेती की उन्नति का जो इतिहास है, गन्ने की खेती के लिए भारतवर्ष मे उसकी पुनरावृत्ति हुई है। भारत मे गन्ने की खेती की जो उन्नति हुई है उसे इतने से ही देखा जा सकता है कि सन् १९२९-३० मे २० लाख एकड़ जमीन पर गन्ने की खेती होती थी और १९३६-३७ में यह क्षेत्र बढ़ कर ४० लाख एकड़ हो गया था। और १९५६-५७ में ५० लाख एकड़। बिहार और उत्तर प्रदेश मे यह विस्तार सबसे अधिक हुआ है क्योंकि वहीं पर गन्ने को उगने के योग्य दशाएँ सबसे अधिक अनुकूल हैं।

एक समय था जब कि भारत में संसार भर मे सबसे अधिक क्षेत्र में गन्ना उगाया जाता था। भारत का गन्ना क्षेत्र क्यूबा से तिगुना और जावा से सतगुना था। इन दोनों द्वीपों ने अतीत मे गन्ने के उत्पादन में ससार का नेतृत्व किया है। भारत, ससार के विशालतम शक्कर-उत्पादकों में भी सबसे आगे रहा है, उसमें जावा, हवाई और ब्राजील की चौगुनी, फिलीपाइन्स की तिगुनी और क्यूबा से उसके एक-तिहाई ज्यादा शक्कर बनाई जाती रही है। अब भी भारत का स्थान दूसरा है। पहला स्थान क्यूबा का है जहाँ १९४९ में ४८ लाख टन शक्कर का उत्पादन हुआ था। भारत के इस विशाल उत्पादन का कारण अधिक उत्पादन नही वरन् अधिक क्षेत्र में गन्ने का उत्पादन था। कुछ भी हो भारत का शक्कर उत्पादन चुकन्दर से शक्कर बनाने वाले देशों को लेकर भी ससार में सबसे अधिक है।

यद्यपि गन्ना भारत भर में जहाँ भी अनुकूल जलवायु है उगाया जाता है क्योंकि किसानों को इससे बहुत लाभ होता है, फिर भी यह मुख्य गगा-घाटी के निचले प्रदेशों में पूर्वी समुद्र-तट पर अधिक केन्द्रीकृत है। गंगा के मैदान मे उत्तर प्रदेश में सम्पूर्ण भारत की पैदावार का ५९ प्रतिशत गन्ना पैदा होता है। सतलज-गंगा प्रदेशों में, अर्थात् उत्तर प्रदेश (५९%), पंजाब (११%) तथा बिहार (१७%), सब मिला कर भारत के कुल गन्ना उत्पादन का $\frac{5}{6}$ अश उत्पन्न होता है। उत्तर प्रदेश में गन्ने के दो मुख्य क्षेत्र हैं; (१) पूर्वी क्षेत्र जिसका केन्द्र गोरखपुर है, और (२)

पश्चिमी क्षेत्र जिसका केन्द्र मेरठ, सहारनपुर, शाहजहाँपुर, फैजाबाद आजमगढ़ है। पूर्वी क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण है, बनारस, प्रयाग, पीलीभीत—बिहार मे गन्ने का मुख्य क्षेत्र उत्तरी भाग में है जहाँ चम्पारन, सारन, दरभगा, मुजफ्फरपुर उसका केन्द्र है। पजाब में गन्ने का उत्पादन जलधर, लुधियाना, अमृतसर और रोहतक में होता है। पश्चिमी बंगाल में गन्ना बर्दवान नाडिया और वीरभूम में पैदा किया जाता है। आंध्र, मैसूर और मद्रास गन्ने के अन्य उत्पादक हैं।

निम्नाङ्कित सारणी में क्षेत्र तथा उत्पादन दिया हुआ है :

भारत मे गन्ने का क्षेत्रफल और उत्पादन १९५७ ५८

राज्य	क्षेत्रफल	उत्पादन	प्रति एकड़ उत्पादन (पौंड मे)
आन्ध्र प्रदेश	१७६	४९०७	५,१०४
आसाम	६५	६७३०	२,२०६
बिहार	३७६	३१८३	१,८९४
बम्बई	२७०	७३२५	६,३३८
केरल	२२	३४८	३,५६४
मध्यप्रदेश	१२२	१२४५	२,२९५
मद्रास	१२१	३१०४	६,२९५
मैसूर	१३३	३२०७	५,४०६
उड़ीसा	७९	९४२	३,५६६
पंजाब	४९४	६७४२	३,०५७
राजस्थान	८३	७१५	१९१६
उत्तरप्रदेश	३०१७	३०५४२	२,२६७
प० बगाल	५८	९४६	३,२८३
जम्मू काश्मीर	३	९	७४७
दिल्ली	११	७०	१,४२६
हिमाचल प्रदेश	४	१९	१,१२०
त्रिपुरा	७	७७	२,५६०
भारत का योग	५०,२१	६३,९५४	२,८४०

इस केन्द्रीकरण के कारण निम्नलिखित हैं :—

(i) उपजाऊ कछारी मिट्टी जो कि पहाड़ से आने वाली बहुसंख्यक धाराओं के कारण प्रति वर्ष नई हो जाती है। (ii) पानी की सतह की ऊंचाई, जिसके कारण सिंचाई आसान हो जाती है। (iii) समतल मैदान जिनके कारण खेती में सुविधा होती है। (iv) पाले का अभाव। (v) समुचित जलवर्षा, लगभग ४० इंच तक। (vi) उच्च तापमान, लगभग ८०° फ० के निकट (vii) नहरों तथा कुओं द्वारा सिंचाई की सुविधा (कुएँ बहुत सस्ते बनते हैं)।

फिर भी मुद्रादायनी फसल होने के कारण गन्ना उगने के छोटे-छोटे क्षेत्र देश भर में छितरे हुए हैं। चित्र मे उन्हें नहीं दिखाया गया है क्योंकि वे क्षेत्र बहुत ही छोटे हैं। ऐसे क्षेत्रों के होने से यही सिद्ध होता है कि गन्ने की फसल भारतीय किसान के लिए पैसा दिलाने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।
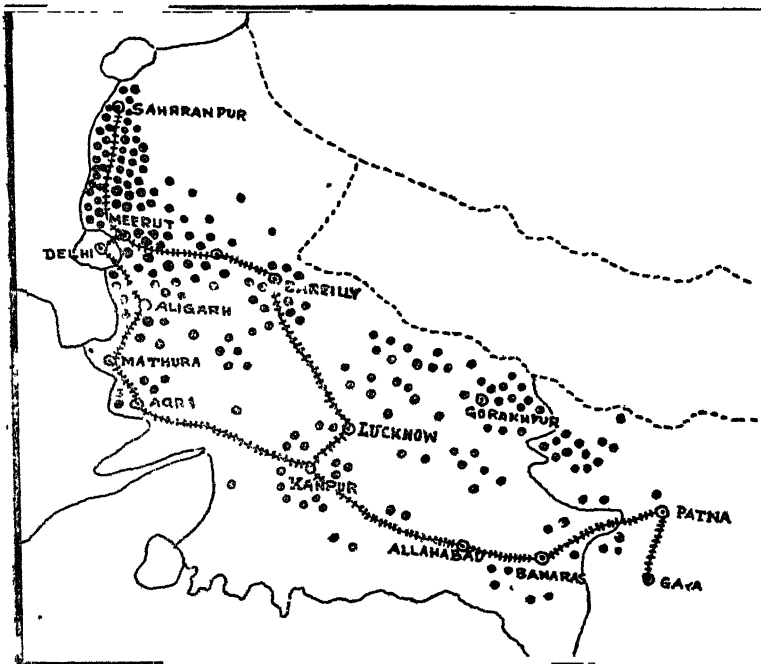
चित्र २५—गन्ने के मुख्य क्षेत्र

गन्ने की खेती भौगोलिक वितरण देखने से यह ज्ञात होता है कि भारत में गन्ने की अधिकतर खेती जहाँ होती है वहाँ का जलवायु उसके अनुकूल नहीं है। उत्तर प्रदेश और बिहार आदि उत्तरी क्षेत्रों मे शुष्क ऋतु बहुत लम्बी होती है जिससे गन्ना अधिक समय तक खेत में नही रह सकता है। इस कारण इस देश के शक्कर के मिल वर्ष भर नही चल पाते हैं। इसी शुष्क ऋतु क कारण ही जो इस देश की जल वर्षा का एक विशेष लक्षण है यहाँ का गन्ना पतला होता है और उसमें रस कम होता है। वास्तव मे गन्ने मे उपयुक्त जलवायु कुछ अ श तक दक्षिणी भारत में ही मिलती है, परन्तु उस भाग मे गन्ने के उपयुक्त मिट्टी नही है, इसलिए भारत में गन्ने की उपज आदर्श दशा में नही होती है। दक्षिणी भारत में गन्ना जून के महीने तक खेत में रहता है, परन्तु उत्तरी भारत में लू चलने के कारण गन्ना मार्च तक ही खेत से निकाल लिया जाता है। यह बात ध्यान देने की है कि ज्यों-ज्यों गरमी बढ़ती है, त्यों-त्यों गन्ने में चीनी बढ़ती जाती है। परन्तु सूखी ऋतु के कारण गन्ने को काट लेना पड़ता है जिससे चीनी के मिलों को बढ़ती चीनी का लाभ नहीं मिलता है। दिसम्बर या जनवरी में गन्ने से ६ प्रतिशत लगभग चीनी निकलती है परन्तु मार्च में लगभग ११ प्रतिशत चीनी निकला करती है। गन्ने की प्रति एकड़ पैदावार दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा अधिक है। किन्तु विदेशों की तुलना में भारत में गन्ने का प्रति-एकड़ उत्पादन बहुत ही कम है। हवाई में उत्पादन ८० टन प्रति एकड़, जावा में ५०-टन, मिश्र में ३० टन, सं० रा० में २०-३० टन होता है जबकि भारत में केवल १५ टन। भारत में प्रति एकड़ उत्पादन में कमी का कारण अवैज्ञानिक कृषि, भूमि का छोटे टुकड़ों में बँटे होना, यंत्रीकरण का अभाव और खाद की कमी है।

भारत का गन्ना पतला होता है। जावा या दूसरे उष्ण देशीय द्वीपों के गन्नों की भाँति मोटा नहीं क्योंकि वहाँ निरन्तर नमी तथा उच्च तापमानों के कारण गन्ने में खूब रस पैदा हो जाता है। भारत में अधिक काल तक वर्षा न होने के कारण साधारणतः मोटा तथा रसीला गन्ना नहीं पैदा हो पाता। भारत में प्रचलित गन्ना कोयंबटूर गन्ना कहलाता है। इस गन्ने की अनेक जातियाँ हैं जो कोयम्बटूर में सरकारी अनुसन्धानशाला में बड़े परिश्रम के बाद उन्नत की गई हैं। यह गन्ना देशी गन्ने की अपेक्षा अधिक उपज देता है और शुष्क जलवायु को भली प्रकार सहन करता है। कोयम्बटूर गन्ने की उन्नति आरम्भ में ज्वार के पौधे से की गई थी। इस गन्ने का नामकरण संख्याओं द्वारा होता है। जैसे Co. ४१० Co. ४१६; Co. ४२१, Co.

२१३, Co-३१२, Co. २६० Co. २०५ आदि। लखनऊ मे भी गन्ने की एक अनुसंधानशाला खोली गई है।

कोयंबटूर को गन्ना सम्बन्धी खोज का केन्द्र इसलिए बनाया गया है क्योंकि वहाँ की जलवायु गन्ना के लिए बहुत उपयुक्त है। कोयंबटूर के गन्नों का मुख्य प्रभाव यह है कि भारत में पूर्वमूलाकुरण (स्टूनिंग) प्रचलित हो गया है। पूर्वमूलांकुर फसल उसे कहते हैं जो गन्ने की पहली खेती की बची हुई जड़ों द्वारा ही उग आती है। पूर्वमूलाकुर द्वारा गन्ने को प्रति वर्ष बोने की मेहनत बच जाती है। भारत में साधारणतः दो फसलों के बाद पूर्वमूलाकुरण लाभप्रद नहीं रह जाता; क्योंकि तब इन फसलों मे लाल रङ्ग के कीड़े की एक बीमारी (रेड राट) लग जाती है। पजाबी गन्नों में उत्तर प्रदेश या बिहार के गन्नों की अपेक्षा चीनी कम होती है। इसका कारण मिट्टी का अन्तर है। पजाब की मिट्टी में कैल्शियम की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।
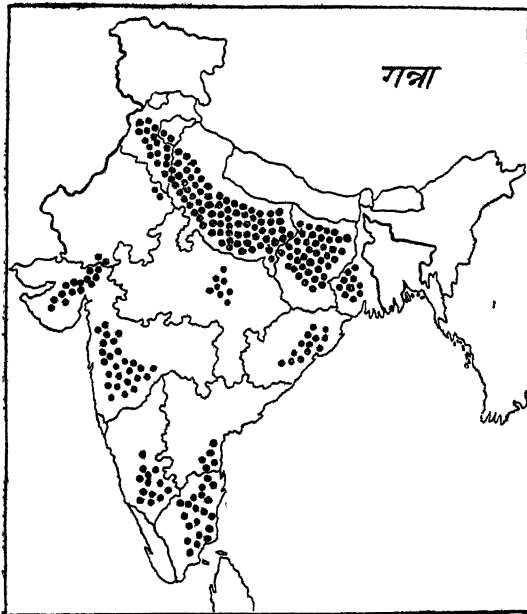
चित्र २७—गन्ने के मुख्य क्षेत्र

गन्ना की उपज के अन्य महत्वपूर्ण स्थान बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रदेश हैं।

भारत में उत्पादित गन्ने का अधिकाश स्थानीय शक्कर की मिलों के ही काम आता है। ये शक्कर की मिलें सम्पूर्ण गन्ना क्षेत्र में जगह-जगह पर बनी हुई है। गन्ने की खेती के प्रमुख कारणों मे से इन मिलों की माँग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन मिलों के आसपास का सारा क्षेत्र यथासभव गन्ना क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया है। दूसरी फसलो का स्थान भी गन्ना ने ही ले लिया है। इसका एक बड़ा अच्छा उदाहरण है कि हिमालय की तराई का कुछ क्षेत्र है जहाँ पहले धान की पैदावार होती थी, परन्तु वहाँ अब गन्ना उगता है। परन्तु हाल में देश मे खाद्यान्नों की कमी के कारण इस प्रवृत्ति को स्वाभाविक प्रगति नहीं मिल सकी। निम्नांकित सारिणी से यह स्पष्ट है :—

भारत में गन्ने का क्षेत्रफल

वर्ष	लाख एकड़	उत्पादन
१९४९-५०	३७	४९० लाख टन
१९५१-५२	४७	६०६ ,,
१९५२-५३	४२	५०१ ,,
१९५३-५४	३५	४३७ ,,
१९५४-५५	४०	५५९ ,,
१९५५-५६	४६	५९२ ,,
१९५६-५७	५०	६६९ ,,
१९५७-५८	५०	६३९ ,,

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना मे १० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि पर गन्ने की खेती की जायेगी।

तेलहन (Oilseed)

भारत में तेलहनों का महत्व उनके औद्योगिक उपयोग की अपेक्षा खाद्य उपयोग की दृष्टि से अधिक है। गर्मी तथा जाड़े की फसलों मे अनेक तेलहन भारत मे उगते हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण मूँगफली, बिनौला, तिल और सरसों हैं। प्रथम दो ही उपज शेष तेलहन की फसलों के सयुक्त उत्पादन से अधिक होती है।

भारत में तिलहनों की पैदावार का क्षेत्रफल (हजार एकड़ों में) व उत्पादन (हजार टनों में) (१९५७-५८)

स्टेट	मूँगफली		रेंडी		तिल		राई-सरसों		अलसी		योग तिलहनों की	
	क्षे०	उत्पादन	क्षे०	उत्पादन	क्षे०	उत्पादन	क्षे०	उत्पादन	क्षे०	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
आन्ध्र प्रदेश	३१०१	९९५	८०७	४७	६६२	५२	३	(ब)	७८	५	४६५०	१०९९
आसाम			५	१	१९	४	२९५	५६	२	(ब)	३२१	६१
बिहार					४७	४	१५३	१९	१३९	११	३५२	३६
बम्बई	५०१३	१२६५	१३	२	६४०	५२	०२	१८	६०२	५३	७३३७	१४१०
जम्मू-काश्मीर		९६०	२८०	२५	NR	NR	४५	११	२३	५	६८	१६
मद्रास	१७९५		NR	NR	३५४	४५	४५	१	(ब)	(अ)	२१८५	९११
मैसूर	२१५४	६३५	३५	६	१६०	१४	८	१	१२०	९	२५४८	६६७
उड़ीसा	५५	१६	१०६	८	२४५	२०	१२७	२१	३५	३	५१४	६४
पंजाब	१४६	४८	५२	४	५२	४	९३७	११६	२७	२	९६२	१७०
राजस्थान	१७२	३५	NR	NR	१०९७	५३	७२१	१०१	२३८	२१	२७३१	२११
उत्तर प्रदेश	४७३	२०७	३	१	१११९	६१	३४०६	५०२	७५४	८०	५७६८	८५१
प० बङ्गाल	—	—	६	१	१३	३	२०२	२९	४६	५	२६१	३६
भारतवर्ष	१४,४५७	४२७१	१३२५	९७	५२६८	३६३	६०५०	९०५	३३१८	२७१	३०४१८	५९०७

(अ) ५०० एकड़ से कम

(ब) ५०० टन से कम

निर्यात के दृष्टिकोण से भी तेलहन का महत्व अधिक है। तेलहनों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जाता है; खाद्य और अखाद्य। अखाद्यों में अलसी और रेंड़ी भी आ जाते हैं। पृष्ठ १११ पर दी हुई सारिणी मे विवरण दिये गये हैं।

(१) **मूँगफली**—उत्पादन तथा क्षेत्र की दृष्टि से मूँगफली भारत के तेलहनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। किसान के लिए यह महत्वपूर्ण मुद्रादायनी फसल है। भारत के कुल तेलहन-क्षेत्र का लगभग एक-तिहाई इसी की फसल मे प्रयुक्त होता है। भारत अब मूँगफली का सबसे बड़ा निर्यात करने वाला तथा उपयोग करने वाला देश है। ससार के कुल मूँगफली वाले क्षेत्र का एक-तिहाई से अधिक भाग भारत में है। १९५७-५८ भारत मे १४४.५ लाख एकड़ भमि मे मूँगफली बोई गई है और उसकी उपज ४२.७ लाख टन हुई है। भारतीय खेती में इसका महत्व हाल में ही बढ़ा है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में सम्पूर्ण भारत में ३० लाख एकड़ से भी कम
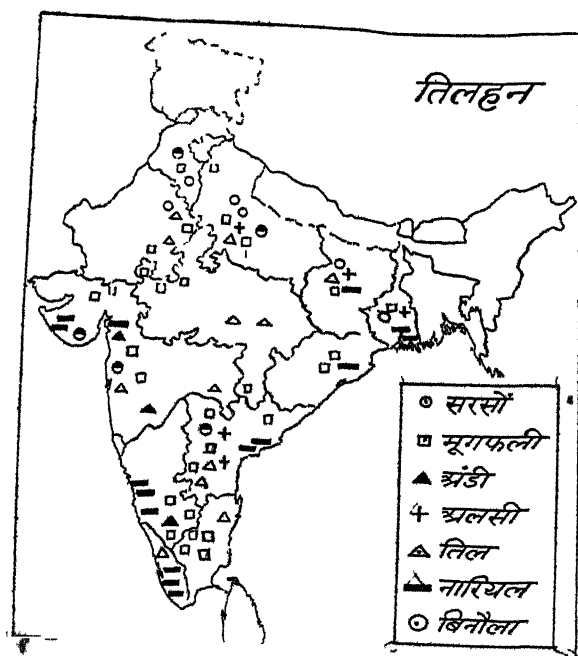
चित्र २७—तिलहन

भूमि मे यह बोई जाती थी। इसका महत्व मुख्यतः इसके निर्यात के कारण ही बढ़ा है। परन्तु आजकल भारत की अपनी घरेलू माँग ही अपेक्षाकृत, अधिक महत्वपूर्ण है। भारत मे ही इस फसल का ३/५ भाग उपयोग मे आ जाता है। 'वनस्पति-घी' का बढ़ता हुआ उपयोग ही इसके लिए उत्तरदायी है। इस फसल के प्रमुख क्षेत्र बम्बई, मद्रास और हैदराबाद मे हैं। वस्तुतः पूरी फसल प्रायद्वीपीय भारत मे ही उगती है। प्रायद्वीप के बाहर उत्तर प्रदेश ही उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मूँगफली का पौधा मिट्टी के उपजाऊपन को भी बढ़ाता है, क्योंकि इसकी जड़ों मे कीटाणुओ की उत्पत्ति होती है। मैसूर मे यह देखा गया है कि रागी के बाद रागी बोने की अपेक्षा मूँगफली के बाद रागी बोने से ८८% अधिक रागी की पैदावार हुई।

मूँगफली की पैदावार के लिए हल्की मिट्टी चाहिए। यदि वह मिट्टी प्राणिज (आर्गेनिक) पदार्थयुक्त हो तो और भी अच्छा होता है। प्रायद्वीप की लाल, पीली और काली मिट्टियाँ इसके लिए अति उपयुक्त है। इसको अधिक वर्षा की आवश्यकता नहीं होती। उगने के समय यदि २०" से ३०" तक पानी बरस जाय तो वह पर्याप्त होता है। मद्रास और बम्बई में इस फसल को कहीं-कहीं सिचाई द्वारा भी उगाते हैं। मूँगफली निम्न तापमान नहीं सहन कर सकती। उसके लिए ७०° फा० से ८०° फा० तक तापमान आवश्यक होता है। पकने के समय ऋतु शुष्क होनी चाहिए।

(२) **बिनौला**—बिनौला भी प्रायद्वीप में ही अधिक पैदा होता है : क्योंकि भारत में सबसे अधिक कपास वहीं होती है। नारियल और रेंड़ी की उपज भी प्रायद्वीप में ही अधिक होती है। इन तेलहनों में प्रायद्वीप को प्रायः एकाधिकार-सा प्राप्त है।

(३) **सरसों**—सरसों सतलज-गगा की घाटी में बहुत बोया जाता है। दकन में इसकी फसल कम महत्वपूर्ण है; क्योंकि सरसो के लिए उपजाऊ कछारी मिट्टी और अपेक्षाकृत शुष्क सर्दियों की आवश्यकता रहती है। इसके कुल क्षेत्र में से लाख एकड़ से लगभग ३/४ उत्तरी भारत में हैं। पजाब में इस फसल को तोड़िया कहते है। वहाँ यह फसल अकेली और सकुचित क्षेत्र में ही बोई जाती है, केवल ढाई लाख एकड़ में। परन्तु उत्तर प्रदेश मे सरसों अधिकतर जाड़ों की अन्य फसलों से मिला कर बोया जाता है। सरसों की पैदावार में उत्तर प्रदेश का स्थान अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा है।

(४) **तिल**—तिल भी भारत में अधिक बोया जाता है। परन्तु यह सतलज-गगा घाटी की अपेक्षा दक्षिणी पठार में अधिक महत्वपूर्ण है। मद्रास, बम्बई, आन्ध्र और मध्य प्रदेश अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

(५) अलसी—धन देने के लिए भारतीय किसान के लिए अलसी एक अन्य फसल है। गत वर्षों में भारतीय खेती मे इसकी फसल का महत्व बहुत बढ़ गया है; क्योंकि ग्रेटब्रिटेन के लिए इसका निर्यात व्यापार बढ गया। अब इसकी खेती लगभग तीस लाख एकड भूमि (गन्ने के बराबर) पर होती है। यह क्षेत्र अधिकाशतः उत्तर प्रदेश में है, यद्यपि अर्जेटाइना और दक्षिणी अमेरिका की तुलना में वह नगण्य है।

(६) रेंड़ी—भी महत्वपूर्ण है लेकिन केवल दक्षिणी पठार मे। हैदराबाद, मद्रास, मैसूर और बम्बई में मिलाकर प्रायः इसकी पूरी फसल पैदा होती है। प्रायद्वीप से बाहर और उत्तर प्रदेश केवल नाम मात्र के उत्पादक हैं।

मूँगफली को छोड़कर तेलहनों का निर्यात अब घट गया है। मूँगफली के निर्यात की स्पष्ट वृद्धि का कारण उसके क्षेत्र का विस्तार और उपज में वृद्धि है। 'खली और वनस्पति तेलों' के निर्यात भी बढे हैं। परन्तु घरेलू प्रयोग के लिए जिस परिमाण मे तेलहन पेरा गया है वह बहुत आश्चर्यजनक है। तेल निकालने मे उन्नति होने के कारण भारत में कुछ छोटे-छोटे नये उद्योग-धधे भी विकसित हो गये हैं। उदाहरणार्थ, साबुन बनाना, सिर मे डालने का तेल बनाना, वानश-पेंट बनाना और 'वनस्पति घी' बनाना। बंगाल का गौरीपुर अब समस्त भारत में पेंट और वार्निश के लिए अलसी का उबाला हुआ तेल बनाने के लिए प्रसिद्ध है। सन् १९५० मे भारत मे कुल ४७ और १९५६ में ५० वनस्पति-निर्माण के कारखाने थे जिनका कुल उत्पादन ३ लाख टन और ४ लाख टन वार्षिक था।

भारत में कुल मिलाकर लगभग ६०० तेल पेरने की मिलें हैं। उनकी तेल पेरने की वार्षिक शक्ति लगभग २७ लाख टन है। घानियों में प्रति वर्ष लगभग ३ लाख टन सरसों पेरा जाता है। १९५५-५६ में भारत से लगभग एक लाख टन तेलहन और लगभग ६६,००० टन तेल निर्यात् किया गया था।

तेलहन का निर्यात भारत के लिए लाभदायक नही है। यह देश के वास्तविक हितों के विरुद्ध है। इस निर्यात के विरुद्ध मुख्य तर्क ये हैं कि विदेशो को तेलहन भेजने से :—

(१) भारत खली को गवाँ देता है और खली बहुमूल्य खाद और जानवरो के लिए पुष्टिकारक भोजन है।

(२) बदले में भारत को अपने वार्निश, पेन्ट और साबुन बनाने जैसे औद्योगिक कामों के लिए महँगे दामों पर अपने ही तेलहन से निकला तेल खरीदना पड़ता है।

(३) इस प्रकार भारत विदेशो मे तेल पेरने वाले मजदूरों की ऊँची मजदूरियाँ देता है और स्वदेश के मजदूरों को काम और मजदूरी से वंचित रखता है।

(४) सस्ते वनस्पति तेल के अभाव मे हमारे साबुन-निर्माण जैसे उद्योग विकसित नही हो पाते।

तिलहन की उपज बढ़ाने के लिये सरकार द्वारा ये उपाय काम में लाये गये हैं :—

(i) तिलहन की पैदावार बढ़ाने की योजनायें चालू करना।

(ii) अच्छे किस्म के अधिक बीज पैदा करना और उनका वितरण करना,

(iii) तिलहन की खेती मे उर्वरक तथा खाद का प्रयोग करना,

(iv) पौधों की सुरक्षा के तरीके काम मे लाना;

(v) वैज्ञानिक तरीकों से खेती करना, और

(vi) वर्ष की दोनों फसलों में तिलहन बोना।

(ख) पेय पदार्थ

(१) चाय (Tea)

चाय भारत की सबसे अधिक महत्वपूर्ण मुद्रादायनी फसल है। इसके निर्यात द्वारा हमे १२५ करोड़ रुपये का विदेशी विनिमय प्राप्त होता है। विभिन्न करों के रूप में चाय उद्योग से प्रति वर्ष ३५ से ४० करोड रुपये प्राप्त होते हैं। इसके द्वारा १० लाख से अधिक व्यक्तियों को जीविका मिलती है। भारत मे चाय का उत्पादन सन् १८३४ मे सरकार द्वारा प्रयोगात्मक रूप मे प्रारम्भ किया गया था। यह प्रयोग तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंग के एक विवरण के फलस्वरूप किया गया था। उस विवरण में इस पर जोर दिया गया था कि "इस योजना की सफलता द्वारा भारत को व्यावसायिक दृष्टि से लाभ होगा और इसके द्वारा इंग्लैंड भी चीन के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र स्थिति में हो जायगा।" योजना के चलाने के लिए तेरह सदस्यों की एक कमेटी बनाई गई। उसके दो सदस्त भारतीय थे और शेष यूरोपीय।

कमेटी ने चीन से कुछ पौधे और बीज मँगाये जिनको आसाम की मिट्टी में सफलता प्राप्त हुई। सन् १८३७ में चीन से कुछ चाय बनाने वाले कारीगर भी आये। इस प्रकार जो चाय पैदा हुई उसके कुछ पार्सल बिकने के लिए लंदन भेजे गये। वहाँ इस चाय को उत्तम प्रकार का माना गया और यह ऊँचे दामों पर बिकी। इस चाय से जो दाम मिले वे इतने लाभपूर्ण थे कि अँग्रेजी पूँजीपतियो का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ। इसलिए उत्तरी आसाम में चाय उत्पादन के लिए एक कम्पनी खोली

गई जो आगे चलकर 'आसाम कम्पनी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। भारत सरकार ने अपने चाय के बागों और कारखानों के अधिकाश इसी कम्पनी को दे दिये।

सरकार द्वारा बनाई गई कमेटी ने यह भी पता लगाया कि चाय का पौधा आसाम के एक भू भाग मे सदियों से चीन की सीमा पर स्थित यूनान तक—बहुलता से उगता है।

इसलिए भारत मे तीन प्रकार के पौधों की खेती आरम्भ की गई। एक चीनी चाय, दूसरी देशी चाय और तीसरी दोनो जातियो के योग से बनी वर्णसंकरी (हाइब्रिड)। चीनी किस्म की चाय का पौधा बहुत शक्तिशाली होता है और उसके कारण देशी या मिश्रित किस्में नष्ट हो जाती हैं। उसकी पत्ती मोटी होती है इसलिए उसकी चाय बनाने में अपेक्षाकृत अधिक व्यय होता है और उसका मूल्य भी अपेक्षाकृत कम मिलता है। इसलिए भारत में वर्णसंकरी चाय का पौधा ही प्रचलित हो गया। १८८० मे चाय के अतर्गत २०८,४६२ एकड़ क्षेत्रफल था जिसका उत्पादन ४१,६२५ हजार पौंड था। १६५७ में यह बढ़ कर क्रमशः ७६२,५३३ एकड़ और ६६४,५८३ हजार पौंड हो गया।

विश्व मे चाय पैदा करने वाले देशों मे भारत का स्थान प्रथम है जैसा कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट होगा :—

करोड़ पौण्ड

	१६४६	१६५०	१६५१	१६५४	१६५५	१६५६	१६५७
पूर्ण संसार	११०	११६	१२१	१२६	१३८	१४२	१५३
भारत	५८	६१	६४	६५	६८	७६	—

ससार के प्रमुख चाय उत्पादको की १६५४ की चाय उपज :—

	क्षेत्रफल (हजार हैक्टेअर)	उत्पादन (हजार मैट्रिक टन)
भातर	३२०	२६२·२
लङ्का	२३३	१६६·३
इंडोनेशिया	६७	४६ ६
जापान	३५	६८ ०
पाकिस्तान	३०	२४ ८

भारत में चाय की उपज संसार में सबसे अधिक है। परन्तु इसकी खेती थोड़े

से पहाड़ी जिलो मे ही केन्द्रित है। चाय-बागों के कुल क्षेत्र का ७६% आसाम मे (ब्रह्मपुत्र की घाटी मे लखीमपुर, शिवसागर, धराग और कछार में) आसाम अकेला लगभग ३७०० लाख पौण्ड चाय पैदा करता है। तथा बङ्गाल के दो जुड़े हुए जिलों (दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी) मे है। पश्चिमी बङ्गाल मे लगभग १६७० लाख पौण्ड चाय पैदा होती है। दक्षिण-भारत में मलाबार-तट के ऊँचे प्रदेश मे (जिसमें केरल, मालाबार, नीलगिरि और कोयम्बटूर जिले हैं) भारत के चाय के क्षेत्र का १६ प्रतिशत है। शेष पंजाब, उत्तर प्रदेश (देहरादून, गढ़वाल और बिहार (पूर्वीय राँची, हजारी बाग) मे है। दक्षिणी भारत में मद्रास और केरल मुख्य चाय उत्पादक हैं इनमें १४०० लाख पौण्ड चाय प्रति वर्ष पैदा होती है। अन्य राज्यो मे १२० लाख पौण्ड चाय होती है।

नीचे की तालिका मे चाय का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

राज्य	क्षेत्रफल (एकड़) (००० मे)	उत्पादन (००० पौण्ड)	प्रति एकड़ उत्पादन पौंड में
आसाम	३८४	३१६,८३४	६५३
बिहार	४	२,२४०	—
केरल	८७	५८,४८३	७१४
मद्रास	७३	४६,२६८	१,०४०
मैसूर	६	६,१३८	५६८
पजाब	६	१,७५७	२६७
बङ्गाल	१६१	१५१,५६६	६०६
उत्तर प्रदेश	५	१,४८५	३५४
हिमाचल प्रदेश	२	२३०	११५
त्रिपुरा	११	३,६८६	४४४
सम्पूर्ण भारत	७७५	५८८,७३३	८८०

भारत के चाय के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई उत्तरी भारत से और शेष दक्षिणी भारत से प्राप्त होता है। विश्व की ५०% माँग भारत ही पूरा करता है।

भारत में लगभग ५,००० चाय की जागीरें हैं; उनका क्षेत्रफल लगभग ८ लाख एकड़ है। इनमें लगभग ६ लाख आदमी काम करते हैं।

चाय की पैदावार के लिए आदर्श जलवायु वहाँ पर होती है जहाँ का दैनिक तापमान ७५° और ८५° फा० के बीच घटता-बढ़ता है। अगर वातावरण बहुत नम हुआ तो यह घटाव-बढाव कुछ अधिक भी हो सकता है। यदि उचित ढङ्ग से वर्षा वर्ष भर मे वितरित हो तो लगभग ६०" की वार्षिक वर्षा चाय के लिए काफी होती है। चाय की फसल के लिए लम्बे शुष्क मौसम अधिक हानिकर होते हैं।

आगे दिये गये ग्राफ मे यह दिखाया गया है कि भारतीय चाय उत्पादकों में प्रमुख स्थान जलपाईगुड़ी मे चाय पैदा होने के मौसम, अर्थात् जून से सितम्बर, में तापमान ७८° से ८६° फा० तक उतरता चढ़ता है। इस काल में वायु की सापेक्षिक नमी काफी अधिक रहती है; लगभग ९०%। मार्च से मई तक तापमान बहुत अधिक रहता है और दैनिक न्यूनतम तथा अधिकतम तापमानो का अतर भी बहुत होना है। यह निम्नाकित ग्राफ में न्यूनतम तथा उच्चतम ताप रेखाओं की दूरी से स्पष्ट है। परन्तु इस काल मे दूसरे महीनों की अपेक्षा नमी काफी कम रहती है। पर यह आपेक्षिक निम्न नमी भी ८०% से अधिक नीचे कभी नही जाती। यह तथ्य इस जिले मे चाय की पैदावार के अत्यत अनुकूल एक जलवायु सम्बन्धी कारण है।

चाय की जलवायु
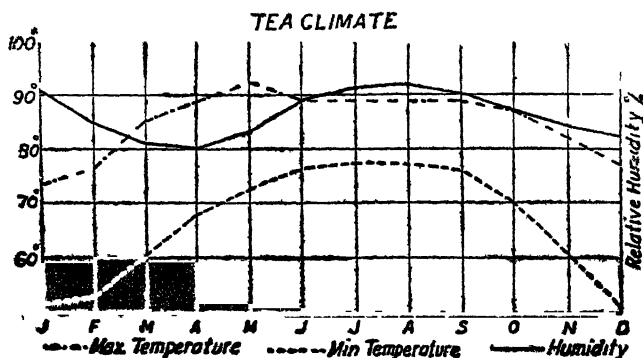
चित्र २८—जलपाईगुड़ी में तापमान (बगाल)

मुलायम तथा उत्तर ढाल वाली मिट्टी जिसमें जल न रुके इस फसल के लिए सबसे अच्छी होती है। हल्की बलुई और गहरी काँप वाली मिट्टी बहुत उपयुक्त समझी जाती है। चाय की सुगन्ध मिट्टी के रासायनिक तत्वों के ऊपर ही बहुत कुछ निर्भर

है। दार्जिलिंग की चाय की सुगन्धि का कारण वहाँ की मिट्टी मे अपेक्षाकृत बहुत फास्फोरस और पोटाश का होना है। हिमालय के चाय के बागों की मिट्टियों में बड़ी विभिन्नता है, परन्तु सर्वोत्कृष्ट बागो की मिट्टी हल्की और उपजाऊ मिट्टी हैं जिसमे बालू से मिला हुआ काफी प्राणि तत्व (ह्यूमस) विद्यमान है।

चाय के पौधे को पाले से बड़ी क्षति होती है। इसीलिए ढाल पर चाय के बाग लगाने मे भारी ठढी वायु नीचे खिसक जाती है अर्थात् चाय की खेती को ढाल से दो लाभ होते हैं, पानी का अच्छा बहाव और पाले वाली वायु से रक्षा।

चाय के पौधे कलमो से नहीं बल्कि बीजों से उगाये जाते हैं। जिन पौधों को बीज के लिए चुन लिया जाता है उनकी पत्तियाँ नही तोडी जाती हैं। उन्हे २०-३० फीट की ऊँचाई तक बढ़ने दिया जाता है। बीज अलग क्यारियों मे बोये जाते हैं। जब पौधे लगभग छः महीने के हो जाते हैं, तब उन्हे पहले से तैयार किए गए खेतों मे लगाया जाता है।

बीजो का बोना अक्टूबर या नवम्बर से आरम्भ हो जाता है और मार्च तक चलता रहता है। वर्षा होने पर पौधो को लगाया जाता है। शुष्क मौसमो मे लगाने के बाद पौधों की सिंचाई करनी पड़ती है। तीन वर्ष मे पौधे पत्ती तोड़ने योग्य हो जाते हैं। पत्ती तोड़ने का मौसम अप्रैल के आरम्भ मे आता है और अक्टूबर तक रहता है। साधारणतः हर पौधे से एक मौसम मे तीन बार पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। पहली बार अप्रैल से जून, दूसरी बार जुलाई से अगस्त और तीसरी बार सितम्बर से अक्टूबर तक। परन्तु कितनी बार पत्तियाँ तोड़ी जायँगी यह पूर्ण रूप से मौसम पर ही निर्भर रहता है। मौसम अच्छा रहे यानी अगर जाड़े और बसन्त मे वर्षा हो जाय तो पत्तियाँ पाँच बार तक तोड़ी जा सकती है।

पौधे की छँटाई (प्रूनिंग) करना भी चाय की खेता का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह वार्षिक रूप से ऐसे मौसम में की जाती है जब पौधों का बढ़ना रुक जाता है। छँटाई का उद्देश्य यह है कि पौधो मे नए कल्ले और नई पत्तियाँ निकल आएँ। नई पत्तियाँ कोमल होती हैं और उनसे उत्तम चाय बनती है। छँटाई होते रहने से चाय की झाड़ी नीची भी बनी रहती है जिससे जमीन पर खड़े-खड़े पत्तियाँ तोड़ने मे आसानी पड़ती है।

पौधे में बहुतायत से पत्तियाँ निकले इसके लिए उत्पादक को पौधे के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। समय-समय पर खेत को गोड़ कर घास-फूस को

निकाल देने तथा विभिन्न प्रकार की खादों को डालने की प्रथा इसीलिए है। भारत मे साधारणतः खली की खाद दी जाती है। हाल मे हरी खाद का भी प्रयोग किया गया है। लंका में पोटैशियम सल्फेट जैसी रासायनिक खादो का भी उपयोग किया गया है।

भारत मे तीन विभिन्न प्रकार की जलवायु मे चाय उगाई जाती है :—

(१) पहाड़ियों की ठडी जलवायु मे : दर्जिलिंग, कुमायूँ, नीलगिरि और कॉगड़ा घाटी।

(२) अपेक्षाकृत उष्ण जलवायु मे : निम्नवर्ती आसाम।

(३) उपर्युक्त दोनों के बीच की जलवायु मे : उत्तरी आसाम। इन जिलों मे पहले चाय के पौधे जगली रूप में उगे हुए पाए गये थे। वहाँ की जलवायु भारत में चाय के लिए सर्वोत्तम है।

इन क्षेत्रों में चाय की प्रकार और वहाँ की जलवायु में घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध है। उपर्युक्त पहले क्षेत्र मे पैदावार कम होती है मगर चाय उत्तम प्रकार की होती है। द्वितीय क्षेत्र में पैदावार बहुत होती है लेकिन चाय निकृष्ट प्रकार की होती है। तीसरे क्षेत्र में पैदावार और चाय की उत्तमता दोनों दृष्टिकोणों मे मध्यम स्थिति की है।

भारत मे चाय का अधिकाश उत्पादन निम्नलिखित क्षेत्रों मे होता है :—

(१) आसाम-स्थित ब्रह्मपुत्र घाटी। वहाँ चाय की सबसे घनी खेती लाल कछारी मिट्टी मे होती है जो तेजपुर और बिशनाथ जिलों के पठारों पर पाई जाती है।

(२) सुरमा घाटी। यह घाटी प्रमुखतः कछार जिले में है। जिले भर मे अनेक टीले हैं। इन टीलों के चारों ओर नीची भूमि है। इसे बील कहते हैं। पहले यहाँ दलदल थे। अब इनका पानी बह गया है और प्राणि तत्व से भरपूर मिट्टी उभर आई है। इन मिट्टियों पर चाय अधिक पैदा होती है। इस नीची भूमि के अतिरिक्त ब्रह्मपुत्र घाटी की भाँति पठारों पर भी चाय उगाई जाती है।

(३) द्वार। हिमालय के निचले भाग में, सिक्किम और भूटान के दक्षिण में, लगभग १० मील चौड़ी एक पट्टी है। इस पट्टी की विशेषता यह है कि इसके एक किनारे पर कड़ी छिद्रमय लाल मिट्टी है। उस पर चाय अधिक उगाई जाती है।

आसाम की ब्रह्मपुत्र घाटी में सबसे अधिक चाय की प्रति एकड़ उपज है।

औसत उत्पादन प्रति एकड़ ७०० पौंड से अधिक है। भारत में सब से कम प्रति एकड़ उपज गढ़वाल में है जहाँ प्रति एकड़ केवल ६० पौंड चाय होती है।

भारत के चाय उत्पादक क्षेत्र एक-दूसरे से दूर-दूर हैं। उनकी मिट्टी तथा जलवायु भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। इसलिये विभिन्न क्षेत्रों मे पैदा होने वाली चाय की किस्मों में भी अन्तर होता है। प्रत्येक क्षेत्र की चाय की अपनी विशेषता होती है। आसाम की चाय अपनी तेज सुगन्ध और रंग के लिए प्रसिद्ध है किन्तु पश्चिमी बगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र में पैदा होने वाली चाय बहुत सुस्वादु होती है। दक्षिणी भारत (विशेषतः नीलगिरि क्षेत्र) मे पैदा होने वाली चाय भी अपनी सुगन्धि और रग के लिए प्रसिद्ध है।

भारत में अधिकाशतः 'काली चाय' ही पैदा होती है। 'हरी चाय' की पैदावार कम होती है। १९३८ में भारत के कुल चाय उत्पादन का केवल १.५% 'हरी चाय' था। उस वर्ष कॉंगडा घाटी मे भारत की कुल हरी चाय के दो-तिहाई से अधिक उत्पन्न हुआ था।

इस देश मे काली और हरी चायों का अंतर पत्ती को तैयार करने की विधि में ही है। परन्तु चीनी हरी चाय कृत्रिम साधनों द्वारा रँगी जाती है (फेरोसायनायड ऑव आइरन और प्रशियन ब्ल्यू द्वारा उसमें उम्दा नीला रंग आ जाता है) भारत में कृत्रिम रग देने का प्रचलन नहीं है।

चाय को बनाना अर्थात् पत्ती को विक्रय योग्य बनाना कोई गूढ़ प्रक्रिया नहीं है। इससे पत्ती को अशतः धूप में और अशतः आग पर सुखाते हैं। जगलों की निकटता के कारण एक लाभ यह होता है कि भट्टियों के लिए कोयला और चाय भेजने के लिए बक्स बनाने के लिए लकड़ी आसानी से मिल जाती है। प्रकृतितः चाय की पत्तियाँ हरी ही होती हैं। सुखाने से ही वे काली पड़ जाती हैं। हरी चाय बनाने के लिए चाय की पत्तियों को छाया मे ही रखा जाता है। उनको धूप नहीं लगने दी जाती है।

व्यापार—अभी हाल तक भारत का चाय-उद्योग अपनी समृद्धि के लिए विदेशी, मुख्यतः ब्रिटिश बाजार पर निर्भर था। भारत का चाय-निर्यात* संसार मे सबसे अधिक

* १९५४ कुल चाय निर्यात करने वाले :—

	भारत	लंका	पूर्वी द्वीप समूह	ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका	पाकिस्तान
निर्यात (००० मैट्रिक टन में)	२२४	१५८	२८	१८	१२

है। अधिकांशत. ग्रेट ब्रिटेन ही भारत की चाय को खरीदता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह अनुपात घट गया है। १६४६ मे ६५ प्रतिशत, १६५० में ६१ प्रतिशत और १६५१ में ६२ प्रतिशत था और १६५६-५७ मे ७० प्रतिशत। कनाडा, सयुक्त राज्य अमेरिका, ईरान, लका और ब्रह्मा में हमारे चाय निर्यात का १०% जाता है। चाय के समस्त उत्पादकों में भारत का घरेलू बाजार सबसे बड़ा है। १६५६-५७ मे भारत में २१ करोड़ पौंड चाय का उपभोग हुआ। परन्तु इस पर भी इस देश मे प्रति जन चाय का उपभोग बहुत थोडा है। १६५५-५६ में प्रति जन चाय का उपभोग ब्रिटेन मे ४२ पौंड, संयुक्त राज्य में ⅗ पौड और भारत में ½ पौड हुआ। १६५४-५५ में भारत मे १८ करोड पौंड चाय का उपभोग हुआ।
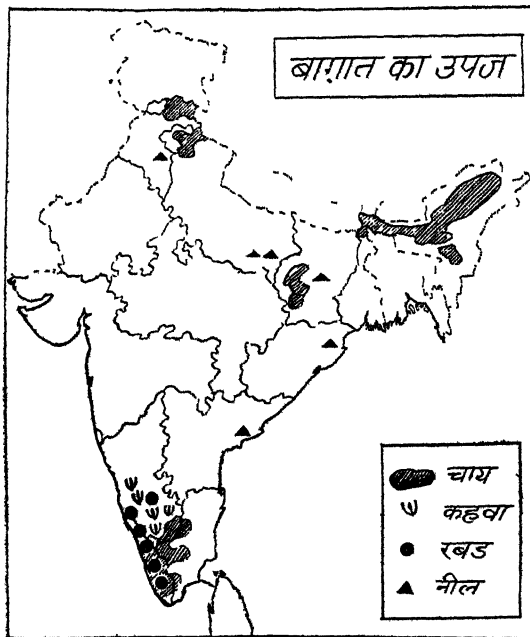
चित्र २६—बागात की उपज

गत तीन वर्षों में भारत से चाय का जो निर्यात ससार के प्रमुख देशों को हुआ है, उसके आँकड़े दिये गये हैं :—

चाय का निर्यात (१० लाख पौंडो में)

देश	१९५५	१९५६	१९५७
ब्रिटेन	२५१	३०१	३०२
अमेरिका	२४	२८	२३
आयर	१८	१७	१९
कनाडा	१६	२३	१७
मिश्र	१३	२३	१७
रूस	—	१४	१६
ईरान	११	८	१०
आस्ट्रेलिया	६	९	८
तुर्की	३	६	७
सूडान	३	७	४
प० जर्मनी	३	६	४
कुवैत	४	३	३
अन्य देश	१५	१४	१२
योग	३६७	५२३	४४२

चाय-उद्योग पर १९३३ मे नियन्त्रण लग जाने से बहुत से चाय-बागों में कम् क्षेत्र मे ही अधिकृत परिमाण मे चाय उपजने लगी। इसके कारण कम उपज वाले क्षेत्र छोड़ दिये गये और जहाँ की उपज अधिक थी वहाँ पर पौधे उगाने का अनुरोध किया जाने लगा। इस प्रकार के उपेक्षित क्षेत्रो मे अब नए और अधिक अच्छे पौधे लगाये जाने लगे हैं इससे कुछ वर्षों मे जब ये पौधे बड़े हो जायेंगे तब इन क्षेत्रों की उत्पादक शक्ति बहुत अधिक हो जायगी। भारत मे यह नियत्रण की योजना इडियन टी लाइसेसिंग कमेटी के प्रतिबन्ध मे है। इस कमेटी का सचालन लन्दन स्थित इटर्नेशनल टी रिस्ट्रिकशन बोर्ड द्वारा होता है। इस संस्था का काम विभिन्न देशों के लिए चाय-निर्यात-कोटा निर्धारित करने के अतिरिक्त चाय के नये बाजार खोलना भी है। इसी काम के लिए इडियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड बना है। इटरनेशनल टी-एग्रीमैंट के अनुसार १ अप्रेल १९३३ से ३१ मार्च १९५५ तक भारत में चाय के क्षेत्र-फल में केवल ३१,२९२ एकड़ की ही वृद्धि हुई। १९५५ में यह समझौता टूट गया

अतएव अब सभी देशों मे चाय के क्षेत्रफल मे वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के कारण विश्व मे चाय की पूर्ति १९५३ मे १२११० लाख पौंड से बढ़कर १९५६ मे १३६५० लाख पौंड हो गई जब कि इस अवधि मे चाय की मॉग १२४९० लाख पौंड से १३१४० लाख पौंड तक ही बढी। इस प्रकार उपभोग केवल ६५० लाख पौंड का ही बढा।

भारत से चाय के निर्यात को बढ़ाने के लिए भारतीय चाय बोर्ड द्वारा निर्यात-प्रोत्साहन आदोलन किया जा रहा है। इसी के फलस्वरूप सयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैंड और आयर मे चाय परिषदो की स्थापना की गई है। १९५२ से भारत से चाय का निर्यात बढ़ता जा रहा है जैसा कि निम्न ऑकड़ों से स्पष्ट होगा :—

१९५२	४१४,८३६	ह० पौंड
१९५३	५००,६५५	,,
११५४	४४७,९६०	,,
१९५५	३६७,५२३	,,
१९५६	५२३,५५७	,,
११५७	४४७,०६४	,,

यह निर्यात अधिकतर इगलैंड, सयुक्त राज्य अमेरिका, मिश्र, आयर, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैंड, आस्ट्रेलिया, रूस, सूडान तुर्की, कनाडा, फारस आदि देशों को कलकत्ता के बन्दरगार द्वारा होता है। १९५७ में १२३,४६ लाख रुपये की चाय। (जो समस्त निर्यात का १९% था) निर्यात की गई। १९५१ मे केवल ८,०४२ लाख रुपये की चाय (कुल निर्यात का १३ ५%) निर्यात हुआ था।

(२) कहवा (Coffee)

यद्यपि कहवा-उद्योग भारत में चाय-उद्योग से कहीं कम है तथापि दक्षिण भारत में इसका क्षेत्र चाय और रबड़ दोनों से अधिक है। १९४९-५० मे भारत का कुल कहवा क्षेत्र २ लाख एकड़ था और १९५६-५७ में २५४,००० एकड़। इसमें से १६२,०४० एकड़ में, 'अरेबिका' (Arabica) किस्म की और ९२,४०९ एकड़ मे 'रोबेस्टा' (Robesta) किस्म की काफी पैदा की गई। १९५७-५८ में ३७,००० टन कहवा पैदा होने का अनुमान लगाया गया जिसमे से २४,००० टन अरेबिका और १३,००० टन रोबेस्टा किस्म की कहवा है।

भारत मे कहवा का क्षेत्रफल और उत्पादन १९५५-५६

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़ मे)	उत्पादन (००० पौंड मे)
मैसूर (कुर्ग सहित)	१४५	२३,७६०
मद्रास	१०४	९,६५१
केरल	५	५१९
अन्य राज्य	—	३०५
समस्त भारत	२५४	३४,२३५

कहवा-उत्पादन का काम भारत में पिछली शताब्दी मे १८३०-४० के बीच अत्यन्त सुदृढ़ आधार पर प्रारम्भ हुआ था। सबसे पहले मैसूर में और उसके बाद वाईनड, नीलगिरि और शिवराय-पहाड़ियो में। इसके बाद १८५४ मे कुर्ग मे कहवा उत्पादन प्रारम्भ हुआ। अब तक उसका काफी प्रसार हो चुका है। कहवा के बाग पहाड़ी ढालों पर हैं जहाँ की ऊँचाई लगभग २,००० से ४,००० फीट है। कहवा के लिए उपजाऊ गहरी मिट्टी, ६०-७० इन्च जलवर्षा और लगभग ७०° फा० तापमान चाहिये। पाला और सूखी ऋतु इसके लिए बहुत हानिकर हैं।

भारत मे कहवा-उद्योग दक्षिण तक ही सीमित है, मद्रास, केरल और मैसूर, में ही कहवा के बाग हैं। मैसूर में भारत के कहवा क्षेत्र का आधे से अधिक, और मद्रास और केरल मे प्रत्येक में २०-२० प्रतिशत है। मैसूर में कहवा के बाग पश्चिमी घाट पहाड पर अधिक हैं। वहाँ कडूर, शिमोगा, हसन, और मैसूर जिले मुख्य है। मद्रास में कहवे का उत्पादन दक्षिणी पश्चिमी भाग मे उत्तरी से अर्काट से टिन्नेवैली तक होता है। इसमे नीलगिरी क्षेत्र मुख्य है। आंध्र मे विशाखापटनम जिले से भी कहवा प्राप्त किया जाता है। द्वितीय योजना के अतर्गत चाय का उत्पादन बढ़कर ७००० लाख पौंड होने का अनुमान है जिसमें से लगभग ५००० लाख पौंड निर्यात की जायगी। प्रति एकड़ अधिकतम पैदावार कोचीन में, तथा न्यूनतम मैसूर मे होती है। भारतीय कहवा के मुख्य बाजार ब्रिटिश साम्राज्य और फ्रास हैं। कहवा के विश्व-उत्पादन को देखते हुए उसका भारतीय उत्पादन नगण्य है।

कहवा के पौधों को धूप से बचाने के लिए बड़े-बड़े पेड लगाये गये हैं। इन पेड़ों में रबड़ के पेड़ भी हैं, जिनसे रबड़ निकलती है। भारत मे ११९९० कहवा के बाग हैं जिनमें लगभग ५ हजार बाग मैसूर राज्य में हैं। इन बागों मे लगभग १३

लाख श्रमिक काम करते हैं। बागो में अधिकतर पूँजी भारतीयो की ही है। भारतीय कहवा की फसल से १९५६ ५७ मे ३३,७५५ टन की पैदावार हुई। १९५७-५८ में उत्पादन ३७,००० टन हो गया। कहवा का गृह-उपभोग लगभग १८,००० टन है अतः १९५६-५७ में १५००० टन का निर्यात रूस और जर्मनी को किया गया। साधारणतः भारतीय कहवे के मुख्य खरीदार फ्रास, जर्मनी, हॉलैंड, आस्ट्रेलिया ईराक और बेल्जियम हैं। भारत में ससार की उच्चतम कोटि का कहवा (Coffee Arabica) पैदा होता है। परन्तु विशेषकर कोस्टारिका, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका और कोलम्बिया की स्पर्धा के कारण उसके निर्यात नगण्य होते हैं। भारत मे भी कहवा का उपभोग बहुत कम होता है। भारत में जितना कहवा गृह-उपभोग में आता है उसका ९६% मद्रास, करल और मैसूर, मे ही उपभोग होता है। ४% का उपभोग भारत के शेष भागों मे होता है।

तम्बाकू (Tobacco)

तम्बाकू भी किसान के लिये धन देने वाली फसल है। विश्व में तम्बाकू पैदा करने में भारत का स्थान तीसरा है। इसका वार्षिक उत्पादन २½ से ३ लाख टन का होता है जिसका मूल्य लगभग ३० करोड़ रुपये होता है। इसके निर्यात से देश को लगभग १२ से १५ करोड़ रुपये की आय होती है। १९५६-५७ में यहाँ १० लाख एकड़ में ३८ लाख टन तम्बाकू पैदा हुई। यहाँ मुख्यतः तीन प्रकार की तम्बाकू होती हैं; हुक्का पीने की मोटे पत्ते वाली तम्बाकू, सिगार बनाने की मोटे पत्ते वाली तम्बाकू, तथा सिगरेट में भरने की पतले पत्ते वाली तम्बाकू। इस तम्बाकू का मूल्य अधिक होता है। इसके लिये सबसे उत्तम मिट्टी और अनुकूल जलवायु चाहिये। इसीलिये यह तम्बाकू केवल विशेष क्षेत्र में होती है। अन्य प्रकार की तम्बाकू भारत में थोड़ी बहुत सभी प्रदेशों में उपजती हैं। सिगरेट वाली तम्बाकू के लिये तीन क्षेत्र प्रमुख हैं; मद्रास का पूर्वी तटीय मैदान, बम्बई का प्रदेश, और गंगा का बिहार में स्थित मैदान। सिगरेट और बीड़ी का प्रचलन अधिक हो जाने से तम्बाकू का महत्व अधिक बढ़ गया है। तम्बाकू के लिए अच्छी मिट्टी और भरपूर खाद होनी चाहिए। सबसे अच्छी मिट्टी वह होती है जिसमें पानी आकर बह जाता हो। बलुई दुमट मिट्टी जिसमें कृमि पदार्थ अधिक न हों परन्तु जिसमें पोटाश, फास्फोरिक एसिड और लोहा जैसे रसायन अधिक हों तथा जिसमें जड़ें भली-भाँति फैल सकें, तम्बाकू के लिये अत्युत्तम है। भारत मे हुक्के

की तम्बाकू को उगाने के लिए चिकनी मिट्टियो के क्षेत्रो का उपयोग किया जाता है। तम्बाकू को पाला बहुत जल्दी मारता है, इसलिए इसकी खेती अधिकतर वहीं होती है जहाँ पाला का अधिक भय नहीं होता जैसे बगाल, मद्रास, बिहार और बम्बई।

भारतीय देशी तम्बाकू (Nicotiana Rustica) विश्व के शीतोष्ण प्रदेशों मे बोई जाने वाली तम्बाकू (Nicotiana Tobaccum) से अधिक जल्दी बढ़ती हैं। ८०° फा० औसत तापमान मे यह तम्बाकू शीघ्रता से बढ़ती है। इसके लिए यथेष्ट रूप से वितरित वर्षा की भी आवश्यकता होती है, अन्यथा यह कमी सिंचाई द्वारा पूरी होनी चाहिए, क्योंकि इसका पौधा पानी बहुत माँगता है। पानी का बहाव खराब होने और पानी के इकट्ठे हो जाने का तम्बाकू के पौधे पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके लिए ऐसी मिट्टी चाहिए जिससे होकर पानी अच्छी तरह बह गया हो।

तम्बाकू की खेती में परिमाण पर नहीं बल्कि पत्ती के गुण पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिए अधिक उपज और उच्चकोटि के गुण साथ साथ नहीं चल पाते, क्योकि अधिक उपज वाली पत्तियाँ मामूली ही होती हैं। उत्तम सिगरेट की तम्बाकू के योग्य उच्चकोटि की तम्बाकू के उत्पादन मे प्रति एकड़ कम उपज होना स्वाभाविक है।

भारतीय तम्बाकू का महत्व काफी है। विश्व-उत्पादन मे भारत का ऊँचा स्थान है। यहाँ कुल का लगभग ⅓ उत्पादन होता है।

भारत मे तम्बाकू का क्षेत्रफल और उत्पादन १९५७-५८

राज्य	क्षेत्रफल (हजार एकड़ मे)	उत्पादन (हजार टनों मे)	प्रति एकड उत्पादन (पौंड में)
आन्ध्र प्रदेश	३६२	१०६	६७४
आसाम	२४	७	६५३
बिहार	३१	६	५७६
बम्बई	२३६	५१	४८४
केरल	१	१	—
मध्य प्रदेश	१२	२	३७३
मद्रास	४६	२७	१,२६०
उडीसा	११	३	६११
पजाब	४	१	५६०
उत्तर प्रदेश	३३	११	७४७
प० बगाल	४२	११	५८७
मैसूर	१०३	१६	३६१
राजस्थान	६	२	४६८
भारतवर्ष	६२६	२५२	६१०

ऊपर दी हुई तालिका से ज्ञात होता है कि भारत में तम्बाकू के पूर्ण क्षेत्र का ६४ प्रतिशत और उपज का ६६ प्रतिशत मद्रास, आंध्र और बम्बई प्रदेशों में पाया जाता है। वहाँ पर तम्बाकू का क्षेत्र समतल मैदानों में ही है। भारत का सबसे बड़ा तम्बाकू का क्षेत्र गगा के निचले मैदान मे था, परन्तु अब वह भाग पाकिस्तान में सम्मिलित है। गगा की ऊपरी घाटी में तम्बाकू के लिये जाड़ा कठोर पड़ता है।

साधारणतः तम्बाकू वही बोई जाती है जहाँ बलुई दुमट अच्छी मिट्टी है और धरातल से कुछ नीचे पानी निकल आता है। तम्बाकू के खेतों मे जगह-जगह पर उथले कुएँ खोद लिए जाते हैं और उथल की कतिपय अवस्थाओं मे प्रति दिन हाथ से सिंचाई हो जाती है। सिंचाई केवल जड़ों को सींचने के लिए नही बल्कि पत्तों पर जमी हुई गर्द धोने के लिए भी की जाती है। लाल मिट्टी के क्षेत्रों में तम्बाकू की खेती नही होती है।
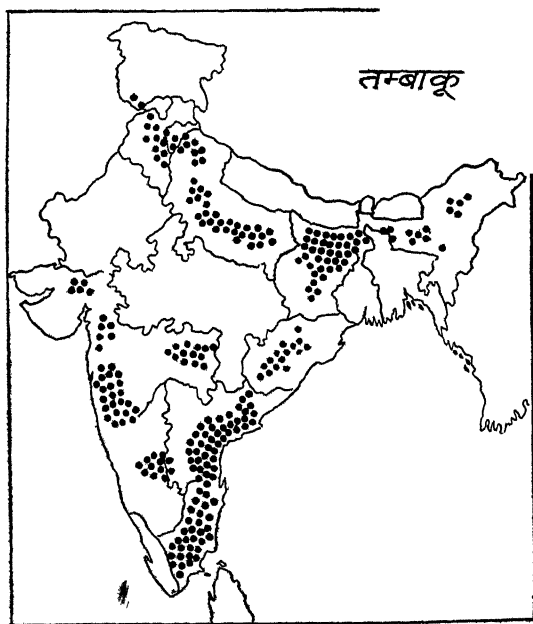
चित्र ३०—तम्बाकू के उत्पादक क्षेत्र

मद्रास मे सभी जिलों मे तम्बाकू बोई जाती है, यद्यपि पश्चिमी तट और नीलगिरि मे इसका क्षेत्र बहुत कम है। आध्र में इसका सबसे अधिक क्षेत्र गुन्टूर, कृष्णा, पूर्वी तथा पश्चिमी गोदावरी मे हैं। मद्रास के पूर्वी तट पर सिंचाई का यथेष्ट प्रबन्ध है और वहाँ उपजाऊ काली मिट्टी है। इस मिट्टी मे धीमा ढाल है जिससे वहाँ पानी नही रुकता है। वहाँ पर रासायनिक खाद का भी अधिक प्रयोग होता है। मद्रास मे अधिकतर अमेरिकन जाति की वर्जिनिया पत्ते वाली तम्बाकू बोई जाती है।

भारतीय उत्पादन का अधिकाश भारत में ही इस्तेमाल होता है। बिना बनाई पत्ती का लाभदायक निर्यात भी होता है। अग्नि द्वारा सुखाई हुई तम्बाकू (फ्लूक्योर्ड) तथा अन्य प्रकार की सिगरेट के योग्य तम्बाकू क उत्पादन के कारण भारत मे सिगरेटों का आयात कम हो गया है। अग्नि द्वारा तम्बाकू सुखाने वाले घरों (बार्न) की सख्या अब २,००० से अधिक है। भारत मे अग्नि द्वारा तम्बाकू सुखाने की प्रथा पूसा की अनुसन्धानशाला से प्रचलित हुई थी।

(१) कपास (Cotton)

(ग) रेशेदार पौधे :

देश के बॅटवारे के पहले तक कपास भारत की सर्व-प्रमुख व्यावसायिक फसल थी। चार सौ सूती मिलों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करने के अतिरिक्त इस फसल द्वारा खेतिहरों तथा इसका व्यापार करने वालों की सन् १६३५-३६ मे इसके निर्यात द्वारा ३४ करो. रुपये प्राप्त हुए थे। १६३५-३६ में कुल निर्यात का दाम १६० करोड़ रुपया था। इसमें कच्ची रुई का दाम सबसे अधिक था, कुल का लगभग पंचमाश। यह भारतीय किसान के लिए प्रमुख मुद्रादायनी फसल थी; परन्तु बॅटवारे के बाद से भारत रुई में आत्मनिर्भर नहा है। अब भी भारत ससार का दूसरा सबसे बड़ा रुई उत्पादक देश है। सयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ कपास क्षेत्र इतना विस्तृत हो जितना भारत में। भारत में कपास का क्षेत्र-फल और उसकी उपज नीचे दी जाती है :—

वर्ष	लाख एकड़ क्षेत्र	लाख गाँठे (३९२ पौड वाली)
१९४९-५०	११७	२१
१९५०-५१	१३८	२९
१९५१-५२	१५१	३०
१९५४-५५	१८२	४३
१९५५-५६	१९९	४०
१९५६ ५७	१९८	४७
१९५७-५८	२०२	४८

क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से भारत मे इस फसल का छठवाँ स्थान है।

सापेक्षिक रूप से बम्बई और मध्य प्रदेश मे कपास की खेती का महत्व अधिक है, क्योंकि वहाँ इसका क्षेत्र कुल कृषि-क्षेत्र का १९ से २० प्रतिशत तक है। अन्य प्रदेशों में यह अपेक्षाकृत महत्वहीन है, उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश में इसका क्षेत्र कृषि-क्षेत्र का केवल १ प्रतिशत है। अन्य व्यावसायिक फसलों की स्पर्धा के अतिरिक्त यह तथ्य भी है कि कपास काली मिट्टी के प्रदेश के बाहर ठीक से नहीं उगती। कपास की उपज का चित्र (चित्र) और मिट्टी का चित्र (चित्र, की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत मे कपास की खेती 'काली मिट्टी के प्रदेश' से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। गहरी काली मिट्टी में नमी अधिक होती है जो कपास की उपज मे सूखी ऋतु मे बहुत सहायक सिद्ध होती है। भारत की जलवायु में सूखी ऋतु अधिक लम्बी होती है। इस फसल का सबसे अधिक केन्द्रीकरण भड़ौच, खानदेश, बरार और टिनेवेल्ली मे है। ये सभी दक्न के पठार में हैं। इस पठार के बाहर इसका केन्द्रीकरण, यद्यपि उतना नही पजाब में है। पजाब का क्षेत्र अवश्य ही सिंचाई सम्पन्न कपास का क्षेत्र है। इस फसल का दो-तिहाई से अधिक क्षेत्र बम्बई, मध्य प्रदेश और मद्रास मे है। उत्तर के कछारी मैदानों में तो इसका केवल एक-चौथाई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि काली मिट्टी का क्षेत्र तथा उससे लगे हुए क्षेत्र किस प्रकार दकन के किसान को इस मुद्रा-दायनी फसल को उगाने में सहायक होते हैं।

भारत में कपास उगाने में मिट्टी का महत्व सबसे अधिक है। कपास के लिए उपजाऊ चिकनी मिट्टी चाहिये जिसमें नमी अधिक समय तक बनी रहती है, परन्तु जिसमें पानी न जमा हो। वास्तव में गगा के निचले मैदान का अधिकतर भाग कपास

के योग्य इसीलिए नही है कि उसमे पानी बहुत भरा रहता है। यदि मिट्टी में नमी कम हो तो सिचाई का प्रबन्ध होना आवश्यक है। नहर की सिचाई इसके लिए पर्याप्त नही होती है। कपास के लिए ऊँचा तापमान लगभग ८०° फा० चाहिये जो अधिक अदले-बदले नही। पकते समय शुष्क ऋतु और कड़ी धूप आवश्यक हैं। खाद की भी आवश्यकता पड़ती है। चुनाई और निराई के लिए सस्ते मजदूर भी अधिक सख्या में चाहिये। भारत की कपास सूखी ऋतु मे पकती है। इसीलिए उसके फल शीघ्र खुलते हैं। इसीलिए उसकी चुनाई जल्दी-जल्दी करनी पड़ती है। नमी कम होने से कपास जमीन मे प्राय. गिरने लगती है।

कपास का उत्पादन भारत मे तीन प्रकार की मिट्टियों में किया जाता है :

(१) भारी दोमट मिट्टियाँ जो सौराष्ट्र, गुजरात, खानदेश और कर्नाटक मे मिलती हैं और जिन्हें सम्मिलित रूप से 'कपास की काली मिट्टी' कहते हैं।

(२) लाल और काली चट्टियल मिट्टी—दक्कन, बरार और मध्य प्रदेशों में।

(३) सतलज-गगा के कछारी मैदान में।

नीचे दिये गए चित्र मे कपास के उपयुक्त जलवायु का सकेत है :—
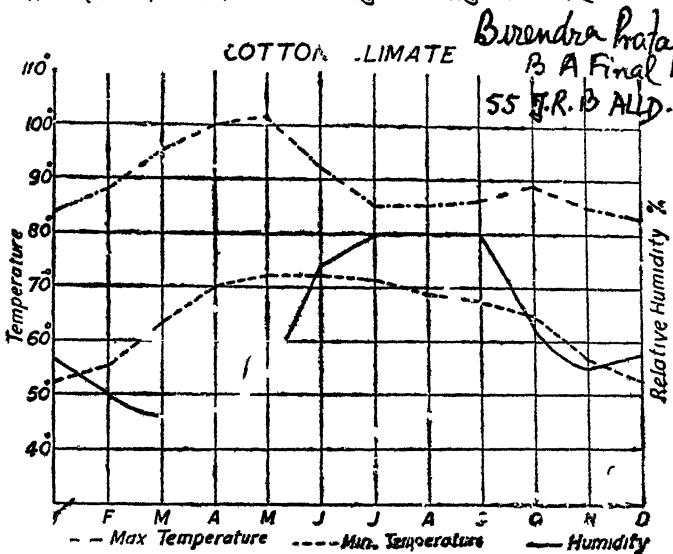
चित्र ३१—कपास के उपयुक्त जलवायु

इस ग्राफ से तीन बातें प्रकट होती हैं :—

(१) कपास उगने के समय, अर्थात् जुलाई से सितम्बर तक, बराबर उच्च तापमान (७०° फा० और ८५° फा० के बीच) रहते हैं।

(२) उच्च तापमान के इस काल मे अधिक नमी भी होती है, लगभग ८०% काफी गर्मी और काफी नमी का यह मिश्रण कपास के पौधे को उगने मे बहुत सहायता देता है।

(३) लगभग अक्टूबर से नमी काफी कम होने लगती है, परन्तु दिन के तापमान का अधिकतम ८०° फा० के ऊपर ही रहता है। इस कारण, आसमान साफ रहता है और कपास की बोड़ियाँ पक कर धूप में सूख कर फट जाती हैं और रुई बाहर निकल आती है।

ग्राफ से यह भी स्पष्ट है कि भारत मे मार्च से ही कपास उगाने की तापमान दशाएँ अनुकूल हो जाती हैं परन्तु नमी की कमी रहती है, यह नमी की वक्र रेखा की निम्नगामी प्रवृत्ति से प्रकट होता है।

कपास की खेती में इस बात का महत्व होता है कि वर्षा कब और कितनी होती है। यदि वर्षा पर्याप्त न हुई तो भूमि चाहे जितनी अच्छी हो उसमें कपास की खेती नहीं हो सकती। इसी प्रकार, यदि बहुत अधिक वर्षा हुई तो भी कपास की खेती को क्षति पहुँचती है; क्योंकि उससे वानस्पतिक उन्नति तो बहुत बढ़ जाती है परन्तु फल (बोड़ियाँ) कम निकलते हैं। कपास फलों से ही निकलती है, इसलिए ऐसी दशा मे कपास कम बोई जाती है।

कपास की खेती के लिए सस्ते श्रम की भी आवश्यकता होती है। कपास को हाथ से ही सावधानी से चुनना होता है। चुनने वाले को देख-देखकर केवल फटे हुए फलों से कपास चुनना होता है। फल नही तोड़ने होते हैं।

दक्षिण-भारत में कपास की दो फसलें होती हैं : पहली फसल ग्रीष्म की मानसून से आरम्भ होने पर बोई जाती है और दूसरी फसल उस मानसून के अन्त होने पर। इस व्यवस्था से कपास बोने में मिट्टी की नमी का पूर्ण लाभ उठाया जाता है। पहली फसल से लगभग जनवरी तक और दूसरी फसल से लगभग अप्रैल तक कपास मिलती है।

वर्षा का चित्र (चित्र ६) देखने से विदित होगा कि भारत में अधिकांश कपास ऐसे क्षेत्रों में होती है जिनमें ३० से ४० इंच तक वार्षिक वर्षा होती है। चित्र

६ से यह विदित है कि प्रमुख कपास क्षेत्र मे कपास चुनने का मौसम (नवम्बर से फरवरी तक) शुष्क ही रहता है।

भारत मे सर्वश्रेष्ठ कपास उपजाने की अनुकूल दशाओं वाले क्षेत्र सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद और सौराष्ट्र हैं।
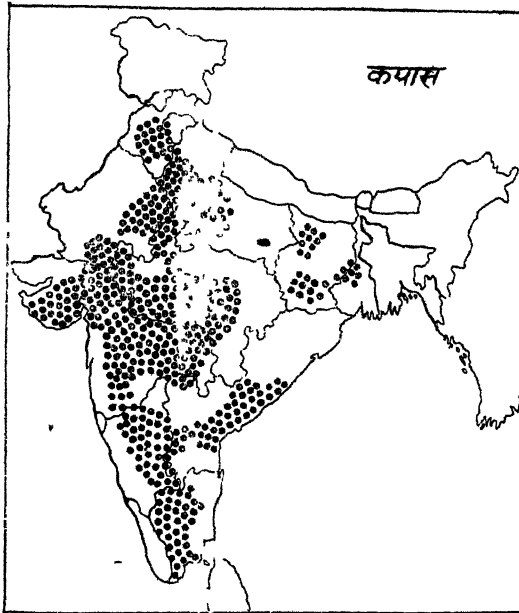
चित्र ३२—कपास उत्पादक क्षेत्र

बम्बई प्रदेश में कपास की खेती के प्रमुख क्षेत्र अहमदाबाद, भड़ौच, सूरत, कर्नाटक, धारवाड और खानदेश हैं। भड़ौच मे मिट्टी गहरी और उसमे नमी रुकी रहती है। कुछ भागों में काली मिट्टी पाँच फीट तक गहरी है। अधिकाश भाग मे ३५ इंच से अधिक वर्षा होती है। मानसून आरम्भ होने पर जितनी जल्दी सम्भव होता है फसल बो दी जाती है। यहाँ कपास अकेली ही बोई जाती है। परन्तु जहाँ वर्षा काफी होती है और जमीन में पानी को रोक रखने की शक्ति अधिक होती है (जैसे भड़ौच में) वहाँ इसके साथ-साथ धान भी बोया जाता है। परन्तु साधारण

प्रकार से कपास के साथ बोई जाने वाली प्रमुख फसल ज्वार है। अक्तूबर नवम्बर में कपास की चुनाई आरम्भ हो जाती है और मार्च-अप्रैल तक फसल का अन्त हो जाता है।

कर्नाटक, धारवाड़ और खानदेश मे मानसून के कारण खेती मे कुछ अन्तर करने पड़ते हैं। अगर दूसरे क्षेत्रों की तरह जून मे बोआई की जाय तो कपास निकलने का समय उत्तरी-पूर्वी मानसून का मध्यकाल हो और इसलिये सारी खेती वर्षा द्वारा नष्ट हो जाय। इससे बचने के लिए साधारणतः वहाँ अगस्त के अन्त तक कपास की बोआई शुरू होती है।

खानदेश मे दो प्रकार की कपास बोई जाती है। एक गहरी काली मिट्टी पर और दूसरी हल्की मिट्टी पर। हल्की मिट्टी वाली फसल की पैदावार यदि वर्षा अधिक होती है तो सबसे ज्यादा होती है। जब वर्षा साधारण होती है तब गहरी काली मिट्ट्री में उपज अधिक होती है।

मध्य प्रदेश मे जून में वर्षा होते ही बोआई शुरू हो जाती है, नवम्बर मे चुनाई शुरू होती है और वह मार्च तक पूरी हो जाती है।

मद्रास मे देशी कपास की दो किस्मे उगाई जाती हैं। एक दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर निर्भर रहती है और दूसरी दक्षिणी-पूर्वी मानसून पर। पहली फसल मई और जुलाई के बीच बोई जाती है और दूसरी सितम्बर और नवम्बर के बीच टिनेवल्ली में दोनों एक ही मौसम में बोई जाती हैं, अर्थात् अक्टूबर से नवम्बर तक। तामिल प्रदेश में जहाँ कपास काली तथा लाल मिट्टियों पर उगाई जाती है, काली मिट्टी पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के काल में बोआई होती है, क्योंकि वहाँ उस समय अधिक वर्षा नहीं होती और लाल मिट्टी में जो कि हल्की होती है, दक्षिणी-पूर्वी मानसून के दिनों में बोआई होती है क्योंकि तब वहाँ खूब वर्षा होती है।

प्रायद्वीप के बाहर कपास की खेती मे सिंचाई महत्वपूर्ण है। इसलिए जहाँ सिंचाई की व्यवस्था है वहाँ बोआई के लिए वर्षा की प्रतीक्षा नही की जाती। जिन क्षेत्रों में उक्त सुविधाएँ नहीं हैं वहाँ तो वर्षा की प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है। इस प्रकार बोने का मौसम मार्च से अगस्त तक होता है। पाले के डर से पंजाब में जनवरी तक चुनाई पूरी हो जाती है।

भारत में कई प्रकार की कपासें बोई जाती हैं जो साधारणतया देशी और विदेशी दो भागों में विभक्त हैं। भारत की देशी कपासों में भड़ौच की कपास सबसे

चित्र ३३—कपास की फसल

अच्छी होती है। भड़ौच क्षेत्र उत्तर मे पार नदी से अहमदाबाद जिले की दक्षिणी सीमा तक फैला हुआ है। यह क्षेत्र भारत के सर्वोत्कृष्ट कपास क्षेत्रो मे से है। किसी समय कपास का यह क्षेत्र सर्वोत्कृष्ट था। कुछ निम्नकोटि की कपासों की मिलावट हो जाने के कारण इसका महत्व अब बहुत घट गया है। देशी किस्मों में भड़ौच की कपास का रेशा सबसे अधिक अच्छा और लम्बा होता है। दूसरी महत्वपूर्ण किस्मे बराबर में होने वाली उमरा है।

गुजरात मे होने वाली ढोलेरा, बम्बई और बगाल मे होने वाली धारवाड़ है। उत्तरी भारत मे निम्नकोटि की देशी कपास होती है जिसको 'बगाल' कपास कहते है। लगभग सभी देशी किस्मो का रेशा छोटा और खुरदुरा होता है। विदेशो से कुछ कपासो को मॅगाकर देशी किस्मों की कपास का उनसे योग किया गया है जिससे कि अधिक अच्छे और लम्बे रेशे वाली रुई पैदा हो सके। इन उन्नत कपासों मे दक्षिणी पूर्वी मद्रास की 'कम्बोडिया कपास' तथा दक्षिणी-पश्चिमी पजाब की 'पजाब-अमेरिकन कपास' का नाम उल्लेखनीय है। भारत में अच्छी रुई की मॉग बढ़ रही है इसलिए उसमे गुणात्मक-उन्नति करने के समस्त प्रयत्न किए जा रहे हैं।

सन् १६४३-४४ में भारत उत्तम और मध्यवर्ती किस्म की कपास, कुल कपास उत्पादन की ६२% थी। इन उन्नत किस्मों की कपासों के रेशे लम्बे अथवा मध्यम होते है। इन रेशों की लम्बाई ७/८ इंच या उससे कुछ अधिक होती है।

पिछले वर्षों में रेशे की लम्बाई के अनुसार कपास कितनी गाँठों का उत्पादन हुआ वह बताया गया है :—

वर्ष	७/८″ (लबे रेशे वाली)	११/१६″ (मध्यम रेशे वाली)	११/१६″ से नीचे (छोटे रेशे वाली)
	(हजार गाँठों मे		
१९५३-५४	१,३६५	१,६२३	६४७
१९५४-५५	१,५८७	१,८८६	८२५
१९५६-५७	२,०१८	१,९५०	७६७
१९५७-५८	१,९८२	१,९२६	८४१

भारत मे कपास के कुल उत्पादक क्षेत्र का १७% छोटे रेशेवाली, ४४% मध्यम रेशेवाली और ३९% लम्बे रेशेवाली कपास के अन्तर्गत है। कुल उत्पादन का १६% छोटे रेशेवाली ४३% मध्यम रेशेवाली और ४१% लम्बे रेशेवाली कपास का है।

भारतीय कपास मे इतनी उन्नति हो जाने भी वह अमरीकनी कपास से बहुत पीछे है।

नीचे की तालिका मे विभिन्न प्रकार की कपास का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है (१९५७-५८)

किस्म	क्षेत्रफल (००० एकड़ मे)	उत्पादन (००० गाँठों मे)
बॅगाल	१०६३	४६१
अमेरिकन्स	३५६५	१३२७
जरीला	३३३०	८१०
एच ४२०	८३६	१५०
ओमरस	१६३५	२६४
हैदराबार गवोरानी	१८६८	२२४
मालवी	१०९३	२३६
भड़ौंच विजय	१४४३	३४९
सूरती सूयोग	७५४	१६२
धोलेरास	२३४४	३७६
सदरनस	२१७४	३७८
कोमिलास	५३	१६
योग	२०१५८	४७५३

अच्छी प्रकार की कपास की उन्नति करने के ध्येय से १९२३ मे सरकार ने एक कपास-यातायात एक्ट बनाया था जिससे अच्छी कपास के कटिबन्ध मे खराब कपास ले जाना निषिद्ध हो गया। भारत में कपास भी अन्य कृषि पदार्थों की भाँति उत्पत्ति-स्थल के नाम के अनुसार मे बिकती है। एक ही किस्म की कपास जब दो स्थानों पर उगाई जाती है तो उसमे कुछ न कुछ अंतर आ जाता है। यह अन्तर सशयहीन खरीदारों के लिए अत्यन्त आकर्षणपूर्ण होता है। उपर्युक्त एक्ट तथा अन्य नियमों द्वारा इस ओर कदम उठाए गए हैं कि अच्छी कपास के कटिबन्धों मे खराब कपास न उगाई जा सके। ऐसे कटिबन्ध बम्बई मे सात, मद्रास मे दो और मध्य प्रदेश मे एक है।

भारत मे साफ की हुई रुई की प्रति एकड़ उपज बहुत कम है, केवल ९० पौंड प्रति एकड़। यह मिश्र के ४०० पौंड क औसत तथा अमेरीका के २७० पौंड के औसत के समक्ष बहुत ही है। यह देखा गया है कि सिंचाई के खेतों वाली कपास की उपज बिना सिचाई वाले खेतों की उपज की अपेक्षा अधिक होती है। उदाहरणार्थ, मद्रास में सिंचाई के खेतों वाली कपास की औसत उपज २५० पौंड प्रति एकड़ है, और बिना सिचाई वाले खेतो की उपज केवल ७३ पौंड प्रति एकड़ है। परन्तु भारत मे कपास की अधिकाश खेती बिना सिंचाई के होती है। १९५५-५६ मे कुल कपास के क्षेत्र के केवल १४ ६ लाख एकड़ मे सिंचाई हुई। सिंचाई होने वाले क्षेत्र कपास कटिबन्ध के बाहर पड़ते है। काली मिट्टी के प्रदेश की किसी भी कपास मे सिंचाई नही होती। सिंचाई वाले कपास क्षेत्र का अधिकतम अश पंजाब, दक्षिणी-पूर्वी मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में है।

भारत की कपास की खेती की एक विशेषता यह है कि भारत मे कपास की फसल के बाद उसी खेत मे अन्न की एक फसल उगा लेते हैं। अमेरिका और मिश्र मे ऐसा नहीं होता। इसलिए भारत में पूरी कपास चुनने के पहले ही खेत को साफ करना पड़ता है। जिस वर्ष मानसूनी वर्षा देर मे शुरू होती है उस वर्ष कपास के उत्पादन को क्षति पहुँचती है, क्योंकि यह स्मरणीय है कि विशेषकर काली मिट्टी के क्षेत्र मे तथा अन्य क्षेत्रों मे भी पहली मानसूनी वर्षा के साथ ही कपास बोई जाती है। उत्तरी भारत मे लम्बे रेशे वाली कपास की अनेक बोड़ियाँ तथा देशी कपास की भी बहुत सी बोड़ियाँ दिसम्बर मे तापमान कम हो जाने के कारण खुल ही नहीं पातीं। काली मिट्टी का क्षेत्र और साधारण प्रकार से पूरा दक्षिणी क्षेत्र इस दृष्टि से लाभ में

हैं। वहाँ जाड़ों मे भी काफी गर्मी रहता है, कड़ी धूप होती है और कपास चुनने का काम जाड़ों मे भी होता रहता है; कभी-कभी तो जुलाई तक होता रहता है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ से भारत मे कच्ची रुई का गृह उपयोग बढ़ रहा है। १९३५-३६ और १९३७-३८ के बीच भारतीय मिलों मे भारतीय कपास का औसत उपयोग लगभग २७ लाख गाँठे थीं। १९५०-५१ मे यह मात्रा ३६ लाख गाँठे हो गई। और १९५५-५६ मे ४४ लाख गाँठे। भारत मे लबे रेशे वाली कपास का उत्पादन कम होने से यह विदेशों से आयात की जाती है। १९५४ ५५ मे ५३·३ करोड रुपये, १९५५-५६ मे ४८ करोड़ और १९५६-५७ में ५० करोड़ का कपास आयात किया गया। उपभोग का अधिकाश लम्बे तथा माध्यमिक रेशे वाले कपास का होता है।

यद्यपि सयुक्त राज्य अमेरिका ससार का सबसे बड़ा कपास उत्पादक है। तथापि वह भारत से कपास खरीदता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में खुरदुरी, सफेद और छोटे रेशे वाली रुई नहीं पैदा होती। ऐसी रुई सूती कबल तथा सूती और ऊनी मिले हुए कंबल बनाने के लिए प्रयोग मे लाई जाती है। अमेरिकी रुई ऊन मे मिलती नही है और इसीलिए उससे सूती कबल नही बन पाते। ऐसे कबलो का अमेरिका के शीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में बड़ा चलन है। भारतीय रुई का थोड़ा-सा इस्तेमाल कपड़ो मे गद्दी (पैड) लगाने के लिए भी किया जाता है।

वे विशेष गुण जिनके कारण भारतीय रुई अमेरिका जाती है प्रमुख रूप से उसका खुरदुरापन, सफाई और सफेदी हैं। हाल तक चीन (विशेषकर उत्तरी चीन) अब उपलब्धि के केन्द्रों के वर्ग से बहिष्कृत कर दिया गया है। इसके कारण गत युद्ध-काल मे सयुक्त राज्य अमेरिका को भारत से छोटे रेशे की रुई भेजने में अधिक प्रगति हुई।

भारत मे कपास का क्षेत्रफल और उत्पादन १९५७-५८

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़ मे)	उत्पादन (००० गाँठो मे)*	प्रति एकड़ उत्पादन (पौंड मे)
आन्ध्र प्रदेश	९३९	१२७	५३
आसाम	३४	८	९२

* प्रत्येक गाँठ में ३९२ पौंड रुई होती है।

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़ मे)	उत्पादन (००० गाँठो में)	प्रति एकड़ उत्पादन (पौंड में)
बिहार	५	१	७८
बम्बई	१०६८८	२१३०	७६
केरल	२१	८	१४६
मध्यप्रदेश	१६८२	४६४	६२
मद्रास	११६५	३६२	१३२
मैसूर	२६८४	५१२	७५
उड़ीसा	२३	२	३४
पंजाब	१५२२	८२५	२१२
राजस्थान	५७८	२१५	१४६
उत्तर प्रदेश	१६६	६१	१२२
त्रिपुरा	१६	८	१६५
भारत का योग	२०,१५८	४,७५३	६२

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत कपास का उत्पादन ५५ लाख गाँठो से बढ़ाकर ६५ लाख गाँठे करने का आयोजन है अर्थात् कपास के उत्पादन मे ५६% की वृद्धि की जायेगी।

(२) जूट (पाट) (Jute)

देश के बँटवारे से भारत को सबसे अधिक क्षति जूट की उपलब्धि के क्षेत्र में हुई है। जूट कपास के बाद दूसरी लाभपूर्ण रेशों वाली फसल है। १९४७ मे भारत का कुल जूट-क्षेत्र २३ लाख एकड था उसमे से १८ लाख एकड़ से अधिक पाकिस्तान में चला गया। जूट-उत्पादन के सर्वोत्कृष्ट जिले : मैमनसिंह, ढाका, रॉगपुर, बोगड़ा, पबना आदि जो ब्रह्मपुत्र की सीमा पर स्थित हैं और उसकी बाढ़ों मे आ जाते हैं जिससे उनमें उपजाऊ मिट्टी जमा हो जाती है, आज पाकिस्तान मे हैं। पुरातन ब्रह्मपुत्र अर्थात् जमुना में गगा की अपेक्षा अधिक स्वच्छ जल है जो कि जूट के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। जूट की खेती दक्षिण की ओर गंगा के मुहाने के पास कम होती

जाती है; क्योंकि वहाँ जमीन इतनी नीची है कि जूट के लिए अनुपयुक्त है। पश्चिम मे दकन पठार की ओर मी जहाँ पथरीली जमीन अधिक है, जूट की खेती कम होती है।

भारत मे जूट का क्षेत्रफल और उत्पादन १९५७-५८

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़ मे)	उत्पादन (००० गाँठों में)	प्रति एकड़ उत्पादन (००० पौंड में)
आसाम	३४६	१०६४	१,२५४
बिहार	४७७	७७८	६५२
उड़ीसा	६४	२०८	८८५
उत्तर प्रदेश	५६	१२३	८७६
पश्चिमी बगाल	७५६	१८३०	५८७
त्रिपुरा	१६	५५	—
भारतवर्ष का योग	१,७५४	४,०८८	६३२

साधारणतः जूट की खेती उस उभरी हुई जमीन पर होती है जो नदियो के पुराने या नए कगारों के कारण बन जाती है। गर्तों मे धान और जूट को बारी बारी से बोते हैं। सर्वोत्कृष्ट जूट दुमट मिट्टियो में होता है। काँपदार मिट्टियों मे उत्पादन अधिक होता है, परन्तु एकरूपता नहीं होती। बलुई मिट्टियों मे रेशे खुरदुरे होते हैं। जूट के उत्पादन मे मिट्टी की अपेक्षा जलवायु की दशाओं का महत्व अधिक है। गर्म, नम जलवायु, जिसमें विशेषकर मौसम के आरम्भ में वास्तविक वर्षा बहुत अधिक नही होती, इसके लिए सबसे अधिक अनुकूल है।

भारत मे जूट की दो प्रधान प्रकारे होती हैं; चीनी जूट और देशी जूट। चीनी जूट नदियों के किनारों, उभरे हुए (चर) या नदी के द्वीपों मे बोया जाता है। देशी जूट मुख्य रूप से नीची भूमि (बील), अर्थात् पूरी तरह पानी में डूबे हुए क्षेत्रो और सुन्दर बन जैसी लवण मिश्रित मिट्टियों में उगता है। भारत के अनेक भागों मे ये दोनो प्रकार के जूट साथ-साथ उगते हैं।

चित्र ३४—जूट उत्पादक क्षेत्र

भूमि के ऊँचे और नीचे होने पर ही जूट के बोने का समय निर्भर रहता है। निम्न भूमियों मे बाढ़े आती हैं। इसलिए वहाँ उच्च भूमियो की अपेक्षा जल्दी ही बोआई कर दी जाती है। इस प्रकार बालू भूमियों पर फरवरी से मार्च तक तथा उच्च भूमियों (चर) पर मार्च से जून तक जूट की बोआई होती है। कटाई का समय फसल के जल्दी या देर से बोए जाने पर निर्भर करता है जो फसल सबसे पहले बोई जाती है उसी से कटाई शुरू होती है; अर्थात् लगभग जून में। समस्त फसलों के लिए कटाई का मौसम अगस्त से सितम्बर के अन्त तक रहता है।

जिन जिलों में नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी अधिक जमा होती है वे अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतर होते है, क्योंकि साधारणतः जूट की खेती मे खाद का प्रयोग नहीं होता।

बँटवारे के पहले भारत के पास समस्त विश्व मे जूट पर एकाधिकार था। परन्तु आजकल पाट का प्रमुख उत्पादक पाकिस्तान है, यद्यपि उपभोग अधिकतर भारत मे है।

जूट उद्योग को ६५ लाख गाँठों की आवश्यकता होती है इसलिए आवश्यकता

के अनुसार हमे सदा पाकिस्तान से आयात करना पड़ता है। १६५४ ५५ से १६५६-५७ तक कलकत्ते में जो भारतीय और पाकिस्तानी जूट पहुँचा उसका विवरण इस प्रकार है :—

वर्ष	भारत से	पाकिस्तान से (००० गाँठे)	योग
१६५४-५५	४,३०५·०	१,२११ ०	५,५१६ ०
१६५५ ५६	४,७५३·०	१,४२६ ०	६,'८२·०
१६५६-५७	५,४६३ ६	६२५ ४	६,०८६ ०

यह स्मरणीय है कि जूट का सबसे अधिक उपयोग बाँधने (पैकिंग) के लिए होता है। किसी भी अन्य पैकिंग के माध्यम मे जूट के बराबर सस्तापन, टिकाऊपन और मजबूती नहीं होती। अन्य देशो मे जूट के स्थान पर किसी दूसरे पदार्थ को स्थानापन्न करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं: परन्तु व्यर्थ। भारत मे कच्चे जूट की उपलब्धि को बढ़ाने के लिए उसके क्षेत्र मे वृद्धि की जा रही है। दी हुई सारिणी मे आँकड़े दिए गए हैं :—

	लाख एकड़	लाख गाँठे
१६४८-४६	८	२०
१६४६ ५०	११½	३१
१६५०-५१	१४	३३
१६५१ ५२	१७	४१
१६५४-५५	१२½	३१½
१६५५-५६	१७	४१·६
१६५६-५७	१६	४२·२
१६५७-५८	१८	४४ ०

बगाल, बिहार, और आसाम मे सबसे अधिक वृद्धि हुई है। केरल और उत्तर प्रदेश (तराई) में भी अब जूट की खेती आरम्भ हो गई है। जूट की किस्म सुधारने के लिए ८ सरकारी फार्म स्थापित किये गये हैं—जिनमें से ३ प० बङ्गाल में, ३ बिहार में, १ उत्तर प्रदेश और १ उड़ीसा में है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत जूट का उत्पादन ५० लाख गाँठों से बढ़ाकर ५५ लाख गाँठें करने का आयोजन है।

(ग) फुटकर फसलें (Miscellaneous Crops)

उपर्युक्त फसलों के अतिरिक्त भारत में अनेक फुटकर फसले भी होती हैं। इन फसलो का महत्व स्थानीय होता है। शीत-शीतोष्ण भूमियों की खेती के विपरीत फुटकर फसलें विश्व भर मे उष्णदेशीय खेतियों की विशेषता है।

फल—फलों और तरकारियों की खेती भारतीय खेती का महत्वपूर्ण अङ्ग नहीं है। भारत में ४० लाख एकड़ में फल (३० लाख एकड़) और तरकारी (१० लाख एकड़) पैदा की जाती है। इनका उत्पादन क्रमशः ६० लाख टन और ४० लाख टन होता है। प्रति व्यक्ति पीछे फल का दैनिक उपभोग १½ औंस और तरकारी का १¼ औंस होता है जबकि कम से कम उपभोग ३ औंस और १० औंस का होना चाहिए। भारत के कुल खेती वाले क्षेत्र के २ प्रतिशत से अधिक में फल और तरकारी नहीं बोई जाती। इस क्षेत्र का अधिकाश गगा ब्रह्मपुत्र मे है। गगा के उतार की ओर बढ़ते जाइए तो यह क्षेत्र भी बढता जायगा। उत्तर प्रदेश में कुल कृषि-भूमि का १%, बिहार में २·५%, बङ्गाल में ३% और आसाम मे ६·५% तरकारी और फल बोने के काम में आता है। फलों के मुख्य उत्पादक कागड़ा और कुलू तथा काश्मीर की घाटी। आसाम के पहाड़ी जिले, कोकन, मलाबार तथा नीलगिरी की पहाड़ियों और बम्बई, मध्य प्रदेश है।

फलों मे आम, केला, नारियल सर्व-प्रमुख हैं। आम भारत के नम, कछारी प्रदेशों की विशेषता है। इसके लिए गगा की मध्य घाटी अन्य किसी भी भाग की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है। पिछले वर्षों में पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के नहर सिंचित भागो में आम के पेड़ लगाये गए हैं। दकन के उपजाऊ भागो में भी आम के पेड़ लगाए गये हैं। अब मद्रास, आन्ध्र और मैसूर भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गए हैं। गगा घाटी के बाहर बम्बई भी आमो के लिए महत्वपूर्ण है। आम भारत के गाँवों की जनता के भोजन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। रेल की सुविधाओं के कारण अच्छी किस्मों के आमों का अन्तर्देशीय व्यापार बढ़ रहा है।

जिस प्रकार आम उत्तर का फल है, उसी प्रकार केला और नारियल दक्षिण के फल हैं। व्यावसायिक दृष्टि से नारियल अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह केला या आम की भाँति शीघ्र नष्ट नही होता। प्रायद्वीप के वे भाग जहाँ अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है, विशेषकर मालाबार तट, केला और नारियल की उपज मे महत्वपूर्ण है।

(Economical Geography)
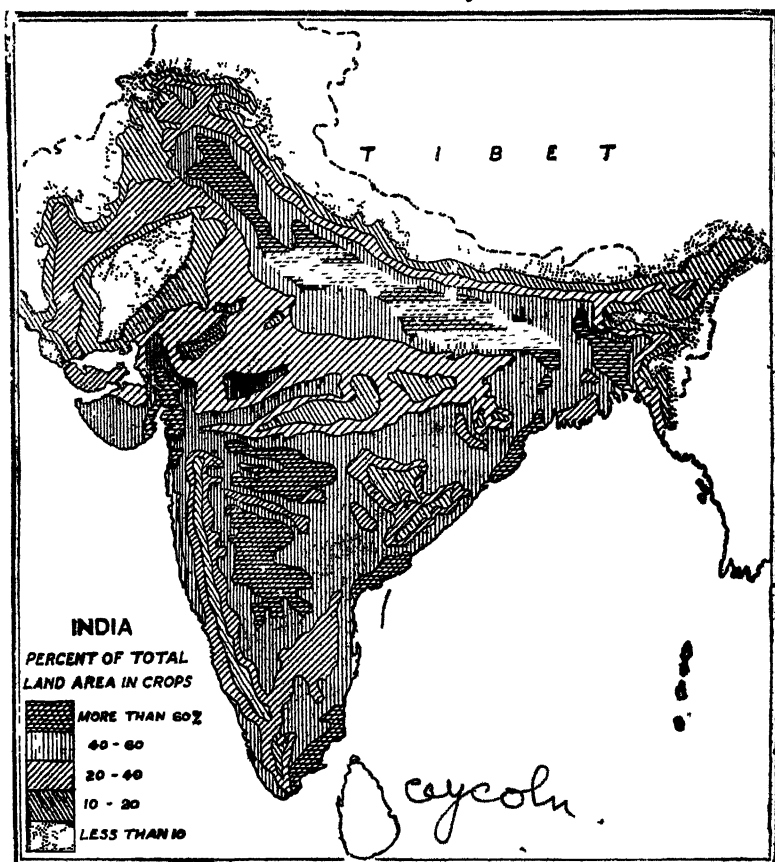
चित्र ३५—Percentae of Crop Area

नीबू और सन्तरे भारत भर मे उगाए जाते हैं, परन्तु कुछ क्षेत्रों मे इनकी खेती अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक सघन होती है। इन सघन खेतियों के क्षेत्रों में नागपुर, आसाम और हिमालय के कतिपय बाहरी क्षेत्र जैसे सिक्किम और बुटवल हैं।

सेब, नासपाती, अखरोट, बादाम तथा खोबानी आदि हिमालय के शुष्कतर बाहरी भागों मे उगते हैं।

नागरिक जनसख्या की वृद्धि तथा फलों के प्रचार के कारण पिछले वर्षों मे फलों का उत्पादन बहुत बढ़ा है।

चारा और पशु जन्य पदार्थ

भारतीय कृषि मे चरी की फसलें महत्वपूर्ण नहीं हैं। भूमि पर जनसख्या के दबाव तथा मास के अपेक्षाकृत कम व्यवहार के कारण भारतीय खेती में चरी को कोई स्थान नहीं मिल पाया है। भारतीय पशु, जिन पर भारत की पूरी कृषि निर्भर है, चारे के लिए केवल प्रधान फसलों की गौण उपज ही पाते हैं। इसीलिए वे शीतोष्ण प्रदेशों के पशुओं की अपेक्षा कमजोर हैं, क्योंकि वहाँ पर चरी बोने को अन्न के उत्पादन के समकक्ष ही महत्व दिया जाता है। भारत में पशुओं के लिए ४% बोई गई भूमि पर चरी और बरसीम घास बोई जाती है जबकि इग्लैंड मे २५% में और मिश्र मे १६% बोई जानेवाली भूमि पर पशुओं के लिए चारा तथा अन्न उत्पन्न किया जाता है। भारतीय जलवायु मे घास सुखाना (हे बनाना) सम्भव नही हो पाता। भारतीय घासें गर्म और नम मौसम में जल्दी उग आती हैं और कड़ी हो जाती हैं। इसलिए सूख जाने पर जानवर उन्हें पसन्द नहीं करते। इसके अतिरिक्त इस देश मे साधारणतः घास से लिए बजर मैदान ही छोडे जाते हैं। इसलिए वहाँ की घास छोटी होती है और सुखाने के उपयुक्त नहीं होती।

पशु-पालन

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुओं का महत्व बहुत अधिक है। पशुओं की सख्या की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में पहला है। यहाँ सभवतः ⅓ से अधिक पशु पाले जाते हैं। इन्हीं पशुओं में ससार के ८४% भैंसे हैं। ढोरों में सबसे अधिक संख्या गाय-बैलों की है। भारत में १९५६ में ढोरों की सख्या ३० करोड़ ७१ लाख थी जब कि १९५१ में इनकी सख्या २९ करोड़ २२ लाख थी। ढोरों मे सबसे अधिक सख्या गाय-बैलों की है। देश में इनकी कुल संख्या १५ करोड़ ८९ लाख हैं। अन्य पशुओं की सख्या इस प्रकार है :

बकरियाँ	५ करोड़ ६६ लाख
भैंसे	४ करोड ४८ ,,
भेड़ें	३ करोड़ ८७ ,,
घोड़े और खच्चर	५५ ,,
अन्य पशु	६६ ,,
मुर्गियाँ और बतख	६ करोड़ ७४ ,,
	३० करोड़ ७१ लाख

इन पशुओं का घनत्व प्रति १०० एकड कृषि भूमि पर ७१ है। भारत मे प्रति १०० व्यक्तियों के पीछे पशुओ की संख्या ६० ही है जब कि विश्व के अन्य देशों मे यह घनत्व ४ से ५ गुनी है। भारत के सब राज्यों में सबसे अधिक पशुओं का घनत्व राजस्थान मे है जहाँ प्रति १०० व्यक्तियों के पीछे लगभग ८२ पशु रहते हैं। पशुओ की मुख्य पेटी गुजरात, राजस्थान, पजाब तथा काश्मीर और उत्तर-पश्चिमी भारत मे स्थित है जहाँ का जलवायु शुष्क है और जहाँ वर्षा की नमी होने से घास पैदा नही होती किंतु कृषक पशुओ के लिए खेत मे फसले पैदा करते हैं।

सबसे अधिक ढोर उत्तर प्रदेश मे हैं। इसके पास बम्बई, मध्यप्रदेश और राजस्थान का नम्बर आता है। गाय और भैंसे सबसे अधिक उत्तर प्रदेश मे और उसके बाद मध्य प्रदेश, बम्बई और बिहार मे पाई जाती हैं।

भारत मे पशु तीन मुख्य उद्देश्यों से पाले जाते हैं :—

(१) खेती के कार्य मे—हल जोतने, कुओं म पानी खींचने तथा खेतो की पैदावार को मडियों तक ढोने के लिए। अनुमान लगाया गया है कि पशुओं के श्रम द्वारा देश को १५०० करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है।

(२) पशु पालन का दूसरा उद्देश्य दूध की प्राप्ति करना है। गाय और भैंसें दोनों ही दूध के मुख्य साधन हैं। देश में ४ करोड़ ६८ लाख गायो और २ करोड़ १५ लाख भैंसों को दूध के लिए पाला जाता है। इनसे ६८ करोड़ मन दूध की प्राप्ति होती है। इसमें से २१ करोड़ मन गायो का और २५ करोड़ मन भैंस का दूध होता है और शेष बकरी का। देश में प्राप्त होने वाले दूध से ४३ से भी अधिक प्रतिशत से घी बना लिया जाता है। घी का वार्षिक उत्पादन १०३.०८ लाख मन माना गया है। घी के प्रमुख उत्पादक उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पजाब, बम्बई और बिहार हैं जिनसे

५०% घी प्राप्त होता है। शेष दूध का उपयोग पीने तथा मक्खन और दही बनाने मे होता है। मक्खन का वार्षिक उत्पादन १६ ३७ लाख मन आका गया है। मक्खन अधिकतर उत्तर प्रदेश, बम्बई और बिहार में बनाया जाता है। ७% मक्खन मशीनों द्वारा बड़ी फैक्ट्रियो मे और शेष देशी ढग से बनाया जाता है। दही का वार्षिक उत्पादन ३५: ७६ लाख मन हैं। इसमे से सबसे अधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश, बिहार, आध्र और पजाब मे किया जाता है। मलाई का उत्पादन और उपभोग केवल नगरों मे ही किया जाता है। वार्षिक उत्पादन ३ ३१ लाख मन है जिसमें से आधी से अधिक मात्रा उत्तर प्रदेश मे प्राप्त होती है। दूध तथा दूध से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का वार्षिक उत्पादन मूल्य ८०० करोड़ रुपये आँका गया है।

(३) पशु पालन का तीसरा मुख्य उद्देश्य खाद प्राप्त करना है। पशुओं की गोबर की खाद का मूल्य १००० करोड़ रुपये वार्षिक आका गया हैं। इसका उपयोग खाद देने और जलाने मे किया जाता हैं। पशुओ से चमड़े और खाल की भी प्राप्ति होती हैं जिनसे लगभग ५० करोड़ रुपये की आय होती है। इसके अतिरिक्त पशुओं से लगभग १२० करोड़ रुपये का मास भी प्राप्त होता है। जिसकी मात्रा प्रतिवर्ष लगभग ४½ लाख टन होती है।

इस प्रकार भारत क आर्थिक जीवन मे पशुओं का महत्व स्पष्ट है।

पशुओ की नस्लें

भारत में कई उक्त किस्म की नस्लें पाई जाती हैं। २५ से भी ऊपर उन्नत प्रकार की ढोरों की नस्लें भारत में मिलती हैं। ये नस्लें अधिकतर उत्तरी पश्चिमी शुष्क भागो मे ही मिलती हैं। पूर्वी तथा दक्षिणी भागों में नमी और वर्षा अधिक होने से उत्तम प्रकार का चारा पैदा नहीं होता अतः ढोरों की नस्ल भी बिगड़ी हुई होती है। भारत में निम्न प्रकार की नस्लें मुख्य हैं :—

(१) **गायें** (i) **शाहीवाल**—पजाब मे करनाल, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश मे।

(ii) **सिंधी**—सौराष्ट्र, तथा पंजाब में और कुर्ग में।

(iii) **हरियाना**—पजाब के रोहतक, हिसार, गुड़गाँव, करनाल, जिंद, नाभा, पटियाला जिलों में तथा राजस्थान के जोधपुर, अलवर, भरतपुर, लोहारू जिलों में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश मे।

(iv) **मुर्रा**—दक्षिणी पजाब, दिल्ली और उत्तरी उत्तर प्रदेश मे।

(v) थारपरकार, और मेवाती तथा मालवी—

इन सभी नस्लों से दूध मिलता है।

(२) **बैल**—(i) **हिसार और हांसी**—पजाब में।

(ii) **नैलोट**—मद्रास में।

(iii) **अमृतमहल**—मैसूर मे।

(iv) **ओंगोल**—आन्ध्र के गतूर और नैलोर जिलों मे।

(v) **कंगयाम**—कोयम्बटूर जिला,

(vi) **खैरीगढ़**—उत्तर प्रदेश

(vii) **यूंगी और निमाड़**—बम्बई में।

(३) **भैसे**—(i) **मुर्रा**—पजाब मे

(ii) **जाफराबादी**—सौराष्ट्र मे।

(iii) **महसाना, सूरती और पंढारपुरी** - बम्बई मे।

(४) **बकरियाँ**—प्रायः सारे ही भारत में पाई जाती हैं। इनका मास और दूध दोनों ही प्रयोग मे आता है। बकरियों की मुख्य नस्ले दक्षिण के पठार पर '**जमनापुरी**', पश्चिमी भारत मे 'सूरती' और बगाल, तथा मद्रास और आन्ध्र में 'काली' और 'सफेद' दाढ़ीवाली।

(५) **भेड़ें** अधिकतर उत्तरी भारत के सूखे भागों और हिमालय के पहाड़ी ढालों पर पाई जाती हैं। भारत में १४ नस्लों की भेड़े मिलती हैं जिनसे मास और ऊन दोनों ही प्राप्त होते हैं। राजस्थान में बीकानेरी नस्ल और हिमालय मे गुरेज, करनार, बादशाह और रामपुर बुशहर है। इनसे उत्तम श्रेणी का ऊन प्राप्त होता है। ऊन का वार्षिक उत्पादन लगभग ६ करोड पौंड है। प्रति भेड़ पीछे १.६ पौंड ऊन प्राप्त होता है।

(६) **सूअर**—अधिकतर जंगली और पालतू अवस्था में सारे ही भारत मे मिलते हैं किन्तु अधिकाशतः नैपाल, सिक्किम और भूटान में ही मिलते हैं। इनके बालों, खाल और मास का उपयोग किया जाता है।

(७) घोड़े, खच्चर और ऊँट आदि देश के अन्य भागों मे मिलते हैं।

यद्यपि भारत में पशुओं की संख्या अधिक है किन्तु उनकी जाति बड़ी निकृष्ट है। इसी से भारत में यद्यपि संख्या की दृष्टि से यूरोप और रूस के बराबर है किन्तु

उनके दूध की मात्रा इन देशों के पशुओं के लगभग पाँचवें भाग के बराबर है। भारत मे दूध का औसत उत्पादन भी प्रति गाय पीछे केवल ४१३ पौंड है जबकि नीदरलैंड्स मे प्रति गाय से प्राप्त औसत दूध की मात्रा ८,००० पौंड, आस्ट्रेलिया में ७००० पौंड, स्वीडेन मे ६००० पौंड और उत्तरी अमरीका मे ५,००० पौंड है। दूध का उत्पादन कम होने से दूध का दैनिक औसत उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे केवल ५.५ औंस ही है जब कि स्वास्थ्य की दृष्टि मे प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम १० औंस दूध मिलना ही चाहिये। न्यूजीलैंड मे दैनिक उपभोग ५६ औंस, स्वीडेन मे ६१ औंस, सं० रा० अमरीका मे ३५ औंस और इग्लैंड मे ३० औंस है। भारत में दूध का सबसे अधिक दैनिक उपभोग पजाब (१६ ८ औंस) और राजस्थान (१५ ७ औंस) में होता है और सबसे कम उडीसा (२ ६ औंस) मे।

भारत मे पशुओं की निकृष्ट दशा के निम्नाकित कारण हैं :—

(१) अच्छी नस्ल की गायो और उच्च कोटि के साड़ों की कमी।

(२) अवैज्ञानिक ढंग का पशु-पालन एव पशुओं की देखभाल मे कमी।

(३) आवश्यकता से अधिक पशुओं की सख्या जिनमे उच्च श्रेणी के पशुओं का अभाव।

(४) पशुओ के लिए उचित भोजन की कमी।

(५ कृषकों की निर्धनता।

(६) जनता की धर्मप्रियता जिसके कारण फालतू ढोरों का वध नहीं किया जाता।

(७) चारे की फसलों और गोचारण भूमि का अभाव।

(८) पशुओं मे अनेक प्रकार के रोगों की अधिकता और उपचार के साधनों का अभाव।

द्वितीय योजना के अंतर्गत

(१) द्वितीय पचवर्षीय योजना के अतर्गत दूध के दैनिक उपभोग मे ५ से १० औंस की वृद्धि करने हेतु दूध के उत्पादन में आगामी १० से १२ वर्षों मे ३० से ४०% की वृद्धि करने का आयोजन किया गया है। इसके लिए सरकार ३६ दूध वितरण करने वाली सस्था, १२ सहकारी मक्खन बनाने के कारखाने, तथा ७ दूध सुखाने वाले कारखाने खोलेगी जहाँ मक्खन, घी और सूखा दूध बनाया जायेगा।

(२) उत्तम प्रकार के हृष्ट-पुष्ट बैलों के द्वारा पशुओ की सख्या को कम करके भूमि पर पशु-भार कम किया जायगा।

(३) बेकार पशुओं की रक्षा हेतु ६० गोसदनों की वृद्धि की जायेगी तथा ३०० कृत्रिम गर्भादान केन्द्र खोले जायेंगे। और १२५८ कुंजी ग्राम (Key Village) (स्थापित किए जाऐंगे जहाँ से प्रति वर्ष ६०००० उत्तम श्रेणी के साड़ प्राप्त किए जाऐंगे।

मत्स्यपालन
(Fishing)

भारत की तट रेखा ३५०० मील लबी है और लगभग ११०,००० वर्गमील महाद्वीपीय क्षेत्र पाये जाते हैं जिनमे अपार मछलियो का भण्डार निहित है। इसके अतिरिक्त प्रचुर जलवृष्टि, एव देश की कटी फटी तट रेखा, और आन्तरिक भूभागों मे अनेक नदियों, झील, तालाब, ताल, पोखर आदि की भरमार है जिनमे मछलियों की अपरिमित राशि सञ्चित हैं। इनमे से कुछ तो ग्रीष्मकाल मे सूख जाते हैं किंतु अधिकतर जलाशयों में वर्ष भर जल भरा रहता है। ग्रीष्मकाल मे जब गहरे जलाशय सूखने लगते हैं तो मछलियाँ तालाब के कीचड़ को भेद कर कुछ ही फीट की गहराई पर स्थित आभ्यन्तरिक जल मे घुस जाती हैं। वर्षा होने पर पुनः ये मछलियाँ तालाबों मे चली जाती हैं। किन्तु इसके विपरीत समुद्र की मछलियाँ वर्ष भर समुद्र के जल मे ही रहती हैं अतएव समुद्रों से निरन्तर मछलियाँ मिलती रहती हैं। भारत की तट रेखा अनेक खाड़ियों, झीलों और उपकूलों तथा भू-भाग तक प्रविष्ट होने वाले समुद्र से टूटी-फूटी हैं जहाँ सुरक्षित मछली-क्षेत्र उपस्थित हो गये हैं। भारत का सामुद्रिक तट मछली उद्योग साधनो की अनुपलब्धता के कारण तट से केवल ५-७ मील दूर तक ही मछली पकड़ने के लिए उपलब्ध है। गहरे पानी की मछलियाँ पकड़ने का कार्य शक्तिशाली मछली पकड़ने वाले जहाजो, ट्रालरों और शिक्षित मछुओं के अभाव के कारण उन्नत नहीं है।

नदियों, झीलों और समुद्र से पकड़ी जाने वाली मछलियों का उत्पादन १९५६ में १,०१२,२५० मैट्रिक टन था, जिसमे से ताजा पानी की मछलियों का उत्पादन २,९३ ५५३ मैट्रिक टन और सामुद्रिक मछलियों का उत्पादन ७,१८,६९७ मैट्रिक टन था। मछलियों से भारत को ६० करोड़ रुपये वार्षिक आय होती है। देश के लम्बे

समुद्र तट पर लगभग ७३,४०० नावें मछली पकड़ने मे रात-दिन व्यस्त रहती है और इनसे लगभग १० लाख मछुऐ रोजी कमाते हैं। किंतु प्रति मछुए पीछे वर्ष भर में केवल २५०० पौड ही मछलियाँ पकड़ी जाती है जब कि संयुक्त राज्य मे वार्षिक प्रति मछुए की पकड़ ८०,००० पौड होती है। भारत मे मुख्यतः दो प्रकार की मत्स्य-भूमियाँ पाई जाती हैं।

(१) **ताजे पानी की मछलियाँ** (Inland or fresh water fisheries)—

(२) **सामुद्रिक मछलियाँ** (Sea fisheries)

(३) **मोती वाली मछलियाँ** (Pearl Oysters)

(१) **ताजे पानी की मछलियाँ**—अधिकाशतः देश के भीतरी भागो मे स्थित नदियो, झीलों, तालाबों और बाँधो मे पकड़ी जाती है। आसाम मे गगा और ब्रह्मपुत्र, उड़ीसा मे महानदी, बम्बई मे नर्मदा और ताप्ती, मद्रास में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी और उत्तर प्रदेश की गगा और यमुना नदियो मे ताजे पानी के मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती है। यद्यपि ताजे पानी की मछलियों का उत्पादन समुद्र की मछलियो से तौल में कम होता हे किंतु मूल्य मे ढाई गुना अधिक होता है और इन्ही मछलियो का उपभोग भी अधिक होता है क्योंकि भीतरी भागो मे इनकी माँग भी है।

ताजे पानी की मछलियों के उत्पादन का ७२% बगाल, बिहार और आसाम राज्यों से प्राप्त होता है। ताजे पानी की मछलियो मे विशेष स्थान कार्प (Carp) मछली का है। नदियों मे कैट फिश, मुलेट्स, कार्प, पामफ्रेट, बारिल, मुले, मुग्गेल, प्रॉन, फैदर-बैक, ईल, हेरिंग, कालाबासू, कटला, मशोर, बचुवा, रोहू, झींगल आदि मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। तालाबों में ट्राउट नामक मछलियाँ काश्मीर, कुमायूँ और नीलगिरी में पाली जाती हैं।

उड़ीसा मे चिल्की झील, मद्रास तथा केरल के उपकूलों और महानदी तथा सुन्दर वन के डेल्टाओं मे भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मुख्य पकड़ हिल्सा, पामफ्रेट रोहू, कट-फिश, कटला और प्रॉन की होती है। ये मछलियाँ पुरी से लगाकर हुगली तक पकड़ी जाती हैं।

(२) **सामुद्रिक मछलियाँ**—भारत के समुद्रतट पर ५ से ७ मील चौड़ी और ६० फीट गहरे जल मे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। तट के निकट गुजरात, कनारा, मलाबार तट, मनार की खाड़ी, मद्रास के तट और कोरोमंडल तट पर सामुद्रिक मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। इन भागों में शार्क मछली अधिक पाई जाती हैं। व्यापारिक
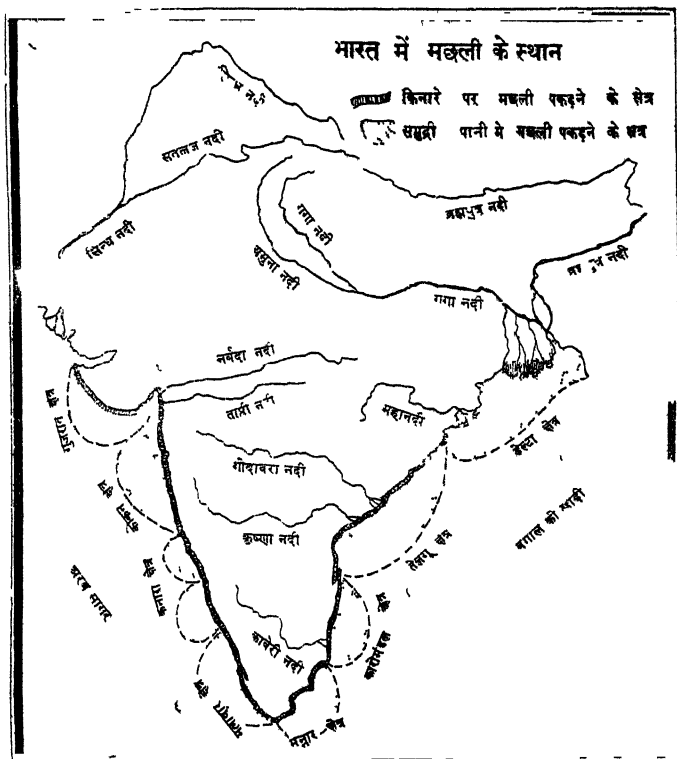
चित्र ३६—मछली पकड़ने के क्षेत्र

दृष्टि से सारडीन, हेरिंग, ऐंकाबी, शेड, सिलवर फिश, ई, कैट-फिश, पामफ्रैट्स, फ्लैट फिशमुल्टेस, सेल्मन ज्यू-फिश, मैकरेल और बाम्बे-डक हैं।

(३) मोती देने वाली मछलियाँ अधिकतर मद्रास मे तूतीकोरिन, कोरोमंडल और मलाबार तट, तथा मनार की खाड़ी सौराष्ट्र और कच्छ की खाड़ी मे पाली जाती हैं।

भारत में मछली का प्रयोग अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम होता है। जहाँ जापान में प्रति व्यक्ति औसत उपयोग ६० पौंड, ब्रह्मा में ७० पौंड और लंका में १६ पौंड होता है वहाँ भारत में केवल ३·६८ पौंड ही। भारत में अन्य राज्यों की अपेक्षा

मछली का उपयोग केरल मे सबसे अधिक (२१ पौंड) होता है। बगाल में १३ पौंड, मद्रास में १२ पौंड, बम्बई मे ७, आसाम मे ६, उडीसा मे ५ पौंड और सबसे कम पजाब मे ० ०८ पौंड होता है।

देश मे पकड़ी जाने वाली मछलियों मे से ६२% उपयोग खाने मे और ८७० औद्योगिक वस्तुएँ प्राप्त करने में किया जाता है। ये वस्तुएँ मछली का तेल, खाद, आइसिंग-ग्लास आदि है। शार्क लिवर-आइल बम्बई, केरल और मद्रास में तैयार किया जाता है।

भारत मे मछली पकड़ने के उद्योग का विकास पूरी प्रकार न होने के निम्न कारण है :—

(१) भारत के अधिकाश मछुए अशिक्षित एव दरिद्र हैं। इनके पकड़ने के ढग भी पुराने हैं। कटिये और जाल की सहायता से ही छोटी-छोटी नावों में तटीय भागो मे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

(२) यहाँ मत्स्य भूमि शीतोष्ण कटिबध की मत्स्य भूमियो की भाँति एक ही स्थान पर स्थित न होकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे फैली है फलतः मछलियाँ पकड़ने मे कठिनाई होती है।

(३) यातायात के शीघ्र साधनों और शीत भण्डारों की पूर्ण व्यवस्था न होने से मारी गई मछलियाँ शीघ्र ही बाजारो तक नहीं पहुँचाई जाती। फलतः अधिकाश मछलियाँ सड़कर नष्ट हो जाती है।

(४) अधिकाश मछुए नवजात मछलियों को ही पकड़ लेते हैं। अतः भविष्य के लिए अधिक मछलियाँ नहीं बन पातीं।

अब केन्द्रीय सरकार ने मछुओं की सहायता के लिए कई कदम उठाये हैं जैसे :—(१) **मछली पकड़ने के लिए मोटर नावें देना** आजकल भारत के तट के समीप ८०० मोटर चालित नावों से मछलियाँ पकड़ी जा रही हैं। बम्बई में देशी नावों में इजिन लगाये गये हैं। मद्रास, केरल और आध्र में नई तरह की नावें बनाई गई हैं। छोटी-छोटी नावों में मोटर या इंजन लगाने से क्या लाभ होता है इसका भी परीक्षण किया जा रहा है।

(२) **मछुओं को मछली पकड़ना सिखाना**—मछुओं को मछली पकड़ने के अच्छे तरीके सिखाने के लिए बम्बई के निकट **सतयति**, सौराष्ट्र में **वेरावल**, केरल में **कोचीन** और मद्रास में **तुतुकुंडी** में केन्द्र खोले गये हैं। इन केन्द्रों में २० २०

मछुओं को ६-६ महीने काम सिखाया जाता है। बम्बई के गहरे समुद्र मे मछली पकड़ना सिखाने वाले केन्द्र मे इस धधे के आधुनिक तरीके सिखाये जाते हैं। कलकत्ता मे नदियो, झीलो और तालाबों मे अधिक मछली पैदा करना सिखाया जाता है।

(३) मछलियाँ रखने के लिए ठंडे गोदाम बनाना—मछलियों को भरने के ठडे गोदाम बम्बई, मद्रास मङ्गलौर, कोजीकोड, कोचीन क्विलोन, तिरु अनतपुरम और कलकत्ता में हैं। कई अन्य स्थानों पर भी इस तरह की मशीने लगाई जा रही हैं। इस तरह की कुछ मशीने शिल्प सहयोग मण्डल और कुछ नार्वे से मिली हैं।

कृषि-उत्पादकता*

उपर्युक्त विवरण से भारतीय कृषि के बारे मे दो मुख्य विशेषताये स्पष्ट होती हैं: (१) भूमि पर बढती हुई जनसख्या का भार जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे बोई गई भूमि का बहुत ही थोड़ा भाग पड़ता है—अर्थात् केवल ०.८ एकड़ जबकि सतुलित भोजन प्राप्ति के लिए प्रति व्यक्ति पीछे कम से कम १ एकड़ भूमि की आवश्यकता पड़ी है। नीचे दी गई तालिका मे भूमि पर जनसख्या का बढता हुआ भार बताया गया है—

वर्ष	जनसख्या (करोड़)	बोया गया क्षेत्रफल (करोड़ एकड़)	प्रति व्यक्ति का भाग (एकड़)
१९२१	२३	२०	० ९
१९३१	२६	२१	०.८
१९४१	२९	२१	० ७
१९५१	३५	२६	०.७
१९५४	३७	३३	० ९
१९५६	३९	३२	०.८

(२) प्रति एकड़ पीछे उपज बहुत ही कम होती है। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा:—

* Entirely written by Dr C B. Mamoria.

चावल (१९५३)

देश	प्रति एकड़ उपज पौंड मे
जापान	४२९७
चीन	२२२१
बर्मा	१४४५
ब्राजील	१४१७
थाईलैंड	१२७:
भारत	११४१
पाकिस्तान	११३५

गेहूँ (१९५५)

देश	प्रति एकड़ उपज पौंड में
फ्रास	१८१८
कनाडा	१४३८
स० रा० अमरीका	११५०
आस्ट्रेलिया	९६७
अर्जेन्टाइना	११५३
टर्की	७७७
भारत	६४०

उपरोक्त दोनों ही कारणों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में प्रतिकूल मौसम होने, सूखा पड़ने तथा बाढ़ आ जाने के कारण अत्यधिक हानि उठानी पड़ती है जिससे फसलों का उत्पादन बहुत ही कम हो पाता है। फलतः देश की बढ़ती हुई जनसख्या के लिए—जो प्रति वर्ष लगभग ५० लाख की वृद्धि से बढ़ती जाती है—भोजन देने के लिए भारी मात्रा में अन्न का आयात करना पड़ता है। मोटे तौर पर देश के २८% भाग में और १८% जनसख्या की दृष्टि से खाद्यान्नों की अधिकता है किन्तु ७२% भाग में और ८८% जनसख्या के लिए खाद्यान्नों का नितान्त अभाव है। इस कमी को पूरा करने के लिए देश मे प्रथम पंचवर्षीय योजना के अतर्गत कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए निश्चित कार्यक्रम रखा गया जिसके फलस्वरूप देश में कृषि-जन्य पदार्थों के उत्पादन की निम्न प्रकार से प्रवृत्ति रही :—

कृषि-जन्य उत्पादन का सूचक अक (१६५०-५१ से १६५६ ५७ तक)
१६४६-५०=१००

वस्तु	कुल का प्रतिशत	१६५०-१६५१	१६५१-१६५२	१६५२-१६५३	१६५३-१६५४	१६५४-१६५५	१६५५-१६५६	१६५६ १६५७
अन्न	६६ ६	६० ९	६१ १	१०१ १	११६ ४	११४ ५	११३·५	११६ ६
तिलहन	६ ६	६८ ५	६७ ४	६१·६	१०३·७	१२१·७	१०६ २	११५ ६
गन्ना	८ ७	११३ ७	१२२·८	१०१ ६	८६ ५	११६·७	१२१ २	१३६ ७
रुई	२ ८	११० ७	११६ २	१२१ ०	१५१ ८	१६३ १	१५१ ६	१७६·३
जूट	१ ४	१०२ ३	१५१ ४	१४८ ६	१०० ०	६४ ७	१३५ ७	१३६ ५
सभी कृषि उत्पादन	१००	६५ ६	६७·५	१०२ ०	११४ ३	११६ ४	११५ ६	१२२ ०

१६४८-४६ मे अनाजों का उत्पादन ४ करोड़ ३३ लाख टन था जो १६५०-५१ मे घट कर ४ करोड़ १७ लाख टन रह गया। सबसे अधिक उत्पादन १६५३-५४ मे हुआ जब ५ करोड ८३ लाख टन अन्न पैदा किया गया। इस प्रकार लगभग १½ करोड़ टन अन्न का उत्पादन बढ़ा (अर्थात् लगभग ३५% वृद्धि हुई) किन्तु उसके बाद से ही अनाज का उत्पादन गिरने लगा। १६५४-५५ मे ५ करोड़ ५७ लाख टन और १६५५ ५६ में ५ करोड़ ४५ लाख टन ही अन्न पैदा हुआ। १६५६-५७ मे उत्पादन में कुछ वृद्धि हुई। यह उत्पादन ५ करोड़ ७३ लाख टन था किन्तु १६५७-५८ में पुनः काफी ह्रास हो गया। इस वर्ष केवल ५ करोड़ २८ लाख टन अनाज पैदा हुआ। १६५४-५५ और १६५५-५६ में अनाज के उत्पादन में कमी होने का मुख्य कारण प्रतिकूल मौसम का होना था। किन्तु १६५६-५७ में उल्लेखनीय वृद्धि का सबसे बड़ा कारण विकास के वे विभिन्न कार्य हैं जो पचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत किये गये हैं—जैसे—कृषि करने की अच्छी विधियों का प्रयोग, उतनी ही खेती से घनी उपज प्राप्त करने के उपायों का प्रचार, सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार, खादों और उर्वरको का अधिक प्रयोग, बढ़िया बीज तैयार करके बाँटना और खेती की उत्तम विधियों का प्रचार। १६५७-५८ में उत्पादन में कमी का मूल कारण देश के अधिकाश भागों में (पूर्वी उत्तर प्रदेश, प० बगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान) खरीफ फसलों के लिए ऋतु का प्रतिकूल होना है—विशेष कर धान के लिए।

नीचे की तालिका मे पिछले कुछ वर्षों का अनाज का उत्पादन और आयात बताया गया है।

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)	आयात की मात्रा लाख टन	आयात का मूल्य (करोड़ रु० में)
१९४९-५०	४७४	३७	
१९५०-५१	४३७	२१	
१९५१-५२	४३८	४७	२२८ १२
१९५२-५३	४९४	३९ ९९	१६१.२८
१९५३-५४	५८२	१४ ३६	७२.४८
१९५४-५५	५५७	१२.२७	६८ ३७
१९५५-५६	५४५	४ ३२	२९.००
१९५६-५७	५७३	२१ २६	१११ ००
१९५७-५८	५२८	३६.९२	१६७.००
१९५८-५९ (अनुमानित	—	—	१११.००

१ जनवरी १९५४ से ३१ जुलाई १९५८ तक लगभग १५७ करोड़ रु० की लागत का लगभग ५० ८ लाख टन अनाज अमरीका से आयात किया गया। १९५८ में अमरीका से P. L. Programme 480 और P. L 665 के अन्तर्गत १६,८५,४०० टन गेहूँ, कनाडा से कालम्बो योजना तथा भविष्य भुगतान योजना के अन्तर्गत ६,११,३०० टन गेहूँ और आस्ट्रेलिया से ५,६०० टन गेहूँ के आयात का प्रबन्ध किया गया। ३,२०,७०० टन चावल बर्मा से और ६,५०० टन चावल वियतनाम से मँगाने का भी प्रबन्ध किया गया है। P. L. 480 के अन्तर्गत १,००,००० टन चारा और २५,००० टन कार्न मँगाने का भी प्रयत्न किया गया है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के हेतु द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस प्रकार कार्यक्रम रखा गया है :—

कृषि-वस्तु	मात्रा	१९५५-५६ में उत्पादन	१९६०-६१ मे उत्पादन	उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि
अन्न	करोड़ टन	६५.०	८०.५	२४ ६
तिलहन	,,	५.५	७ ६	३७.०
गुड़	,,	५.८	७.८	३३.९
कपास	करोड़ गाँठे	४.२	६.५	५५.६
जूट	,,	४.०	५.५	५८.१
अन्य फसले	,,	—	—	१२.४
कृषि-जन्य पदार्थ		—	—	

यदि ये लक्ष्य पूरे हो सके तो देश मे कृषि-उत्पादन मे २२%, अनाजों मे २५% और अन्य व्यापारिक फसलों में ३४% की वृद्धि हो जायेगी। इस उत्पादन में निम्न कार्यक्रमो का योगदान इस प्रकार होगा :—

सिंचाई की बडी योजनाओ द्वारा	३०.२ लाख टन
” छोटी	१८.६ ”
भूमि सुधार ”	६ ४ ”
खादों और उर्वरक ”	३७.७ ”
उन्नत बीजों द्वारा ”	५.६ ”
कृषि के उन्नत तरीको द्वारा	२४.७ ”

इस वृद्धि के फलस्वरूप द्वितीय योजना के अन्त मे प्रत्येक व्यक्ति को १६ ६ औस अनाज मिल सकेगा।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों मे कृषि का उत्पादन विभिन्न कार्य-क्रमों द्वारा इस प्रकार रहा है :—

मद	१९५६-५७ लक्ष्य	प्राप्ति	१९५७ ५८ लक्ष्य	प्राप्ति
	(लाख टन)		(लाख टन)	
छोटी सिंचाई योजनाएँ	३ ३	२ ५	५.७	४.०
भूमि सुधार ”	१.१	१.१	२.१	१ ७
खाद और उर्वरक	३.५	२ ७	६.१	७.७
उन्नत बीज	१ १	०.६	२.८	२ ०
कृषि की उन्नत प्रणालियाँ	१.०	२ ०	५.४	५.०
योग	१०.०	८.६	२५.१	२०.४

दूसरी आयोजना के पहले दो सालों में लगभग २ अरब ७८ करोड़ रुपये का

ग्रनाज मँगाया गया। योजना के तीसरे वर्ष मे विदेशों से अनाज मँगाने के लिए १ अरब ११ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। १९५८-५९ के बजट मे २० लाख टन गेहूँ और ५.३० लाख टन चावल खरीदने की व्यवस्था थी। इसमें से अगस्त १९५८ तक १२ लाख ९७ टन गेहूँ और २,२३ लाख टन चावल और १ लाख मिलेट और २५ हजार टन मक्का की ढुलाई की व्यवस्था हो चुकी है।

देश मे कृषि उत्पादन को बढ़ाने लिए के दो उपाय काम में लाये गए है :—

(१) खेती की प्रति एकड उपज में वृद्धि करने के लिए निम्न कार्यक्रम किए गए हैं :—

(क) देश के अधिकाश भागों मे भूमि उपजाऊ होते हुए भी जल की कमी है अतः १९५७-५८ अधिक अन्न उपजाओ कार्यक्रमो के अन्तर्गत अनेक राज्यों में २८,१३७ कुएँ और ३२० तालाबो की मरम्मत एव कइयो का पुनर्निर्माण किया गया। इससे लगभग १.७३ लाख एकड़ भूमि पर सिचाई हो सकेगी। नदियों, नालों और कुओं मे १३ हजार से अधिक रहट लगाये गए इससे लगभग १.३८ लाल एकड़ भूमि सींची जा सकेगी। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा अनेक बाँध, नाले और रजबहे, आदि बनवाये जा रहे है जिनसे लगभग १४.६० लाख एकड़ में सिंचाई होने का अनुमान है। सब मिलाकर इनसे लगभग २२ लाख एकड भूमि में सिचाई होने लगेगी।

इसके अतिरिक्त भारत और अमरीकी सहायता के संयुक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत २६५० नलकूप लगाये जाने वाले थे। इनमे से दिसम्बर १९५७ तक बिजली लगाकर २५६६ चालू किए गए हैं। उत्तर प्रदेश और पजाब मे ६०९ नलकूप और उत्तरी गुजरात में ४०० नलकूप लगाये गये हैं।

भूगर्भ जल की खोज के अन्तर्गत ताप्ती नदी के प्रवाह स्थल सौराष्ट्र और राजस्थान में ५१ स्थानों में बर्मा लगाकर देखा जा चुका है।

(ख) कृषि उत्पादन बढ़ाने मे बढ़िया बीज बाँटने और खाद का प्रयोग बड़े लाभदायक सिद्ध होते है। इस हेतु १९४६-५७ में ३४२ उत्तम बीज उत्पन्न करने वाल केन्द्रो की और १९५७-५८ मे १२३२ केंद्रों की स्थापना की गई। इनके द्वारा बढ़िया बीज तैयार कर कृषको मे बाँटा गया।

कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करने पर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह तथ्य निम्न आँकड़ों से स्पष्ट होगा :—

वर्ष	कम्पोस्ट तैयार किया गया	कम्पोस्ट बाँटा गया
१६५२ ५३	१७ ५ ला० टन	१४.० ला० टन
१६५३-५४	१८.३ ”	१७.१ ”
१६५४-५५	१८.८ ”	१६ ६ ”
१६५५-५६	२१.२० ”	१७.६० ”
१६५६-५७	२०.६० ”	१६.१० ”
१६५७ ५८	२४.०० (लक्ष्य)	——

बड़े-बड़े शहरों और कस्बों का गदा पानी तथा गाध खाद के रूप में काम मे लाने के लिए भी कार्यक्रम बनाये गए है जिनसे लगभग १५ करोड़ ३० लाख गैलन खाद का पानी प्रति घटा मिल सकेगा और उससे ३४ हजार एकड मे अधिक भूमि की सिंचाई होकर लगभग ५६ हजार टन अतिरिक्त अन्न उत्पादन हो सकेगा। १६५८ ५६ में खाद तैयार करने के दो कार्यक्रम स्वीकृत किए गए है।

(1) राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास खडों मे (६७६ में) खाद की पैदावार बढ़ाने का प्रयत्न किया जायेगा। (२) बड़ी गाँव पंचायतो के क्षेत्र में (२०२३) मलमूत्र से कम्पोस्ट बनाया जायेगा। हरी खाद का प्रयोग बढ़ाने के भी उपाय किए जा रहे हैं।

अमोनियम सल्फेट के रूप मे भी नाइट्रोजन वाली खादों का प्रयोग बढ़ रहा है। १६५६ में यह ६ ७५ लाख टन और १६५७ में ७ लाख टन हो गया। इसके अतिरिक्त ६४ हजार टन यूरिया, ३५ हजार टन अमोनियम-सल्फेट-नाइट्रेट और ६ हजार टन कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट भी वितरण के लिए उपलब्ध था। १६५६ में १ लाख टन और १६५७ मे १ ५ लाख टन सुपर-फॉस्फेट बाँटा गया।

(ग) जापानी विधि से धान की खेती करने का प्रचार भी चार वर्ष से निरन्तर किया जा रहा है। १६५६-५७ मे २३ ७४ लाख एकड़ में इस विधि से खेती की गई। १६५७-५८ में ३५ लाख एकड़ में। जापानी विधि से धान बोने पर प्रति एकड़ की औसत उपज १६ ६ मन तक बैठती है, जबकि स्थानीय विधि से औसत उपज केवल १३ ३३ मन रहती है।

घनी खाद देकर गन्ने की खेती में प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाया गया है। इससे

पजाब मे उपज मे १६%, उत्तर प्रदेश मे २६%, मध्य प्रदेश मे ३०%, मद्रास मे ११% और बम्बई मे २२% की वृद्धि हुई है। १९५६-५७ में इस प्रकार से खेती १४ लाख एकड़ (लक्ष्य १५ लाख एकड़) और १९५७-५८ में २० लाख एकड़ भूमि में की गई।

पटसन या जूट की उपज बढ़ाने के लिए खेती में उर्वरकों का प्रयोग करने, बढ़िया बीजों के वितरण, खेतों के तरीकों में सुधार करने के लिए ड्रिलों से बीज बोने और पहियेदार खुरपो से गुड़ाई-निराई करने तथा पौधो को कृमियो से बचाने के लिए यत्रों से औषधियाँ छिड़कने पर बल दिया जा रहा है।

तिलहन, लाख, सुपारी, नारियल, कपास और तम्बाकू के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए अनुसधान और खेती का विस्तार किया जा रहा है।

(२) नवीन क्षेत्रों मे कृषि की जाय

भारत में लगभग ८५० लाख एकड़ ऐसी भूमि है जिस पर किसी प्रकार की खेती-बारी नहीं हो रही है। इसका अधिकतर भाग किनारे या किनारे के समीप है है और इसमें से कम से कम १०० लाख एकड़ भूमि बिल्कुल अच्छी, उपजाऊ और खेती योग्य है। कई स्थानों मे मलेरिया व मच्छरों के प्रकोप के कारण भी भूमि बेकार पड़ी है। इस प्रकार के क्षेत्र मुख्यतः तीन हैं (१) हिमालय की निकटवर्ती तराई; (२) पश्चिम घाट के समानान्तर एक सँकरी पट्टी और (३) पूर्वी घाट के समानान्तर पट्टी जो मद्रास, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश मे चौड़ी हो जाती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा १००" तक होती है और भूमि भी उपजाऊ है किन्तु इन भागों में मलेरिया का प्रकोप सदा ही बना रहता है अत यदि मच्छरों को नियन्त्रण में लाकर मलेरिया को रोका जा सके तो इन क्षेत्रों में धान की उपज बढाई जा सकती है।

केन्द्रीय ट्रैक्टर-सगठन द्वारा १९४८ से अब तक सब मिलाकर लगभग ५६ लाख एकड़ भूमि का उद्धार किया जा चुका है। इस सगठन की जगल साफ करने वाली शाखा ने आसाम मे २,३८७ एकड़ भूमि और मध्य प्रदेश में ३६,८८८ एकड़ जगलों को साफ किया है। बिहार में १४५८ एकड़ भूमि को समतल किया गया अथवा उसमे सीढ़ी की भाँति समतल क्यारियाँ बनाई गई।

सरकार द्वारा उत्पादन-वृद्धि में योग

देश को बाहर से कम से कम अनाज मँगाना पड़े इसके लिए सरकार तत्काल जो काम कर रही है उसे दो भागों में बाँटा जा सकता है —

(क) **पैदावार बढ़ाने के लिए**—निम्न कार्य किये जा रहे हैं :—

(१) कुएँ खोदने और उनकी मरम्मत करने, तालाब, जलाशय, छोटे बाँध, नलकूप, कूलें आदि बनाने की छोटी योजनाएँ।

(२) किसानों को रासायनिक खाद तथा अन्य उर्वरकों का वितरण।

(३) अच्छे बीजों का वितरण।

(४) मछली पालने की नई योजनाओ का विकास।

(५) मेंड बाँधने, बेकार भूमि को साफ करने और उसे खेती योग्य बनाने की योजनाएँ।

(६) पौधो की रक्षा और उन्हें रोग से बचाने की योजनाएँ।

(७) प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने के लिए अधिक अन्न उपजाओ योजनाएँ।

(८) रबी की फसल—गेहूँ, जौ, चना और ज्वार बढ़ाने के लिए किसानों को खेती के अच्छे तरीके बताये जा रहे हैं, उन्हे समय पर अच्छे बीज, खाद और उर्वरक आदि दिया जा रहा है तथा गाँवो के कार्यकर्त्ताओं और किसानो मे सहयोग पैदा करके उनमें प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिए उत्साह भरा जा रहा है।

(ख) देश मे पैदा होने वाले अनाज का अधिक उपयोग करने के लिए ये कार्य किए जा रहे हैं :—

(१) उन क्षेत्रों को ध्यान मे रखना जहाँ काफी अनाज पैदा होता है जिससे सरकार वहाँ से अनाज लेकर उन स्थानों को भेज सके जहाँ बहुत कम अनाज होता है।

(२) जिन क्षेत्रों में बहुत कम अनाज होता है और वहाँ अनाज की काफी खपत है उन्हें ध्यान में रखना ताकि सरकार अपने गोदामों में वहाँ अनाज भेज सके। खाद्य-पदार्थों की माँग और पूर्ति में समन्वय लाने के हेतु केन्द्रीय गोदाम कारपोरेशन ने ११ राज्यों में गोदामों का निर्माण किया है जिनमें वारंगल (आंध्र), अमरावती, और साँगली (बम्बई), देवनागिरि और गड़ाग (मैसूर), बड़गड़ (उड़ीसा), भोगा (पंजाब), चँदौसी (उत्तर प्रदेश) प्रमुख हैं।

(३) अधिक और कम अनाज पैदा करने वाले क्षेत्रों को मिला कर एक क्षेत्र बनाना जिससे वे मिल कर आत्म-निर्भर हो सकें। गेहूँ के स्थानान्तरण की सुविधा उपलब्ध करने के हेतु (१) पंजाब, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली; (२) उत्तरप्रदेश और

(३) राजस्थान, मध्य प्रदेश और बम्बई (बम्बई शहर को छोड़ कर) तीन गेहूँ क्षेत्र बनाये गये हैं।

इसी प्रकार आंध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर और केरल को मिलाकर एक चावल-क्षेत्र का भी निर्माण किया गया है।

(४) खाद्य वितरण को सफल और सुगम बनाने के लिए देश भर मे ४१ हजार सस्ते अनाज की दूकानें खोली गई हैं।

भारत के कृषि-प्रदेश

मिट्टी तथा पानी के वितरण को देखते हुए (जैसे चित्र १४ और ६ में क्रमशः दिया हुआ है) भारत को मोटे तौर पर निम्नलिखित कृषि प्रदेशों में बाँटा जा सकता है :—

(१) गगा का निचला प्रदेश।
(२) गगा का ऊपरी प्रदेश।
(३) सतलज-प्रदेश।
(४) मरु प्रदेश।
(५) काली मिट्टी का प्रदेश।
(६) लाल मिट्टी का प्रदेश।
(७) तटीय प्रदेश।

प्रथम दो प्रदेशों में, जिनमें सिन्धु गगा का क्षेत्र है, विभाजन का आधार वर्षा का परिणाम है। अन्तिम चार विभागों में (ये विभाग प्रायद्वीपीय क्षेत्र के हैं) मिट्टी द्वारा विभाजन का निर्णय किया गया है।

(१) [illegible] के निचले प्रदेश के अन्तर्गत बगाल, आसाम तथा बिहार के कुछ भाग हैं। नमी [illegible] प्रचुरता इस क्षेत्र की विशेषता है। इस क्षेत्र में ७५" से १००" तक वार्षिक वर्षा होती है जिसका अधिकाश गर्मी के महीने में, जून से अक्टूबर तक होता है। न्यूनान्तर वाले ऊँचे तापमान के इस प्रदेश की दूसरी विशेषता है।

इस प्रदेश में अनेक नदियों के निचले भाग हैं। इसलिए यहाँ की जमीन नीची है। नदी तट तथा गर्त, ये इस प्रदेश की दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्राकृतिक आकृतियाँ हैं।

चूँकि इस प्रदेश में अधिकाशतः नदियों द्वारा लाई हुई कछारी मिट्टी है

इसलिए यह कृषि के लिए बहुत महत्व की है। गगा के निचले मुहाने तथा बर्दवान जिले के कुछ भागों को छोड़कर अधिकतर कृषि क्षेत्र हैं।

इस प्रदेश की कृषि की सबसे प्रधान विशेषता यह है कि यहाँ के अधिकतर क्षेत्र में केवल कुछ ही फसलें उगाई जाती हैं। फसलो की सख्या बहुत नहीं है। धान, जूट और चाय यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। जलवायु की दशाओं और विशाल जनसख्या के कारण स्वभावतः धान इस प्रदेश की सर्वाधिक प्रचलित फसल है। भू भागों तथा यहाँ के लोगों के दृष्टिकोण, दोनों ही पर धान का प्रभुत्व है। यथासम्भव प्रत्येक क्षेत्र मे धान बोने की आवश्यकता ने यहाँ पर व्यावसायिक फसलो की सम्भावनाओ को बहुत कम कर दिया है। मोटे तौर पर, कुछ कृषि क्षेत्र का ½ इसी फसल के अन्तर्गत है।

इस प्रदेश को खेती में सिंचाई का योग सबसे कम है। सिचाई की नहरे या कुएँ यहाँ बहुत कम हैं। जब कभी मानसून जलवर्षा अधिक समय तक नहीं होती है, तब अगणित गर्तों (जिनमे सदैव पानी रहता है) द्वारा पानी उठाकर सिंचाई कर लेने का चलन है।

क्योंकि धान की खेती में खाद डालने की प्रथा नहीं है और धान ही सबसे अधिक प्रचलित फसल है, इसलिए खाद का प्रयोग (चाय के अतिरिक्त) इस प्रदेश में महत्वपूर्ण नहीं है। हर साल आने वाली बाढ़े खेतों को इतनी नई मिट्टी दे जाती हैं कि खेतों की उर्वरा शक्ति पुनः नवीन हो जाती है और इसलिये, साधारण अवस्था में खाद की आवश्यकता नही पड़ती। परन्तु चाय की खेती में खाद का प्रयोग होता है।

खेती-योग्य भूमि में अनुपात मे विशालतर खेतिहर जनसंख्या होने के कारण इस प्रदेश में अधिकतर खेतों का आकार छोटा है। इन खेतों में बैलों द्वारा खेती होती है और यन्त्रों का प्रयोग प्रायः अज्ञात है। अधिकाश काम हाथों द्वारा ही होता है—यह प्रत्येक धान के क्षेत्र की विशेषता है। गर्तों में तथा खेतों में रुके हुए पानी के कारण यहाँ मलेरिया बहुधा फैल जाया करता है, जिससे खेती के श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है, इसीलिए यहाँ का श्रम कुशल नहीं। पिछली लड़ाई में सिपाहियों की रक्षा करने के लिए, मलेरिया का अन्त करने के लिये कई उपाय किए गए थे। उन उपायों में रुके हुए जल की नहरों के एक विस्तृत जल द्वारा निकालना भी था। आज भी ये नहरें बंगाल में हैं। कीटाणुनाशक दवाएँ छिड़क

कर मच्छरा का भी नाश किया गया था। परन्तु इस प्रदेश मे गर्तों की प्रधानता और वर्षा की व्यवस्था ऐसी है कि मलेरिया का अन्त निरन्तर उपायों द्वारा ही सम्भव है। इन उपायों के लिये धन की बडी आवश्यकता है।

यहाँ खेतों मे घास बहुत उगती है। इस प्रदेश, विशेषकर बगाल, मे एक प्रकार की जल बेल (वाटर लाइसिन्थ) उगती है जो खेती के लिए गम्भीर समस्या है। यह रुके हुए पानी मे उगती है और उसमें इस प्रकार फैल जाती है कि इसे उखाड फेंकना कठिन काम है। यह ऐसे पानी मे उगने वाली फसलों को उगने से बिल्कुल रोक देती है और इस प्रकार खेती के उत्तम क्षेत्रों को बिल्कुल अयोग्य कर देती है। सरकार इस अभिशाप से जमीन को मुक्त करने के लिए अनुसन्धान मे काफी रुपया खर्च कर रही है। जल-बेल के अतिरिक्त नरकुल भी खेती के प्रदेशों के लिए अभिशाप है।

इस क्षेत्र में स्वस्थ जानवरों की कमी का कारण अच्छे चारे की कमी है। यहाँ की सबसे अधिक प्रचलित फसल धान से जानवरों के लिए अच्छा चारा नहीं मिलता। यहाँ होने वाले अन्य फसलो से किसी भी प्रकार के चारे की उपलब्धि नही होती।

इसके अतिरिक्त यहाँ की जलवायु और मिट्टी की दशाएँ चरागाहो के प्रतिकूल पड़ती हैं। गर्तों मे प्रायः सदैव ही पानी भरा रहता है, इसलिए यहाँ घास नहीं उग सकती। ऊपरी भूमि अर्थात् नदियों के तट खेती की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं और घास उगाने के लिए नही छोड़े जा सकते। खेती के अयोग्य मैदान घास के भी अयोग्य हैं। उदाहरणार्थ, डेल्टा के निचले भाग पर लवणयुक्त पानी का प्रभाव है, इसलिए वहाँ पर चारा योग्य घास नहीं उग सकती। इसलिए इस प्रदेश की कृषि में दूध और मास का उत्पादन महत्वहीन है।

(२) गंगा का ऊपरी प्रदेश भारत का सर्वोत्कृष्ट प्रदेश है। इसमें उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भाग आते हैं। सामान्यतः इस प्रदेश की वर्षा खेती के लिए न बहुत ज्यादा है और न बहुत कम। मौसमों में बँटी होने की वजह से वर्षा इस प्रदेश की खेती का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई है। यहाँ शीत तथा उष्ण तापमानों का स्पष्ट क्रम है। इस प्रदेश की फसलें दो वर्गों में विभाजित की जाती हैं। इस विभाजन का आधार तापक्रमों का अन्तर है। 'रबी' और 'खरीफ' क्रमशः जाड़ों और गर्मियों की फसलों के वर्गीकरण हैं।

जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है यहाँ की खेती मे सिंचाई का बड़ा महत्व है। यह सिंचाई जाड़े की फसलों तक ही सीमित है; क्योंकि इन फसलों के उगने का मौसम बिल्कुल सूखा रहता है। इस प्रदेश की सिंचाई मे कुओं की बहुतायत है। भारत के किसी दूसरे भाग में कुआँ बनाने के लिए इस प्रदेश से अच्छी भौगोलिक दशाएँ नहीं हैं। पानी की ऊँची सतह, उप-भूमि मे काँप की तहें, और सीझी हुई बालू की बहुतायत, जिसके कारण हिमालय की तराई के वर्षा बहुत प्रदेशो से पानी छन जाता है, इन सब कारणो से कुआँ द्वारा सिंचाई उत्कृष्ट भौगालिक सुविधाएँ यहाँ प्राप्त होती हैं।

यद्यपि कुओं द्वारा सिंचाई ही इस प्रदेश की सिंचाई में प्रमुख है, तथापि नहर द्वारा सिंचाई भी बहुत पीछे नही है। इस प्रदेश की महत्वपूर्ण नहरें, गगा नहर, जमुना नहर और शारदा नहर काफी क्षेत्र को सींचती है।

इस प्रदेश की कृषि की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ अनेक फसलें उगाई जाती हैं। भारत के किसी भी अन्य भाग में शायद ही फसलों की ऐसी अनेकता पाई जाती हो। फसलों की अनेकता कृषि दशाओं मे चरमता के अभाव के फल स्वरूप ही होती है। यहाँ वर्षा, तापमान तथा मिट्टियो की दशाएँ स्वल्प विविधताओं मे पाई जाती हैं। इसीलिए यहाँ अनेक प्रकार की आवश्यकताओ वाली अनेक फसलें उगाई जा सकती हैं।

खाद का काफी इस्तेमाल होना भी इस प्रदेश की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। गेहूँ और गन्ने की महत्वपूर्ण फसलें जिन्हें अच्छी उपज के लिए पर्याप्त पोषण की अत्यधिक आवश्यकता होती है, खादों के स्तेमाल को जरूरी बना देती हैं। खाद में अधिकतर कूड़ा-करकट और गोबर होता है। इस प्रदेश के बहुसंख्यक चौपायों द्वारा जानवरों की खाद मिलने में बड़ी आसानी होती है। ऐसे प्रदेश में जहाँ भूमि को उपजाऊ बनाने की आवश्यकता सर्वोपरि है, गोबर का ईंधन के रूप में प्रयोग होना कृषि की दृष्टि से क्षतिपूर्ण है। गोबर बहुमूल्य खाद है। इसका किसी भी अन्य काम मे उपयोग होने से उपजाऊपन का एक स्रोत बन्द होता है।

इस प्रदेश की सबसे अधिक महत्वपूर्ण फसले गेहूँ; धान और गन्ना हैं। इन फसलों के प्रधान क्षेत्र स्पष्ट हैं; उदाहरणतः पश्चिमी भाग में गेहूँ, पूर्वी भाग में धान और मध्य भाग में गन्ना। साधारणतः ये फसलें सबसे अच्छी भूमियों पर होती हैं। निकृष्ट भूमियों में जौ, मक्का और मोटे अनाज बोये जाते हैं।

चित्र ३७—हल द्वारा जुताई

बहुसख्यक नदियों की निकटवर्ती निचली भूमि मे बड़े-बड़े चरागाह क्षेत्रों के कारण बहुत बड़ी सख्या में यहाँ जानवर पाले जाते है।

वर्षा की अनिश्चितता के कारण इस प्रदेश मे कभी-कभी अकाल पड़ जाता है। 'अकाल-कटिबन्ध' उन क्षेत्रों मे है जो प्रायद्वीपीय प्रदेश से मिले हुए हैं। अकालों द्वारा निकृष्ट फसलों को बहुत क्षति पहुँचती है और इस प्रकार गरीबों को बड़ा कष्ट होता है। इसका कारण यह है कि बहुमूल्य फसलें उन्हीं क्षेत्रों में उगाई जाती हैं जिनमें सिचाई की सुविधाएँ प्रचुर होती हैं। अकाल द्वारा धान को सबसे ज्यादा नुकसान होता है, क्योंकि इसके लिए सबसे अधिक जल की आवश्यकता होती है और इसकी खेती उन्हीं क्षेत्रों में होती है जिनमे नहरों और कुओं का समुचित विकास नहीं हुआ है।

इस क्षेत्र मे खेत बहुत छोटे होते हैं। भूमि पर जनसख्या का दबाव बहुत अधिक होने के कारण यहाँ के निवासी बड़े निर्धन हैं। कानपुर मे औद्योगिक नगर और शक्कर बनाने वाले छोटे शहरों के कारण इस प्रदेश के किसानों को खेती से अवकाश मिलने पर धन कमाने का मौका मिल जाता है।

बड़े शहरों के होने के कारण इस प्रदेश में फल और तरकारियाँ बोने को बड़ा

प्रोत्साहन मिला है। बनारस, गाजीपुर, और फतेहगढ़ के आस पास आलू और गोभी आदि बहुतायत से उगाई जाती हैं। इन तरकारियों को कलकत्ता जैसे सुदूर स्थानों को भेजा जाता।

(३) सतलज-प्रदेश मे पजाब और पेप्सू है। इस प्रदेश के कृषि-विकास में सतलज तथा उसकी सहायक नदियाँ बहुत महत्वपूर्ण योग देती हैं। हिमालय की निचली पहाड़ियों की एक पट्टी को छोड़कर जहाँ वर्षा काफी होती, इस प्रदेश की सारी खेती सिचाई पर निर्भर है। इसलिए सिचाई इस प्रदेश की महान् विशेषता है।

इस प्रदेश में शीत तथा उष्णकालीन तापमानों का अंतर गगा के ऊपरी प्रदेश के अतर से अधिक है। इसलिए यहाँ पर गेहूँ जैसी जाड़े की फसले देश के अन्य भागों की अपेक्षा अच्छी होती हैं। इस प्रदेश की शीतकालीन वर्षा इन फसलों के उगाने के लिए काफी होती है।

इस प्रदेश की मिट्टी अधिकांशतः कछारी है। वर्षा की कमी की दशा में इसकी दशा मरुभूमि जैसी होने लगती है। गर्म और अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु के कारण काफी पानी भाप बनकर उड़ जाता है। कभी-कभी इस भाप बनने की प्रक्रिया मे मिट्टी के नीचे के स्तर से लवणादि आ जाते हैं। ये लवण मिट्टी पर पपड़े की तरह जम जाते हैं और उसे कृषि के अयोग्य बना देते हैं। इन लवणों को रेह या कल्लड़ कहते हैं।

गेहूँ, कपास और गन्ना इस प्रदेश की प्रमुख फसलों में से हैं। हिमालय की निचली पहाड़ियों पर फलों की पैदावार इस प्रदेश की खेती की एक विशेषता है। नहर द्वारा सिचाई इस प्रदेश की सर्वप्रधान विशेषता है।

यह प्रदेश राजस्थान के मरुस्थल से मिला हुआ है। ये मरुस्थल ही भारत में टिड्डियों की उत्पत्ति का मुख्य केन्द्र हैं। इसलिए इस प्रदेश मे सदैव ही फसलों की टिड्डियों द्वारा हानि होने का डर रहता है। सरकार इस प्रदेश मे इस टिड्डी रूपी अभिशाप से छुटकारा पाने के लिए प्रति वर्ष बहुत-सा रुपया खर्च कर रही है।

हिमालय के निकटवर्ती प्रदेशों में जहाँ वर्षा काफी है, फसलों की विविधता भी काफी है। परन्तु जहाँ नहर का पानी ही खेती का मुख्य आधार है वहाँ उगाई जाने वाली फसलों की संख्या कम है।

इस प्रदेश के खेत साधारणतः बड़े होते हैं और यहाँ के किसान भारत के

अन्य भागों के किसानों से अधिक सम्पन्न हैं। इस प्रदेश की शुष्क जलवायु ने इन्हें स्वस्थ और बलवान बना दिया है और इसलिए ये अपने खेतों पर भारत के अन्य किसानो की अपेक्षा अधिक परिश्रम करते हैं। इसीलिए पंजाबी किसान की सम्पन्नता उसके जीतोड़ मेहनत का उचित पुरस्कार है।

शुष्क जलवायु के कारण इस प्रदेश के चरागाह निम्नकोटि के हैं। परिणामतः यहाँ जानवरों के लिए चारे की कमी है। किसानों के पास काफी जमीन है और भूमि पर जनसख्या का दबाव अधिक नहीं है। इस कारण वे कुछ जमीन पर चारा की फसलें (चरी) भी बो लेते हैं। इस प्रदेश की प्रमुख चरी ज्वार-बाजरा हैं। भारत के लिए इतने अधिक भू-भाग में ज्वार नहीं बोई जाती। ज्वार जैसे पोषक चारे पर पले हुए यहाँ के जानवर मजबूत और तन्दुरुस्त होते हैं। पजाबी जाति के कुछ जानवर, जैसे हिसार और हरियाने के भारत भर मे प्रसिद्ध हैं।

(४) भारत के मरु-प्रदेश के अंतर्गत राजस्थान का कुछ भाग है। यह मरु-भूमि बिल्कुल ही अनुर्वर नहीं है कि यहाँ कुछ उग ही न सकता हो। इसके विपरीत जहाँ भी पानी मिल सकता है, खेती होती है। यह खेती स्वभावतः नदियों की घाटियों में होती है जहाँ सिंचाई के कारण कुछ फसलों को उगने मे सहायता मिल जाती है।

मरु-प्रदेश के कृषि-क्षेत्र अलग-अलग भागों मे पाये जाते हैं। ये विस्तृत नही हैं। जहाँ भी ऐसे क्षेत्र पाये जाते हैं वहाँ आबादी भी पाई जाती है। इस प्रदेश में उगने वाली सबसे महत्वपूर्ण फसलें वे ही हैं जिनको कम-से-कम नमी की जरूरत होती है और जो इस प्रदेश की गर्मी की ऋतु की उष्णता सहन कर सकती हैं। बाजरा ऐसी ही फसल है, इसीलिए इसकी खेती यहाँ खूब होती है। अनुकूल स्थानों पर जाड़ों में गेहूँ की खेती होती है।

इस प्रदेश के पहाड़ी भागों में कुछ जानवर, मुख्यतः बकरियाँ पाली जाती हैं। यहाँ पर चरागाह निकृष्ट कोटि के हैं।

इस प्रदेश में समीपवर्ती प्रदेशों के अतिरिक्त उपजों के लिए बाजरा मिल जाते हैं; क्योंकि यह प्रदेश स्वयं काफी नहीं उपजाता। इस प्रदेश के किसान गरीब मगर परिश्रमी हैं। जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है, यह प्रदेश भारत के समस्त कृषि प्रदेशों में निकृष्टतम है।

(५) **काली मिट्टी के प्रदेश** में प्रायद्वीप का एक बहुत बड़ा भाग सम्मिलित है। यह प्रदेश काली मिट्टी (रेगर) से सम्बद्ध है। यह बम्बई, मध्य भारत, मध्य प्रदेश

बरार और मद्रास प्रदेश तक फैला हुआ है। क्योंकि यह प्रदेश बहुत बड़े क्षेत्र मे फैला हुआ है इसलिए इसमे जलवायु और मिट्टी की बड़ी विविधता पाई जाती है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रदेश मे ३०" से ४०" तक वर्षा होती है। तापमान वर्ष भर उच्च रहता है।

इस प्रदेश के विशाल क्षेत्रों मे बिना काफी सिंचाई के, केवल वर्षा द्वारा खेती होती है। इस विदेश की नदियाँ ऐसी हैं कि गुजरात के कुछ प्रदेशों को छोड़कर उन्हे सिंचाई के लिए बिल्कुल ही इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। ये नदियाँ भूमि के साधारण स्तर से बहुत नीची गहरी घाटियो से होकर बहती हैं। इसलिए खेती की सिंचाई के लिए पानी को ऊपर उठाना काफी मुश्किल काम है। इन नदियों के स्रोत, उत्तर की नदियों की भाँति पहाड़ी बर्फो मे नहीं है। इसलिए उनकी जल-उपलब्धि वर्षा पर ही निर्भर रहती है। शुष्क ऋतु मे ये अधिकतर सूख जाती हैं। कुएँ की सिंचाई के लिए भी अनुकूल परिस्थितियाँ यहाँ नही हैं। केवल कुछ ही स्थानो पर पानी की आशा मे बोरिंग द्वारा कुएँ बनाए जा सकते हैं। ये कुएँ कुछ वर्ष पानी दे चुकने के बाद अक्सर सूख जाते हैं। केवल उन्ही क्षेत्रों में जहाँ काली मिट्टी काफी गहरी है कुओं द्वारा सिंचाई का कुछ महत्व है। इस प्रकार, सिंचाई इस प्रदेश की कोई महत्वपूर्ण विशेषता नहीं है।

इस प्रदेश की सबसे अधिक महत्वपूर्ण फसल कपास है। परन्तु यह इस प्रदेश मे हर कहीं नहीं बोई जाती है। केवल उन्हीं स्थलों पर कपास की खेती होती है जहाँ मिट्टी इतनी गहरी है कि उसमे काफी नमी हो। अन्य स्थलों पर ज्वार और बाजरा जैसे मोटे अनाज ही महत्वपूर्ण फसलें हैं। स्थानीय अंतरों के कारण इस प्रदेश में अनेक अन्य फसलें भी उगाई जाती है। इन छोटी फसलों मे गेहूँ उल्लेखनीय है। इसकी खेती मालवा पठार तथा नर्बदा की घाटी में काफी महत्वपूर्ण है। गन्ना भी छिटपुट अनुकूल स्थलों पर बोया जाता है।

काली मिट्टी के प्रदेश में विविध स्थलों पर पहाड़ी क्षेत्र पाये जाते हैं। इन पहाड़ियों के समीपवर्ती स्थलों में यद्यपि निम्नकोटि के तथापि विस्तृत चरागाह हैं। इन चरागाहों पर बहुत से जानवर पाले जाते हैं।

इस प्रदेश के खेत साधारणतः बड़े होते हैं, परन्तु मिट्टी हर जगह बराबर उपजाऊ नहीं है। सिंचाइ की सुविधाएँ भी बहुत नहीं हैं और इसलिए यहाँ के किसान साधारणतः गरीब हैं।

(६) **लाल मिट्टी का प्रदेश** भी प्रायद्वीप के बहुत बड़े भाग में फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत बम्बई, मद्रास मध्य प्रदेश और उड़ीसा के भाग हैं। यह प्रदेश पोली और लाल मिट्टियों से ढँका हुआ है। कुछ स्थलों पर लैटराइट मिट्टी भी है जो कि ऐसे क्षेत्रों की विशेषता है जो बहुत पुरानी चट्टानों से बने हैं। भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार यह भाग प्राचीनतम है। इन चट्टानो से निकली हुई मिट्टी साधारणतः उपजाऊ नहीं है। इस लिए यह प्रदेश स्पष्टतः निकृष्ट मिट्टियो का प्रदेश है। इसीलिए यहाँ पर लगातार कृषि क्षेत्र जैसा कि गङ्गा-सिन्ध के मैदान में मिलती हैं दुर्लभ हैं। इस प्रदेश की प्राकृतिक आकृतियाँ विकृत हैं। सतपुड़ा और पूर्वी घाट की पहाड़ियाँ एक-दूसरे से बिल्कुल अलग है। इसी प्रकार छोटा नागपुर, मैसूर और हैदराबाद के पठार भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। पहाड़ियों और पठारों के कारण यहाँ कृषि-भूमि कम हो गई है। गर्तों तथा नदियों की घाटियो मे, जहाँ कहीं वे चौड़ी हो गई हैं, बहुमूल्य कृषि-क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में अच्छी मिट्टियो की गहरी तहें हैं, जो कि गन्ना और धान-जैसो बहुमूल्य फसलों को उगाने के लिए उपयोगी हैं। ऊँचाइयों और ढालों पर मिट्टी साधारणतः मोटे कणों की है और बहुत गहरी नही है। ऐसे क्षेत्रों मे केवल निम्न श्रेणी की फसले ही उग सकती हैं।

तापमान वर्ष भर ऊँचे रहते हैं और जाड़ों तथा गर्मियों के तापमानों में अतर बहुत कम हैं। यहाँ वर्षा ३०″ से ५०″ होती है। अधिकाश क्षेत्र में वर्षा जाड़ों मे भी होती है और गर्मियों मे भी। यहाँ बहुधा वर्षा न होने से अकाल अन्य किसी भी भाग की अपेक्षा सामान्य से कम होता है। इसके कारण अक्सर अकाल की दशाएँ पैदा हो जाती है। अकाल की विभीषिकाएँ यहाँ और भी उग्र होती हैं क्योंकि भूमि की उपजाऊ शक्ति अपेक्षाकृत कम है और इसलिए किसानों के पास काफी भोजन नही होता है। सामान्य वर्षा से कुछ भी कम हो जाने पर विपत्ति आ जाती है, क्योंकि उच्च तापमान वाले इस प्रदेश की फसलों की नमी की माँग बहुत होती है। यह माँग किसी अन्य साधन द्वारा नहीं पूरी की जा सकती; क्योंकि यहाँ सिचाई के साधन बहुत नहीं हैं। इसलिए अकाल इस प्रदेश की सनातन समस्या है।

यहाँ बाजरे की खेती सबसे अधिक होती है, क्योंकि जलवायु की दशाओं और निकृष्ट मिट्टियों को देखते हुए उसी की खेती सबसे अच्छी हो सकती है। अन्य महत्वपूर्ण फसले मूँगफली, कपास, धान और गन्ना हैं। निकृष्ट मिट्टी और गर्म जलवायु के कारण गेहूँ की खेती यहाँ नहीं होती। यहाँ की यह एक विशेषता है। पहाड़ों के ढाल

पर जहाँ विशेष रूप से अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हैं, बगीचे लगाये जाते है। यह भी इस प्रदेश की एक विशेषता है। इन बगीचों में चाय, कहवा, रबर और मसाले पैदा होते है। इस प्रदेश मे तालाबों द्वारा सिंचाई महत्वपूर्ण है।

धरातल के बिखरे होने और मिट्टी उपजाऊ न होने की वजह से यहाँ विस्तृत चरागाह पाये जाते हैं। ये चरागाह निकृष्ट हैं और इन पर केवल बकरियाँ ही बड़ी संख्या मे पाली जा सकती हैं।

खेत बड़े-बड़े होते है परन्तु सामान्य अनुर्वरता के कारण किसान को अपने खेत से काफी पैदावार नही मिलती। इस प्रदेश के किसान साधारणतः गरीब हैं। वे मजबूत और स्वस्थ नही हैं, क्योंकि यहाँ की जलवायु के कारण बहुत सी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इस प्रदेश मे हुकवर्म (पेट की बीमारी) बहुत होती है। यह बीमारी धीरे-धीरे लोगों की जीवन-शक्ति को नष्ट करके उन्हें निर्बल बना देती है।

(७) **तटीय प्रदेश** विस्तार की दृष्टि से सबसे छोटा है। इसके अन्तर्गत भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट के मैदान हैं। पूर्वी तट के मैदान पश्चिमी तट के मैदानों से अधिक चौड़े हैं। ये तटीय मैदान अधिकाशतः नदियों के डेल्टा से बने है। ये मैदान अधिकतर नम और गर्म हैं। समुद्रतट के बहुत नजदीक जहाँ रेत मिल जाने से उपजाऊपन कम हो जाता है, वहाँ के अतिरिक्त सारा तटीय प्रदेश उपजाऊ है। अधिक बड़े डेल्टो मे नहरों की सुविधा का प्रबन्ध हो जाने के कारण अब भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ गई है।

धान यहाँ की प्रधान फसल है, यद्यपि अनुकूल परिस्थितियों में तम्बाकू और कपास भी होते हैं।

खेत ज्यादातर छोटे हैं, परन्तु अच्छी मिट्टी होने के कारण किसानो को छोटे खेतों से भी काफी आमदनी हो जाती है। यहाँ के किसान प्रायद्वीप के अन्य प्रदेशों के किसानों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं।

प्रश्न

१. 'भारत के कृषि-उत्पादन को बढ़ाना सम्भव है'। इस कथन के भौगोलिक कारण स्पष्ट कीजिए।

२. भारत में धान के वितरण की व्याख्या कीजिए।

३ हाल में हुए विकासों का उल्लेख करते हुए भारत में शक्कर-उत्पादन से सम्बद्ध प्राकृतिक तथा आर्थिक दशाओं का वर्णन कीजिए।

४. प्राकृतिक तथा कृत्रिम जल पूर्ति का विशेष निर्देश करते हुए पंजाब और बंगाल की कृषि दशाओं की तुलना कीजिए, तथा उनके अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

५. प्रायद्वीप भारत की मुख्य फसलों के वितरण मिट्टियो और जलवायु के प्रसंग में वर्णन कीजिए।

६. भारत में कौन-कौन मुख्य तेलहन पैदा होते हैं ? वे कहाँ से कहाँ को निर्यात किये जाते है ?

७ भारत में तेलहन के उत्पादन का विवरण दीजिये। अपने उत्तर को एक चित्र बनाकर चित्रित कीजिए। कौन-कौन तेलहनो का किन-किन देशों को निर्यात होता है ? प्रत्येक के लिए कम से कम एक बन्दरगाह का उल्लेख कीजिए। तेलहनो का यूरोप में जो जो उपयोग होता है उसका वर्णन कीजिए।

८. भारत का एक चित्र बनाकर उसमें निम्नलिखित फसलों के उत्पादन के प्रमुख क्षेत्रों को दिखाइये :—

धान, गेहूँ, कपास, ऊन, रेशम, जूट, चाय, तम्बाकू, अलसी और मूँगफली।

६ किन भौगोलिक दशाओं में भारत में गेहूँ का उत्पादन होता है ? ये दशाएँ संसार के अन्य महान गेहूँ उत्पादक देशों से कितनी भिन्न हैं ?

१० भारतीय किसान के लिए कपास की खेती का क्या महत्व है ? भारत में कौन-कौन कपास उपजाने वाले क्षेत्र प्रमुख हैं ? उनकी भौगोलिक दशाएँ परस्पर कहाँ तक भिन्न हैं ?

११. निम्नलिखित फसलो की खेती कुछ ही स्थलों तक सीमित क्यों है :—

जूट, ज्वार, गन्ना और चाय।

१२ भारतीय खेती में तेलहन का क्या स्थान है ? भारत में जिन भौगोलिक दशाओं में मुख्य तेलहनों का उत्पादन होता है उनका उल्लेख कीजिए।

१३. कृषि की दृष्टि से भारत क्यों इतना महत्वपूर्ण है ? व्याख्या कीजिए।

१४. डेरी-उद्योग भारत में अमेरिका और यूरोप के बराबर महत्वपूर्ण क्यों नहीं है ?

१५. फलों और तरकारियों के उत्पादन की आवश्यक दशाएँ क्या हैं ? भारत में ये दशाएँ कहाँ तक पूरी होती हैं ?

१६ भारत को कृषि-प्रदेशो में विभाजत कीजिये और उनमें से किसी एक की कृषि-दशाओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय ६

सिचाई

(Irrigation)

खेती की प्रधातता के कारण भारतवासी मिट्टी को नष्ट होने से बचाने तथा उससे यथासम्भव अधिकतम लाभ उठाने के लिए बाध्य हैं। भारतीय कृषि को स्थायित्व देने वाले साधनों में सिचाई भी एक है। भारतीय बर्षा की दो विशेषताओं के कारण सिंचाई आवश्यक हो जाती है। (अ) देश और काल दोनों में ही वर्षा-वितरण की अनिश्चितता और (ब) वर्ष भर के वर्षा-वितरण का अनियमितता अर्थात लगभग समस्त वर्षा का कुछ महीनों में केन्द्रीयकरण तथा शेष वर्ष का शुष्क रहना। भारत के तापमान ऐसे हैं कि यहाँ वर्ष भर खेती हो सकना सम्भव है परन्तु नमी की कमी और अनिश्चितता के कारण बड़ी अड़चन पैदा होती है। सिंचाई द्वारा यह अड़चन किसी हद तक दूर हो जाती है।

सिंचाई के दृष्टिकोण से भारत का स्थान विश्व मे महत्वपूर्ण है। मोटे तौर पर संसार के समस्त सिंचित क्षेत्र का एक तिहाई भाग मे ही है।* विश्व की विशालतम नहर योजनाओं मे से कुछ भारतवर्ष मे है। इसका कारण यह है कि भारत को कतिपय ऐसी प्राकृतिक सुविधाएँ प्राप्त हैं जो अन्यत्र इतने ही विशाल पैमाने पर दुर्लभ हैं। इसके बावजूद भी भारत अपनी सिंचाई की माँग को पूरी नहीं कर पाता। उसके कुछ क्षेत्र

*आँकड़े (लाख एकड़ों मे)

देश	कृषि क्षेत्र	सिंचित क्षेत्र	कृषि क्षेत्र मे सिंचित क्षेत्र
भारत	२,४९४	४८६	१७%
पाकिस्तान	४५०	३००	६७%
सयुक्त राज्य अमेरिका	४५,१०	२२५	५%
आस्ट्रेलिया	२०६	१४०	७%
मिश्र	१७	५५	७७%

के केवल एक भाग की सिचाई हो पाती है। चित्र से यह स्पष्ट है कि भारत की कुल कृषि भूमि के लगभग $\frac{1}{5}$ में ही सिंचाई होती है।

जनता की गरीबी और सिचाई के साधनों का अभाव ही इस निम्न अनुपात के कारण है। भारत के सिंचित क्षेत्र का अधिकाश (लगभग ६३%) सिंधु-गगा घाटी मे है क्योंकि वहाँ सिंचाई की सुविधाएँ सबसे अधिक है। मिट्टी के उपजाऊपन तथा गन्ना जैसी धनदायनी कुछ फसलो के होने के कारण यहाँ सिंचाई से लाभ भी होता है। सम्बद्ध-चित्र मे विभिन्न राज्यों में सिचाई क्षेत्र का वितरण दिग्दर्शित है।

भारत में सिंचाई की आवश्यकता है: –

(१) इसलिए कि देश भर मे (रबी की पैदावारे जो कि शुष्क मौसम मे उगती है,) उग सके। यह शुष्क मौसम मानसूनी जलवायु की विशेषता है।

(२) इसलिए कि उन शुष्क क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा इतनी कम होती है कि बिना कृत्रिम सिचाई के खेती करना असम्भव है खेती हो सके। ऐसे प्रदेशो की खेती पूरी की पूरी सिंचाई पर ही निर्भर रहती है। इसके उदाहरण राजस्थान और पंजाब मे मिलते हैं।

(३) इसलिए कि उन प्रदेशों मे खेती हो सके जहाँ वर्षा अनिश्चित होती है और जिस बार वर्षा नहीं होती है लाखो आदमियों को विपत्ति और भुखमरी का सामना करना पड़ता है।

केवल बगाल, आसाम और तराई के क्षेत्र ही ऐसे हैं जहाँ नमी काफी रहती है और सिंचाई की जरूरत नहीं होती।

सिचाई के लिए भौगोलिक सुविधाएँ

भारत मे सिचाई के लिए निम्नलिखित भौगोलिक सुविधाएँ प्राप्त हैं :—

(अ) उत्तर की साल भर बहने वाली नदियाँ-जिनके स्रोत हिमालय के अमित हिमकोषों में हैं।

(ब) मैदानों का क्रमिक ढाल—इसके कारण नहरें आसानी से नदियों के ऊँचाई पर के बहावों से निकाल ली जाती हैं और उनका नदियों की निचली घाटियों को सींचने के लिए उपयोग हो जाता है।

(स) मैदानो म चट्टाने न होने के कारण नहरे आसानी से काटी जा सकती हैं।

चित्र ३८— नहर द्वारा सिंचाई में सिंधु-गंगा क्षेत्र का महत्व

(द) उपजाऊ मिट्टी के कारण सिंचाई मे काफी लाभ होता है।

(य) मिट्टी के उपस्तरों में कॉप की पर्तों मे पानी के सग्रह हैं जहाँ छिद्रमय कछारी मिट्टी मे पानी सोख कर आता है और वह बाद में कुँओं द्वारा निकाल लिया जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारत के कुल १७% कृषि क्षेत्र मे सिचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। १९५५-५६ मे समाप्त होने वाले ७ वर्षों में सिंचित क्षेत्र में ९६ लाख एकड़ भूमि की वृद्धि हुई है :—

सिंचित क्षेत्रफल मे वृद्धि (लाख एकड़ में)

साधन	१९४७-४८	१९५५-५६	वृद्धि या कमी
नहरें	१९८	२३२	+३४
तालाब	८०	१०५	+२५
कुएँ	१२५	१६८	+४३
अन्य	६४	५८	— ६
योग	४६७	५६३	+९६
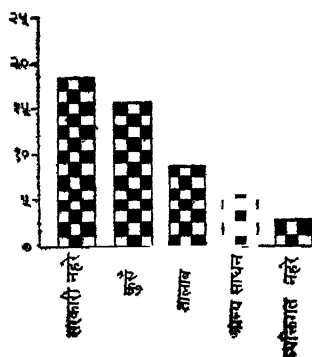
चित्र ३९—सिंचाई के साधन

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि सिचाई के लिए भिन्न-भिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। उत्तरी भारत मे व दक्षिण में नदियों के डेल्टा मे नहरों से तथा उत्तरी भारत, बम्बई, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि में कुओं से और दक्षिण के पठार पर तालाबों से। कुल सिंचित भूमि का ४१% नहरों से, ३०% कुओं से, १९% तालाबों से और शेष अन्य साधनों द्वारा सींचा जाता है :—

सिंचित क्षेत्र

साधन	१९४७-४८		१९५५-५६	
	(लाख एकड़)	(%)	लाख एकड़	(%)
नहरें	१९८	४२	२३२	४१
तालाब	८०	१७	१०५	१९
कुएँ	१२५	२७	१६८	३०
अन्य साधन	६४	१४	५८	१०
योग	४६७	१००	५६७	१००

नीचे की तालिका म सिंचाई का क्षेत्रफल दिया गया है :—

सिंचाई का क्षेत्रफल (हजार एकड़ों मे)

राज्य	नहरे सरकारी	प्राइवेट	तालाब	कुएँ	दूसरे साधन	योग
१	२	३	४	५	६	७
आँन्ध्र	३१२९	६३	२६३९	७०३	२५४	६७८८
आसाम (नेफा को छोड़कर)	१७८	७२१	..	..	६३४	१५३३
बिहार	९३४	६०४	७५५	४०२	१७१०	४४०५
बम्बई	५९७	५६	५००	२२७४	१६६	३५९३
जम्मू काश्मीर	१३६	५४९	२	६	२३	७१६
केरल	३२८	६८	७७	२९	३०९	८११
मध्य प्रदेश	९१५	(अ)	२९३	७३६	९४	२०३८
मद्रास	१९५३	(अ)	१९९९	१२४७	१०७	५३०६
मैसूर	३६७	१६	७५९	३१८	१७४	१६३४
उड़ीसा	४८७	६९	१२२३	९४	५४१	२४१४
पजाब	५१९९	१४०	१३	२६६७	४३	८०६२
राजस्थान	७०२	...	४४०	२१५५	३९	३३३६
उत्तर प्रदेश	४२८४	२६	१२२६	५९३४	७९५	१२२३५
प० बगाल	५९०	९०२	९५२	३८	४८८	२९७०
दिल्ली	३१	.	५	४०	.	७८
हिमाचल प्रदेश	..	..	...	(अ)	९५	९५
भारत का योग	१९,८३२	३,३६०	१०,८८४	१६,६४३	५,४४४	५६,१६३

(अ) ५०० एकड़ से कम

भारत मे सिंचाई के सबसे महत्वपूर्ण साधन निम्नलिखित हैं :—

१. नहरे

२ कुएँ, और

३ तालाब।

इनमें नहरे अपने सस्तेपन, आसानी और निश्चितता के कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। भारत के कुल सिंचित क्षेत्र ६ करोड़ एकड़ों में लगभग ३ करोड़ १० लाख एकड की सिचाई (सरकारी तथा व्यक्तिगत) द्वारा होती है।
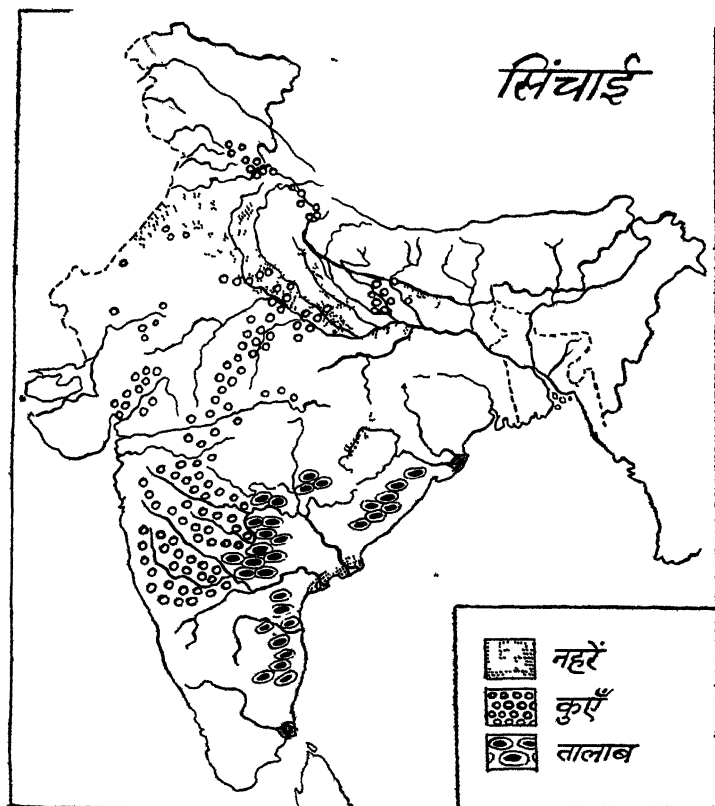
चित्र ४०—सिंचाई

चित्र ४० में भारत में सिंचाई के विभिन्न स्रोतों का महत्व दिग्दर्शित है।

नहरों द्वारा सिंचाई (Canal Irrigation)

भारतीय नहरों के दो वर्ग हैं :—

(१) बाढ़ द्वारा भरने वाली नहरे (Inundation Canal) और

(२) सदावाहनी नहरे (Perennial Canal)

बाढ़ द्वारा भरने वाली नहरों मे नदी का पानी बाढ़ के समय बिना बाँध बनाये ही आ जाता है। बाढ़ आने पर नहरों मे पानी आ जाता है। बाढ़ के उतरने पर जब नदी के जल का स्तर नहर के स्तर से नीचा हो जाता है तब ये नहरे सूख जाती हैं। ऐसे नहरों का सबसे बड़ा दोष यही है कि जलपूर्ति बड़ी अनिश्चित होती है। इनके द्वारा अधिकाशत॰ वर्षा में ही सिंचाई हो सकती है क्योंकि तभी नदियों में बाढ़ आती है। शुष्क मौसमों में जब सिंचाई की सबसे अधिक आवश्यकता होती है तब ये नहरे व्यर्थ होती हैं। ऐसी नहरों की सबसे बडी सख्या पजाब मे है। वे अधिकतर सतलज नदी से निकलती हैं क्योंकि वर्षा ऋतु मे उसमे सबसे अधिक बाढ़ आती है। अनिश्चितता को दूर करने के लिए अधिकतम बाढ़ में भरने वाली नहरों को विशाल सिंचाई योजनाओं के विकास द्वारा सदावाहनी बनाया जा रहा है।

भारत मे सदाबाहनी नहरों का वास्तविक महत्व है। उनकी सहायक नहरों को जोड़कर उनकी ५०,००० मील की लम्बाई इतनी विशाल है कि उसके द्वारा सारी धरती को विषुवत् रेखा पर दो बार घेरा जा सकता है। विश्व में इतनी महान् सिचाई योजनाएँ कभी भी कार्यान्वित नहीं हुई हैं। फिर भी यह हमारी कृषि की आवश्यकता के लिए काफी नहीं है।

सदावाहनी नहरे देश के पूर्ण कृषि भूमि के केवल १७% को सींचती हैं। उत्तर प्रदेश मे ही नहरों की लम्बाई सबसे अधिक है और उनके द्वारा सिंचित-भूमि भी। वहाँ पूर्ण कृषि-भूमि का एक-तिहाई नहरों द्वारा सींचा जाता है।

(१) पंजाब मे

भारत का कोई भी भाग नदियों की दृष्टि से इतनी अनुकूल तथा वर्षा की दृष्टि से इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में स्थित नहीं है जितना कि पजाब। पंजाब के अधिकाश में २५" वार्षिक से कम वर्षा होती है। इतना भी निश्चित नहीं है। इसीलिए सिंचाई के साधनों के पहले यह सारा क्षेत्र बेकार था। अपवाद केवल नदियों के तट

थे जहाँ पर बाढ की नहरो और कुओ द्वारा सिचाई सम्भव थी। पजाब में सिंचाई की समस्या भारत क अन्य प्रदेशों से भिन्न था। अन्य समस्त योजनाओं मे विद्यमान खेती को विकसित करने की समस्या रही है। पजाब में सिंचाई की शुरुआत के साथ-साथ बहुत से क्षेत्र बसाये भी गये।

सयुक्त पजाब की तीन नहरी-योजना (Triple System) भारत की विशालतम नहर योजनाओं में से थी। इसका प्रमुख ध्येय रावी और सतलज के बीच की भूमि को सींचना है। इसके दक्षिण मे व्यास नदी का अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र है। इसे निचली बारी दोआब कहते हैं। इस योजना के अनुसार झेलम से पानी को स्थानान्तरित करके चिनाब और राबी और निचले बारी दोआबों को सीचने के लिए लाया जाता है।

झेलम पर मगला मे एक रेगुलेटर बनाकर यह स्थानान्तरण कार्यान्वित किया गया है। मगला से ऊपर झेलम नहर झेलम के पानी को चिनाब मे ले जाती है और उसे लोअर चिनाब के उद्गम स्थान (खानकी) के पहले चिनाब से मिला देती है। इस प्रकार निचली चिनाब नहर को झेलम से पानी मिलता है और चिनाब का पानी (जो इस प्रकार अन्य कामो के लिए उपलब्ध हो जाता) खानकी से ३६ मील पहले स्थित मराला से निकाल कर ऊपरी चिनाब नहर मे ले जाया जाता है। यह नहर राबी के दक्षिण में बहती है और उसे बल्लोकी मे धरातल पर काटती है। बल्लोकी के नीचे इसे निचली बारी दोआब नहर कहते हैं।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य सतलज के पानी को उसके दोनों पाटों पर सिंचाई तथा खेती का विस्तार करने के लिए बचाना था।

तीन-नहरी योजना द्वारा बहुत-सी बेकार भूमि मे खेती होने लगी है। इस प्रकार सतलज-घाटी-योजना प्रत्यक्ष रूप से इसी योजना के कारण सम्भव हो सकी।

सतलज के दोनों तटों पर बहुत-सी बाढ़ वाली नहरे हैं। नदी का जल बढ़ने पर इनको पानी मिलता है।

सतलज घाटी योजना के तीन ध्येय थे :—

१. बाँधों और रेगुलेटरों द्वारा बाढ़ वाली नहरो को अप्रैल से अक्टूबर तक नियमित रूप से जल प्रदान करना, तथा इस प्रकार उन्हें जल की मात्रा की मौसमी घटा-बढ़ी से मुक्त करना। अब ये नहरें न होकर सदाबाहसी नहरें हैं। गर्मियों में

इनमें पानी अवश्य रहता है किन्तु ये जाड़ो में (जब नदी में कम पानी रहता है) बन्द हो जाती हैं।

२. सतलज घाटी के समस्त निचले क्षेत्रों की सिंचाई की व्यवस्था करना।

३ नदी के दोनों पाटों पर की उन्च भूमि के विशाल क्षेत्रो को आवश्यकतानुसार बराबर जल देना।

पजाब की नहर योजनाओं की एक विशेषता यह है कि पजाब की सब नदियों को नहरों द्वारा जोड़ दिया गया है। इस प्रकार अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए वहाँ के सारे पानी के स्रोतो को एकत्र किया गया है। पजाब में नदियों के समस्त उपलब्ध पानी का पूरा-पूरा उपभोग किया जाता है।

इस योजना मे ४ बाँध हैं : ३ सतलज पर और १ पचनद पर। (पचनद अब पाकिस्तान में है। इनके ऊपर से १२ नहरें निकाली जाती हैं। वास्तव मे योजना के अन्तर्गत चार अन्तर्सम्बद्ध नहर योजनाएँ हैं।

सतलज घाटी योजना

पंजाब की विशालतम नहर - योजना सतलज-घाटी-योजना है जो कि पजाब के कुल नहर-सिंचित क्षेत्र के ½ को सींचती है (पाकिस्तान को लेकर)। इस योजना में सतलज पर चार स्थानों पर बाँध बनाये गये हैं और उनसे नदी के दोनों ओर ग्यारह नहरें निकाली गई हैं। ये बाँध फिरोजपुर, सुलेमानकी, इसलाम और पचनद में हैं। पजाब की सबसे अधिक
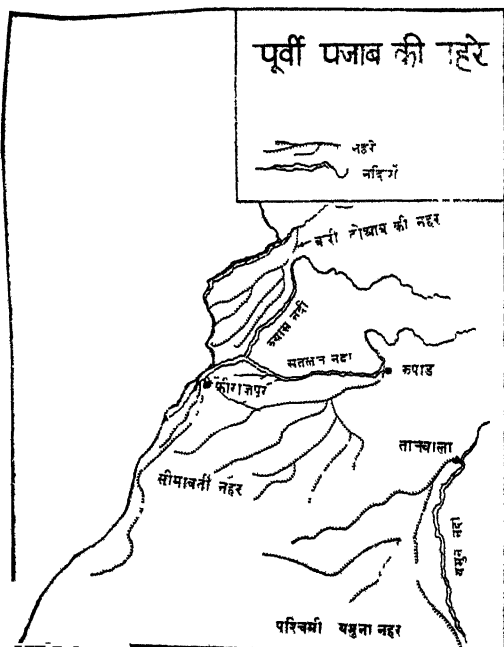
चित्र ४१—पंजाब की नहरें

महत्वपूर्ण फसले गेहूँ और कपास हैं। ये दो फसले कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग आधे मे उगाई जाती है। महत्व की दृष्टि से धान इनके ठीक बाद आता है।

जो नहरें पूर्ण रूप से पजाब (भारत) मे हैं वे निम्नलिखित हैं :—

(१) ऊपरी बारी दोआब नहरें, (२) सतलज के बाएँ तट की सतलज घाटी-नहरें और (३) रूपड़ से प्रारम्भ होने वाली सरहिन्द नहरें।

पश्चिमी जमुना नहर—सन् १८७० मे बना कर तैयार की गई। यह जमुना नदी के किनारे तेजावाला नामक स्थान से निकाली गई है और रोहतक, हिसार पटियाला और जिद जिलों की १० लाख एकड़ भूमि की सिचाई करती है। इसकी कुल लंबाई २ हजार मील है। देहली, हाँसी और सिरसा इसकी मुख्य शाखाएँ है।

सरहिद नहर—सन् १८८४ मे समाप्त हुई। यह सतलज नदी से रोपड़ नामक स्थान से निकाली गई है। यह लुधियाना फीरोजपुर, नाभा और हिसार जिलों की २२ लाख एकड़ भूमि को सीचती है। इसकी शाखाओ सहित उसकी कुल लंबाई ३८०० मील है।

ऊपरी बारी दोआब नहर—सन् १८७६ मे बनकर समाप्त हुई। यह रावी नदी से माधोपुर के निकट निकाली गई है। इससे गुरुदासपुर, और अमृतसर जिलों की लगभग पौने आठ लाख एकड़ भूमि की सिचाई होती है।

इन नहरों के अतिरिक्त पजाब की नई नहरे ये हैं :—

(१) नागल की नहरें
(२) बिस्त-दोआब नहरे
(३) बीकानर नहर
(४) नरवाना शाखा नहर

(२) उत्तर प्रदेश मे

उत्तर प्रदेश मे नहरों का प्रमुख महत्व यह है कि सूखा पड़ने की अवस्था मे ही वे मुख्य रूप से काम आती हैं। पजाब के विशाल क्षेत्र में बिना सिंचाई के खेती सम्भव ही नहीं है। परन्तु उत्तर प्रदेश में सामान्य वर्षों मे काफी पानी बरस जाता है और यहाँ कुएँ भी हैं इसलिए साधारण दशा मे नहर द्वारा सिचाई के बिना काम चल सकता है। नहरे जब एक बार बन जायँ तब उनका उपयोग अवश्य होना चाहिए क्योंकि नहर द्वारा सिचाई सस्ती और सुविधापूर्ण होती है। उत्तर प्रदेश की विशालतम नहर योजनाएँ गगा की दोनों नहरों की हैं यद्यपि यदि इनको अलग-अलग लिया

जाय तो शारदा नहर इस प्रदेश की सबसे बड़ी नहर है। ऊपरी गङ्गा नहर और शारदा नहर ऐसे स्थान से निकाली गई हैं जहाँ से नदी-पहाड़ों के बाहर निकलती है। अति वृष्टि के कारण अनेक नदियाँ तराई से ही निकल कर गगा से बीच ही में
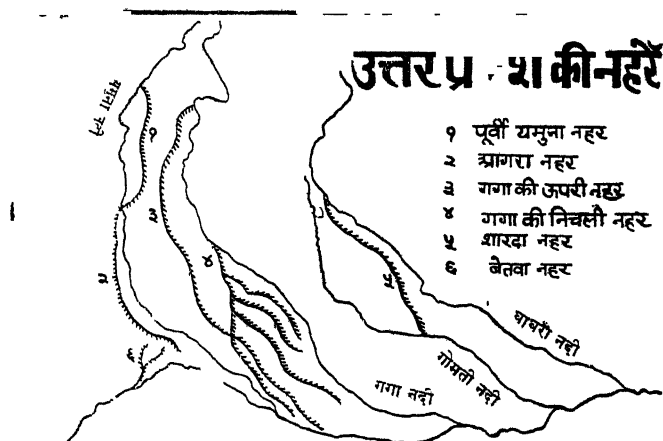
चित्र ४२—उत्तर प्रदेश की नहरे

मिल जाती हैं। इस प्रकार नहरों द्वारा जितना पानी नदियों से निकाला जाता है उससे कहीं अधिक पानी उनको मिल जाता है। इस प्रकार एक निचली नहर निकाल कर मध्यवर्ती भाग को सींचना सम्भव हो जाता है। पहाड़ों से निकलने के बाद पजाब की नदियों का पानी कम होने लगता है परन्तु उत्तर प्रदेश में उनके जल में वृद्धि होती चलती है क्योंकि वे उत्तर प्रदेश से होकर बहती हैं। इसके कारण एक निचली नहर निकल आती है। निचली गगा नहर तो पहले से ही है, निचली शारदा नहर की योजना भी बनाई गई है। जमुना से भी दो नहरें निकाली गई हैं। उत्तर प्रदेश मे दक्षिण में कुछ छोटी नहरें भी हैं जैसे केन, घाघरा और बेतवा नहरें।

उत्तर प्रदेश में नहर द्वारा सिंचाई कुएँ द्वारा सिचाई से कम महत्वपूर्ण है। यहाँ नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र लगभग ४२ लाख एकड़ है। यह क्षेत्र कुल कृषि भूमि का $\frac{1}{8}$ और कुल सिंचित भूमि का $\frac{1}{3}$ है। उत्तर प्रदेश में नहर द्वारा सिंचित भूमि

का क्षेत्रफल वर्षा की दशाओं के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जिस वर्ष वर्षा कम होती है उस वर्ष नहर द्वारा सिंचित क्षेत्र बढ़ जाता है। जिन वर्षों में वर्षा ठीक रहती है यह क्षेत्रफल कम हो जाता है। गेहूँ, जौ, गन्ना और कपास प्रमुख सिंचित फसलें हैं।

पजाब की भाँति उत्तर प्रदेश के नहर सिंचित क्षेत्रो में एक गभीर समस्या उठ खड़ी हुई है। यह समस्या क्षारयुक्त मिट्टियों की समस्या है जो अधिक सिंचाई के परिणामस्वरूप होती है। यह ऐसे देश मे स्वाभाविक ही हे जहाँ पानी की कमी के कारण अकाल पड़ता है।

अधिक वर्षा के कारण इस प्रदेश मे नहरों को क्षति से बचाने के लिए पानी बहाने के साधनों का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है। उत्तर प्रदेश मे ऐसे नालों की लम्बाई नहरों से भी अधिक है।

उत्तर प्रदेश मे नहरे एक बड़ा उपयोगी काम करती हैं कि गगा अथवा जमुना मे अधिक बाढ़ आने के समय अपनी सभी शाखाओं और नालियों को खोल कर बाढ़ों की उग्रता को कम कर देती हैं।

(१) ऊपरी गंगा की नहर—यह हरिद्वार के निकट गंगा नदी से निकाली गई है। इस नहर द्वारा मुजफ्फरनगर, मेरठ, सहारनपुर, एटा, बुलन्दशहर, कानपुर, अलीगढ़ आदि जिलों की १६ लाख एकड़ भूमि की सिचाई की जाती है। इसकी मुख्य शाखाएँ देवबन्ध, अनूपशहर, माटा और हाथरस है। शाखाओं सहित नहर की कुल लम्बाई ४ हजार मील है। यह नहर १८५४ में तैयार हुई है। इसकी सिंचाई के सहारे गगा-जमुना दोआब के उत्तरी भाग में गन्ना, गेहूँ, कपास आदि पैदा किये जाते हैं।

(२) निचली गंगा की नहर—यह नहर गगा नदी से नरोरा नामक स्थान पर निकाली गई है। इसके द्वारा, अलीगढ़, इटावा, इलाहाबाद, फर्रुखाबाद और कानपुर जिलों की लगभग १२ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। इसकी मुख्य शाखायें कानपुर और इटावा शाखा है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ४ हजार मील है।

(३) पूर्वी जमुना नहर—जमुना नदी से फैजाबाद के निकट निकाली गई है। इसके द्वारा मेरठ, सहारनपुर और मुजफ्फरनगर जिलों की ४ लाख एकड भूमि सींची जाती है।

(४) आगरा नहर—यह जमुना से दिल्ली के निकट निकाली गई है। इसके

द्वारा ३ लाख एकड भूमि की सिचाई दिल्ली, मथुरा, गुड़गाँव, भरतपुर और आगरा जिलों मे होती है ।

(५) शारदा नहर—यह नहर शारदा नदी से बनवासा स्थान से निकाली गई है । इसके द्वारा रुहेलखड और अवध के पश्चिमी जिलों की १३ लाख एकड़ भूमि मे सिंचाई की जाती है ।

अन्य नहरे बेतवा नहर, केन नहर, घसान नहर और घग्घर नहर हैं ।

(३) मद्रास मे

मद्रास प्रदेश मे सिचाई महत्वपूर्ण है । यहाँ की अधिकाश नहरे पूर्वी घाट के मुहानो पर हैं क्योकि वही पर नहरों द्वारा सिचाई के उपयुक्त भूमि है । ये डेल्टा गगा के डेल्टा की भाँति तर नहीं हैं जहाँ गगा और ब्रह्मपुत्र की अपार जलराशि को इतना तर किये रहती है कि सिचाई की कोई आवश्यकता ही नही पड़ती । गगा के डेल्टा में होने वाली प्रचुर वर्षा वहाँ के गर्तों को भरा रखती है । इसलिए यदि आवश्यकता पड़े ही तो उस जल से सिचाई की जा सकती है ।

मद्रास मे भी तालाबों या कुओ की अपेक्षा नहरे ही सिचाई की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं । यहाँ नहरे कुल सिंचित क्षेत्र के $\frac{१}{३}$ को सींचती हैं । सिचाई वाली फसलों मे धान, ज्वार, बाजरा और कपास महत्वपूर्ण है ।

पूर्वी तट पर अधिकाश वर्षा नवम्बर और दिसम्बर मे होती है । तब गर्मी के प्रमुख फसले कट चुकी होती हैं । इन गर्मी की सफलों को ऐसे समय में उगाने के लिए जब वर्षा कम होती है नहरों का होना नितात आवश्यक है । इस काल मे कम वर्षा के कारण तालाब और कुएँ कम उपयोगी होते हैं । ऐसे समय से नहरे इन फसलों की आवश्यकता को पूरी करती हैं क्योंकि ये उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनसे उद्गमों मे गर्मियों में खूब वर्षा होती है ।

पूर्वी तट के डेल्टाओं की नहरे नौका चलाने के लिए भी प्रयोग मे आती हैं । इन डेल्टाओं में रेलों का अच्छा प्रबन्ध नहीं है । इसलिए स्वाभाविकतया नहरों का महत्व यातायात के लिए भी बढ जाता है ।

(४) बंगाल में

भारत के अन्य भागों मे नहर द्वारा सिंचाई अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण है । अन्य नहरें या तो बहुत छोटी हैं, जैसे बम्बई में, या वे किसी दूसरे काम के लिए बनाई

गई हैं और सिचाई गौण है, जैसे बगाल और बिहार मे। बगाल की नहरें पानी को साफकरने, निचले स्थानों पर पानी बहाने और नौकागमन के लिए हैं। निम्नलिखित सारिणी मे बगाल की नहरो का विवरण है।—

नहर	लम्बाई मीलों मे	सिचाई क्षेत्र (एकड़)	निर्माण वर्ष
मिदनापुर	३२४	१,७५,०००	१८८८
दामोदर	२५०	१,८४,०००	१९३२
इडेन	४५	२५,०००	१९३८
कुलाई खाल	२	६००	—

मिदनापुर नहर लगभग २४ मील तक नौका चलाने योग्य है, क्योंकि वहाँ तक पानी की गहराई ४ से ५ फीट तक है।

पश्चिमी घाट से मिले हुए क्षेत्रो की नहरों की विशेषता गहरी पहाड़ी घाटियों के इस छोर से उस छोर तक के ऊँचे-ऊँचे बाँध हैं। इस प्रकार घाटियो को जल-सग्रहों मे परिणत कर दिया गया है और उनसे नहरें निकाली जाती हैं। ऐसे बाँध का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बम्बई का भंडारदरा बाँध है। यह विश्व के उच्चतम बाँधों मे से है। अहमदनगर जिले में प्रवरा नदी पर भडारदरा में पश्चिमी घाट पर होने वाली वर्षा के पानी को जमा करने के लिए एक २७० फीट ऊँचा बाँध बनाया गया है। यहाँ से निकाली गई नहरो की लम्बाई लगभग ८५ मील है।

दूसरा उदाहरण जिसमे इजीनियरिंग की काफी कुशलता अपेक्षित है पेरियर नदी का है जिससे प्रवाह को पश्चिम से पूर्व की ओर मोड़ दिया गया है और इस प्रकार उसके जल का उपयोग कर लिया गया है। इस घाटी के पश्चिम की ओर एक १७५ फीट ऊँचा बाँध बना कर बन्द कर दिया गया है इस प्रकार एक झील बन गई है। इस पानी को पहाड़ के अन्दर से पौने दो मील लम्बी एक सुरग द्वारा १५० मील लम्बी एक नहर में डाल दिया गया है। पेरियर नहर की विशेषता यह है कि नदी को अरब सागर से विमुख करके बगाल की खाड़ी मे डाल दिया गया है। यह नदी त्रावणकोर की पलनी पहाड़ियों से निकल कर एक निर्जन क्षेत्र से बहती हुई अरब सागर में गिरती थी। इसके पूर्व में मद्रास का मदुरा जिला है जिसमें बहुधा अकाल पड़ा करते थे। मदुरा में वैगाई नदी ही कुछ महत्वपूर्ण है, उसकी ही स्वल्प तथा अनिश्चित जल-उपलब्धि पर ही इस जिले की सिंचाई निर्भर थी।

पेरियर योजना में मुख्य बात बाँध है। यह पहाड़ियों की एक V आकार की घाटी मे स्थित है। इस प्रकार झील बन गई है। इस झील की सुदूर उत्तरी भुजा के पानी को लगभग एक मील के कटान से होकर एक सुरग मे ले जाया जाता है। फिर वह दूसरी ओर एक छोटे से द्वार द्वारा एक प्राकृतिक घाटी मे पहुँचता है। इस घाटी के द्वारा इसे वैगाई मे रास्ता मिल जाता है। इस प्रकार पेरियर के जल का उपयोग नदी द्वारा सिंचाई के लिए होता है।

जल-विद्युत पैदा करने के लिए बनाये गये कतिपय साधनों द्वारा भी सिंचाई सम्भव हो गई है। ऐसी योजनाओं मे मद्रास का मेट्टूर बाँध विशेष महत्व का है।

मेट्टूर बाँध कावेरी नदी पर उसके उद्गम से २४० मील दूर बना हुआ है। यह बाँध दो उद्देश्यो से बनाया गया है : (१) जल-विद्युत (हायड्रो-एलेक्ट्रिसिटी) पैदा करने के लिए और (२) कावेरी के डेल्टा से दस लाख एकड़ धान के खेतों को सींचने के लिए। ये खेत इस बाँध से १२५ मील की दूरी पर स्थित हैं। सिचाई ६० मील लम्बी प्रधान नहरों तथा ६०० मील लम्बी सहायक नहरों द्वारा होती है।

कुछ प्रमुख नहरे और उनके सिंचित क्षेत्र निम्न तालिका में दिए गए है :—

नहर	नहर की लम्बाई (मील)	शाखाएँ और नालियाँ (मील)	सिंचित क्षेत्र (लाख एकड़)
अपर गङ्गा	५६६	३,४२६	१६
लोअर गङ्गा	६४०	३,३२१	१३
पूर्वी जमुना	१२६	८३६	४
आगरा नहर	१००	६११	२½
शारदा नहर	—	५,५००	१३
कावेरी डेल्टा की नहरे	६४३	३,७६८	१०
गोदावरी ,, ,, ,,	५१०	१,६२५	१२
कृष्णा ,, ,, ,,	४२५	२,३७४	११
पेरियर नहर	१५०	११८	२

कुओं द्वारा सिचाई

कुएँ को भारत में सिंचाई का घरेलू प्रकार कहा जा सकता है। इसे बनाने मे बहुत कम व्यय लगता है तथा किसी विशेष यत्रादि की आवश्यकता या किसी विशिष्ट

ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए यह भारत के निर्धन किसान के लिए बहुत अनुकूल पड़ता है। आवश्यकता हो तो यह किसान के दरवाजे पर ही खोदा जा सकता है। नहर बनाने मे जिस प्रकार भूमि की अच्छी जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता होती है, कुआँ बनाने में यह सब अपेक्षित है। अधिकाश जिलों मे एक मामूली कच्चा कुआँ सिर्फ १०) मे बन जाता है। इसलिए यह मामूली से मामूली किसान की पहुँच के अन्दर है। एक नहर बनाने मे लाखों रुपयों का खर्च होता है। इसलिए यह काम भारत जैसे निर्धन देश में केवल सरकार द्वारा ही हो सकता है।

इस आर्थिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त, भौगोलिक कारणों से भी कुएँ द्वारा सिचाई भारत की परिस्थितियों के अनुकूल पड़ती है। देश के एक बहुत बड़े भाग में चिकनी बलुई मिट्टी पाई जाती है जिसमे यहाँ-वहाँ बालू के बीच कॉप की तहें मिलती हैं। इनमे मिट्टी से सोख कर काफी पानी जमा हुआ रहता है। कॉप की यह तहें पानी के भण्डार हैं। इनको खोदने पर काफी पानी मिल सकता है और इस पानी को बहुत आसानी से उठा कर धरातल पर पहुँचाया जा सकता है। भारत की भौगर्भिक बनावट इतनी सरल है कि जहाँ भी पानी का दबाव इतना है कि पानी स्वतः धरातल तक आ सके वहाँ पातालतोड़ कुएँ (Artesian well) आसानी से बन सकते हैं। जिन स्थानों पर उपर्युक्त कॉप की तहें काफी मोटी है, गहरे छेद (Boring) करके (अर्थात् नलकूप बनाने से) मामूली कुओं की अपेक्षा कहीं अधिक पानी मिल सकता है। इन नलकूपो से काफी पानी खींचने के लिए यन्त्र शक्ति की आवश्यकता होती है।

कुओं को पानी देने वाली अन्तर्धाराओं को निम्नलिखित स्रोतों द्वारा पानी प्राप्त होता है:—

१ स्थानीय वर्षा।

२ पहाड़ों की तराइयों में से जहाँ वर्षा काफी होती है, पानी का रस कर आ जाना।

३ नहरों, नहर-सिंचित भूमि तथा जल-पूर्ण अन्य-साधनों द्वारा सोखा जल।

भारत मे कुओं द्वारा सिंचाई निम्नलिखित कारणों से सीमित है:—

(अ) किन्हीं क्षेत्रों में पाताल जल का बहुत नीचा होना। नदियों के पास ऐसा अक्सर पाया जाता है। ऐसा मालूम होता है कि नदियों के तटों के पास पानी काफी नीचे तक सोखता चला जाता है और अन्त में वह नदियों की धारा में फिर से

प्रकट हो जाता है। इस विषय में कोई अन्तिम बात नहीं कही जा सकती क्योंकि
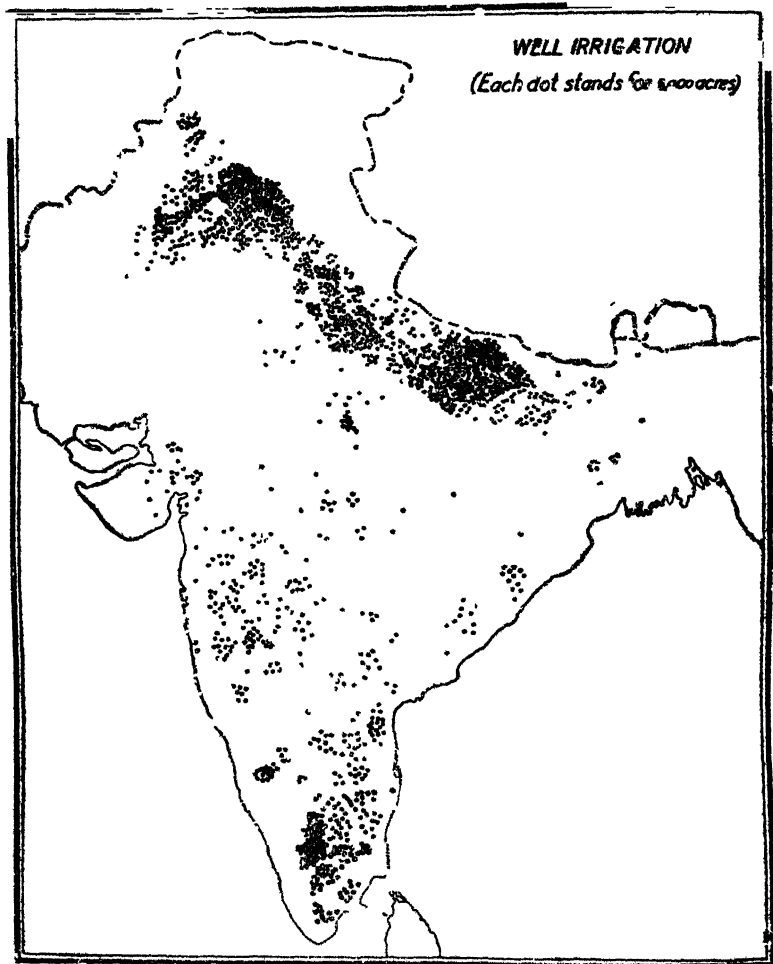
चित्र ४३—कुओं द्वारा सिंचाई

भारत में पाताल जल के स्तर का अभी ठीक-ठीक अध्ययन नहीं हुआ है। जिन जिलों

मे पानी काफी बरसता है साधारणतया उनमे यह स्तर काफी ऊँचा होता है और पानी धरातल के बहुत निकट मिल जाता है। दूसरे जिलों मे जहाँ वर्षा सीमित होती है यह स्तर नीचा होता है और कुओं को गहरा बनाना पड़ता है।

(ब) दूसरी सीमा है कुएँ के पानी का खारापन। खारा पानी सिचाई के लिए बेकार है वह फसल को नष्ट कर देता है। इस सम्बन्ध मे भी आँकड़े नही मिलते परन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि खारा पानी कही भी निकल सकता है। ऐसे क्षेत्र में भी खारा पानी निकल सकता है जहाँ दूसरे कुएँ मीठे हैं। जिन जिलों का पानी खारा होना है वहाँ कुओं द्वारा सिचाई थोड़ी ही होती है।

(स) तीसरी सीमा यह है कि सूखा के दिनों मे जब पानी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है ये कुएँ सूख जाते हैं। एक ही समय ज्यादा पानी निकल जाने से भी ये सूख जाते हैं इसलिए इनके द्वारा विशाल सिंचाई क्षेत्रों की सिचाई नहीं हो सकती।

कुओं द्वारा सिचाई के आँकड़ो का विश्लेषण करने से पता लगता है कि कुओं द्वारा सिचाई का निम्नलिखित क्षेत्रों मे विशेष महत्व है :—

(i) गगा की घाटी का मध्य भाग।

(ii) काली कपासी मिट्टी के प्रदेश, विशेष रूप से जहाँ वह गहरा है।

(iii) पश्चिमी घाट के पूर्वी ओर के क्षेत्र। इसमे बम्बई के दक्षिणी जिले, और मद्रास (विशेषकर कोयम्बटूर,) मदुरा और रामनद है।

(iv) पजाब के हिमालय के निकटवर्ती जिले।

हिमालय के बहुत ही निकट क्षेत्र आसाम, अराकान पहाड़ियाँ और पश्चिमी घाट के पश्चिमी क्षेत्र विशेष रूप से कुओ के लिए अनुपयुक्त हैं।

भारत के कुल सिचित क्षेत्र का ३०% कुओं द्वारा सींचा जाता है। महत्व की दृष्टि से उत्तर प्रदेश, पजाब और मद्रास के स्थान क्रमशः है। नहर-सिंचित क्षेत्रों में भी जहाँ पर अधिक ऊँची भूमि है और जहाँ नहर का पानी नहीं पहुँच सकता वहाँ भी कुओ द्वारा सिंचाई होती है।

हाल मे उत्तर प्रदेश सरकार ने जिन क्षेत्रों में नहर के पानी की पहुँच नहीं है वहाँ सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए १३ करोड़ रुपये के व्यय से १६५० नल-कूप बनवाये हैं। ये नलकूप गगा की नहरो द्वारा चलते हैं। इनके द्वारा २० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इन कुओं से काफी पानी निकलने के कारण यह प्रश्न

उपस्थित हो गया था कि कहीं ऐसा न हो कि पाताल जल की सतह नीची हो जाय और बहुत से साधारण कुएँ सूख जायँ। इस विषय मे श्री० आडेन ने जाँच की है। नीचे उनकी रिपोर्ट का साराश दिया जाता है :—

जिन क्षेत्रों मे नलकूपो द्वारा पानी खीचा जाता है उन्हें पास-पड़ोस के क्षेत्रों से अलग मानना भूल होगी; उन्हें गगा के कछार के पाताल जल से ही सम्बद्ध मानना चाहिए। गगा की घाटी का पाताल जल-क्षेत्र दिल्ली के निकट अरावली पर्वत के गड़े हुए भागों से पश्चिम से पूर्व तक एक अखण्ड क्षेत्र है। इस क्षेत्र के ऊपर गगा की कछारी मिट्टी है जिसके द्वारा तराई की अधिक जलवर्षा इस पूरे क्षेत्र मे उपलब्ध है। नलकूपो से यह सिद्ध हुआ है कि इस क्षेत्र की उपस्तर मिट्टी में कॉप के ऊपर बालू की प्रधानता है। बालू की इन पर्तों के नीचे पानी के अमित भण्डार हैं। ये भण्डार अवश्य ही तराई के नीचे की पर्त्त से (जहाँ वर्षा अधिक होती है) सम्बद्ध हैं। इसलिए कूपो द्वारा जितना पानी निकलता है उससे कहीं अधिक वर्षा का पानी उसमें भर जाता है।

दक्षिणी पठार मे चट्टानों की दरारों के अतिरिक्त कही भी जलपूर्ण पर्त्तें नहीं मिलती। सफल नल-कूपो के लिए यह ज्ञान आवश्यक है कि पाताल जलधारा ठीक-ठीक किस जगह पर है। यहाँ किसी भू-गर्भ शास्त्री या जल का पता लगाने वाले (वाटर-डिवाइनर) (जादूगर लोग जो किसी प्रकार पानी के होने या न होने का अनुमान कर लेते हैं) की सहायता ली जा सकती है।

अहमदाबाद की मिलों ने इक्कीस नल-कूप बनवाये हैं, जिनसे औसतन ४ लाख गैलन पानी प्रति घटा निकलता है।

उप-पताल (Sub-artisan) तोड़ कुएँ उन्हें कहते हैं जिनसे पानी पम्प द्वारा निकाला जाता है। उप-पाताल तोड़ पानी साधारण धरातल से २५० फीट नीचे मिलता है जब कि पाताल तोड़ कुआँ बनाने के लिए ६ सौ से १ हजार फीट तक बोरिंग करनी पड़ती है।

पाताल तोड़ कुएँ का एक बहुत अच्छा उदाहरण अहमदाबाद के निकटवर्ती छलोदा मे देखा जा सकता है। यहाँ ८४२ फीट की गहराई तक बोरिग हुई थी और इस कुएँ से प्रति दिन ६ लाख ५० हजार गैलन पानी निकलता है। यह पानी ट्यूब से होकर बहुत दबाव के साथ निकलता है। यह जल पिछले कई वर्षों से निरन्तर बहता ही रहा है। अहमदाबाद से आने वाले यात्री मीलों शुष्क बालू प्रदेश को पार करके जब

छलोदा के पास आते है तो ऐसा अनुभव करते होगे जैसे रेगिस्तान मे चलते-चलते किसी ओसिस मे आ गये हो। पानी के कारण गॉव के चारो ओर झीले बन गई है। पानी की लागत १ पाई प्रति १ हजार गैलन है।

बम्बई सरकार गुजरात के कुछ जिलो मे कुछ और नलकूप बनवाने का विचार कर रही है। उत्तर प्रदेश मे (काशीपुर मे) भी एक पाताल तोड कुआँ है।

पचवर्षीय योजना में नलकूप बनाने पर भी ध्यान दिया गया है। इनसे छोटी मोटी सिचाई की योजनाएँ चल सकेगी।

भारत अमरीका टैकनिकल सहयोग कार्यक्रम तथा अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत प्रथम योजना मे क्रमशः २,६५० और ७०० तथा राज्य सरकारों की योजनाओ के अतर्गत २,००० नलकूपों का निर्माण उत्तर प्रदेश, पेप्सू और बिहार मे होना था। इसका वितरण एव प्रगति (नवम्बर सन् १९५७ तक) इस प्रकार थी :—

	उत्तर प्रदेश	बिहार	पजाब	पेप्सू
(१) भारत अमरीका तात्रिक सहयोग कार्यक्रम	आबटित १२७५ निर्मित १२७५	३८५ ३८५	५३० ५३०	४६० ४६०
(२) अधिक अन्न उपजाओ आदोलन	आबटित ४२० निर्मित ९३	— —	१५० —	१३० —
(३, राज्य की योजनाये	आबटित १४०० निर्मित ११६५	४२४ ४२४	२५६ २५६	—

दूसरी योजना के अतर्गत अब तक उत्तर प्रदेश और आसाम में ३९९ नलकूप खोदे गये हैं। इनके फलस्वरूप १९५७-५८ में लगभग २२ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होने का अनुमान लगाया गया है। दूसरी योजना मे विभिन्न राज्यों में २० करोड़ रुपये की लागत से ३,५८१ नलकूपों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। इससे लगभग ९१६ हजार एकड़ भूमि की सिचाई हो सकेगी। इनमे से १५०० नलकूप उत्तर प्रदेश मे, ३०० मद्रास, ७५८ पजाब, ३३० बम्बई, १५० बिहार और शेष आसाम, राजस्थान, उड़ीसा और मध्य प्रदेश मे होगे।

स्पेशल ट्यूबवेल प्रोग्राम के अन्तर्गत नलकूपो का निर्माण

वर्ष अप्रैल/मार्च	भारत-अमरीका सहयोग के २६५० नलकूप निर्माण का कार्यक्रम	अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अंतर्गत ७०० ट्यूब वेल निर्माण कार्यक्रम	योग
१६५३-५४	१६६	—	१६६
१६५४-५५	११६७	४	१२०१
१६५५-५६	८६२	१३२	१०२४
१६५६-५७	३३०	३६४	६६४
१६५७ ५८	२७	५८	८५
योग	२६४५	५५८	३२०३

अधिकतर नलकूप उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब और पेप्सू में बन रहे हैं। इनमे से अधिकतर कूप ३०० फीट गहरे हैं परन्तु कहीं-कही जैसे बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर, जौनपुर और बनारस (जहाँ चिकनी मिट्टी बहुत गहराई तक मिलती है वहाँ) ये कुएँ लगभग ५ सौ फीट गहरे बनाने पड़ते हैं।

सामान्यतः एक नलकूप से एक घटे मे लगभग ३० हजार गैलन पानी निकलता है। इतने जल से २४ घटे में लगभग ४ इच गहराई के ५ सौ एकड़ भूमि सीची जा सकती है। प्रति नलकूप अपने इर्द-गिर्द लगभग १ हजार एकड़ भूमि क्षेत्रफल मे जल पहुँचा सकता है। इसमें प्रति वर्ष उसे केवल ४०० एकड़ सीचना होता है, १५० एकड़ खरीफ की फसल और २५० एकड़ रबी की फसल। इस सिंचाई के लिये कुएँ को ३२०० घंटे प्रति वर्ष कार्य करना पड़ता है।

कुएँ से खेत तक पानी ले जाने के लिये प्रायः १ मील पक्की और २ मील कच्ची नाली बनानी होती है। सिंचाई की अधिक माँग के समय के लिए किसानों की एक क्रमानुसार सूची होती है जिसका प्रयोग आवश्यकतानुसार प्रत्येक नलकूल पर किया जाता है। इस सूची को 'ओसराबन्दी' कहते हैं।

उत्तर प्रदेश में घाघरा नदी के उत्तर और दक्षिण प्रदेश में नलकूपो का बहुत बड़ा महत्व है, क्योंकि वहाँ पर नहरों का प्रबन्ध नही है।

तालाबों द्वारा सिन्चाई (Tank Irrigation)

भारत के कुल सिंचित क्षेत्र का लगभग २०% तालाबों द्वारा सींचा जाता है। इस क्षेत्र का आधा तो केवल मद्रास राज्य में ही है। दक्षिणी पठार के बाहर तालाबों

द्वारा सिंचाई के लिए केवल एक ही क्षेत्र महत्वपूर्ण है और वह है उत्तरी बिहार। प्रायद्वीपीय प्रदेश की लहरदार धरातल और उत्तरी बिहार की पुरानी सूखी नदियों के भागों के कारण बने हुए भू-गर्तों में बरसाती पानी इकट्ठा हो जाने से तालाब बन जाते हैं। कुओं की भाँति तालाबों में भी सबसे बड़ी कमी यही है कि ये भी ऐसे ही क्षेत्रों मे हैं जहाँ वर्षा अनिश्चित होती है। इसीलिए इनकी सहायता भी अनिश्चित होती है।

सिचाई का प्रसार

सिंचाई का महत्व भारत की सब फसलों के लिए एक-सा नहीं है। जो फसले वर्ष के शुष्क भाग मे खेतों मे खडी रहती हैं उनके लिए सिचाई की आवश्यकता होती है। परन्तु अधिक व्यय के कारण ऐसी ही फसलों को पहले सींचा जाता है जिससे धन अधिक मिलता है। इसलिए गन्ना, कपास और गेहूँ सिंचाई की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। गन्ना की अपेक्षा कपास कम सींची जाती है क्योंकि इसकी खेती अधिक-तर काली मिट्टी के प्रदेश मे अधिक होती है। इस मिट्टी मे सिंचाई का पानी पहुँचाना दुष्कर है, क्योंकि जमीन में दरारे हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में सिंचाई के साधन भी नहीं हैं। सिंचित-कपास के महत्वपूर्ण क्षेत्र पजाब और मद्रास में मिलते हैं। वहाँ यह फसल कछारी मिट्टी में होती है। निम्नाकित तालिका में भारत की सबसे अधिक महत्वपूर्ण फसलों के सिंचित-भागों को बताया गया है :—

फसलों का सिंचित क्षेत्रफल (हजार एकड़ो मे)

	१९५२-५३	१९५५-५६
चावल	२३,७९९	२७,१७१
ज्वार	१,३४९	१,५४१
बाजरा	९४३	९७५
मकई	१,२८६	१,१०८
गेहूँ	९,१२१	१०,२५६
जौ	४,०२८	३,६१७
अन्य दालें और अनाज	५,३४०	६,१९७
गन्ना	३,२३३	३,१४८
अन्य भोजन पदार्थ	२,६२८	२,८८५
कपास	१,२८२	२,०५९
अन्य अभोज्य पदार्थ	३,७०१	४,३०८
योग	५७,६९४	६३,२६५
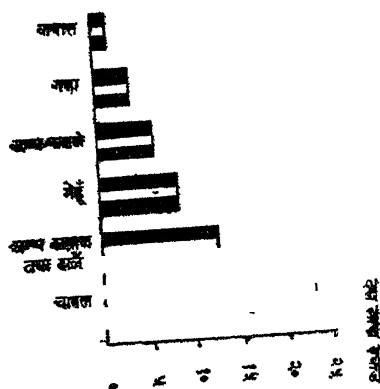
चित्र ४४—फसलों का सिंचित क्षेत्र

नीचे की तालिका मे कुल कृषि भूमि और सिंचाई पाने वाले क्षेत्रों के अनुपातों का दिग्दर्शन किया गया है :—

कुल कृषि क्षेत्र से सिंचित क्षेत्रो का अनुपात

प्रदेश	कृषि भूमि सिंचित भाग,%
आन्ध्र	२४
आसाम	३०
बिहार	२१
बम्बई	५
केरल	१६
पंजाब	४७
मद्रास	३७
उड़ीसा	१४
राजस्थान	११
मध्य प्रदेश	५
उत्तर प्रदेश	३०
पश्चिमी बंगाल	२२
भारत	१७

ऊपर के आँकड़े से यह स्पष्ट हो जाता कि उत्तर प्रदेश जैसे कृषि-प्रधान प्रदेश में सिंचाई का केवल गौण स्थान है। सारे देश का सिंचित भाग भी कुल कृषि भूमि का केवल १७% है। इसलिए यह स्पष्ट है सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार भारतीय महानतम आवश्यकता है।

योजना काल में सिंचाई-कार्यक्रम—

भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् सिंचाई-कार्यक्रम में तेजी से विकास हुआ है, विशेषतः अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत और सन् १९५१ के बाद प्रथम एव द्वितीय पञ्च-वर्षीय योजनाओ के फलस्वरूप।

प्रथम पञ्च-वर्षीय योजना में ७२० करोड़ रु० लागत की सिंचाई योनजाओं का समावेश किया गया था, जिसमें १५० योजनाएँ तो ऐसी थी जिनकी लागत १० लाख रु० से अधिक की थी और २०० योजनाएँ दुर्लभ क्षेत्रों के स्थायी सुधार के सम्बन्ध मे थीं। इन २०० योजनाओं मे १३ बहुमुखी एवं सिंचाई योजनाएँ थीं, जिनकी प्रत्येक की लागत १० करोड रु० से अधिक थी। इन योजनाओं में कुछ तो ऐसी थीं जिन पर योजना के आरम्भ के पूर्व ही ८० करोड़ रु० व्यय किया गया था।

प्रथम योजना मे इन योजनाओं पर ३४० करोड़ रु० व्यय किए गए तथा शेष राशि दूसरी योजना की अवधि में व्यय होगी। प्रथम योजना काल मे २२० लाख एकड भूमि पर सिंचाई सुविधाएँ बढ़ाने का लक्ष्य था, परन्तु योजना काल मे १६३ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई के अन्तर्गत बढ़ाया गया, जिसमे १०० लाख एकड़ सिंचाई की लघु योजनाओं तथा शेष ६३ लाख एकड़ वृहत् योजनाओं की पूर्ति से बढ़ा।

दूसरी योजना मे प्रथम योजना की अपूर्ण योजनाओं को पूर्ण करने तथा नई योजनाओं की रीति के लिए ३८० करोड़ रु० का आयोजन है। इस राशि में से २२२ करोड़ प्रथम योजना की अपूर्ण योजनाओं की पूर्ति के लिए व्यय होगा और शेष दूसरी योजना काल मे समाविष्ट १९५ नई योजनाओं पर व्यय किया जायगा।

अनुमानित लागत	योजनाओं की संख्या	कुल अनुमानित लागत (करोड़ रु०)	भूमि पर अनुमानित सिंचाई लाभ (लाख एकड़)
१० से ३० करोड रु०	१०	१६१	८४
५ से १० करोड़ रु०	७	५४	१५
१ से ५ करोड़ रु०	३५	८५	३४
१ करोड़ रु० से कम	१४३	४६	१५
योग	७६५	३७६	१४८

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि दूसरी योजना मे मध्यम सिचाई योजनाओं को अधिक महत्व दिया गया है। इससे ३५ करोड़ रुपये का आयोजन सिन्ध नदी से भारत को मिलने वाले पानी के हिस्से के उपयोग के लिए व्यय होगा। इन योजनाओं के फलस्वरूप दूसरी योजना की पूर्ति पर २१० लाख एकड़ से सिचाई का क्षेत्रफल बढेगा, जिनमें से १२० लाख एकड़ वृहत् एव मध्यम सिंचाई योजना से तथा शेष ६० लाख एकड़ लघु सिचाई योजनाओं से लाभान्वित होगा। फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन मे सिचाई सुविधाओं के विकास से ४·२ मि० टन से बढ़ेगा, ऐसा अनुमान है।

अब तक १२ बड़ी सिचाई योजना-कार्यों से, जिनमे से कुछ पूरे नहीं हुए हैं, सिंचाई होने लगी है। इन योजना कार्यों की लागत ५ करोड़ रुपये से अधिक ही बैठेगी। इन योजनाओं का ब्योरा इस प्रकार है :—

योजना	वार्षिक सिचाई (लाख एकड़)	लागत (करोड़ में)
ककड़ापार (बम्बई)	६·५२	६·६३
मालमपूज़ा (केरल)	·४८	४·४८
निचली भवानी (मद्रास)	२·०७	१०·०८
मद्रा (मैसूर)	२·३४	११ २७
तुंगभद्रा योजना कार्य (मैसूर)	८·३०	४२ ३४
घाट प्रभा, बॉये किनारे की नहर (मैसूर)	१·२०	४ ५८
हीराकुड (प्रथम चरण) (उड़ीसा)	५·६२	५८ ७०
भाखड़ा नगल (पंजाब)	३६·०	१४०·०६

योजना	वार्षिक सिंचाई (लाख एकड़)	लागत (करोड़ में)
हरिके बाध (पजाब)	सीधे सिंचाई नहीं	६·७०
सरहिंद सहायक नहर (पजाब)	६·०	१·२५
दामोदर घाटी निगम	१३·४४	११४ ६१
मयूराक्षी (बगाल/बिहार)	७·२०	११ ६५

प्रश्न

१. भारतीय खेती के लिए सिंचाई क्यों अत्यन्त आवश्यक है ?

२ भारत में सिंचाई को भौगोलिक कारणों द्वारा कहाँ तक प्रोत्साहन मिलता है ?

३ भारत मे सिचाई के साधनों के रूप में नहरें, कुओं और तालाबों की अपेक्षा क्यों अधिक प्रचलित है ?

४ निम्नलिखित प्रदेशो की नहर योजनाओ का संक्षिप्त वर्णन कीजिये :—
(अ) पजाब और (ब) उत्तर प्रदेश। जिस प्रदेश को ये नहरें सींचती हैं उसकी प्रकृति पर विशेष जोर दीजिए।

५ कुएँ द्वारा सिंचाई को कौन आर्थिक भौगोलिक कारण प्रेरित करते हैं ?

६ उत्तर प्रदेश के बिजली चालित नलकूप क्या जल स्तर को क्षति पहुँचायेंगे ?

७ दक्षिणी पठार में कुएँ खोदना गंगा की घाटी की अपेक्षा अधिक दुस्तर क्यो है ?

८. टिप्पणी लिखिए :—

(अ) मेटटूर बाँध;

(ब) भंडारदरा बाँध,

(स) पंजाब में सिचाई

अध्याय ७

औद्योगिक ईंधन

(Industrial Fuels)

आधुनिक ससार में कोयला सर्वप्रधान औद्योगिक ईंधन है। इसके बिना वर्तमान यत्र-युग टूट ही जायगा। आजकल देशो की शक्ति का अनुमान जितना कोयला उनके अधिकार में होता है उसके आधार पर किया जाता है। कोयले के ही चारों ओर आज के सारे उद्योग पनपते है। परन्तु कोयले के विषय मे प्रकृति भारत के प्रति बहुत उदार नही रही है। ससार का अधिकाश कोयला उष्ण कटिबन्धों मे (भारत जिनका एक भाग है) नहीं बल्कि शीत और शीतोष्ण कटिबन्धो मे पाया जाता है।

भारत के खनिज पदार्थों मे कोयले का महत्व सबसे अधिक है। यह बात न केवल निकाले गए खनिज पदार्थों के मूल्य से ही वरन् उन खानों मे लगे मजदूरो की सख्या से भी सिद्ध होती है। नीचे की तालिका मे प्रमुख खनिज पदार्थों का उत्पादन और उनके खनन मे लगे मजदूरों की सख्या बताई गई है।

खनिज पदार्थों का सापेक्षिक महत्व

खनिज	उत्पादन मात्रा टना मे	(१९५७) मूल्य (००० रु० मे)	मजदूरों की सख्या १९५६
कोयला	४३५.० लाख टन	८१३,९९१	३५२,४२९
नमक (समुद्री)	३,६०८ ह० टन	७४,१६३	३८,२९६
अभ्रक	६०९ ह० हडरवेट	२३,१५४	३३,९७३
मैंगनीज-अयस	१,६०२ ह० टन	१४०,५४९	१०९,९४८
सोना	१.९ ह० औंस	५१,०६९	२७,८९०
लोहा	५,०७४ ह० टन	४३,४३४	३७,३०१
इल्मैनाइट	२९६ ह० टन	१६,८१२	२,४१८
ताबा-अयस	४०४ ह० टन	२६,५३४	४,०७०
मैंगनेसाइट	८८,८८५ टन	१,७९४	४,२२३
हीरा	७९ कैरेट	१६८	९११
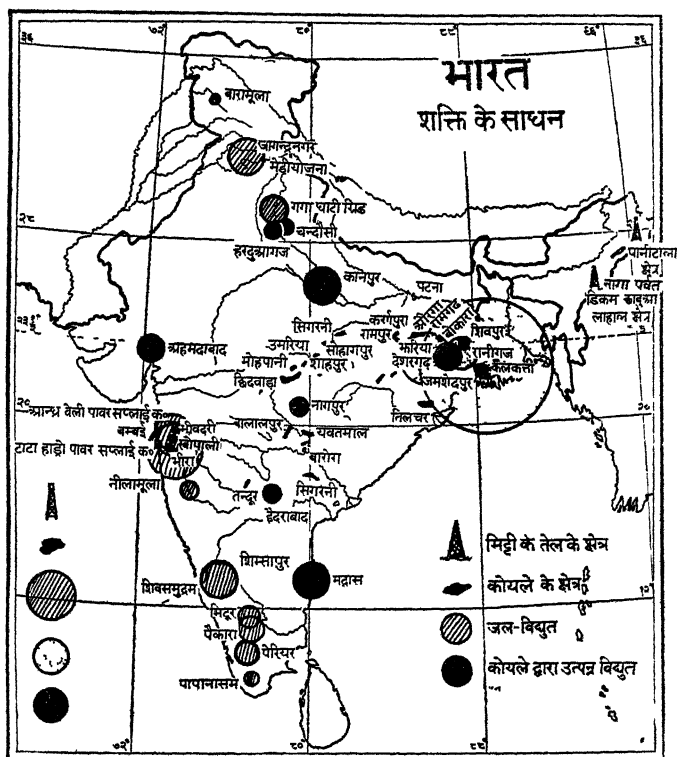
चित्र ४५ शक्ति के साधन

कोयला के उत्पादकों में भारत का आठवाँ स्थान है। सन् १९५४ में उसका कुल कोयला उत्पादन ३ करोड़ ७० लाख टन था, जो कि ब्रिटेन का केवल $\frac{1}{6}$ और सयुक्त राज्य अमेरिका का $\frac{1}{10}$ भाग था।* परिमाण में ही नहीं गुण में भी भारत ससार के अन्य कोयला उत्पादकों से पीछे है। भारत के सबसे अच्छा कोयला भी

---

* १९५४ मे विश्व के कुछ प्रमुख देशों मे कोयले का उत्पादन इस प्रकार था—ब्रिटेन २२७० लाख टन; स० रा० अमरीका ३७८० लाख टन, जर्मनी और सार १४९० लाख टन; फ्रास, ५४० लाख टन और बेल्जियम २९० लाख टन।

ब्रिटेन के औसत कोयलों से निकृष्ट ठहरता है। भारत के बुझे हुए कोयलों मे भी फास्फोरस और राख की मात्रा अधिक रहती है। भारतीय कोयलो मे नमी का अश भी काफी रहता है।

भारत के कोयला क्षेत्रो को मोटे तौर पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

१. गोंडवाना कोयला-क्षेत्र—इसके अन्तर्गत निम्न प्रमुख क्षेत्र है :—

(अ) दामोदर घाटी-क्षेत्र

(i) झरिया

(ii) रानीगज

(iii) बोकारो

(iv) गिरिडीह

(v) करनपुरा (उत्तरी और दक्षिणी)

(ब) महानदी घाटी क्षेत्र (महत्वहीन)

(स) सोन घाटी क्षेत्र (महत्वहीन)

(द) गोदावरी घाटी क्षेत्र

सिंगरेनी।

२. टर्शियरी युग के कोयला-क्षेत्र—इसके अतर्गत दो क्षेत्र प्रमुख हैं।

(i) आसाम स्थित माकुम

(ii) राजस्थान में पलाना क्षेत्र।

भारत के कोयले का ९८.५% दक्षिणी पठार की गोंडवाना चट्टानों मे पाया जाता है। ये चट्टानें बहुत पुरानी हैं और मुख्यतः बलुए पत्थर तथा शेल की बनी हैं। ऐसा अनुमान है कि ये परतें नदियों के मीठे पानी मे जमा हुई होगी। गौंडवाना चट्टानों में कोयले के उत्पादन के लिए एक मात्र महत्वपूर्ण भाग है। दामोदर की घाटी में विकसित होने वाली "दामूदा मालाएँ" (Damuda-Series)। रानीगज और झरिया में इन चट्टानों को तीन भागों म विभाजित किया जाता है। इनमें सबसे ऊपर और सबसे नीचे के भागों में ही कोयले की तहें हैं। इनको क्रमश. 'रानीगज' और 'बाराकर' कहते हैं। इनके बीच की चट्टाने लौह-प्रस्तर (Iran-Stone) की पर्तें हैं। इनमें कोयला नहीं होता। रानीगज के कोयला-क्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण कोयला की तहें, रानीगंज चट्टानों में मिलती हैं तथा झरिया की सबसे महत्वपूर्ण कोयला की तहें
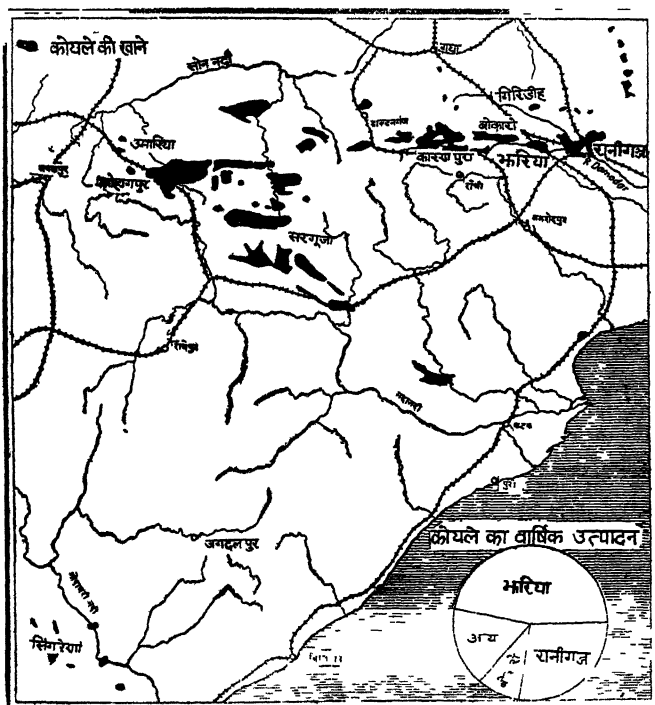
चित्र ४६—गोंडवाना कोयला क्षेत्र

बाराकर चट्टानों में मिलती हैं अर्थात् अच्छा कोयला रानीगंज क्षेत्र की ऊपरी तहों तथा झरिया की निचली तहों मे ही मिलता है।

गोंड्वाना प्रदेश में जिन क्षेत्रों पर किसी हद तक काम हुआ है वे ये हैं :—

(१) रानीगंज और झरिया क्षेत्र (जो दामोदर घाटी में हैं)।

(२) गिरिडीह क्षेत्र (जो दामोदर घाटी के उत्तर में एक एकान्त स्थान पर है)।

(३) डाल्टनगज क्षेत्र (जो पालामू जिले में दूर पश्चिम में स्थित है)।

(४) सिंगेरेनी, बल्लारपुर और वारोरा क्षेत्र (गोदावरी घाटी में) और

(५) मोहपानी और पेंच घाटी क्षेत्र; (जो सतपुड़ा से जुड़े हुए हैं)।

गोदावरी और महानदी के उत्तरी-पश्चिमी छोरो के कोयला-क्षेत्र पठार की गहरी पर्त्तों के नीचे दबे पड़े हैं। इसलिए कहा नहीं जा सकता कि उस आवरण के नीचे कोयले की कितनी बड़ी राशि छिपी हुई है। इसी प्रकार झरिया और रानीगज के पूर्वी छोर गगा के कछार में दबे हैं। इसलिए भारत के सम्पूर्ण कोयले का अनुमान लगाना कठिन है।

प्रायद्वीप और गोंडवाना चट्टानों के अतिरिक्त कुछ कोयला (कुल उत्पादन का १५%) आसाम और राजस्थान मे भी पाया जाता है। यह कोयला गोंडवाना के कोयले की अपेक्षाकृत कम पुराना है। इसे **'टर्शियरी चट्टानों का कोयला'** कहते हैं। आसाम की डीहिङ्ग नदी की घाटी मे स्थित लखीमपुर जिले की कोयले की मोटी तहें भारत के टर्शियरी कोयलो में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

प्राचीन समय मे इस देश के लोग 'पत्थर के कोयले' से अनभिज्ञ नही थे क्योंकि यह कोयला खुले हुए क्षेत्रों मे दामोदर तथा बराकर नदी की घाटियों में अब भी ऊपर दिखाई देता है। कोयले का प्रयोग उस समय इसलिए नही हुआ कि उसकी आवश्यकता न थी। देश मे ईंधन का कार्य लकड़ी तथा गोबर से लिया जाता था। उस समय ईंधन की अधिक मॉग भी न थी, क्योकि बड़े-बड़े उद्योग उस समय यहाँ नहीं थे।

अँग्रेजों का ध्यान इस कोयले की ओर १८वीं शताब्दी में गया। समर और हीटले नामक दो अँग्रेजों ने बगाल में पहले-पहल पत्थर के कोयले की खोज की। सन् १८१५ में जोन्स नामक व्यक्ति को विलायत से बुलाये जाने पर रानीगज में कोयले की खोदाई आरम्भ हुई। परन्तु १८४३ में बगाल कोयला कम्पनी के स्थापित होने से पहले इस कार्य मे अधिक सफलता न प्राप्त हुई। मशीनें लाने तथा कोयला ढोने के साधनों की कमी इस समय सबसे बड़ी कठिनाई थी। नौकाओं द्वारा ही कोयला कलकत्ता जाता था, परन्तु दामोदर नदी मे नौकाएँ केवल वर्षा ऋतु में ही चल सकती थीं। इसलिए कोयले की खोदाई में थोड़ी ही प्रगति हो सकी। १८५५ में ईस्ट इडियन रेलवे के बनने से तथा १८६५ में कोयला-क्षेत्र तक उसके पहुँचने से कोयला की खोदाई को सबसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। रेल से न केवल यातायात की सुविधा हो गई वरन् उनको चलाने के लिये कोयले की बहुत बड़ी मॉग हो गई।

परन्तु इससे भी अधिक प्रोत्साहन झरिया का कोयला-क्षेत्र की उन्नति होने पर मिला। इस क्षेत्र में भारत का उत्तम कोयला पाया जाता है। झरिया की उन्नति इस

शताब्दी के आरम्भ से ही हुई। उस समय तक कोयले के दामों में वृद्धि हुई जिससे कोयले का व्यवसाय अधिक लाभप्रद हो गया। कोयले के व्यवसाय पर रेलों की उन्नति का प्रभाव इससे देखा जाता है कि १८६३ में उनमे लगभग साढे नौ लाख टन कोयला लगा और १६२८ मे लगभग ७४ लाख टन।

बीसवीं शताब्दी मे बड़े-बड़े उद्योगों का प्रादुर्भाव इस देश में हुआ। इनमे कोयले की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण उद्योग लोहे का उद्योग है। साथ ही साथ इस देश का कोयला विदेशों को भी जाने लगा। गत दोनों विश्व-युद्धों का प्रभाव भी कोयले के व्यवसाय पर बहुत पड़ा। नीचे दी हुई तालिका मे कोयले के उत्पादन की वृद्धि दिखाई गई है :—

१८५८	२ लाख टन	१६५०	३२० लाख टन
१८७२	३ ,,	१६५१	३४२ ,,
१८८०	१० ,,	१६५२	३६२ ,,
१८६५	४८ ,,	१६५३	३५८ ,,
१६००	११० ,,	१६५४	३६८ ,,
१६२०	१२२ ,,	१६५५	३८२ ,,
१६४६	३१० ,,	१६५६	३६४ ,,
		१६५७	४३५ ,,

भारत के विभिन्न राज्यों मे १६५५ में कोयले का उत्पान निम्न प्रकार था :—

कोयले का उत्पादन

क्षेत्र	मात्रा (टनों में)	कुल उत्पादन का प्रतिशत
(क) गोंडवाना क्षेत्र	३७,६५४,०४८	६८·५
(1) बिहार, उड़ीसा, प० बंगाल :		
बोकारो	२,४१५,३११	६ ३१
दार्जिलिंग	२३,२८४	०६
गिरीडीह	२२४,०६७	·५६
जयन्ती	८,८८२	२३
झरिया	१३,४६४,६२६	३४ ३२
करनपुरा	१,०१४,७६४	२ ६५

क्षेत्र	मात्रा (टनो में)	कुल उत्पादन का प्रतिशत
पालामऊ	१४६,३०५	३८
रायगढ़	४८२,३८३	१·२६
रामपुर	२६२,६६१	७७
रानीगज	१२६७४,६०७	३३·६४
राजमहल	६,५६७	·०२
तलचर	२५६,४०६	६८
(ii) आन्ध्र	१,५४०,५७१	४·०३
(iii) मध्यप्रदेश		
बल्लापुर	२२६,५७३	·५६
कोरिया	१,४६३,२६१	३·८२
पंचघाटी	१,६६६,८७४	५ २२
रायगढ़	१,५७८	·००
यवतमाल	५०,२१२	·१३
विंध्यप्रदेश	१,०६०,४५२	·२८
(ख) तृतीय युग के क्षेत्र	**५७१,६११**	**१·५**
आसाम	५४१,६६७	१·४२
राजस्थान	२८,६४४	८·०८

झरिया—झरिया-क्षेत्र भारत का सबसे महत्वपूर्ण कोयला-क्षेत्र है, इसलिए नहीं कि यहाँ भारत में सबसे अधिक कोयला निकलता है, बल्कि इसलिए कि यहाँ भारत का सर्वोत्कृष्ट कोयला पैदा होता है। भारत के इसी कोयला-क्षेत्र मे लोहा गलाने वाला कठोर कोयला (कोकिंग) काफी मात्रा में निकाला जाता है। इसका क्षेत्रफल केवल १५० वर्गमील के लगभग है। कोयले की खानों के लिए गोंडवाना चट्टानों की निचली पर्तें (बाराकर) सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। १६०६-०८ तक जब कोयले के दाम बहुत बढ़ गये तब तक 'रानीगज' की ऊपरी और पतली परतों को तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया गया। मूल्य-वृद्धि के कारण रेलों की पहुँच के भीतर की कोयले की तह को खोलने का प्रयत्न किया गया। निचली चट्टानों (बाराकर) में कोयले की १८ तहें हैं जिनमें कुल मिलाकर २०० फीट कोयला है। दक्षिणी-पूर्वी

किनारों के अतिरिक्त ये तहें कहीं कटी फटी नही हैं। भारत मे उत्पादित पत्थर के कोयले का अधिकाश झरिया से ही निकलता है। इस कोयले को बुझाने पर उसका लगभग ७५% बुझे कोयले, (कोक) कोयला उपयोग किये हुए के रूप में रह जाता है।

रानीगज, झरिया और गिरिडीह कोयला-क्षेत्रों के कोयलों की उत्तमता निम्न प्रकार है :—

उत्तम तहों का कोयला

तह का नाम	नमी %	उड़न %	कोयला %	राख %
रानीगंज घुसिक	७ ५	३४ ८	५२ ६	१२.६
रानीगज देशेरगढ़	२ ५	३३ २	५० २	६.८
झरिया न० १८	१ ८	२८ ८	५६ ३	११ ६
झरिया न० ५ ६	०.६	१४ १	६६.२	१६ ८
गिरिडीह कढरबारी	० ६	२२ ५	६६.०	१०.६

झरिया, रानीगज और बोकारो क्षेत्रों के कोयले का बहुत बड़ा अश लावा के द्वारा जल गया है। १४ वी और १५ वीं तहों में इससे विशेष क्षति हुई है। बहुत अधिक परिमाण मे खानो से निकलने वाला झॉवॉ इस क्षति का प्रमाण है।

झरिया के कोयला-क्षेत्र का महत्व केवल इसलिए ही नही है कि वहॉ भारत का सबसे बढ़िया कोयला होता है बल्कि इसलिए भी है कि वह गगा के मैदान की सीमा पर है जहॉ पर रेलों का जाल बिछा हुआ है। यह क्षेत्र भारत के सब से बडे कोयला बाजार जमशेदपुर, कुल्टी, आसनसोल और कलकत्ता के भी निकट है। झरिया पूर्वी रेल द्वारा कलकत्ता से, जो वहाँ से १७० मील पर स्थित है, जुडा हुआ है। यह रेल द्वारा जमशेदपुर से भी जुड़ा है। इस प्रकार रेलों द्वारा सिन्धु-गंगा मैदान तथा भारनीय-प्रायद्वीप को झरिया का कोयला पहुँचता है।

झरिया में अच्छा कोयला होते हुए भी उसके आसपास कोई बड़ा उद्योग नहीं है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसके निकट कोई बहुमूल्य कच्चा माल नहीं मिलता। झरिया के निकटवर्ती क्षेत्र निर्जन ऊसर और पथरीले हैं जहॉ ढग से पानी

भी नहीं मिल सकता। कोयले की खान के उद्योग तक को बड़ी मुश्किल से पानी मिल पाता है। इसीलिए योरप या अमेरिका के विपरीत झरिया के कोयला क्षेत्र अपनी ओर किसी उद्योग को आकर्षित नहीं कर सके हैं।

रानीगंज :—रानीगज के कोयला क्षेत्र मे भारत के सम्पूर्ण उत्पादन का लगभग ⅓ कोयला उत्पन्न होता है। यह लगभग ५०० वर्गमील मे फैला हुआ है। इसका अधिकाश बर्दवान जिले मे है परन्तु इसकी सीमाएँ बाँकुडा, मानभूमि और सथाल परगना तक चली गई हैं। इसका क्षेत्र झरिया से बड़ा है। साधारणतः यहाँ कोयले की तहो का ढाल दक्षिण या दक्षिण-पूर्व की ओर है। चूँकि दक्षिण-पूर्वी प्रसम दामोदर के कछार से दब गए हैं इसलिए कोयले की चट्टाने बर्दवान और कलकत्ता की ओर कहाँ तक फैली हैं इसका अनुमान अभी तक नही है। ऊपरी पर्तों (रानीगज) मे ६ तहें कोयला निकालने योग्य हैं जिनमे कोयले की पूर्ण मोटाई लगभग ५० फीट है। रानीगज की देशेरगढ़ तह का कोयला भारत का बहुमूल्य भाप योग्य कोयला (स्टीम कोल) माना जाता है। रेलों और जहाजों के लिए इसकी बड़ी माँग रहती है।

उपर्युक्त दो महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत मे कुछ कम महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र भी है। गोंडवाना चट्टानों की विशाल पट्टी जिसके दक्षिण पश्चिम छोर पर वरोरा स्थित है) गोदावरी की घाटी मे राजामडी तक फैली हुई है।

कहीं-कही बगाल मे स्थित इसकी दामूदा पर्तें ऊपरी गोंडवाना चट्टानों को फाड़कर अन्य स्थानों मे भी पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए हैदराबाद. स्थित येलन्डू का सिगरेनी नामक कोयला-क्षेत्र है। यहाँ कोयला की मुख्य तह ५ से ६ फीट तक मोटी है।

आसाम के अपेक्षाकृत नये अर्थात् टर्शियिरी युग के कोयले गोंडवाना क्षेत्र के कोयलों से भिन्न हैं क्योंकि उनमें नमी और उड़ने वाला अश अधिक है। उनमे राख भी कम होती है। इन कोयलों मे गधक की मात्रा बहुत अधिक होती है, इसलिए वह बुझाने योग्य नहीं है।

टर्शियरी युग के कोयलो मे माकुम क निकटवर्ती आसामी कोयले सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। यहाँ की कोयले की खानें छोटी लाइन द्वारा ब्रह्मपुत्र पर बसे हुए डिब्रूगढ़ से सम्बद्ध हैं। ब्रह्मपुत्र नौगमनीय नदी है। इसलिए इसके द्वारा कोयल को दो प्रकार के बाजार मिल जाते हैं :—(अ) स्टीम-बोटों को चलाने के लिए और

(ब) कोयले के यातायात के साधन के रूप मे। कोयले की चट्टाने उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम मे दूर-दूर तक फैली हुई हैं। सबसे अधिक बहुमूल्य तहें तिराय और
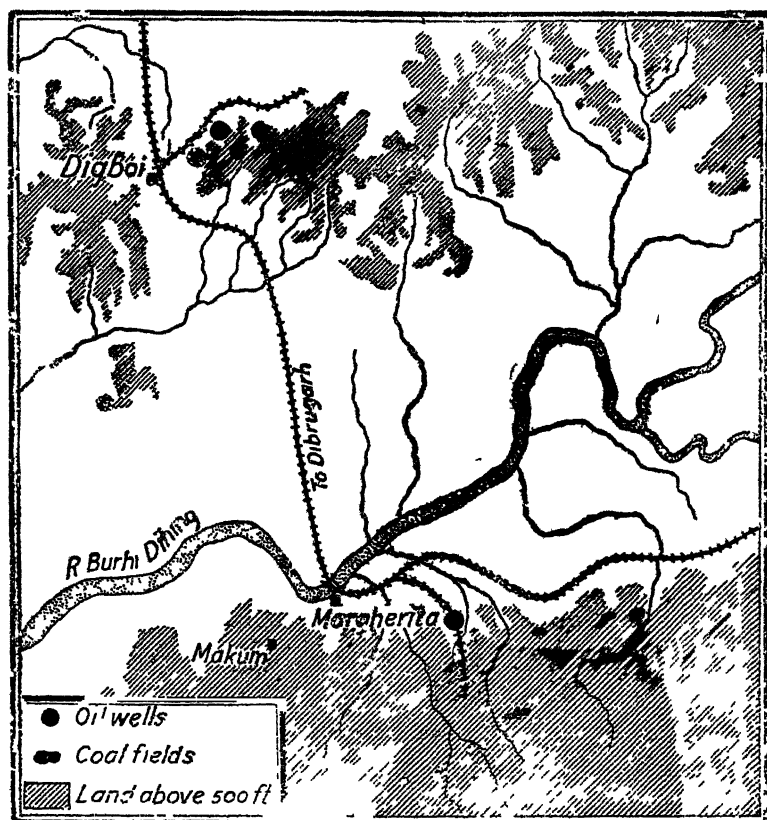
चित्र ४७—आसाम में कोयला और तेल

नामडाग नदियों के बीच में पाई जाती हैं। यहाँ लगभग ५ मील की दूरी तक कोयले की तहों की पूर्ण मोटाई १५ से ७५ फीट तक है। मार्घेरिटा के निकट जहाँ आजकल काम हो रहा है सबसे मोटी तह की औसत मोटाई लगभग ५० फीट है। नामडांग के पास यह मोटाई ८० फीट हो जाती है। कहीं-कहीं ये कोयले की तहें ऊपर उठ कर

मैदान के धरातल से कई सौ फीट ऊँचे पहाड़ी ढालों पर पहुँच गई हैं वहाँ (वेल्स की भाँति) ये तहें समतल पडी है जिससे कोयला निकालने का काम सुविधापूर्वक हो सकता है। मार्घेरिटा के ऊपर डिहिंग नदी के बाये किनारे की एक सहायक नदी नामच्चिक की घाटी मे भी उच्चकोटि का कोयला पाया जाता है।

अभी कुछ समय पूर्व ही कोयले के नये भडार मध्य प्रदेश मे रीवाँ, पथारकेरा और कोरबा मे था। बिहार मे हुटार मे भी कोयला क्षेत्र पाये गये है। कोरबा क्षेत्र का क्षेत्रफल २०० वर्गमील है। इसके दो खड हैं प्रत्येक खड मे ६० लाख टन उत्तम श्रेणी का कोयला भरा है। नैपाल तराई मे भी खाजावली और सोहराढगढ़ जिलों मे नये भडारों का पता लगाया गया है। मद्रास राज्य के अतर्गत दक्षिणी अर्काट जिले में नैवेली स्थान पर लिगनाइट प्रकार का कायला पाया गया है। यह क्षेत्र १६ वर्गमील मे फैला है और इसमे कोयले की तहे ३२ फीट की मोटाई की हैं। यहाँ लगभग २ अरब टन कोयले का भंडार अनुमानित किया गया है।

कोयले का भण्डार

अनुमानतः सब प्रकार के कोयले को मिलाकर भारत मे ५, ४०, ००० लाख टन कोयले का भडार है। इसमे से केवल ५% को 'बुझा हुआ कोयला' (कोक)* में परिणत किया जा सकता है। कोयला-कोषों के दृष्टिकोण से तीन क्षेत्र विशेष महत्वपूर्ण हैं: रानीगज (२, १०, ००० लाख टन), झरिया (२,००,००० लाख टन), और उत्तरी करनपुरा (८६,००० हजार टन)।**

---

*कोयले का पीसकर जला देते हैं तब उसकी अशुद्धियाँ निकल जाती है और 'कोक' बन जाता है। जले हुए कोयले को पानी में डाल कर ठण्डा किया जाता है। इस तरह बड़े-बड़े ढेले बन जाते हैं। यह बुझे हुए कोयले की विशेषता है। उच्च कोटि के कोयले से 'हार्ड कोक' तथा निम्न कोटि के कोयलों से 'साफ्ट कोक' बनता है। उद्योग में हार्ड कोक ही काम मे आता है।

** नेशनल प्लानिंग कमेटी रिपोर्ट (शक्ति और इस्पात) १६४७ में भारत के कोयला-कोषों का अनुमान निम्न प्रकार से किया था :—

भारत के कुल कोयला-भंडार (रिजर्व)

		दस लाख टन
		२५,६५०
रानीगंज-झरिया	...	१८,०००
वर्धा घाटी	...	.०

१९४६ मे श्री दत्त के अनुसार भारत मे गोंडवाना कोयले के भडार (४ फीट की मोटाई वाले और २००० फीट की गहराई तक) ४४,६०० लाख टन और टर्शरी कोयला भडार २५,२७० लाख टन अनुमानित हैं।

डा० फाक्स और डाक्टर फर्मर ने देश के कुल 'कोक' बनाने योग्य कोयले के धातुशोधनकारी कोक बन सकने वाले अश का सन् १९३२ के अन्त में अनुमान किया था। उक्त अनुमान निम्न प्रकार था :—

०—१ हजार फीट की गहराई तक=	११,१८० लाख टन
१ हजार—२ हजार फीट की गहराई तक=	५,७६० ,, ,,
	१६,०४० लाख टन

डा० फर्मर के अनुसार इसमें सन्देह नही है कि भविष्य मे कुछ अच्छे 'कोक' बनाने योग्य कोयले की खानें मिलेंगी, उदाहरणार्थ पश्चिमी बोकारो में, परन्तु अति अल्प होने के कारण यह वृद्धि मूल स्थिति को बहुत अधिक बदल नहीं सकेगी। विशिष्ट शोध द्वारा कुछ ऐसे कोयले जो अभी कोक बनाने योग्य नहीं माने जाते (जैसे करनपुरा के कोयले) भविष्य मे उक्त कार्य के लिए प्रयुक्त किये जा सकते हैं परन्तु ये सम्भावनाएँ मात्र है।

गारीडीह के अतिरिक्त (जो कि केवल एक छोटा-सा क्षेत्र है) भारत का कोक बनाने योग्य सर्वोत्कृष्ट कोयला झरिया-क्षेत्र को भागबद और जियालगाड़ा पर्तों में पाया जाता है। इसका ७,३७० लाख टन एक हजार फीट गहराई तक तथा १,६३० लाख टन एक हजार से दो हजार फीट गहराई तक पाया जाता है। आधुनिक उपायों द्वारा आधा कोयला ही निकाला जा सकेगा और आधा खानों के टूटने, आग लगने

सोन घाटी	...	१०,०००
छत्तीसगढ़ और महानदी	...	५,०००
सतपुड़ा प्रदेश	...	१,०००
गिरिडीह-देवदार		१००
दार्जिलिंग और पूर्वी हिमालय	...	२५०
	योग ...	६०,०००

इस भडार में से उत्तम प्रकार का कोयला केवल ५०००० लाख टन ही है।

और बाढ़ आने में नष्ट हो जायगा। झरिया से कुल मिलाकर लगभग १०२·५ लाख टन कोयला प्रति वर्ष निकलता है। इसका लगभग सर्वांश ही भागबन्द और जियालगाड़ा पर्तों से ही निकलता है। वहीं सारा कोक योग्य कोयला केन्द्रित हो गया है। डा० फर्मर के अनुसार वर्तमान परिस्थितियों में झरिया के कोक-योग्य कोयलों की (१ हजार फीट गहराई तक) आयु ४१ वर्ष है। यदि भारत में खान खोदने का सामान्य विकास होता रहा तो यह अवधि कम होकर केवल ३३ वर्ष रह जायगी। यदि खान खोदने के ढङ्गों को सुधार दिया जाय और आग से बचाने के लिए बालू भरने का उपाय अपनाया जाय तो वही आयु सौ वर्ष तक बढ़ सकती है।*

भारत में कोक योग्य कोयलों की कमी है, इस प्रकार के कोयले लोहा तथा इस्पात उद्योग के लिए बड़े महत्व के होते हैं। इसके बावजूद इन कोयलों को अन्य कार्यों के लिए उपयोग करने पर कोई रोक नहीं है।

कोयले का मितव्यय (Conservation of coal)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय कोयले को सँभाल कर व्यय करना अत्यन्त आवश्यक है। भारत के औद्योगिक विकास की युद्धोत्तरकालीन योजनाओं के कारण यह आवश्यकता और भी अधिक हो गई है। भारतीय कोयले की मितव्ययता का सबसे अच्छा उपाय यही है कि सर्वोत्तम कोयलों को धातु-शोधन उद्योग के लिए

---

* भारत के कोक के भौगर्भिक सर्वे के सदस्य डा० एन० एन० चटर्जी के अनुमान के अनुसार वर्तमान खान खोदने की गति पर भारत के कोयला भण्डार की आयु निम्न प्रकार है :—

बालू भरने पर		बिना बालू भरे
कोक-योग्य कोयला**	७५ वर्ष	५० वर्ष
कोक के अयोग्य	” २०० ”	१३५ वर्ष
निकृष्ट	” ४०० ”	२६८ वर्ष

** यदि कोक योग्य कोयलों का प्रयोग केवल धातु के उद्योगों के लिए किया जाय तो इस प्रकार के कोयले के वर्तमान उपयोग के अनुसार इसके कोषों की आयु २२५ वर्ष हो जायगी।

सुरक्षित कर लिया जाय। इन कोयलों को यातायात या उद्योगो मे केवल भाप पैदा करने के लिए न प्रयोग किया जाय। भाप के लिए (उदाहरणार्थ) रानीगंज या अन्य कोयला क्षेत्रों के निकृष्ट कोयलो का उपयोग किया जा सकता है। सबसे निकृष्ट कोयलों को या तो ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है या उनकी सहायता से बिजली पैदा करके औद्योगिक कामों मे लाया जा सकता है।

कोयले की रक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि खान खोदने के उपायो में भी सुधार किया जाय। उत्खनक लोग जितना अधिक कोयला निकालना सम्भव हो निकाले। आजकल ऐसा होता है कि उत्कृष्टतम कोटि के कोयले को निकाल लिया जाता है तथा शेष कोयले को इस प्रकार छोड़ दिया जाता है कि कभी भी निकाला न जा सके। इस प्रथा का अंत हो जाना चाहिए। स्पष्टतः यह तभी सम्भव है जब कोयले को राष्ट्रीय धन माना जाय और यह भी समझा जाय कि कोयले पर भारत का भविष्य निर्भर है और उसे फिर से उत्पन्न नही किया जा सकता है। एक बार गवाँ देने पर वह सदा के लिए हाथ से निकल जायगा। इस विशेषता के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय कोयले के उत्खनन के काम को पूर्णरूप से व्यक्तिगत पूँजीपति के हाथ मे न सौप दिया जाय।

कोयले की मितव्ययता मे यह भी सम्मिलित है कि उसके द्वारा शक्ति का एक कण भी यदि प्राप्त हो सकता है तो उसे प्राप्त कर लिया जाय, अर्थात् देश के भविष्य को सुधारने के लिए कोयले की एक-एक उप-उत्पत्ति (बाई प्रोडक्ट) को अवश्य ही निकाल लिया जाय। इसलिए साफ्ट कोक बनाने के वर्तमान उपाय को बदल देना चाहिए। उदाहरणार्थ, डा० चटर्जी * भारत में साफ्ट कोक उत्पादन के वर्तमान उपाय से जो हानि होती है (अनुमानतः २० लाख टन वार्षिक), उसका इस प्रकार ब्योरा देते हैं :—

२० लाख टन साफ्ट कोक के परिणामस्वरूप निम्नलिखित हानि होती है :—

७ लाख ५० हजार	गैलन	मोटर स्प्रिट
१५ लाख	,,	जलानेवाले तेल
३० लाख	,,	मशीन में लगाने वाले तेल
७ ,, ५० हजार	,,	कारबोलिक एसिड और अन्य कीटाणुनाशक तेल (क्रियोजोट)

* एन० एन० चटर्जी, भारतीय विज्ञान कांग्रेस, १९४५ की कार्यवाही।

है। ये तीन कारखाने जमदोबा, प० बुकारो और लोदना में हैं। अब एक चौथाई कारखाना बोकारो करगली मे खोला जा रहा है जहाँ से रुरकेला और भिलाई के कारखानों को धुला हुआ कोयला मिल सकेगा। एक अन्य कारखाना दुर्गापुर मे भी खोला जायगा।

कोयले का निर्यात करने के लिये स्थल-यातायात की ऊँची लागतें (जो कोयले के ही मत्थ पड़ती हैं) तथा पड़ोसी देशों का औद्योगिक क्षेत्र मे पिछड़ा होना हमारे कोयले की माँग को सीमित कर देता है। हमारे कोयले क विदेशी-व्यापार के पिछड़े हुए हाने के ये ही प्रमुख कारण हैं।

हमारे कोयले की सबसे बडी माँग हमारे देश मे ही है। परन्तु यह माँग भी अधिक नही है। भारत ऐसा देश नहीं है जहाँ अमेरिका या यूरोप की भाँति घरो को गर्म रखने क लिए कोयले का उपयोग किया जाता हो। उद्योग मे भारत का पिछड़ा होना भी इस माँग के थोड़ी होने का एक कारण है। इसका परिणाम यह है कि भारत मे प्रति जन कोयले का उपभोग कनाडा जैसे देश के उपभोग का १/३० तक भी नहीं है। निम्नलिखित सारिणी मे युद्ध के पूर्व का प्रति-जन कोयला उपभोग दिखाया गया है :—

ग्रेट ब्रिटेन	३·६ टन
बेल्जियम	३ ८ ,,
सयुक्त राज्य अमेरिका	३ ३ ,,
कनाडा	२ २ ,,
जर्मनी	२·० ,,
भारत	·०७ ,,

उत्पादित कोयले का लगभग ४०% निर्माणियो (कारखानों) मे तथा लगभग ३२% रेलों मे प्रयोग होता है। १६५६ में भारत में कोयले का उपभोग निम्नलिखित था :—

रेलें	१३३ ७ लाख टन	सिमेंट	५६ लाख टन
लौह उद्योग	३३ १ ,,	इजीनियरिंग	३.५ ,,
सूती वस्त्र उद्योग	१६.१ ,,		
जूट ,,	४७ ,,		
ईंटें ,,	२२५ ,,		

हमारे उद्योगों के पिछड़े होने के कारण कोयले का उत्पादन सीमित हो गया है क्योंकि यदि अधिक माँग हो तो अधिक कोयले का उत्पादन हो। भोजन बनाने के

लिए कोयले का प्रयोग करने से कोयले की मॉग मे वृद्धि होने का एक लाभपूर्ण साधन हो सकता है। यह पाया गया है कि हमारे कोयले का लगभग ३/५ निकृष्ट श्रेणी का है। उससे केवल 'साफ्ट कोक' ही बन सकता है। साफ्ट कोक को हमारे घरों मे ईंधन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार गोबर को, जो कि ईंधन की अपेक्षा खाद के लिए अधिक अच्छा है, बचाया जा सकता है। लकड़ी का ईंधन भी भारत मे केवल सीमित परिमाण मे है। इसलिए यदि हम साफ्ट कोक को घरेलू कामों में प्रयोग करने लगें तो हमारी रेलों को अधिक काम मिलेगा (कोयला ढोने मे), इससे समारा व्यापार बढेगा और इसके अतिरिक्त हमारी खेती को गोबर की उत्कृष्ट खाद मिलेगी।

निकृष्ट श्रेणी का कोयला उप-उत्पादनो के अनुकूल नही होता। आजकल केवल उसी कोयले से (जिससे लोहा गलाने वाला हार्ड कोक बनता है) कुछ उप-उत्पादन होते हैं। ये उप-उत्पादन कोलतार और अमोनियम सल्फेट हैं। कोलतार की मॉग कलकत्ता मे अधिक है, अमोनियम सल्फेट अधिकाशतः जावा भेज दिया जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका या यूरोप की तरह हमारे यहॉ कोयला ऐसे भागों में नहीं मिलता जहॉ से जल-यातायात सुलभ हो। कोयले के यातायात के लिए जल-यातायात ही सबसे सस्ते होते हैं। भारत के कोयला-क्षेत्रों मे न तो नहरें हैं न नौगम-नीय नदियॉ ही। यहॉ तक कि उन क्षेत्रो मे पीने के पानी की भी कमी है और इसी कारण वहॉ के काम करने वालों को बड़ी असुविधा रहती है।

रानीगज और झरिया मे जमीन के अन्दर की आगों के कारण बहुत से कोयले का नुकसान हो रहा है। इनके कारण दुर्घटनाएँ भी बहुत बढ़ रही हैं और कोयला जला जा रहा है। आग के बुझाने का एक ही उपाय है कि उन प्रदेशों के भीतर बालू भर दी जाय। मगर व्यय के कारण हमारी खानों के मालिक इस उपाय को नहीं अपनाते हैं। साधारणत. वे उस भाग को बन्द करके वहॉ कार्य करना बन्द कर देते हैं।

नवम्बर १६३६ में इस जमीन के नीचे की आगों के निराकरण के लिए सरकार ने एक कोल माइन स्टोइङ्ग बोर्ड की स्थापना की। इस बोर्ड का काम भारत के उत्खनित कोयले पर लगाये गये उत्पादन कर (इक्साइज ड्यूटी) द्वारा चलता है। आसाम की खानों पर यह कर नहीं लगता।

(२) मिट्टी का तेल (Petroleum)

पेट्रोलियम के स्रोतों की दृष्टि से भारत की स्थिति कोयले से भी अधिक पिछड़ी

है । पेट्रोलियम प्रति दिन अधिक से अधिक प्रचलित होता जा रहा है, क्योंकि उसे ढोना आसान है, और उपभोग के बाद उसका कोई भी अंश नहीं छूटता है, उसका अन्तिम बूँद भी काम मे आता है भारत मे मोटरों के प्रचलन के कारण पेट्रोलियम की कमी प्रति दिन अधिकाधिक अनुभव की जा रही है । भारत मे केवल आसाम मे पेट्रोलियम मिलता है । भारत के पेट्रोलियम स्रोत पूर्व स्थित अराकान पर्वत श्रेणी की मोड़दार चट्टानों तक ही सीमित हैं । ये पर्वत श्रेणियाँ पूरे आसाम से बर्मा तक फैली हुई हैं और तेल क्षेत्रों का यह सिलसिला सुमात्रा, जावा और बोर्नियो तक चला गया है । ये क्षेत्र प्राचीन काल के टेथिस सागर की खाडियो के स्थान हैं ।

टर्शियरी चट्टानो की पेटी जो आसाम के उत्तर-पूर्वी कोने से १८० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली हुई है उसमे जगह-जगह पर तेल के चिन्ह मिलते हैं । इन चिन्हों के साथ साथ लगभग हर एक जगह कोयला भी मिलता है । कभी-कभी खारे जल के सोते भी मिलते हैं । आसाम मे धरती की सिकुड़नों की श्रेणी दक्षिण की ओर कछार तक फैली हुई है जहाँ पर भी तेल के सोते मिलते हैं । समानान्तर सिकुड़नो की इसी श्रेणी मे एक ओर अराकान के तेल क्षेत्र हैं और दूसरी ओर इरावदी घाटी के ।

वैसे तो आसाम के विभिन्न भागो मे तेल पाया जाता है मगर खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के दक्षिणी निचले भागों तथा उत्तरी पूर्वी आसाम की कोयले वाली चट्टानो मे (विशेषतया लखीमपुर जिले में) पाये जाने वाले तेल के कुएँ सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं । व्यापार योग्य तेल केवल लखीमपुर जिले से निकलता है । वहाँ डिगबोई में इसके निकालने की व्यवस्था है । यहाँ तेल के मुख्य सोते डिगबोई, बप्पापांग और हस्सापाग में है । सुरमा घाटी में निम्न श्रेणी का तेल बदारपुर, मसीमपुर और पथारिया में मिलता है । आसाम के कुओं की औसत गहराई १½ से ६ हजार फीट है । आसाम का तेल अधिकांशतः 'शेल तेल' है अर्थात् यह तेल भीगी बालू से निकलता है ।

आसाम के तेल से मिलने वाली मुख्य वस्तुएँ निम्नलिखित हैं—पेट्रोल, जूट चिकना करने का तेल, मशीन चिकनी करने का तेल और जलाने का निकृष्ट कोटि का मिट्टी का तेल । यहाँ का मोम बहुत अच्छा होता है । इससे यहाँ मोम बत्तियाँ बनाई जाती हैं, या इंगलैंड को निर्यात कर देते हैं ।

डिगब्रोई रिफाइनरी का १९३८ का उत्पादन

	हजार
मिट्टी का तेल	२३,१९६
जूट भिगोने और मशीन मे डालने का तेल	१८६
स्प्रिट	१२,६६५
वेक्स (मोम)	१,५६०
अन्य तेल	५,६४६

किन्तु भारत मे मिट्टी के तेल का उत्पादन देश की आवश्यकताओ के लिए पूर्ण नही है। अतः लगभग ७५ करोड़ रुपये की लागत का तेल ईरान, बहरीन द्वीप, सौदी अरब, सयुक्त राष्ट्र अमरीका, सुमात्रा और सिगापुर से मँगवाया जाता है। प्रति वर्ष देश मे सभी प्रकार के खनिज तेल की माँग लगभग ५० लाख टन की होती है जिसमें से केवल ७ लाख टन का ही उत्पादन यहाँ होता है। अतः तेल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने रूमानिया, रूस, सयुक्त राष्ट्र अमरीका और पश्चिमी जर्मनी के साथ समझौते किए हैं और इन देशों के विशेषज्ञों की सहायता से देश के विभिन्न भागो मे मुख्यतः पजाब मे ज्वालामुखी, राजस्थान मे जैसलमेर, बम्बई मे बड़ौदा, लुनेज और कच्छ में तथा बङ्गाल मे बर्दवान मे खुदाई की गई है। लुनेज मे २,१९१ मीटर की गहराई तक खुदाई की जा चुकी है। यहाँ ६० मीटर की मोटाई में तेल मिले रेत की कई परतें पाई गई हैं। बड़ौदा के आस पास ८५ से २३० मीटर की गहराई तक के अब तक १२ कुएँ खोदे जा चुके हैं। इनमें से ११वें कुएँ मे गैस और बदेसर के पास १२वें कुएँ में १६३ मीटर तक खोदने पर कुछ तेल के साथ और दबाव के साथ गैस मिली। पजाब में ज्वालामुखी में २३०,७ मीटर तक और होशियार पुर में ३,२१२ मीटर तक खुदाई की जा चुकी है। आसाम में नहोरकटिया क्षेत्र में तेल का अनुमान २५ लाख टन का लगाया गया है। मोरन क्षेत्र से भी इसी मात्रा में तेल मिलने का अनुमान है।

अब देश में मिट्टी का तेल साफ करने की तीन शोधनशालाएँ और खोली गई हैं। एक शोधनशाला पहले से ही डिगबोई में है। नई शोधनशालाओं में से दो बम्बई में ही ट्राम्बे में खोली गई हैं जिनकी शोधन क्षमता प्रतिवर्ष १२ लाख टन और २० लाख टन की है। तीसरी शोधनशाला विशाखापटनम में है जिसकी शोधन क्षमता ६ लाख टन की है। इसके अतिरिक्त दो नई शोधनशालाएँ और खोली जा रही हैं।

एक बिहार मे बरौनी मे और दूसरी आसाम मे गौहाटी मे जिनकी क्षमता क्रमशः ७ और ५ लाख टन की होगी।

(३) जल-विद्यु त (Hydro-electricity)

कोयला और तेल से ईंधनों की उपलब्धि भारत में कम है, मगर ऐसा भी एक
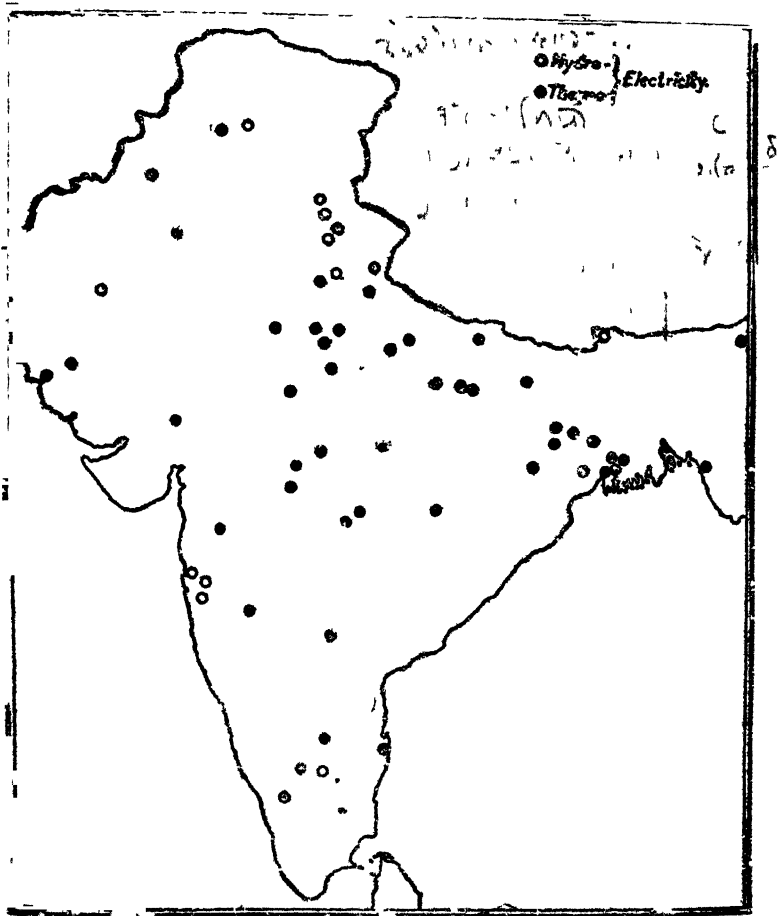
चित्र ४८—विद्युत् शक्ति के केन्द्र

ईंधन है जो यहाँ प्रचुरता से पाया जाता है। वह ईंधन है जल-विद्युत्। दुर्भाग्यवश औद्योगिक उन्नति का अभाव होने के कारण देश मे इसका कम उत्पादन किया जाता है। प्रचुर वर्षा, ऊँची-नीची भूमि जिससे पानी ऊपर से नीचे गिर सके, और पानी का निरन्तर बहाव जल-विद्युत् की ये तीन भौगोलिक आवश्यकताएँ हैं। प्रथम दो बाते भारत के बहुत बड़े भागों में पाई जाती हैं। जहाँ तक तीसरे का प्रश्न है, भारत की स्थिति उसके प्रतिकूल है। वर्षा के मौसमी-वितरण और अनिश्चितता के कारण यहाँ जल का बहाव बहुत अनियमित हो जाता है। इसलिए यहाँ ऊँचे-ऊँचे बाँधों द्वारा कृत्रिम झील बनाकर बिजलीघरों को नियमित रूप से जल देना पड़ता है। इसलिए भारत में जल-विद्युत् का दाम अन्य देशो की अपेक्षा अधिक है। भारत में कोयला इतना सस्ता है कि अधिकाश शहरों मे पानी की अपेक्षा कोयले से बिजली पैदा करना ही सस्ता पड़ता है। ऐसा अधिकतर उत्तर भारत के नगरों में होता है; क्योंकि वे कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों मे और दक्षिणी पठार के उन क्षेत्रों मे जो कोयले से दूर स्थित हैं, और जहाँ झरने बहुत से है वहाँ जल विद्युत माँग के अनुसार उत्पन्न की जाती है। पहले महायुद्ध मे जब कोयला बहुत महँगा हो गया और इसीलिए जल-विद्युत सस्ती पडने लगी, तब जल-विद्युत की बड़ी-बड़ी योजनाएँ कार्यान्वित हुई।

भारत के जल विद्युत की योजनाओं को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है :—

(१) विशाल औद्योगिक और व्यावसायिक नगरों को बिजली देने वाली योजनाएँ;

(२) सिंचाई से सम्बद्ध योजनाएँ; और

(३) पहाड़ी शहरों को प्रदान करने वाली योजनाएँ।

(१) औद्योगिक और व्यावसायिक शहरों को जल-विद्युत प्रदान करने वाली योजनाएँ निम्नलिखित हैं।

(1) **टाटा हाइड्रोइलेक्ट्रिक वर्क्स**—जिनके बिजलीघर पूना के पास हैं, और जो बम्बई शहर को बिजली प्रदान करते हैं। लोनवाला के पास की कई झीलों (लोनवाला शिरवता और व्लहवान) से बिजली पैदा करके ७० मी० की दूरी पर स्थित बम्बई को तारों द्वारा बिजली भेजी जाती है। चित्र ४८ में ये झीले दिखाई गई हैं। यहाँ पर तीन बिजलीघर हैं—खोपोली, भिडपुरी और भीरा। उपरोक्त तीनों झीलों का पानी १७७५' की ऊँचाई से खोपोली शक्तिगृह पर गिराया जाता है। इससे लगभग

६० हजार किलोवाट बिजली तैयार की जाती है। आन्ध्र नदी पर लगभग ½ मील लम्बा और १६२ फीट ऊँचा बाँध बनाकर जल एकत्रित किया गया है। यहाँ से भीवपुरी शक्ति गृह पर नलों द्वारा पानी डाला जाता है और विद्युत-शक्ति उत्पन्न की जाती है। तीसरा शक्तिगृह भीरा में है। यहाँ नीलामूला नदी पर बाँध बनाकर जल छोड़ा जाता है। टाटा हाइड्रोइलेक्ट्रिक वर्क्स ने सन् १६४८ में लगभग ६६ करोड़ यूनिट बिजली लगभग ५० लाख रुपये की बेची।

उपर्युक्त बिजलीघरों के अतिरिक्त सेन्ट्रल रेलवे का एक निजी छोटा-सा बिजली-घर पश्चिमी घाट की उल्लास नदी की चोला झील पर है। बम्बई का कपड़ा-उद्योग इस शक्ति का उपयोग करता है। थाना, कल्यान और पूना को भी इन बिजलीघरों से बिजली मिलती है। भारत में सबसे अधिक जल विद्युत बम्बई प्रदेश में बनती है।

(11) साउथ इंडियन हाइड्रोइलेक्ट्रिक वर्क्स जिनका पैकारा वर्क्स मद्रास प्रदेश के आर्थिक जीवन के लिए विशेष महत्व का है। भारत के ये भाग कोयला क्षेत्रों से
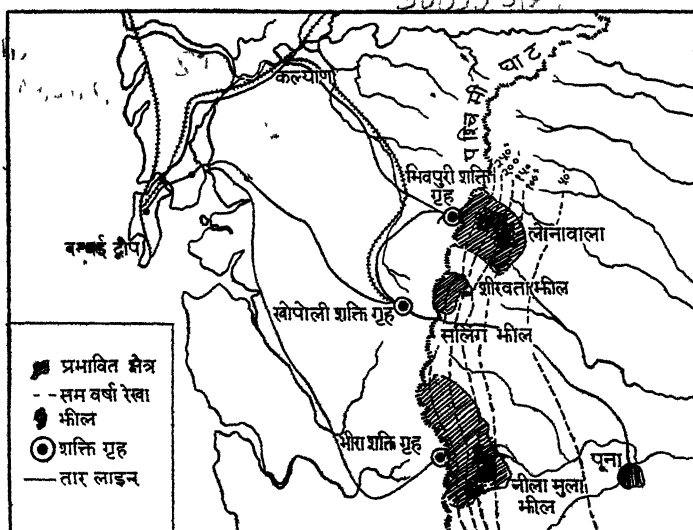
चित्र ४६—पश्चिमी घाट के कारखाने

बहुत दूर हैं। यहाँ के प्रमुख नगर समुद्र तट से बहुत दूर अन्तर-देश में स्थित हैं

इसलिए यहाँ औद्योगिक ईंधन की समस्या बहुत गम्भीर है। बम्बई की तरह अन्तर-देश में स्थित औद्योगिक नगर कोयले का आयात सस्ते दामों मे नहीं कर सकते। इसीलिए इस क्षेत्र में जब तक जल-विद्युत द्वारा समस्या का आंशिक हल नहीं हो गया तब तक औद्योगिक विकास नहीं हो सका। दक्षिणी भारत को पैकारा द्वारा ही समृद्ध प्राप्त हुई है। इसलिए यह शब्द घर-घर में आपको सुनने को मिलेगा। शक्ति उत्पन्न करने के लिए पैकारा की स्थिति ससार की सर्वोत्तम स्थितियो की श्रेणी मे आती है। उससे अनुमानतः कुल १ लाख हार्स पावर बिजली पैदा की जा सकती है। इस बिजली-घर की उन्नति और भी की जा रही है जिससे वह ५५ हजार हार्स पावर और बिजली पैदा कर सके। तामिल प्रदेश में अधिक माँग होने के कारण मुकुर्त्ति मे और अधिक जल-संग्रह की व्यवस्था से पैकारा की अधिक उन्नति हुई है। इस माँग की वृद्धि का कारण दक्षिण भारत मे सस्ती बिजली द्वारा औद्योगीकरण, विशेषतः कोयम्बटूर में कपड़ा उद्योग की उन्नति है। पायकारा की शक्ति कोयम्बटूर ईरोड, नागापट्टम, तिरुचिरा-पल्ली, मदुराई और विरूधनगर को दी जाती है। इस शक्ति का उपयोग सिमेंट और चाय की फैक्ट्रियों में तथा कृषि कार्यों मे किया जाता है।

सरकारी योजनाओं के अनुसार पैकारा, मेट्टूर और पापनाशम को जल-विद्युत लाइनें दी जायँगी, क्योंकि कावेरी नदी की बिजली मेट्टूर में कपड़ा तथा दूसरी मिलों की माँग को पैकारा की सहायता के बिना पूरी नहीं कर सकती। यद्यपि मेट्टूर बाँध से जो झील बनी है उसमें लगभग १६ हजार वर्गमील का जल बह कर आता है। मेट्टूर के बिजलीघर की सबसे बड़ी कमी यह है कि जिस समय सिंचाई बन्द हो जाती है और नहर
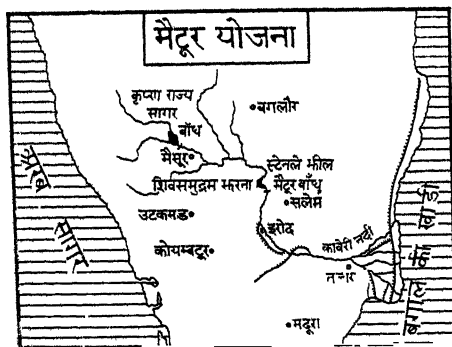
चित्र ५०—मैटूर योजना

पानी नहीं जाता उस समय वहाँ बिजली का उत्पादन ४५ हजार किलोवाट् से घट क केवल ६ हजार किलोवाट् रह जाता है। इसीलिए पैकारा योजना को मैटूर योजना ईरोड स्थान पर सम्बन्धित किया गया है। मैटूर योजना से शक्ति सलेम, तिरूचिर
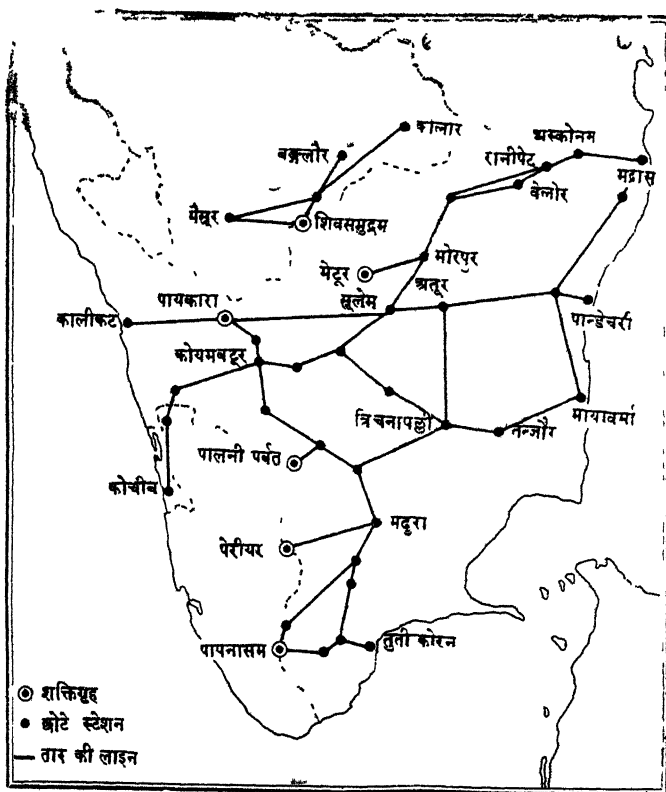
चित्र ५१—दक्षिण भारत के कारखाने

पल्ली तंजौर, उत्तरी और दक्षिणी अर्काट तथा चित्तूर जिले को बिजली दी जाती है।

(111) शिवसमुद्रम् योजना ने ६० मील दूर स्थित कोलार की सोने की खानों को सबसे पहले जल-विद्युत पहुँचाई थी। शिवसमुद्रम् द्वारा बगलौर और मैसूर नगरों को भी बिजली मिलती है। मैसूर के पास कावेरी पर एक और बाँध बनाया गया है जिसके द्वारा कृष्ण राजसागर नामक झील बन गई है। इस बाँध द्वारा थोड़ी सी बिजली पैदा होती है जिसका उपयोग सिंचाई के लिए निकाली गई नहरों के फाटकों को खोलने-

मूँदने के लिए होता है। इस बाँध की योजना टीपू सुल्तान ने बनाई थी, यद्यपि उस समय इसका निर्माण नहीं हो सका। टीपू का मुख्य उद्देश्य सिंचाई ही था क्योंकि तब बिजली को कोई जानता ही न था। मैसूर के जोग-प्रपात (जिसको अब महात्मा गाँधी प्रपात कहते हैं) से भी बिजली पैदा करने का प्रबन्ध हो गया है।
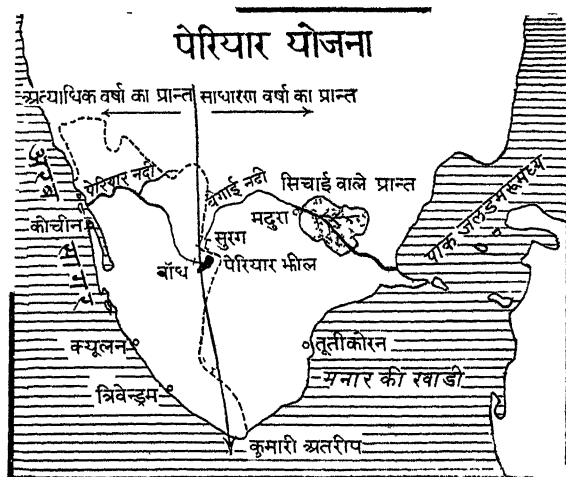
चित्र ५२—पेरियर योजना

(iv) केरल राज्य में स्थित अल्वाई भी दक्षिण मे जल-विद्युत् का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। सन् १६५२ मे इस बिजलीघर से १६,५०० किलोवाट बिजली पैदा करने की योजना थी। इसके वर्तमान उत्पादन में से लगभग २० हजार किलोवाट बिजली मद्रास प्रदेश के नगरों को भेजी जाती है। अल्वाई में उत्पन्न बिजली के अधिकाश का उपयोग उद्योगों में होता है। सन् १६५० में इमकी शक्ति का उपभोग इस प्रकार था :—

उद्योग	६१%
खेत	१३%
घरेलू काम	१३%
भिन्न	१३%
	१००%

जिन उद्योगों में अल्वाई की बिजली लगती है उनका विवरण निम्न-लिखित है :—

एल्यूमिनम उद्योग	७५ हजार	कि० वा०
खाद उद्योग	४ हजार	,,
रेयन	२ हजार	,,
सीमेंट	१ हजार ६ सौ	,,
चाय	३ हजार ४ सौ	,,

अल्वाई की जल-विद्युत का उपयोग करने वाले उपर्युक्त उद्योग त्रिचूर, अल्वाई, कोट्टायम, अलेप्पी, क्विलन, त्रिवेन्द्रम् और शेन कोट्टल मे स्थित हैं।

(IV) प्रायद्वीपीय भारत के बाहर शिमला पहाड़ियों में जोगेन्द्र नगर के पास स्थित मडी हाइड्रो-इलेक्ट्रिक वर्क्स महत्वपूर्ण है। मंडी वर्क्स का निर्माण बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर किया गया था मगर वे आशाएँ पूरी न हो सकीं। मडी से पंजाब के कुछ नगरों को रोशनी तथा घरेलू कामों के लिए बिजली मिलती है। ऐसे नगरों में काँगड़ा, पठान कोट, धारीवाल, अमृतसर, लाहौर, मोगा और जलधर मुख्य हैं। मंडी हाइड्रो-इलेक्ट्रिक वर्क्स मुख्य रूप से उहल नदी से मंडी राज्य को बिजली प्रदान करने के लिए निर्माण किया गया। उहल एक छोटी नदी है जिसमें लगभग १४७ वर्ग मील के क्षेत्र का जल आता है, परन्तु इस जल की मात्रा बहुत है। एक बाँध बनाकर इस नदी का बहाव उलट दिया गया है। पहाड़ के बाँध से रुका हुआ पानी प्रतिकूल दिशा में एक सुरंग द्वारा बहाया जाता है। यह सुरंग १४,२१२ फीट लम्बी है। इस सुरंग से बड़े-बड़े नलों द्वारा पानी को मैदान में स्थित जोगेन्द्र नगर ले जाया जाता है। वहां पानी २ हजार फीट की ऊँचाई से गिरता है। बिजली पैदा कर लेने के बाद पानी को मैदानों की सिंचाई के लिए निकाल दिया जाता है।

बिजली को ऊपर ही ऊपर तारों द्वारा काँगड़ा घाटी के पहाड़ी क्षेत्र से होकर पजाब पहुँचाया जाता है। हिमालय के नीचे बसे हुए लगभग सभी नगरों को यह बिजली मिलती है। भारत के मानचित्र में यह देखा जा सकता है कि पंजाब के अधिकाश नगर इसी प्रदेश में बसे हुए हैं।

लाहौर के निकट स्थित मुगलपुरा की रेलवे वर्कशाप मण्डी की सबसे अधिक बिजली लेती है।

मण्डी योजना की सब से बड़ी कठिनाई यह है कि यह सिन्धु-गगा के मैदान

के घने बसे हुए क्षेत्र से बहुत दूर है। वहाँ पहुँचने के लिए मार्ग भी बहुत कठिन हैं। इस योजना को पूरा करने के लिये एक रेलवे लाइन (कॉंगड़ा वेली रेलवे) बनानी पड़ी थी जिसके द्वारा निर्माण कार्य के लिए सामान तथा मशीनें आदि ले जाने में सुविधा हो। इस रेलवे लाइन के बनाने का व्यय भारत सरकार ने दिया था।

यह रेल पहाडी क्षेत्रो से होकर जाती है इसलिए उसके चलाने मे बहुत व्यय होता है। इसीलिए योजना को जो सामान आवश्यक होता है उसके यातायात की लागत बहुत होती है। इस योजना के चारो ओर का क्षेत्र (अर्थात् मण्डी राज्य) किसी भी प्रकार के औद्योगिक कच्चे माल से सम्पन्न नहीं है। इसीलिए इस विजली को किसी स्थानीय औद्योगिक काम के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता। उसकी वास्तविक माँग वहाँ से सैकड़ों मील दूर है।

मण्डी योजना की बिजली की माँग मुख्यकर पंजाब मे है जो कोयला-क्षेत्र से बहुत दूर है। केवल इसी एक कारण से इस योजना का लाभसहित चलना सम्भव है।
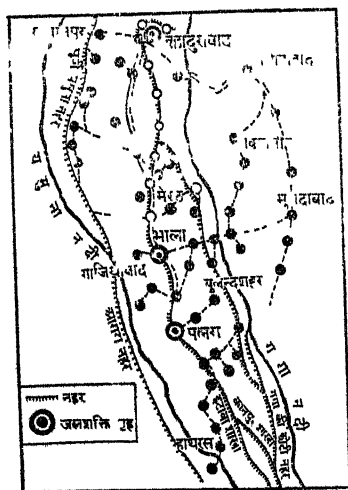
उहल नदी अब लगभग ५० हजार किलोवाट बिजली पैदा करती है। सतलज पर नगल और भाकड़ा बॉंध १९६२ में तैयार हो जायँगे। तब पजाब को १० हजार किलोवाट बिजली और मिलने लगेगी।

(५) काश्मीर की बारामुल्ला-योजना भी उल्लेखनीय है। झेलम का पानी एक तङ्ग घाटी मे प्रवेश करता है, और बिजली बनाने के लिए उसका उपयोग किया जाता है। श्रीनगर और बारामुल्ला को इस योजना से बिजली प्रदान की जाती है।

चित्र ५३—उत्तर प्रदेश के विद्युत कारखाने

(२) सिचाई-योजनाओं से सम्बद्ध जल-विद्युत योजनाओं मे से सर्व-प्रमुख वे हैं जो ऊपरी गगा-नहर पर स्थित हैं। गगा की नहर के अनेक प्रपातों से शक्ति उत्पन्न की जाती है। इसका मुख्य बिजलीघर बहादुराबाद में है परन्तु विभिन्न झरनों से शक्ति

एकत्र करके एक सम्बद्ध रूप मे पश्चिमी उत्तर प्रदेश को प्रदान की जाती है। ऊपर के चित्र मे ये झरने और नगर दिखाये गये है। ये बिजलीघर बहादुराबाद, मुहम्मदपुर, नीर गजनी, चितारा, सेलवा, भोला, पालड़ा और सुमेरा मे स्थित हैं। सहायक के रूप मे दो तेल से चलने वाले बिजलीघर (थर्मल स्टेशन) भी बनाये गये हैं। गंगा-नहर योजना से प्रति वर्ष लगभग १६ करोड़ ३० लाख यूनिट बिजली पैदा होती है। इससे उत्तर प्रदेश के चौदह जिलों को (जिनका कुल क्षेत्रफल १६०० वर्गमील है) बिजली मिलती है। लगभग ६५ नगरो को इस योजना द्वारा बिजली मिलती है। इन नगरों को बिजली पहुँचाने वाली तार की लाइनों की लम्बाई ५००० मील से अधिक है। इस योजना से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि कुछ ऐसे क्षेत्रों मे सिंचाई का प्रसार सभव हो गया है जहाँ पर पहले की गगा की नहर की अनूपशहर शाखा द्वारा सिंचाई होना सभव नहीं था। अब जल-विद्युत की सहायता से कालीनदी का पानी इस नहर मे नल द्वारा खीच लिया जाता है। इस बिजली की सहायता से नलकूपों से भी जल खींच कर ऐसे क्षेत्रो मे सिंचाई की जाती है जहाँ ऊँचाई के कारण नहरो का पानी नहीं पहुँच सकता।

(३) अधिकाश पहाड़ी नगर ऐसे प्रदेशों मे स्थित हैं जहाँ झरने प्रचुर हैं, और यातायात के साधनों की कठिनता के कारण कोयला ले जाना महँगा पड़ता है। ऐसे नगरों के लिए स्वयं जल-विद्युत पैदा कर लेना सस्ता पड़ता है। इसलिए लगभग सभी प्रमुख पहाड़ी नगरों मे निजी तौर पर बिजली पैदा की जाती है।

पश्चिम के देशों से भारत की तुलना यदि की जाय तो यह मालूम होगा कि यहाँ पर जल-विद्युत् का जो भी विकास हुआ है वह बहुत थोड़ा है। देश की वर्तमान उद्योग हीनता को देखते हुए यह स्वाभाविक ही है। परन्तु भारत के लिए जल-विद्युत् का महत्व आधारभूत है इसे कभी न भूलना चाहिये। प्रकृति ने हमें पर्याप्त मात्रा मे कोयला नही दिया है परन्तु उसने हमें 'श्वेत कोयले' की अनन्त राशि प्रदान की है। उपभोग के द्वारा कोयला समाप्त हो सकता है; परन्तु 'श्वेत कोयला' नहीं।*

*प्रति जन प्रति वर्ष बिजली का उपयोग :—

कनाडा	४,४३१	किलोवाट
नारवे	५,६६८	„
स्वीडन	२०००	„
स्विट्जरलैंड	२,०००	„
सयुक्त राज्य अमेरिका	१४६०	„
इंग्लैंड	१,२८८	„
भारत	१७	„

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए और यह भी जानते हुए कि जल-विद्युत् का विकास भारत मे सिंचाई के विकास से अविच्छिन्न है, सरकार ने देश के विभिन्न भागों में जल-विद्युत् को विकसित करने की योजनाएँ बनाई हैं। इस समय भारत में प्रति वर्ष कुल २८ लाख कि० वा० बिजली पैदा की जाती है जो सम्भाव्य शक्ति का केवल ३ प्रतिशत है। विकसित बिजली का लगभग आधा बम्बई प्रदेश मे है। १९४७ और १९५६ में भारत में निम्नलिखित साधनो से बिजली पैदा की जाती थी :—

	१९४७	१९५६
कोयला	७,५५,६९२ किलोवाट	१,५९६,००० किलोवाट
जल	४,९९,२२७ ,,	१,०६२,००० ,,
तेल	९६,९१६ ,,	२२८,००० ,,

निम्नलिखित तालिका मे भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों की उन्नति तथा सम्भाव्य जल विद्युत् दी है :—

भारत में जल-विद्युत् का विवरण

	(पूर्ण सम्भाव्य) लाख कि० वा०	(विकसित) कि० वा०
आन्ध्र		
आसाम	४०	५००
उड़ीसा	२०	—
बिहार	१८	—
उत्तर प्रदेश	१२	२२,७००
बम्बई	६	२,३५,७१४
मद्रास	६	९८,२९०
पंजाब	५	४६,७५०
मैसूर	३	७१,२००
बङ्गाल	३	२,३६०
मध्य प्रदेश	२½	
केरल	—	१३,९००
काश्मीर	—	४,३१५
भारत	१४८	४,९९,२२७

ऊपर दी हुई तालिका से ज्ञात होता है कि लगभग ८० प्रतिशत जल-विद्युत् पश्चिमी घाट पहाड़ से पैदा की जाती है। बम्बई, मद्रास, मैसूर तथा केरल की जल-विद्युत् इसी पहाड़ से अधिकाश आती है। हिमालय की अपेक्षा पश्चिमी घाट की जल-विद्युत् में अधिक महत्व भौगोलिक तथा आर्थिक कारणों से है। (१) पश्चिमी घाट पहाड़ में स्थित जल-प्रपातों तक पहुँचने की सुविधाएँ अधिक हैं जिससे सामान और मशीनें अच्छी तरह पहुँच जाती हैं। (२) वहाँ जलवर्षा बहुत होती है जिससे बिजली बनाने के लिए पानी की कमी नहीं पड़ती। (३) इस क्षेत्र मे औद्योगिक उन्नति बहुत हुई है जिससे वहाँ बिजली की माँग अधिक है। (४) इस क्षेत्र में कोयले का अभाव है। इसलिए वहाँ कोयले का काम पानी से लिया जाता है। (५) यह क्षेत्र पठारी है और पठार की ढालों पर स्वभावतः जल-प्रपात पाये जाते हैं।

बहुमुखी-योजनाएँ
(Multi-purpose Projects)

भारत मे खाद्य पदार्थों की कमी को पूरा करने के लिये सिंचाई की सुविधाओं में और अधिक वृद्धि करने की तत्कालीन आवश्यकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में सिंचाई के लिये जितना पानी उपलब्ध हो सकता है उसका केवल ६% ही अब तक कार्य में लाया गया है। शेष पानी व्यर्थ ही समुद्र में बह जाता है और प्रति वर्ष अनियन्त्रित बाढ़ों से इतनी धन और जन की हानि होती है कि उसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता है।

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा जल शक्ति और सिंचाई की वृद्धि के लिए कई योजनाएँ बनाई गई हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वित होने पर न केवल देश मे सिंचाई के साधनों में वृद्धि होगी वरन् जल-शक्ति में वृद्धि, बाढ़ नियन्त्रण, जल-मार्ग, आमोद-प्रमोद और मछली पकड़ने आदि, सभी कार्यों मे सहयोग प्राप्त होगा। ये सभी बहुमुखी योजनाये कहलाती हैं।

"बहुधन्धी योजना उन कई उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने का ढङ्ग है जो वास्तव में एक ही समस्या के विभिन्न रूप हैं।" इस प्रकार हम न तो किसी पक्ष की उपेक्षा ही करते हैं और न हमारा दृष्टिकोण एकागी रह पाता है। उस क्षेत्र की सभी आवश्यकताओं और सभीं साधनों को ध्यान में रखते हुये बहुमुखी योजना विकास कार्य करती है। किसी नदी का सम्पूर्ण अध्ययन इसी ढङ्ग के अन्तर्गत सम्भव है।

नदी की स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था तथा साधनों मे अनावश्यक उलट-फेर न कर उनका इस प्रकार विकास किया जाता है कि समाज को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो सके। सतुलित और समग्र विकास पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। किसी भी ऐसी योजना के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं :—

(१) सिचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एव प्रबन्ध,
(२) विद्युत-शक्ति मे वृद्धि और औद्योगीकरण,
(३) बाढ़-नियन्त्रण और बीमारियों की रोक-थाम में सहायता,
(४) जल-मार्ग का विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक प्रगति,
(५) घरेलू-कार्य के लिए पानी की व्यवस्था,
(६) मछलियों को पकड़ना, मत्स्य-उद्योग का विकास,
(७) जगलो की रक्षा, वृक्षारोपण और ईंधन का प्रबन्ध,
(८) भूमि की सुरक्षा,
(९) पशु सम्पत्ति के लिए चारे की व्यवस्था,
(१०) दुर्भिक्ष आदि से मुक्ति दिलाना, और
(११) मनुष्यों तथा साधनों को काम मिलना।

प्रमुख बहुमुखी योजनाएँ

(१) भाकरा-नांगल योजना—भाकरा-नागल योजना के अन्तर्गत दो बड़े बाँध बनाने की योजना थी, जिससे नहरों का जाल बिछाने का उद्देश्य था। यह योजना सतजल नदी के पानी का सिचाई एव जल-विद्युत के लिए उपयोग करने के लिए बनाई गई है। इस योजना के अन्तर्गत चार विद्युत ग्रह (Power stations) तथा अनेक ट्रासमीरान्स लाइन्स होंगी, जो पजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में होंगे। नागल बराज से १ मील दूरी पर भाकरा में एक कान्क्रीट का वृहत् बाध बनाया जायगा, जिसकी ऊँचाई ७०० फीट और लम्बाई १,७०० फीट है। नागल बाँध की ऊँचाई ९५ फीट और लम्बाई १,००० फीट है। भाकरा बाँध में ७ ४ मि० एकड़ फीट पानी सग्रहित हो सकता है, जिसका फैलाव ५९ ४ वर्ग मील है। प्रमुख नहर की लम्बाई ६५२ मील तथा सहायक नहरों की लम्बाई २,२०० मील है।

इस योजना से ३६ लाख एकड़ भूमि की सिचाई होगी तथा ५ जलविद्युत केन्द्र होंगे, जिनकी विद्युत क्षमता ९०,००० किलोवाट की होगी। इसके अलावा

२०,००० किलोवाट के २ विद्युत केन्द्र और ३२,००० किलोवाट के विद्युत केन्द्र कोटला और गंगुवाल में होंगे।

इस योजना का कार्य सन् १९४६ में आरम्भ हुआ, जिससे नागल बाँध सन् १९५४ और भाकरा बाँध सन् १९५८ मे पूर्ण हो गया। इसी प्रकार कोटला और गगुवाल पावर स्टेशनों का उद्घाटन भी सन् १९५५-१९५६ मे हो गया। इनकी वर्तमान विद्युतक्षमता ९४,००० किलोवाट की है। और माँग बढ़ने पर इसको ३६,००० किलोवाट तक बढ़ाया जा सकेगा। भाकरा बाँध पर जल-विद्युत गृहों का निर्माण कार्य चालू है। इस योजना की अनुमानित लागत १७०.०१ करोड़ रुपया है।

चित्र ५४—भाखरा नागल योजना

(२) दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project)—दामोदर नदी (इसको शोक की नदी भी कहते हैं) ३३६ मील लम्बी है। इसका उद्गम छोटा नागपुर की पहाड़ियों में समुद्र तल से २,००० फुट की ऊँचाई पर है। यह बिहार में १८० मील बहने के बाद पश्चिमी बगाल में होकर हुगली मे गिर जाती है। दामोदर घाटी की योजना का ध्येय सिंचाई तथा जल मार्ग के लिए पानी प्रदान करना, मलेरिया पर विजय प्राप्त करना तथा वैज्ञानिक व्यवस्था का प्रवेश कर सारी घाटी की आर्थिक स्थिति में विकास करना है।

उत्तरी दामोदर नदी की घाटी लकड़ी, लाख और टसर रेशम में समृद्ध है। नीचे की घाटी यद्यपि बहुत उपजाऊ है फिर भी सिंचाई की उचित व्यवस्था के अभाव में वहाँ विस्तृत कृषि एवं उत्पादन असम्भव है। दामोदर घाटी में भारत के कोयले का

सम्भावित क्षेत्र, काफी मात्रा मे बाक्साइट और एल्यूमीनियम पाया जाता है। इस घाटी में फायर-क्ले, अभ्रक, चूना, सीसा, चाँदी, सुरमा और क्वार्ट्ज मिलने की संभावना है, इसलिये सस्ती दर पर जलविद्युत के वितरण से इन खनिजों का समुचित उपयोग हो सकेगा, इसलिए बहुमुखी योजनाओ में दामोदर घाटी योजना का विशेष स्थान है।

भारत सरकार ने इस योजना के हेतु एक वैधानिक कॉर्पोरेशन का निर्माण किया है जो सिंचाई, विद्युत का उत्पादन और बाढ़ नियन्त्रण योजनाओं को कार्यान्वित करेगा।

इस योजना की कुल लागत १०५·३८ करोड़ रु० है। दामोदर घाटी योजना के अन्तर्गत ४ बाँध—तलैया, कोनार, मैथॉन, पंचेट हिल—बनाये जाएँगे। इनमें से ३ ०६ करोड़ रु० की लागत से तलैया बाँध दिसम्बर सन् १९५२ मे पूर्ण हो गया। इस बाँध की संग्रह क्षमता ३,२०,००० एकड़ फीट पानी की है। इसके साथ ही २,००० किलोवाट क्षमता की दो विद्युत-निर्माण इकाइयाँ भी हैं।
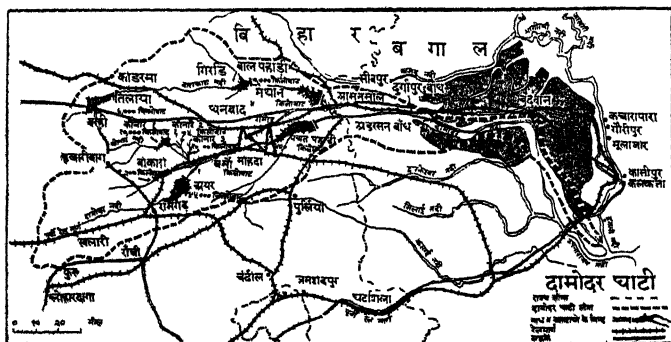
चित्र ५५—दामोदर घाटी योजना

कोनार बाँध का आरम्भ सन् १९५० में होकर सन् १९५५ में यह पूर्ण हो गया। इसकी लागत ९·६४ करोड़ रु० है तथा पानी की संग्रह क्षमता २,७३,००० एकड़ फीट है। इस पर ४०,००० किलोवाट विद्युत क्षमता का जल-विद्युत केन्द्र का निर्माण होना है।

मैथॉन बाँध, जो बारकर नदी पर है सितम्बर सन् १९५७ में पूर्ण हो गया तथा अक्टूबर सन् १९५७ में २०,००० विद्युत शक्ति निर्माण करने की क्षमता यहाँ के

विद्युत केन्द्र को प्राप्त हो गई। इस केन्द्र की पूर्ण क्षमता ६०,००० किलोवाट तक बढ़ाई जा सकती है।

पचेट हिल पर बाँध बनाने का कार्य चालू है, जिसका प्रमुख उद्देश्य बाढ़ नियन्त्रण है। यहाँ पर १,३६५ एकड़ फीट पानी संग्रह होगा तथा इसकी सहायता से ४०,००० किलोवाट बिजली का उत्पादन हो सकेगा। इसकी कुल लागत १८·२५ करोड़ रु० होगी तथा सन् १९५९ में पूर्ण होने की आशा है।

दुर्गापुर बराज आसनसोल से २५ मील और दुर्गापुर रेलवे स्टेशन से १ मील पर है। इसकी लम्बाई एवं ऊँचाई क्रमशः २,२७१ और २८ फीट है। इस बाँध की नहर पद्धति से १० २६ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो गई हैं। इसका उद्घाटन सन् १९५५ मे किया गया। इसके अलावा कलकत्ता से कोयले की खानों तक हुगली नदी से जल-यातायात की सुविधाएँ भी वहाँ की नहर पद्धति से उपलब्ध हो गईं। इसकी कुल लागत २२·६८ करोड़ रु० है। जल-यातायात की सुविधाएँ सन् १९५९ तक उपलब्ध हो सकेंगी, जिनसे २० लाख टन माल का यातायात हो सकेगा।

बोकारो थर्मल स्टेशन बिहार स्थित कोनार बाँध की निचली धारा पर १२ मील दूरी पर है। इसमे ५०,००० किलोवाट विद्युत उत्पादक तीन इकाइयाँ हैं तथा ७५,००० किलोवाट की चौथी इकाई की शीघ्र ही स्थापना होनी है। इस केन्द्र से जमशेदपुर और बर्नपुर के लौह उद्योग, घाटशिला की ताँबे की खानों, बिहार और बगाल की कोयले की खानों, सिन्ध्री एव कलकत्ता तथा आसनसोल के आसपास के सीमेंट और इजीनियरिंग कारखानों को बिजली का प्रदाय होगा। इस केन्द्र का उद्घाटन फरवरी सन् १९५३ में हुआ।

(३) **कोसी योजना**—यह बिहार की महत्त्वपूर्ण योजना है, जो सिंचाई, विद्युत, जलमार्ग, बाढ़ नियन्त्रण, मिट्टी वं कटाव से सुरक्षा, मलेरिया नियन्त्रण, मत्स्य उद्योग और मनोरजन की सुविधाएँ प्रदान करेगी। इस योजना के अनुसार हनुमान नगर (नैपाल) से तीन मील दूरी पर कोसी नदी पर एक बराज बनेगा। दूसरे, कोसी नदी के दोनों तटों पर १५० मील लम्बी दीवारे बनाई जावेंगी। तीसरे, हनुमान नगर बराज से पूर्वी कोसी नहर का निर्माण होगा, जो लगभग १३·९५ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई का सुविधायें देगी। इस प्रमुख नहर की सुपॉल, प्रतापगंज, पूर्णिया और

अरंरिया, ये चार शाखायें होंगी। ये सभी कार्य चालू अवस्था में हैं और १५० मील की तटबन्दी का कार्य पूर्णता पर है। इस योजना की लागत ४४·६ करोड़ रु० है।

(४) **हीराकुड योजना**—हीराकुड योजना के अन्तर्गत महानदी के पानी का उपयोग संभलपुर और बोलागिर जिले के ६ ७ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ देने के लिए किया जायगा। हीराकुड बाँध सम्भलपुर रेल्वे स्टेशन से ६ मील दूरी पर होगा। इसकी लम्बाई एव ऊँचाई क्रमशः १५,७४८ और २०० फीट होगी तथा इसमे ६ ६० मि० एकड फीट पानी रहेगा। इससे निकलने वाली नहर एव उसकी शाखाएँ ६ १ ५ लाख मील तथा इसकी सहायक नहरें ४६० मील लम्बी होंगी और जलमार्ग (Water Courses) की लम्बाई ६,५०० मील होगी। इस योजना की लागत ७० ७८ करोड़ रु० है।

इस योजना का कार्य सन् १६४८ मे आरम्भ हुआ तथा हीराकुड का प्रमुख बाँध और उसके अवरोध सन् १६५७ में पूर्ण किए गए। वहाँ पर एक विद्युत-गृह
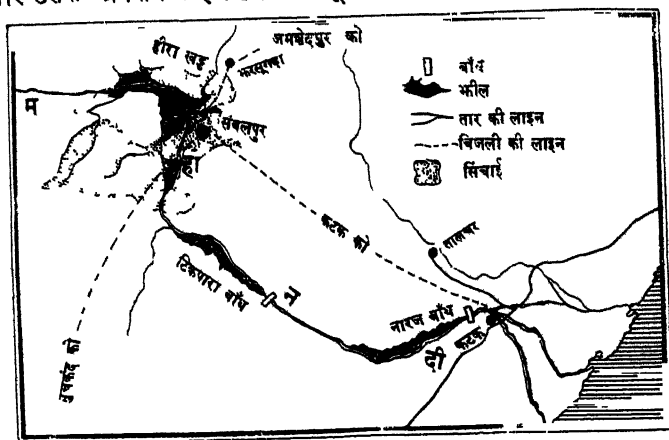
चित्र ५६—हीराकुड योजना

भी बनाया गया है, जिसमें ४०,००० किलोवाट उत्पादन क्षमता की दो इकाइयाँ (Generating units) हैं, जहाँ से हीराकुड अल्यूमिनियम फेक्ट्री, झरसुगुडा, राजगागपुर, रूरकेला, जोड़ा, तालचर, चौद्वार और बारगढ़ आदि स्थानों पर बिजली के प्रदाय की व्यवस्था पूर्ण हो गई है तथा दिसम्बर सन् १६५६ से शक्ति का प्रदाय

आरम्भ किया गया। प्रमुख नहर और सहायक नहरों की खुदाई का कार्य पूर्ण हो गया है, जहाँ से सिंचाई की सुविधाएँ सितम्बर सन् १६५६ से दी जाने लगी हैं। फलस्वरूप इस योजना से नवम्बर सन् १६५७ तक लगभग १·४५ लाख एकड़ भूमि सिंचाई के अन्तर्गत आ गई।

डेल्टा सिंचाई की एक १४६२ करोड़ रु० की योजना स्वीकृत की गई है, जो सन् १६६० मे पूर्ण होने पर कटक और पुरी जिलों की १८७ लाख एकड़ भूमि को स्थायी सिंचाई सुविधाएँ देगी। इसी प्रकार विद्युत-शक्ति की अधिक माँग की पूर्ति करने की दृष्टि से विद्युत-गृह के विकास की योजना भी स्वीकृत की गई है, जिससे विद्युत-गृह की विद्युत उत्पादन-क्षमता २,३२,५०० किलोवाट हो जायगी।

इस योजना की पूर्ति पर दामोदर घाटी का प्रदेश भारत के अत्यन्त समृद्ध भागों में गिना जायगा, क्योंकि यह प्रदेश खनिज पदार्थों से सम्पन्न है।

(५) **तुङ्गभद्रा योजना**—यह योजना आन्ध्र और मैसूर राज्य द्वारा आरम्भ की गई है तथा दक्षिण भारत की सबसे बड़ी बहुमुखी योजना है। इस योजना क अनुसार तुङ्गभद्रा नदी पर ७,६४२ फीट लम्बा और १६२ फीट चौड़ा बाँध बनेगा, जहाँ से नहरे निकाली जायेंगी तथा बाँध के दोनों ओर जल विद्युत केंद्र होंगे। यह बाँध द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद आरम्भ होकर जुलाई सन् १६५३ मे पूरा हो गया तथा इसमें ३० लाख एकड़ फीट पानी की संग्रहण क्षमता है। इसके दोनों ओर से नहरे निकाली जायेंगी जो १ ३ लाख एकड भूमि की सिंचाई करेंगी। इस योजना में तीन विद्युत केन्द्र बनाए जायेंगे, जिनकी उत्पादन-क्षमता ६६,००० किलोवाट होगी। बाँध पर स्थित विद्युत-गृह मे ६,००० किलोवाट उत्पादन-क्षमता वाली दो बिजली उत्पादक इकाइयाँ आ गई हैं तथा तीनों विद्युत गृह सन् १६६७ तक पूर्ण होने की आशा है। इस योजना की कुल लागत ६० करोड़ रु० है।

(६) **रिहंड योजना**—यह पूर्वी उत्तर-प्रदेश की सबसे महत्वपूर्ण योजना है। यह बाँध मिरजापुर जिले मे पिपरी के पास रिहंड नदी पर बनाया जायगा, जिसकी ऊँचाई एवं लम्बाई क्रमशः २६४ १ एवं ३,०६५ फीट तथा पानी सग्रहण-क्षमता ८६ लाख एकड फीट होगी। इसी बाँध पर प्रारम्भिक अवस्था में २·५ लाख किलोवाट का विद्युत केन्द्र बनेगा, जिसकी अन्तिम विद्युत उत्पादन-क्षमता ३ लाख किलोवाट होगी। इस योजना से उत्तर-प्रदेश में १४ लाख एकड़ और बिहार में ५ लाख एकड़

भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इनकी अनुमानित लागत ४५·२६ करोड़ रु० है और
सन् १९६१-६२ में पूर्ण होने का अनुमान है।

इस योजना से सोन नदी की घाटी का अज्ञात प्रदेश गंगा से सम्बन्धित हो
जायगा तथा बड़े-बड़े जहाज हुगली से रिहंड तक चल सकेंगे तथा खनिज पदार्थों के
धनी प्रदेशों का औद्योगीकरण किया जा सकेगा। यह योजना पूर्वी रेलवे के कुछ
भागों को बिजली की पूर्ति करेगी, जिससे २०,००० डिब्बे कोयले की वार्षिक बचत
हो सकेगी।

(७) **चम्बल योजना**—चम्बल योजना की प्रथम सीढ़ी पर राजस्थान और
मध्य-प्रदेश शासन सयुक्त रूप से कार्य कर रहे है। इस योजना के अनुसार तीन बॉध
पर प्रत्येक पर एक विद्युत केन्द्र, कोटा के पास बराज (Barrage) एव इसके दोनों
ओर नहरे बनाई जावेगी। पहली सीढ़ी में गान्धीसागर बॉध बनेगा, जो झालाबाद
स्टेशन से लगभग ५ मील दूरी पर होगा। इसकी ऊँचाई, लम्बाई एवं पानी सग्रहण
शक्ति क्रमशः २१२ व १,६८० फीट एव ५७ ३ लाख एकड़ फीट होगी। गाँधी
सागर विद्युत केन्द्र पर २३,० ० किलोवाट वाली चार विद्युत उत्पादक इकाइयाँ
होंगी। "इस योजना का अनुमानित व्यय ४६ ४६ करोड़ रु० होगा तथा इसकी पूर्ति
पर यह राजस्थान की १४ लाख एकड़ और मध्य-प्रदेश की १२ लाख एकड़ भूमि को
सिचाई सुविधाएँ प्रदान करेगी। इसका आरम्भ जनवरी सन् १९५४ में हुआ तथा
प्रथम सीढ़ी जून सन् १९५९ में पूर्ण होने का अनुमान है।"

(८) **कोयना-योजना बम्बई**—उत्तरी सतारा जिले के देशमुखवाड़ी के पास
कोयना नदी पर २,२०० फीट लम्बा एवं २०७·५ फीट ऊँचा बाँध बनाया जायगा।
इसमें पानी संग्रहण, शक्ति ३६,०४५ मि० घन फीट होगी। इसी बाँध पर एक विद्युत
केन्द्र होगा, जिसमें ६०,००० किलोवाट उत्पादनक्षमता वाली ४ इकाइयाँ होंगी,
जिनमें से २·३ लाख किलोवाट बिजली का प्रदाय बम्बई एव पूना को तथा शेष
१०,००० किलोवाट बिजली महाराष्ट्र के अन्य भागों को दी जायगी। इस पर जनवरी
सन् १९५४ में कार्य आरम्भ किया गया और सन् १९६१ तक यह योजना पूरी हो
जायगी। इसकी अनुमानित लागत ३८·२८ करोड़ रु० है।

(९) **काकरपारा-योजना, बम्बई**—यह तापी नदी के विकास का पहला
स्वरूप है। तापी नदी पर काकरपारा के पास ४५ फीट ऊँचा और २,०३८ फीट लम्बा
बाँध बनाने का कार्य जून सन् १९५१ में आरम्भ होकर जून सन् १९५३ में पूरा हो

गया। इससे नहरें निकालने का कार्य जून सन् १६६० तक पूरा होगा, जिससे सूरत जिले की ५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इस बाँध के दाएँ बाएँ से दो नहरें निकाली जावेंगी। उनकी लम्बाई क्रमशः ३४० और ५२० मील होगी। इस योजना की लागत ११ ६५ करोड़ रु० होगी।

(१०) **मयूराक्षी-योजना**—यह पश्चिमी बंगाल की प्रमुखतः सिंचाई योजना है, यद्यपि इसमें ४,००० किलोवाट क्षमता का विद्युत-केन्द्र भी स्थापित होगा। इस योजना के अनुसार बीरभूमि जिले में मयूराक्षी नदी पर एक बाँध बनेगा, जिसकी लम्बाई २,१७० फीट और ऊँचाई १५५ फीट होगी। साथ ही, बाँध की निचली धारा से २० मील दूरी पर १,०१३ फीट लम्बा तिलपारा बराज बनेगा तथा इसके दोनों ओर से ७५ फीट लम्बी दो नहरें निकाली जावेंगी। इसी प्रकार बाँध से भी एक नहर निकाली जायगी। इस नहर पद्धति की कुल लम्बाई ८५० मील होगी, जिससे प० बंगाल की ७ २ लाख एकड़ और बिहार की ३५,००० एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। इस योजना की प्रथम सीढ़ी का कार्य सन् १६५१ में पूर्ण हो गया तथा तिलपारा बराज का जून सन् १६५५ में। साथ ही, २,००० किलो० विद्युत उत्पादक की एक इकाई दिसम्बर सन् १६५६ में एवं दूसरी फरवरी सन् १६५७ में आ गई है। इससे बीरभूमि, मुर्शिदाबाद और बिहार के सथाल परगना जिले में विद्युत का प्रदाय होगा। इस योजना की लागत १६ १ करोड़ रु० है।

(११) **नागार्जुनसागर-योजना (आंध्र)**—इस योजना के अनुसार आन्ध्र प्रदेश में नंदीकोडन ग्राम के पास कृष्णा नदी पर ३०२ फीट ऊँचा एवं ३,६०० फीट लम्बा बाँध बनेगा। इस बाँध की जल-ग्रहण शक्ति ६३ ० लाख एकड़ फीट होगी। इस बाँध के दोनों ओर से १३५ और १०८ फीट लम्बी नहरें निकाली जावेंगी, जिससे आन्ध्र प्रदेश की २०·६६ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होकर ८ लाख टन वार्षिक खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ेगा। इस योजना की लागत ८६·३३ करोड़ रु० है तथा सन् १६६३-६४ में पूर्ण हो जायगा।

(१२) **भद्रा-संघ योजना**—यह मैसूर सरकार की बहुमुखी योजना है, जिससे शिमोगा, चिकमंगलोर, चितलदुर्ग तथा बैलारी जिले की २·३४ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। साथ ही, ३३,२०० किलोवाट विद्युत-शक्ति का उत्पादन हो सकेगा। बाँध की ऊँचाई एवं लम्बाई १०६ एवं १,४०० फीट होगी, जिसमें ३६,०३५ मि० घन फीट पानी रह सकेगा। इसके दोनों ओर २१२ मील

लम्बाई की दो नहरें निकाली जावेंगी। इस योजना का कार्य सन् १९४७-४८ मे आरम्भ हुआ था तथा सन् १९६१ तक पूर्ण होने की आशा है। योजना की लागत २४·४२ करोड़ रु० है।

(१३) **मचकुण्ड योजना**—यह आंध्र और उड़ीसा राज्य की सयुक्त योजना है, जिससे इन प्रदेशों की सीमा पर मचकुण्ड नदी पर एक १७६ फीट ऊँचा और १,३४५ फीट लम्बा एक बाँध बनाया गया है। इसमे २७,२०० मि० घन फीट पानी संग्रहण-क्षमता है। इस बाँध पर जो विद्युत गृह बनाया गया है उसमे १७,००० किलोवाट वाली तीन बिजली उत्पादक इकाइयाँ है। २३,००० किलोवाट वाली तीन और इकाइयाँ बढ़ाई जावेंगी, जिससे इसकी विद्युत उत्पादन क्षमता १,२०,००० किलोवाट हो जायगी।

इन योजनाओं के अलावा निम्न योजनाएँ भी हैं :—

नाम योजना	लागत (करोड़ रु०)	सिचाई सुविधा (एकड़)	विद्युत शक्ति (किलोवाट)	पूर्णता
मलंपुभाह (केरल)	—	३५,०००	—	१९५५
अनीमुथार (मद्रास)	३·०५	—	—	—
पेरियर (त्रिवाकुर)	१०·४८	—	७,०५,०००	—
लोवर भवानी (मद्रास)	९·५१	२,०७,०००	—	१९५६
कगसाबती (प० बङ्गाल)	२५ ८९	९ ५ लाख	—	१९५७
कुदाह (मद्रास)	३३ ४४	—	१८,०००	—
गरावती विद्युत योजना (मैसूर)	२२·९९	—	१,७१,०००	१९६१
तवा (मध्य प्रदेश	१८·३४	५,८५,९७२	—	—

उक्त योजनाओं के अलावा अनेक छोटी-मोटी योजनाए देश मे कार्यान्वित हो रही हैं।

प्रथम योजना के आरम्भ में भारत की विद्युत उत्पादन शक्ति २३ लाख किलोवाट थी, जो योजना की समाप्ति पर ३४ लाख किलोवाट हो गई। दूसरी योजना के अन्त में यही ६९ लाख किलोवाट हो जायगी और तीसरी याजना की समाप्ति पर १·५ करोड़ किलोवाट होगी।

मध्य प्रदेश में बिजली

जहाँ तक खनिज स्रोतों का प्रश्न है, मध्य प्रदेश भारतीय गणतंत्र के सबसे अधिक सम्पन्न भागों मे से है परन्तु शक्ति के विकास के क्षेत्र में यह सबसे अधिक पिछड़े हुए क्षेत्रो मे से है। प्रकृति ने उसे आधारभूत और महत्वपूर्ण खनिजों से सम्पन्न किया है : उदाहरणार्थ लोहा, कोयला, बाक्साइट और मैगनीज आदि। कोयला यहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस प्रदेश के कोयला-कोष तीन क्षेत्रों मे हैं : (१) पेंच-कान्हन घाटी (नागपुर मे लगभग सौ मील उत्तर) (२) वर्धा क्षेत्र, (नागपुर से लगभग सौ मील दक्षिण) और (३) पूर्वी भाग मे चिलमिली-क्षेत्र। आजकल इन क्षेत्रों मे कोयला खोदा जा रहा है। नागपुर और कामटी के निकटवर्ती कोयला-क्षेत्रो में अभी खोदाई नहीं होती है। मध्य प्रदेश में निश्चित रूप से समुचित वर्षा होती है। इसलिए इसकी नदियाँ, नर्बदा, ताप्ती, महानदी, वर्धा, वैन गगा और इन्द्रावती मे शक्ति और सिंचाई की ध्येय योजनाओं को कार्यान्वित करने की अपार सुविधाएँ है।

परन्तु किसी भी विकास-योजना के कार्यान्वित करने के लिए सस्ती शक्ति की पहली आवश्यकता है। यहाँ की नदियों से बिजली पैदा करने से यह कमी अवश्य पूरी हो सकती है। परन्तु वह एक दीर्घकालीन प्रस्ताव है। अधिक बिजली उत्पादन करने के लिए अधिक धन भी चाहिए, और यह भी आवश्यक है कि पहले से ही अतिरिक्त शक्ति का उपयोग करने के लिए उसकी खपत के मार्ग बना लिए जायँ। पड़ताल करने पर यह मालूम हुआ है कि मध्य प्रदेश में सन् १६५५ में २ लाख ४० हजार कि० वा० बिजली की प्रत्याशित तथा १ लाख २६ हजार कि० वा० पक्की माँग होगी। १६६० में यह माँग ३ लाख ४६ हजार कि० वा० प्रत्याशित तथा १,६१,५०० पक्की होगी। बिजली की माँग करने वालों मे कपड़ा-मिलें, रुई धुनने और दबाने की मिले, तेल की मिलें, वनस्पति घी की मिलें, कागज की मिले, सीमेंट की मिले, न्यूज प्रिंट की मिले, मैंगनीज उत्खनन, कोयले की खाने, अल्यूमुनियम, इस्पात तथा अन्य उद्योग है।

परन्तु अभी तक इस प्रदेश में बिजली का विकास बहुत शिथिल रहा है। सन् १६०२ मे सरकारी बिजलीघर स्थापित किये गये थे। सन् १६३८-३६ में इनकी कुल सामर्थ्य केवल ११,०३० कि० वा० थी। युद्ध के कारण यह सामर्थ्य १६३९-४४

में बढ़ गई। वर्तमान सामर्थ्य लगभग २६,४८५ कि० वा० है। इसका अधिकाश नागपुर, जबलपुर और कटनी में केन्द्रीकृत है। पूरे प्रदेश को ले तो शक्ति की कमी अब भी बनी हुई है। व्यक्तिगत बिजलीघरों की कुल सामर्थ्य २६,४८४ कि० वा० है। इस प्रकार मध्य प्रदेश में कुल बिजली ५५,६६६ कि० वा० पैदा की जा सकती है। अब भी शक्ति की माँग और पूर्ति में बहुत बड़ा अन्तर है। अगर यह अन्तर बना रहा तो आर्थिक जीवन का ह्रास और औद्योगिक विकास में शिथिलता अवश्यम्भावी है।

इसलिए एक तात्कालिक उपाय के रूप मे सरकार ने थर्मल शक्ति योजनाओं को विकसित करने के विचार से प्रख्यात बिजली इजीनियर सर हेनरी होवर्ड को मद्रास से योजना बनाने के लिए बुलाया था। उनके प्रमुख सुझाव इस प्रकार थे :—(१) राज्य को पाँच क्षेत्रों में बाँट दिया जाय : नागपुर, चाँदा, अकोला, उत्तरी जबलपुर और रायपुर। (२) प्रत्येक क्षेत्र में उचित रूप से अवस्थित थर्मल स्टेशनों के आधार पर बिजलीघरों का निर्माण करना। (३) कालातर में प्रदेश का सीमा के बाहर की ट्रन्क-लाइनों से सम्बद्ध होना।

सिद्धान्त रूप मे इन सुझावों को स्वीकार करते हुए सरकार ने सन् १९४५ में नागपुर के निकट एक २० हजार कि० वा० सामर्थ्य का स्टेशन जिसे भविष्य में बढ़ाकर ६० हजार कि० वा० का किया जा सकता है, बनाने की घोषणा की।

इस विकास की प्राथमिक आवश्यकता के रूप मे सन् १९५२ में पूरी होने वाली एक पचवर्षीय योजना का पूरा होना आवश्यक था, जिसके अनुसार राज्य के समस्त महत्वपूर्ण स्थानों को बिजली पहुँच जाय, जिससे जल्दी से जल्दी बिजली की उपलब्धि काफी मात्रा और सस्ते दामों में निश्चित हो जाय। शक्ति के विकास के लिए मध्य प्रदेश तीन सम्बद्ध-विधानों (ग्रिड) में विभक्त है : दक्षिणी, उत्तरी और पूर्वी। अभी ये स्वतन्त्र हैं और प्रत्येक को केन्द्रीय थर्मल स्टेशनों से शक्ति मिलती है, परन्तु कालातर में ये प्रदेशीय ट्रङ्क लाइनों द्वारा जल-शक्ति के केन्द्रों तथा राज्य की सीमाओं पर की अन्य लाइनों से मिला दिये जायँगे। इन सभी योजनाओं पर काम हो रहा है और आशा है कि इनसे शीघ्र ही बिजली मिलने लगेगी। जिन स्थानों तक ये सम्बद्ध-विधान नहीं पहुँच पायेंगे वहाँ स्थानिक रूप से छोटे छोटे तेल से चलने वाले थर्मल स्टेशन बना लिए जायँगे जिन्हें कालांतर मे बड़े सम्बद्ध-विधानों से जोड़ दिया जायगा। उद्देश्य यह है कि १० हजार या उससे अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक नगर

को तथा कुछ बड़े-बड़े ग्रामो को यथासम्भव बिजली पहुँचा दी जाय। इसके अतिरिक्त सरकार ने कुछ चुने हुए क्षेत्रो में सघन ग्रामीण-विद्युतकरण करने की योजना भी बनाई है।

खापड़ खेड़ा का बिजलीघर दक्षिणी सम्बद्ध-विधान का भाग है। यह स्थान कान्हन नदी के दाहिने किनारे पर कामटी से लगभग ४ मील और नागपुर से १० मील दूरी पर स्थित है। यह उत्तर की ओर पेंच घाटी के कोयला क्षेत्र से रेलों द्वारा तथा दक्षिण की ओर वर्धा क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। इस स्थिति मे तथा इसके आस-पास कोयले का कोश काफी है, उन पर काम करना भी बहुत कठिन नहीं है, इसलिए वहाँ सस्ता कोयला पैदा हो सकेगा। नदी में पानी काफी है और इस बिजली-घर को काफी अधिक बढ़ाया जा सकता है। इसलिए खापड खेड़ा का बिजलीघर एक आधार के रूप मे काम करेगा। इस बिजलीघर के बनाने मे सरकार को आस-पास के उद्योगों के विकास का भी ध्यान है। इसीलिए उसने एक आयोजित नगर की भी व्यवस्था की है।

इस बिजलीघर की सामर्थ्य २० हजार कि० वा० है। आशा की जाती है कि शीघ्र यहाँ पर बिजली की माँग ४२,६०० कि० वा० हो जायगी। खापड़ खेड़ा के पूर्ण हो जाने पर १६ नगरो को पहली बार बिजली मिलेगी। १६ में से ११ बिजली-सप्लाई कम्पनियाँ बिजली उत्पादन बन्द करके केवल वितरकों के रूप मे रह जायँगी। ६ कपड़ा मिलों मे ४ जिन्हे १२ हजार कि० वा० और १ हजार हार्स पावर की आवश्यकता रहती है, बिजली के सम्बद्ध-विधान के अंतर्गत आ जायँगी। चारों कोयला क्षेत्रों के बिजलीघर जो ३२ हजार किलोवाट बिजली पैदा करते हैं, तथा नई प्रमुख खानें जिन्हे २ हजार किलोवाट की जरूरत होगी, लगभग समस्त (पेंच-कोयला-क्षेत्र और वर्धा-क्षेत्र) केन्द्रीय बिजलीघर से बिजली प्राप्त करेंगी।

आशा है कि खापड़ खेड़ा द्वारा प्रदेश मे बिजली की स्थिति सुधर जायगी। चाँदा-बल्लरशाह बिजली-क्षेत्र के बिजलीघर और चाँदनी के आयोजित बिजलीघरों के साथ जिनसे उसे सम्बद्ध कर दिया जायगा, खापड़-खेड़ा का बिजलीघर नागपुर और बरार, अर्थात् मध्य प्रदेश के दक्षिणी और पश्चिमी भागों को भी सस्ती बिजली पहुँचायेगा। खापड़ खेड़ा से चारों ओर बिजली के तार गये हैं; (१) उत्तर में पेंच घाटी तक, (२) पश्चिम में अकोला, पश्चिमी बरार और निमाड़ तक (चाँदनी के बिजलीघर के साथ), (३) दक्षिण मे वर्धा से शाखा फोड़ कर बल्लरशाह तक

और (४) पूर्व में मैगनीज की पेटी तक जो कि कालातर मे बालाघाट-बैहर पठार तथा भंडारा जिले तक फैल जायगी। उत्खनन तथा कपड़ा-उद्योग तथा बिजली कम्पनियों ने पहले से ही इसका लाभ उठाना आरम्भ कर दिया है। ये सरकारी बिजली सम्बद्ध-विधानों से बिजली लेने के ठेके कर रही हैं। वास्तव मे खापड़ खेड़ा की कुल सामर्थ्य पहले से ही बिक चुकी है।

जिन नगरों को प्रथम बार बिजली मिलेगी वे निम्नलिखित हैं: रामटेक, तुमसार, भंडारा, कामटी-कान्हन, बारोरा, बुन, बल्लरपुर, पुलगाँव, धामनगाँव, बदनेरा, मुर्तिजापुर, अचलपुर, साओनेर, खापा, सौसर और जमाई परसिया। साओनेर-काटोल-वारूड क्षेत्र के ग्रामीण-क्षेत्र में तत्काल ही बिजली पहुँचाने पर विचार हो रहा है।
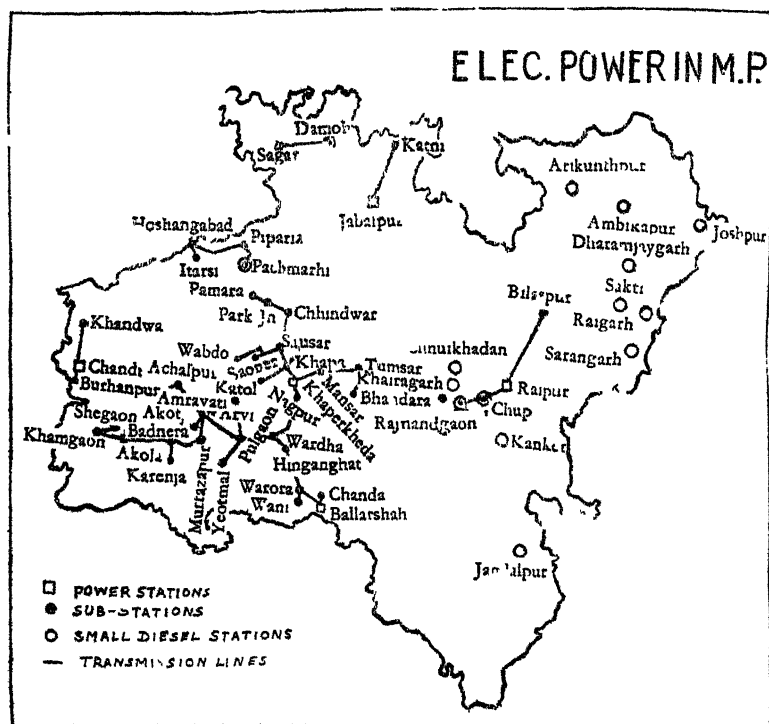
चित्र ५७—मध्य प्रदेश में बिजली

सरकार के सम्बद्ध-विधानों द्वारा धीरे-धीरे प्रत्येक वितरण-स्थानों के चारों ओर बीस मील तक ग्रामों को एक-एक करके बिजली प्रदान करने की योजना है।

जल-शक्ति का भविष्य में विकास :

निम्नांकित सारिणी श्री० ए० एन० खोसला की अध्यक्षता में निर्मित सेन्ट्रल-वाटर-पावर-इर्रिगेशन कमीशन (सिंचाई कमीशन) द्वारा सकलित है। इसके द्वारा हमें एक ओर अपने स्रोतों का पता चलता है और दूसरी ओर उनके अविकसित होने का। इससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान काल मे हम कुल नदियों के बहाव के केवल ५·६% का उपयोग करते हैं। इसकी मिस्र की नील नदी के ४०% से तुलना की जा सकती है।

भारत की जल-पूँजी

	बहाव का क्षेत्र हजार वर्ग मीलों में	सामान्य वर्षा इंचों में	औसत तापमान फा०	ह्रास इंचों मे	बहाव इंचों में	बहाव (लाख एकड़-फीट) वार्षिक	सिंचाई के लिए प्रयुक्त (लाख एकड़ फीट)
१. अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ (सिंधु के अतिरिक्त)	१६०	४८	७८	२३	२५	२५१०	११०
२. भारत में सिन्धु क्षेत्र	१३६	२२	५५	१३	६	६४०	११०
३. बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ (गंगा और ब्रह्मपुत्र के अतिरिक्त)	४६७	४२	७६	२६	१३	३३४०	२३०
४. गगा	३७७	४८	६२	२४	२०	३६७०	२६०
५. ब्रह्मपुत्र	१६५	४४	४७	१८	३०	३०६०	३०
६. राजस्थान	६५	११	७६	११			
	१४३०					१३५६०	७४०

१९५३ में देश के बिजली तैयार करने के साधनों और उनसे कम से कम खर्च में बिजली तैयार करने के बारे में केन्द्रीय जल-विद्युत् आयोग ने जाँच करायी। इस जाँच-पड़ताल के अनुसार देश में ४ करोड़ किलोवाट बिजली तैयार की जा सकती है। यह उत्पादन देश के विभिन्न भागों में फैली नदियों के जल से इस प्रकार प्राप्त किया

जा सकता है : (१) पश्चिमी घाट की पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ—३७ लाख किलोवाट की २६ योजनाएँ; (२) दक्षिण भारत की पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ—६८ लाख किलोवाट की ३७ योजनाएँ; (३) मध्य भारत की नदियाँ—१२६.८० लाख किलोवाट की ५१ योजनायें; (४) गगा और उसकी सहायक नदियाँ—१३२ ७० लाख किलोवाट की ५१ योजनाएँ।

योजनाओं के अंतर्गत

प्रथम योजना के समय भारत मे बिजली उत्पादन क्षमता २३ लाख किलोवाट थी। यह क्षमता योजना के अन्त तक ११ लाख किलोवाट और बढ़ गई। इसी बीच बिजली का उत्पादन ६५६ करोड़ यूनिट से बढ़ कर ११०० करोड़ यूनिट हो गया अर्थात् यह वृद्धि ६७% की हो गई। इसके अतिरिक्त २ लाख किलोवाट के बिजली घर पूर्ण हो चुके हैं और लगभग १६००० मील लम्बी बिजली की लाइन डाली जा चुकी है तथा ७४०० नगरों और गाँवों को बिजली दी जा चुकी है। बिजली की प्रति व्यक्ति खपत १४ यूनिट से बढ़ कर २५ यूनिट हो गई। प्रथम योजनाकाल में निम्न विद्युत योजनाएँ समाप्त हुई :—

नागल	४८,०००	किलोवाट	मच्छकुंड	३४,०००	किलोवाट
बुकारो	१५०,०००	,,	पाथरी	१३,६००	,,
चोला	५४,०००	,,	सारदा	२७,६००	,,
खापरखेड़ा	३०,०००	,,	सेंगुलम	४८,३००	,,
मोयार	३६,०००	,,	जोग	७२,०००	,,

मद्रास सिटी प्लाट एक्सटैंशन—३०,००० किलोवाट

द्वितीय पचवर्षीय योजना में बिजली की उत्पादन क्षमता ३५ से बढ़ा कर ६६ लाख किलोवाट कर देने की योजना रखी गई है। इसमें से २६ लाख किलोवाट सरकार बिजलीघरों से तथा ५ लाख किलोवाट निजी बिजलीघरों से प्राप्त की जायेगी। कुल मिला कर ४४ योजनाओं पर कार्य किया जायगा जिनमें से कुछ नये और कुछ पुराने बिजलीघरों के विस्तारों की है। इनमें से २३ पानी की और १६ भाप से बिजली बनाने की योजनाएँ हैं। व्यय की दृष्टि से १२ योजनाएँ १०-१० करोड़ रुपये से अधिक लागत की; ४ योजनाएँ ५ से १० करोड़ रुपये के बीच की लागत की, १८ योजनाएँ १ से ५ करोड़ रुपये तक की और १२ योजनाएँ १-१ करोड़ रुपये से कम लागत की होगी। इस अवधि में बिजली का प्रति व्यक्ति उपभोग २५ यूनिट से बढ़कर

५० यूनिट होने का अनुमान है। द्वितीय योजना काल में १२,६३० गाँवों को बिजली दी जायेगी। इनमें से ३१ जुलाई १९५८ तक ५७३७ गाँवों को बिजली मिल चुकी है।

प्रश्न

१. आपकी राय में भारतीय पूँजी की औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए ईंधन कहाँ तक पर्याप्त हैं?

२ भारत में कितना कोयला है? भारत में प्रमुख कोयला-भण्डार कहाँ पाये जाते हैं? क्यों?

३ भारत में कोयला उद्योग के लिए कौन-कौन भौगोलिक तथा आर्थिक बाधाएँ हैं? उनको दूर करने के उपाय बताइए।

४ भारत में पेट्रोलियम का विस्तार कहाँ तक है?

५. भारत में कहाँ पर सब से अधिक जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है? वहाँ कौन-कौन परिस्थितियाँ उसके अनुकूल पड़ती हैं?

६ किन कारणों से आप भारत के घरों में साफ़्ट कोक के अधिकाधिक उपयोग की प्रशंसा करेंगे?

७ पंजाब का विशेष उल्लेख करते हुए भारत में जल-शक्ति के उपयोग का वर्णन मीमांसा सहित कीजिए।

८ भारत में जल-विद्युत के उपयोग के भौगोलिक कारणों का वर्णन कीजिए।

अध्याय ८

औद्योगिक धातुएँ

(Industrial Ores)

आधुनिक ससार के आर्थिक जीवन में औद्योगिक कच्ची धातुओं का महत्व आधारभूत है। वैसे तो इनके अनेक उपयोग हो सकते हैं, परन्तु इनका सर्वप्रधान उपयोग मशीन बनाने मे होता है जिसके बिना आज की दुनियाँ का काम ही नहीं चल सकता। कच्ची धातुएँ ससार की प्राचीनतम चट्टानों में मिलती हैं। भारत में 'धारवाड़' नामक चट्टाने इस प्रकार की चट्टानों में प्रमुख हैं। ये कदाचित् आर्कियन चट्टानों के बराबर ही पुरानी हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि धरती के सबसे पहले पपड़े के सूखने और दृढ़ होने पर बनी थी। भारत में धारवाड़ चट्टानों में यहाँ के प्रमुख कच्ची धातु के भण्डार हैं। ये चट्टाने अधिकतर प्रायद्वीपीय भारत में पाई जाती हैं।

नीचे की तालिका में भारत में निकाले जाने वाले मुख्य खनिज पदार्थों का उत्पादन बताया गया है :—

	इकाई	१९५७	
		मात्रा	मूल्य (००० रुपये में)
धातु-खनिज			
क्रोमाइट	टन	७८,५४२	२,६२०
लोह अयस	००० टन	५,०७४	४३,४३४
मैंगनीज अयस	००० टन	१,६०२	१४०,५४६
बाक्साइट	टन	६६,७५०	६१५
तांबा अयस	००० टन	४०४	२६,५३४
सोना	००० औंस	१७९	५१,०६६
इल्मैनाइट	००० टन	२६६	१६,८१२
शीशा	टन	४,८५०	१,२१०
चांदी	००० औंस	७,४६६	२,५३२
जस्ता	टन		
एस्बस्टस	टन	६,१७८	१६०

धातु-खनिज	इकाई	१९५७ मात्रा	मूल्य (००० रुपये में)
कैल्साइट	टन	४,६६८	४८
बैराइट्स	टन	१२,६१३	२६७
चीनी मिट्टी	००० टन	१८१	२,२८१
हीरा	कैरेट	७६०	१६८
पन्ना	००० कैरेट	३३८	२५
अग्नि मिट्टी	००० टन	१६४	१,२६४
वूलफ्रोम	हडरवेट	२६	६
जिप्सम	००० टन	६२२	५,७६३
कायनाइट	टन	२३,५००	५,४६८
मैग्नेसाइट	टन	८८,८८५	१,७६५
अभ्रक	००० हडरवेट	६०६	२३,१५४
घीया पत्थर	टन	४३,६७६	१,८६०
डोलोमाइट	टन	१४०,६६१	२,०१४
चूने का पत्थर	००० टन	६,४२०	३६,७१३
कुल खनिजो का योग	—	—	१,२७२,६१३

लोहा (Iron Ore)

केवल बिहार, उड़ीसा और मैसूर मे ही कच्चा लोहा खानों द्वारा विशाल मात्राओ में निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त विशेषतः मध्य प्रदेश और हैदराबाद मे कुछ स्थानिक कार्यों के लिए थाड़ा-बहुत लोहा निकाला जाता है। भारत की सर्व-प्रधान कच्चे लोहे की खाने कलकत्त से लगभग १५० से २०० मील पश्चिम मे बिहार-उड़ीसा में स्थित है। इन खानों मे विशाल मात्रा में अच्छा कच्चा लोहा है। सिहभूमि जिले के कोल्हन नामक रियासत क्षेत्र मे तथा क्योंझर-बोनाई और मयूरभञ्ज में कोयला-कोष हैं। इस क्षेत्र को भारत का 'लौह-कटिबंध' (Iron belt) कहते हैं। इस क्षेत्र में बहुत विशाल मात्रा मे अत्यन्त उत्कृष्ट कच्चा लोहा है जो कि निस्सन्देह किसी दिन ससार में विशालतम और उत्कृष्टतम सिद्ध होगा। कच्चा लोहा अधिकतर पहाड़ियों की चोटियों पर या चोटियों के पास मिलता है। किन्तु सिंहभूमि जिले के दक्षिण में जमदा के पास और क्योंझर के कुछ भागों में निचले ढालों पर और कभी-कभी तो मैदानों पर ही अच्छा लोहा पाया जाता है।

कच्चे लोहे से सम्पन्न पहाड़ियों की इन श्रेणियों मे जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है वह बोनइ मे कोम्पिलाइ से गुआ की ओर तीस मील तक चली जाती है। इसी के समानान्तर (कदाचित् इसी पहाड़ी के टूटे भाग) और भी श्रेणियाँ हैं जिनमें उत्तम कच्चा लोहा मिलता है। मुख्य श्रेणी मैदान से १,५०० फीट ऊँची है और इसमे कच्चे लोहे का औसत ६०% है जो इसकी पूरी लम्बाई भर मे पाया जाता है। इन
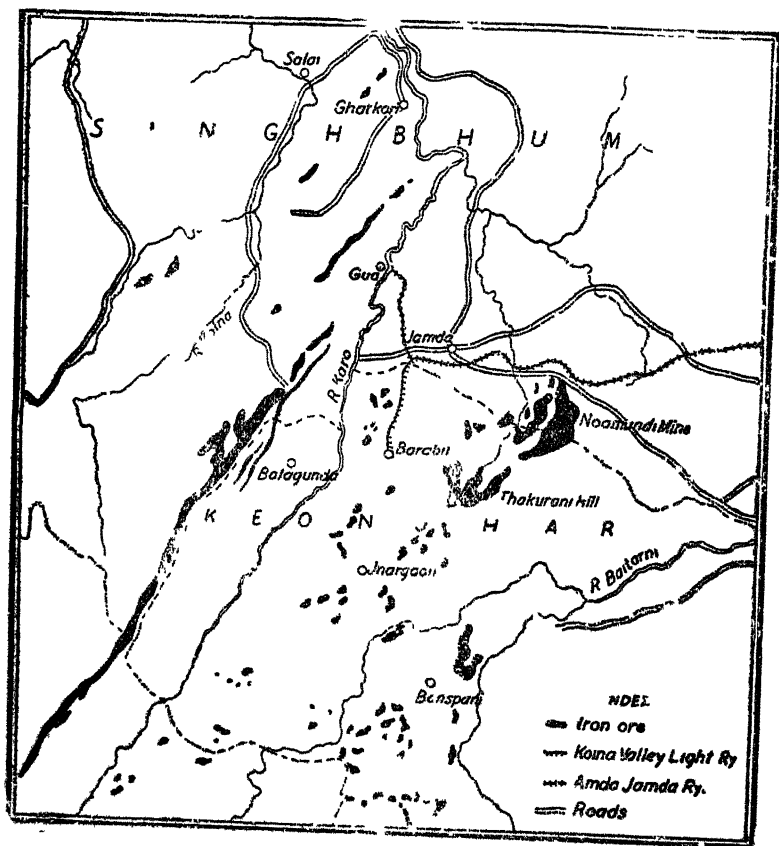
चित्र ५८—भारत में कच्चे लोहे का क्षेत्र

पहाड़ियो के पूर्व और पश्चिम मे और भी बहुत से स्थल अनियमित रूप से मिलते हैं जहाँ पहाड़ियो की चोटियो पर कच्चा लोहा पाया जाता है।

लगभग सारा लोहा हेमेटाइट है। मैग्नेटाइट लोहे का एक भी उदाहरण यहाँ नही मिलता। कच्चे लोहे के भण्डार की न्यूनतम मात्राएँ जिनमे औसतन ६०% से लोहा कम नहीं है उनका अनुमान इस प्रकार है :—

सिंहभूमि जिला	१०,४७० लाख टन
क्योंझर	६,८८० ” ”
बोनइ	६,४८० ” ”
मयूरभंज	१८० ” ”

सिंहभूमि जिले मे कोल्हन के पास कच्चा लोहा निकाला जाता है। वहाँ के महत्वपूर्ण स्थान निम्नलिखित है : पंसीरा बुरू, बड़ा बुरू और नोआमंडी। मयूरभज में महत्वपूर्ण स्थान निम्नलिखित हैं : गुरुमहिषानी, सुलेपत और बादामपहाड़।

बगाल आइरन कम्पनी लिमिटेड (कारखाना कुलटी मे), इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड (कारखाना बर्नपुर में) और टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड (कारखाना जमशेदपुर मे) भारतीय कच्चे लोहे के सर्व प्रमुख उपभोक्ता हैं। इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड कोल्हन स्थित गुआ से कच्चा लोहा लेती है। रेलवे की एक शाखा इन खानों का सारा लोहा ढोती है।

टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी के पास भी कोल्हन और क्योंझर में बहुत सम्पन्न खाने हैं। परन्तु सन् १६२६ मे कोल्हन के नोआमंडी खान खुलने के पहले टाटा को सारा कच्चा लोहा मयूरभज से मँगाना पड़ता था, क्योंकि मयूरभज उसके कारखाने से निकटतम था और वहाँ तक रेलवे की एक ५६ मील लम्बी शाखा भी जाती थी। मयूरभज में तीन क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं :—

(१) गुर-महिषानी
(२) ओकम्पाद (सुलेपत) और
(३) बादामपहाड़।

(१) गुरुमहिषानी पहाड़ी समूह, अपनी प्रमुख चोटियों और बहु-संख्यक ढालों तथा उभारों समेत मयूरभज के उत्तरी भाग में विशेष महत्व की हैं। उत्तरी भाग में निचले ढालों पर से लगभग ४ सौ फीट की ऊँचाई तक का लगभग सारा कच्चा लोहा

निकाल लिया है। परन्तु प्रमुख चोटी के दक्षिणी भाग में अभी तक खोदाई नहीं हुई है। गुरुमहिषानी के कच्चे लोहे मे औसतन ६३% लोहे का अंश रहता है।

(२) ओकम्पाद (सुलेपत) के कच्चे लोहे का कोष खोरकाई नदी के ठीक पश्चिम की ओर स्थित है। सुलाईपट का कच्चा लोहा गुरुमहिषानी के कच्चे लोहे से अधिक अच्छा है, उसमें लगभग ६७% धातु का अश है। कच्ची धातु का मुख्य क्षेत्र पहाड़ी की चोटी पर है।

(३) बादाम पहाड़ का कच्चे लोहे का भण्डार न तो सुलेपात और न गुरुमहिषानी के समान विशाल है, और न वहाँ का लोहा इतना अच्छा है। परन्तु यह अपेक्षाकृत अधिक छिद्रमय है और इसीलिए धातु अंश में न्यूनतर होते हुए भी (५६% से ५८% तक) बहुमूल्य माना जाता है।

टाटा कम्पनी की नोआमंडी की लोहे की खान कोल्हन में है। यहाँ कच्चा लोहा
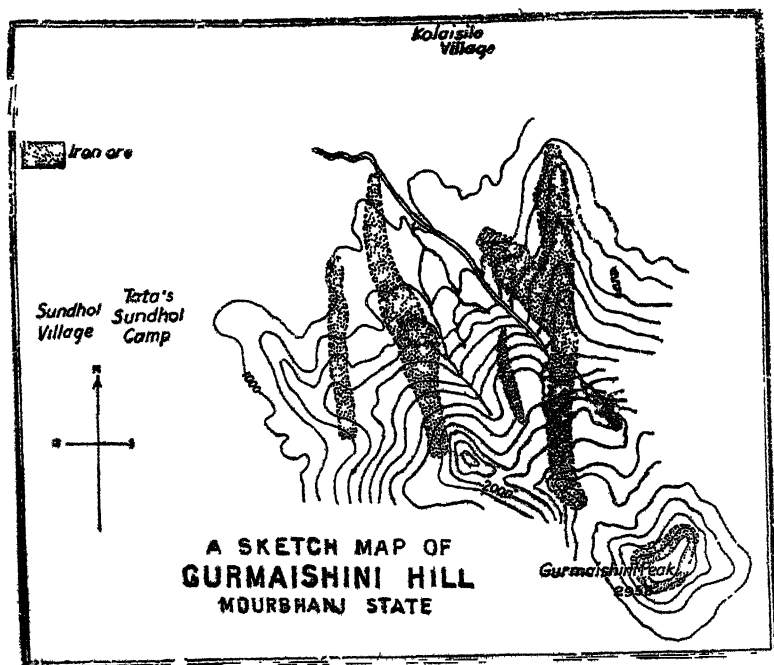
चित्र ५६—गुरुमहिषानी क्षेत्र

हेमेटाइट (लाल, भूरा या काला कच्चा लोहा) की मोटी तहों मे मिलता है जिनमें लोहे का अश औसतन ६०% होता है। यहाँ कच्चा लोहा दो प्रमुख समानान्तर पहाड़ियों पर पाया जाता है, जो कि रेल के धरातल से अधिक से अधिक १ हजार फीट ऊँची हैं। यहाँ धरातल पर मिलने वाला कच्चा लोहा या तो कड़ा और भारी है अथवा पतली तह वाला है। लगभग सौ फीट की गहराई पर लोहे का चूरा मिलता है। कहीं-कहीं तो लोहे का चूरा थोड़ी ही गहराई पर मिलता है।

अब इण्डियन आइरन कम्पनी भी अपने लिए कोल्हन से ही कोयला मँगाती है। इसका प्रमुख कोष रेलवे के मनहरपुर स्टेशन के निकट स्थित पंसीरा बुड्ढ और बुढ़ा बुड्ढ हैं। पंसीरा बूड्ढ के कच्चे लोहे की कुल मात्रा अनुमानतः १ करोड़ टन, अर्थात् गुरुमहिषानी से अधिक है। बूढ़ा बुड्ढ का अनुमान इन सबसे अधिक, अर्थात् यहाँ धरातल लगभग १५ करोड़ टन है। यह कच्चा लोहा सामान्यतः उच्चकोटि का हेमेटाइट है और इसमे औसत लोहे का अश लगभग ६४ प्रतिशत है।

मैसूर मे बाबा बूदन पहाड़ी का हेमेटाइट कच्चा लोहा प्रचुर मात्रा में एवं अच्छी कोटि का है, परन्तु यहाँ की धातु मे लोहे का अश तथा फास्फोरस का अंश भिन्न-भिन्न मिलता है। मैसूर के भद्रावती आइरन वर्क्स के लिए कच्चा लोहा केमनगुंडी से आता है जो कि भद्रावती से २६ मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ के उच्चकोटि के कच्चे लोहे का औसत लोहा अश ६४% है परन्तु मध्यम तथा निकृष्ट कोटि के कच्चे लोहे में ५३ से ५८ प्रतिशत तक लोहे का अंश मिलता है। ये कोश ढाई करोड़ टन से लेकर ६ करोड़ टन तक अनुमाने जाते हैं।

मध्य प्रदेश तथा मद्रास में अच्छा कच्चा लोहा मिलता है; परन्तु कोयला दूर होने के कारण उसका केवल नगण्य अंश ही निकाला जाता है। मध्य प्रदेश के द्रुग जिले में कच्चे लोहे के समूह मैदानों में स्पष्ट रूप से टीलों के रूप में उभरे हुए दिखाई पड़ते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह पहाड़ी है जिसमें ढाली और राजहारा की पहाड़ियाँ हैं। यह पहाड़ी लगभग २० मील तक टेढ़ी-मेढ़ी फैली हुई है, तथा इसकी ऊँचाई चारों ओर के चपटे मैदान से ४ सौ फीट है। वहाँ कहीं-कहीं अपेक्षाकृत शुद्ध हेमेटाइट की मोटी-मोटी तहें मिलती हैं। ऐसे स्थानों में राजहारा की पहाड़ी भी है। यहाँ अनुमानतः ७५ लाख टन कच्चा लोहा है जिसका लोहा-अंश लगभग ६७½ प्रतिशत है। यह अनुमानित मात्रा केवल उसी कच्चे लोहे के लिए है जो धरातल पर दिखाई पड़ता है।
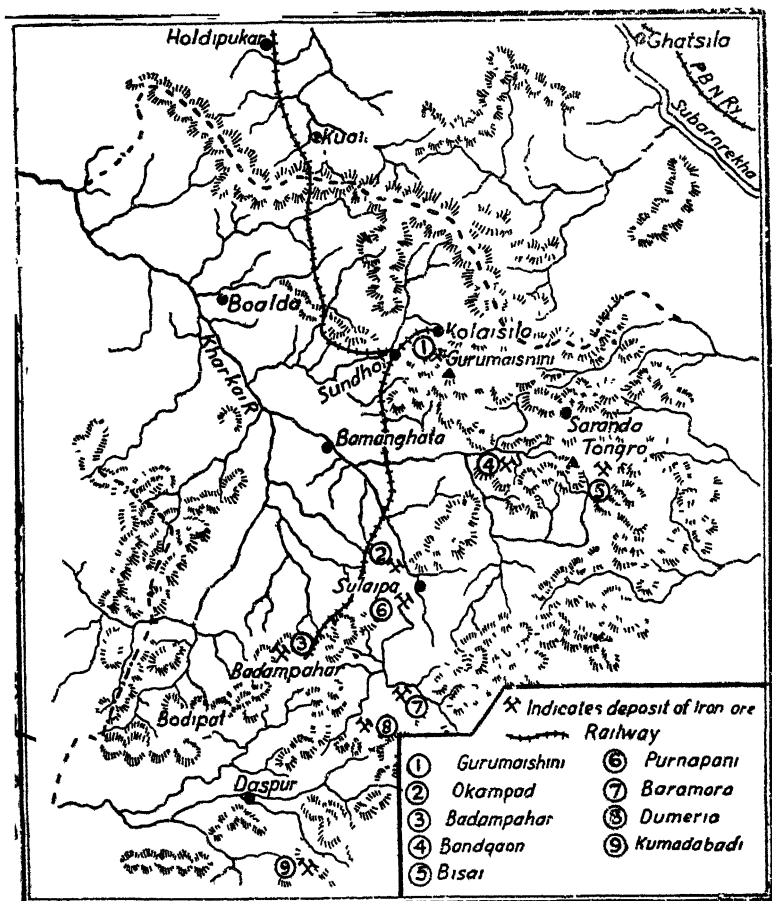
चित्र ६०—लोहे की प्रमुख खानें

जिन गहराइयों की अभी तक जाँच नहीं की गई है, सम्भव है उनमें और भी अधिक हो।

मध्य प्रदेश के चाँदा जिले में कच्चा लोहा एक पहाड़ी के रूप में है जो कि ३/८ मील लम्बी, ६ सौ फीट चौड़ी और १२० फीट ऊँची है। यह लोहारा पहाड़ी

के नाम से प्रसिद्ध है। लोहारा के औसत कच्चे लोहे में ६१ से ६७ प्रतिशत तक लोहा होता है।

मद्रास के सलेम और निल्लोर जिलों में पाया जाने वाला कच्चा लोहा या उड़ीसा या मध्य प्रदेश के कच्चे लाहे से भिन्न है। यहाँ का कच्चा लोहा मैग्नेटाइट (चुम्बकी) है। यह प्रमुख रूप से (१) गोडामलाई, (२) थालामलाई-कोलीमलाई, (३) सिंगापति, (४) थिरतामलाई और (५) कंजामलाई में मिलता है। यहाँ के कच्चे लोहे की कुल मात्रा तो जैसे अनन्त ही है।* परन्तु ईंधन की कमी के कारण इस लोहे की खोदाई नहीं होती है। यहाँ सलेम में ३० करोड़ टन, कर्नूल में ३० लाख टन और सैण्डूर में १३ करोड़ टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं।

कुछ समय पूर्व आंध्र प्रदेश और भूतपूर्व पेप्सू राज्य में लोहे के विशाल भण्डार मिले हैं। आंध्र का भडार गतूर और नैलोर जिलों में है। अनुमान है कि यहाँ ३८ करोड़ ८० लाख टन लौह खनिज हैं। यह लोहा कई सदियों तक निकाला जा सकेगा। इन भडारों मे लगभग २२ करोड़ ६० लाख टन ऐसी चट्टानें हैं जिनमें ३३ से ३७% तक लोहा है। शेष में लगभग २५% लोहे का अंश है।

भूगर्भ विभाग ने भूतपूर्व पेप्सू राज्य के मुहेन्द्रगढ़ में लोहे खनिज की २½ मील लंबी एक पट्टी का पता लगाया है। अनुमान है कि यहाँ २० लाख टन से अधिक लौह खनिज होगा। यह पट्टी छुपरा, आतरी और बिहारीपुर क्षेत्रों में उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई एक पहाड़ी के बीच में है। यहाँ का लौह खनिज इस्पात बनाने के योग्य तो है पर मात्रा प्रचुर नहीं है। राजस्थान के धनौरा-धनचौली आदि समीपवर्ती क्षेत्र में इसी गुण का लौह खनिज है।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में लौह का उत्पादन बताया गया है:—

उत्पादन (टनों में) तथा मूल्य (००० रु० में)

	१९५५	
राज्य	मात्रा	मूल्य
बिहार	१,६१६,६७४	१,२६,८८
उड़ीसा	१,८८८,११७	१,२३,२७

* कच्चे लोहे पर पत्रक : इम्पीरियल मिनरल रिसोर्सेज ब्यूरो।

	१९५५	
राज्य	मात्रा	मूल्य
मैसूर	३६३,५२४	२६,३१
आंध्र	३६१,७४०	२६,७२
राजस्थान	४५,२८८	३,१०
बम्बई	३५,०००	३,६७
पंजाब	२४,२८३	१,०८
मध्य प्रदेश	२१,०१४	४५६
योग	४,६५२,६४०	३,२४,५५

१९५७ में ५०,६४,००० टन लोहे का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य ४३,४३४ हजार रुपया था। १९५६ मे यह उत्पादन ४,८६८,००० टन और मूल्य ३६,८६३ हजार रुपया था।

अच्छी किस्म के लोहे के भंडार बिहार, उड़ीसा, मद्रास, मध्य प्रदेश, आंध्र और मैसूर में है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

बिहार-उड़ीसा	८०० करोड़ टन
मध्य प्रदेश	७०० ,,
मैसूर	२५० ,,
मद्रास	१०० ,,
बम्बई	३० ,,
आंध्र	५ ,,
अन्य राज्य	२१० ,,
योग	२,१०० करोड़ टन

इस अनुमानित राशि में से ६४० करोड़ टन के भंडार प्रमाणित हैं। लगभग सम्पूर्ण भारत की लौह-खनिज में लोहे का अंश ६२%। मैसूर के कुछ भंडारों में यह ५५%। सब श्रेणियों की खनिज में कुल लोहे का अंश १२०० करोड़ टन पाया जाता है।

लोहे की धातु के उत्पादन लगभग ३/४ देश में ढला लोहा बनाने तथा इस्पात बनाने में काम आ जाता है और शेष का देशों को निर्यात कर देते हैं :—

लोहे का निर्यात

१९५०-५१	८५,००० टन	२२ लाख रु०
१९५४-५५	१,००९,००० ,,	४२१ ,,
१९५६-५७	१,६८२,००० ,,	१,०३० ,,
१९५७-५८	२,२१६,००० ,,	१,१८६ ,,

कच्चे लोहे का निर्यात अधिकतर जापान, संयुक्त राज्य और इंग्लैण्ड को दिया जाता है।

मैंगनीज (Manganese)

मैगनीज प्रायद्वीप भर में जहाँ-तहाँ मिलता है। मैंगनीज के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में रूस के ही बाद है। हमारा कच्चा मैंगनीज जिसमें औसतन ५०% से अधिक मैगनीज का अंश है, रूसी कच्चा मैगनीज से अधिक सम्पन्न है क्योंकि उसका मैंगनीज अंश केवल ४५% है। मैंगनीज उत्खनन का विकास इस्पात के उत्पादन से सम्बद्ध है, क्योंकि उसी उद्योग में मैंगनीज का प्रमुख रूप से उपभोग होता है। भारत कोई बड़ा इस्पात-उत्पादक नहीं है, इसलिए भारत के मैंगनीज उत्खनन को यूरोप या अमेरिका के इस्पात उत्पादकों के सहारे रहना पड़ता है। १६२६ से १६३३ तक २७ लाख ६० हजार टन मैगनीज निकाला गया था, जिसमें से २७ लाख २० हजार टन का निर्यात हुआ था। १६४८ में केवल ५ लाख टन का उत्पादन हुआ। १६५७ में १६ लाख टन मैंगनीज निकाला गया जिसका मूल्य १४ करोड़ रुपया था।

मैगनीज उत्पादन १६५५

	मात्रा	मूल्य
मध्य प्रदेश	६६५,४४० टन	८०२ लाख रु०
उड़ीसा	४०१,२६५ टन	४६६ ,,
आंध्र	११२,३३८ टन	१३० ,,
बम्बई	१६२,३४७ टन	२२३ ,,
बिहार	४६,४६५ टन	८ ,,
मैसूर	१२२,८३६ टन	१४२ ,,
राजस्थान	२,५७५ टन	३ ,,
पूर्ण भारत	१,५८३,५३८ टन	१८,३२ ,,

मैंगनीज के भण्डार दक्षिणी पठार के विभिन्न भागों में हैं। उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं:—

(१) मध्य प्रदेश में—सिओनी, बालाघाट, जबलपुर, झाबुआ, और छिन्द-वाड़ा जिले।

(२) बम्बई राज्य में—पच महल, छोटा उदयपुर, उत्तरी कनारा, रत्नागिरि नागपुर, भंडारा।

(३) मैसूर में—चीतलद्रुग, कडूर, शिमोगा, तुमकुर, बलारी और बेलगाम।

(४) मद्रास मे—सन्तूर

(५) आंध्र में विशाखापट्टनम

(६) उड़ीसा मे—गगपुर और केवनझर।

(७) बिहार मे—सिहभूमि।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त कच्चा मैगनीज अवशिष्ट चट्टानों मे मिला हुआ भी मिलता है। भारत में मैगनीज खनिज प्रचुर मात्रा में पाई जाती है तथा भारत के भडार विश्व महत्व के हैं। यहाँ मैगनीज के कुल भडार का अनुमान ११२० लाख टन लगाया गया है जिसमे से १००० लाख टन मध्य प्रदेश मे, २५ लाख टन मद्रास मैसूर मे और १ लाख टन उड़ीसा मे और ५० लाख टन बम्बई मे है। कुल सचित भडार में से लगभग ६०० लाख टन उच्च श्रेणी की धातु है।

कच्चा लोहा और कच्चा मैगनीज एक ही प्रकार के होते हैं। किसी चट्टान में मैंगनीज का अनुपात बहुत अधिक होता है। ऐसी चट्टान को मैगनीज कहते हैं। किसी चट्टान में मैगनीज कम होती है, ऐसी चट्टान को मैगनीजमिश्रित कच्चा लोहा (मैंगनीफेरस चट्टान) कहते हैं। जिस चट्टान में ४० प्रतिशत से कम मैगनीज का अश हो उसको मैंगनीज मिश्रित लोहा कहते हैं। जिस चट्टान मे इससे अधिक मैगनीज होता है उसको मैंगनीज कहते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका में यह सीमा केवल ३५ प्रतिशत पर है। जिन कच्ची धातुओं में मैंगनीज अंश ५% से कम होता है, उन्हें कच्चा लोहा कहते हैं। नित्य नये-नये उत्पादकों के अविर्भाव के कारण विश्व-उत्पादन मे भारत का अनुपात समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है। निम्नलिखित सारिणी मे विश्व-उत्पादन में भारत के अनुपात को दिखलाया गया है

में इस अभ्रक को 'बंगाली अभ्रक' कहते हैं। मद्रास के निल्लौर जिले की अभ्रक की खानें मद्रास के तटीय मैदान के पूर्वीय अर्धांश ६० मील लम्बे और ८ से १० मील तक चौड़े प्रदेश मे फैली हुई हैं। मद्रासी अभ्रक हरे रग की होती है।

कार्य योग्य खाने उड़ीसा मे गजाम, कोरापुर, कटक, सम्बलपुर मे; राजस्थान में राजनगर, भीड़वाड़ा, टौंक, शाहपुरा, अजमेर और जैपुर जिले में तथा केरल मे पुनलूर और नम्यूर मे भी मिलती है।

अभ्रक का प्रमुक उपयोग बिजली के कामों में इसुलेटर के रूप मे हैं। पहले केवल अभ्रक के बड़े-बड़े ढेले ही उपयोग में आते थे, परन्तु अब छोटे ढेले भी उपयोगी हो गये है। इसका कारण है माइकानाइट उद्योग का विकास। अभ्रक (माइका) के छोटे-छोटे चूरों से स्प्रिट में घुली हुई लाख के सहारे जोड़ कर बड़े-बड़े तख्ते तैयार किये जाते हैं। इन तख्तों को 'माइकानाइट' कहते है। माइकानाइट की चादरें किसी भी आकार और मोटाई की बन सकती है। भाप से गर्म करके, दबा कर घुमाने से वे किसी भी वाञ्छित आकार मे ढाली जा सकती हैं। माइकानाइट बनाने में जिस अभ्रक और लाख की आवश्यकता होती है भारत का उस पर प्रायः एकाधिकार है। फिर भी औद्योगिक (विशेषकर बिजली के उद्योग का) विकास न होने के कारण भारत मे माइकानाइट का उत्पादन नही होता।

१९५६ में अभ्रक का उत्पादन ५६१,००० हंडरवेट था जिसका मूल्य २ करोड़ रुपया था। १९५७ में यह उत्पादन ६०७,००० हडरवेट का था जिसका मूल्य २ २ करोड़ रुपये था।

यहाँ जितना अभ्रक पैदा होता है लगभग सब का ग्रेट ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और फ्रास को निर्यात कर दिया जाता है। १९४८ में ३६०००० हंडरवेट अभ्रम का निर्यात किया गया जिसका मूज्य ६१४ लाख रुपये था। १९५७ मे ४४९,७४२ हडरवेट निर्यात हुआ जिसका मूल्य ८६८ लाख रुपया था।

भारत के विशाल उद्योगों की तुलना में अभ्रक उद्योग की वैत्तिक आय कम है। यह भारत के चार-पाँच जिलों में केन्द्रित हैं: बिहार में—हजारीबाग, गया और मुँगेर में; निल्लोर में और राजस्थान में। बिहार में सामान्य अभ्रक का प्रधान स्रोत केन्द्रीकृत है। सामान्य अभ्रक (मसकोवाइट माइका) बिजली, मोटर तथा हवाई जहाज के उद्योगों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम महायुद्ध में केवल
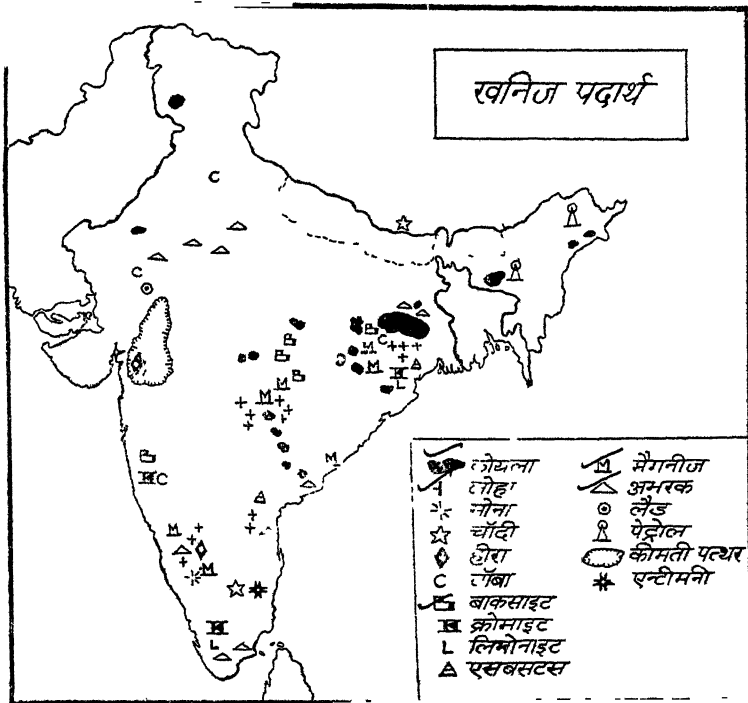
चित्र ६१—भारत के खनिज पदार्थ

यही कच्चा माल भारत से हवाई जहाज द्वारा ४ हजार रुपया प्रति मन की दर से निर्यात हुआ था।

देश भर में कुल मिलाकर दो लाख से अधिक आदमी अभ्रक के उत्खनन और अन्य कार्यों में लगे हुए हैं; इनमें से केवल बिहार मे डेढ लाख हैं। बिहार में उत्खनित अभ्रक की श्रेष्ठता और वहाँ के मजदूरों की दक्षता के कारण भारत के अभ्रक के उद्योग को विश्व भर में प्राय एकाधिकार प्राप्त हो गया है। यद्यपि दक्षिणी अफ्रीका, ब्राजील, कनाडा और रूस ने भारत की स्थिति को गिराने की कोशिश अवश्य की है, परन्तु भारत के अभ्रक-उद्योग की महत्ता अब भी सशय से परे है।

ताँबा (Copper)

भारत में अतीत काल में भी ताँबे का उत्खनन होता था । इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं । बिहार के सिंहभूमि जिले की एक ताँबा-पेटी में ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन काल मे खुदाई हो चुकी है। यह पेटी बहमनी नदी पर स्थित द्वारपरम से पूर्व की ओर खरसावाँ होती हुई ढलभूमि मे प्रवेश कर गई है। वहाँ से यह दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ती हुई राजडोहा और माटीगाड़ा होती हुई मैरागोड़ा पहुँच गई है। इसका कुल विस्तार लगभग ८० मील है। भारत में कच्चा ताँबा अन्य चट्टानों मे मिली हुई अनिश्चित नलियो के रूप से मिलता है। कहीं-कही कच्चा ताँबा चक्कों के रूप में मिलता है। मगर बहुधा यह मोटी चट्टानों मे दानो के रूप में बिखरा हुआ मिलता है। ऐसे रूप में इसे निकालना बहुत कठिन हो जाता है। जहाँ माटीगाड़ा या मोसा-बोनी की भाँति यह धातु निश्चित नालियों में केन्द्रित हो गई है, वहाँ उत्तम कोटि की धातु मिलती है।

भारत का सर्वप्रधान ताँबे का उद्योग मऊ, भण्डार, घाट शिला की इण्डियन कापर कारपोरेशन के अधिकार में हैं। जो ताँबा-शुद्ध रूप में नहीं बिक पाता है उसे यह कम्पनी जस्ते की सहायता से पीतल बनाती है।

मोसाबोनी खाल मे दो समानान्तर कच्ची धातु कोशों का विकास किया गया है। यहाँ की कच्ची धातु में २१/२% से ३% तक ताँबा मिलता है। धोबनी में मोसाबोनी के समानान्तर एक कोश को खोला जा रहा है। इससे भी थोड़ा-सा उत्पादन होता है। सिंहभूमि जिले में ताँबे के भंडार ३३ लाख टन के कूते गये हैं।

कुछ समय से ताँबे के नये भडार सिकिम, गढ़वाल, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश में भी पाये गये हैं।

सिकिम में ताँबे के कोश भोंटाङ्ग में है। यहाँ ताँबा १०' से १५' मोटी नाली में पाया जाता है। इसमें धातु का अश ३-४% है। अन्य ताँबे के क्षेत्र डीकचू, रोहतक, सिरबोंघ, सीसनी, जगदूम में हैं।

उत्तर प्रदेश में गढ़वाल जिले में कच्ची धातु धानपुर और पोखरी में पाई गई है।

राजस्थान में, अलवर जिले में खोह-दरीबा क्षेत्र में तथा जयपुर जिले में खेतड़ी में पाया जाता है।

आन्ध्र में अग्निगुड़ाला और गनी में ताँबा पाया गया है।

१९५७ में भारत में ४०४,००० टन ताँबे की अयस प्राप्त की गई जिसका मूल्य २,६५ करोड़ रुपया था। इससे लगभग ७,५०० टन ताँबा प्राप्त हुआ जबकि देश मे ताँबे की माँग २५ से ३० हजार टन की है। अतः बहुत बड़ी भाषा में कनाडा, स० रा० अमरीका; रोडेशिया, जापान और पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका से ताँबा आयात किया जाता है।

बाक्साइट (Bauxite)

अल्यूमीनियम प्राप्त करने के लिए कच्ची धातु बाक्साइट ही है। बाक्साइट भारत के निम्न चार क्षेत्रो से प्राप्त किया जाता है —

(१) दाक्षिणी भारत मे इस क्षेत्र का सम्बन्ध दक्षिण के लावा प्रदेश से हैं। यहाँ बाक्साइट की खाने बम्बई मे कोल्हापुर और हलार मे मिलता है। इसके अतिरिक्त कपदवज, थाना, सतारा, सूरत, पूना, रत्नागिरी, भीर, रावपियला और बड़ौदा अन्य उत्पादक है।

मद्रास राज्य मे सलेम जिले मे शिवराय की पहाड़ियो मे बाक्साइट मिलता है।

मैसूर मे बाबाबूदन की पहाड़ियों और बेलगाम से भी बाक्साइट प्राप्त होता है।

(२) दूसरा क्षत्र उत्तरी भारत मे है विशेष कर बिहार के राँची और पालामऊ जिलों मे।

कुछ बाक्साइट उड़ीसा राज्य के कोरलापुर और सम्बलपुर जिलों में भी मिलता है।

(३) मध्य प्रदेश मे विन्ध्यन पर्वतमाला की चट्टानो से कटनी के निकट। इस क्षेत्र में सरगूजा, रायगढ़, बिलासपुर, बालाघाट और जबलपुर जिले प्रमुख हैं।

(४) काश्मीर में पूंच और रियासी जिलों में।

भारत में बाक्साइट के जमाव २५ करोड़ टन के कूते गये हैं जिनमें से ६ करोड़ टन बिहार, ८.१ करोड़ टन मध्य प्रदेश २.६ करोड़ टन बम्बई, २ करोड़ टन मद्रास, २ करोड़ टन काश्मीर और १० लाख टन मैसूर और २० लाख टन उड़ीसा मे है। २५ करोड़ टन में से २.८ करोड़ उच्च श्रेणी का बाक्साइट है। इसका एक-

तिहाई बिहार मे है। यदि अल्यूमिनियम उद्योग प्रतिवर्ष ५०,००० टन बाक्साइट उपयोग में लाए तो यह कोश १५० वर्षों तक के लिए काफी हो सकते हैं।

सीसा (धातु) और जस्ता (सारकृत)

[Lead (Metal) and Zinc (Concentrates)]

यद्यपि भारत मे लोह हीन धातुओं का उत्पादन कम होता है किन्तु तब भी सीसा (धातु) तथा जस्ता (सकेन्द्रित) के उत्पादन में पिछले कुछ वर्षों मे वृद्धि हुई है। केवल राजस्थान के उदयपुर जिले मे (जावर-खानों से) ही इनका उत्पादन होता है। जावर में लगभग १३,००० एकड़ क्षेत्रफल मैटल कॉर्पोरेशन ऑफ इडिया नामक कम्पनी को पट्टे पर दिया गया है। इसमे अयस का औसत उत्पादन ५.०२ टन प्रति एकड़ है। सकेन्द्रित सीसा तथा जस्ता प्राप्त करने के लिए जावर से प्राप्त अयस को मर्दित और चूर्ण करके प्लावन चक्कियों (Floatation mills) से पारित किया जाता है। सारकृत सीसा पिघलाने के लिए कटरसगढ़ (झरिया) को और सकेन्द्रित जस्ता प्राप्त करने को जापान को भेजा जाता है।

सीसा और जस्ते का उत्पादन इस प्रकार है :—

वर्ष	सीसा		जस्ता	
	मात्रा	मूल्य (००० रु०)	मात्रा	मूल्य (००० रु०)
१९५४	१,७९१ टन	२,३०८	३,९७४	१,०८१
१९५५	२,५३४ ,,	३,११७	४,८६५	१,६६५
१९५६	३,९०९ ,,	९७३	६,८८०	२,३१६
१९५७	४,८५० ,,	१,२१०	७.४६९	२,५३२

सीसा जस्ता अयस के अनुमानित भडार (सीसा २·५% तथा ४ ५%) २५ लाख टन है। निम्न श्रेणी के अयस का (जिसमें ३% जस्ता है) लगभग ८० लाख टन भंडार का अनुमान है। सीसा तथा जस्ता की वर्तमान वार्षिक माँग १५००० तथा २५,००० टन है। अतः देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रतिवर्ष ६ करोड़ का सीसा और जस्ता आयात किया जाता है। १९५७ में १०.४ लाख हंडरवेट

जस्ता (जिसका मूल्य ७ २ करोड़ रु० था) और २·८ लाख हडरवेट सीसा जिसका मूल्य २.२ करोड रुपया था) आयात किया गया।

नमक (Salt)

भारत में नमक मुख्य दो स्रोतों से आता है: (१) समुद्र के पानी से और (२) खारे पानी की झीलों, (विशेषकर साँभर झील) से। भारत मे बनाये जाने वाले कुल नमक का लगभग ३/४ भाग समुद्र के पानी से बम्बई और मद्रास म तैयार होता है। भारतीय नमक का औद्योगिक उपयोग बहुत कम होता है क्योंकि भारत मे औद्योगिक नमक नहीं बल्कि सामान्य नमक मिलता है।

औद्योगिक नमकों मे भारत में कवल शोरा है जो बिहार और उत्तर प्रदेश में मिलता है। यह सारा ही स० रा० अमरीका, मॉरीशस, ब्रिटेन, चीन और लका को निर्यात कर दिया जाता है। थोड़ा सा शोरा आसाम के चाय के बागा में काम में लाया जाता है।

भारत मे साधारण नमक का उत्पादन और व्यवसाय विशेष राजनैतिक महत्व का है—महात्मा गाँधी की प्रसिद्ध दाँडी यात्रा भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में एक स्मारक है इसलिए हम भारत मे नमक के उत्पादन का कुछ विवरण देंगे।

नमक बनाने की आदर्श दशाएँ ये हैं :—

(१) खारा जल मिलने के लिए समुद्र से निकटता,

(२) वर्षा कम या बिल्कुल नहीं,

(३) कड़ी धूप, जिसके लिए स्वच्छ आकाश होना आवश्यक है।

(४) वेगवती पवनें,

(५) उच्च तापमान वाली शुष्क वायु,

(६) अधिक वाष्पीकरण; जो कि ऊपरिलिखित दशाओं मे ही सम्भव है,

इस दृष्टिकोण से भारत मे निम्नलिखित क्षेत्र नमक बनाने के अनुकूल हैं।

(१) काठियावाड़ तट,

(२) कारोमडल तट का दक्षिणी अर्धांश : नागापट्टम और कुमारी अन्तरीप के बीच।

(३) उत्तरी मद्रास तट : निल्लौर और गोपालपुर के बीच।

(४) साँभर झील।

निम्नांकित सारिणी* मे उपर्युक्त क्षेत्रों के नमक-उत्पादन केन्द्रों की जलवायु की दशाओं की तुलना है।

	वार्षिक वर्षा	वर्षा दिनों की सख्या	औसत वायु तापमान	औसत नमी	औसत वाष्पीकरण
द्वारिका	१३.५२ ,,	२०	७८	७५	६८.१२
पंजाब	२७ ,,	३०	८२	७५	८८.४०
गोपालपुर	४४.६६ ,,	६०	८०	७५	८६.५८

भारत में सबसे अधिक नमक का उत्पदान पश्चिमी तट पर होता है। नमक उत्पादन में बम्बई प्रदेश सबसे आगे है। यहाँ पर समुद्री जल को धूप में सुखा कर नमक बनाया जाता है। खभात की खाड़ी की पूर्वी ओर बुलसार के निकट धरसना और छारवाडा में नमक के सरकारी कारखाने हैं। नमक के अन्य कारखाने बम्बई शहर से तीस मील की दूरी के अन्दर स्थित हैं। इनमे जो सरकारी हैं वे व्यक्तियों को नमक-निर्माण के लिए ठेके पर दे दिये जाते हैं शेष व्यक्तिगत हैं। अधिकतर नमक बनाने के लिए ऐसी जगह चुनते हैं जो पानी की ज्वार कालीन सतह से नीची होती है। इसे मजबूत बाँधों द्वारा घेर देते हैं। इसी में बाहरी और भीतरी जलसग्रह जल सुखाने के क्षेत्र होते है। जब ज्वार ऊँचा होता है तब बाहरी कोश भर जाता है। इससे पानी बह कर भीतरी कोश में पहुँचता है फिर वहाँ से सूखने वाले क्षेत्र (पैन) में जाता है। साधारणतः बम्बई में तथा अन्यत्र भी सूखने वाले क्षेत्र में चिकनी मिट्टी बिछा कर कूट दी जाती है। इससे नमक का रग मटमैला हो जाता है। कुछ दिनों बाद जब लगभग ½ इच मोटी नमक की पर्त इस क्षेत्र मे जम जाती है तब इसे किनारों की ओर इकट्ठा करके धो लिया जाता है। फिर इस नमक को सूखने दिया जाता है और उसके बाद विभिन्न आकारों मे अलग कर लिया जाता है। सूखने वाले क्षेत्र को फिर भरा जाता है और यही प्रक्रिया फिर दुहराई जाती है।

नमक-निर्माण का मौसम दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के अनुसार बदलता है। सामान्य निर्माण काल जनवरी से जून तक रहता है।

बम्बई प्रदेश में नमक का काफी भाग बड़ागरा से आता है। यह नमक 'कच्छ

* साइंटिफिक नोट्स, मेटलर्जिकल डिपार्टमेंट, इंडिया। अक ६, १९३५।

के रन' के बड़ागरा कुओं के पानी से बनता है। रन की विशालतम निर्माणशालाएँ खारागोड़ा मे हैं। यहाँ लगभग ६ फीट चौड़े और १८ से ३० फीट तक गहरे गोल कुओ से नमकीन पानी निकाला जाता है। यहाँ नमक का निर्माण-काल नवम्बर से अप्रैल तक रहता है।

मद्रास और आंध्र प्रदेश मे पूर्वीतट पर बहुत कुछ बम्बई की तरह ही नमक बनता है। समुद्र का पानो ज्वारो द्वारा इकट्ठा करके एक मार्ग द्वारा सूखने के क्षेत्रों में लाया जाता है। कहीं कही नमक के कण इकट्ठा करने से पहले सुखाने के क्षेत्रो में कई बार पानी भरते हैं, परन्तु केवल एक बार पानी भरना ही अधिक प्रचलित है। नमक निर्माण दक्षिणी-पश्चिमी और उत्तरी-पूर्वी मानसून के अनुसार होता है। इसीलिए निर्माण के मौसम तदनुसार भिन्न-भिन्न हैं। उत्तरी जिलों में जनवरी-फरवरी में निर्माण प्रारम्भ होता है और वर्षा के प्रारम्भ काल जून या जुलाई तक होता रहता है। दक्षिण में निर्माण कुछ देर से आरम्भ होता है। मार्च या अप्रैल से लेकर अक्टूबर या नवम्बर तक यह काल रहता है। मद्रास का नमक अधिकतर वहीं इस्तेमाल होता है। केवल कुछ लंका को निर्यात भी किया जाता है।

राजस्थान का रेगिस्तानी क्षेत्र का सारा कच्छ के तट से लेकर दिल्ली की उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी सीमाओं तक नमक से परिपूर्ण है। इस क्षेत्र में बारहमासी नमकीन झीलें हैं। उदाहरणार्थ साँभर और डिडवाना जिनका उपयोग नमक बनाने के लिए होता है। अन्य स्थलों पर जैसे पचमदरा में कुआँ खोदकर नीचे से नमकीन पानी निकाला जाता है। ऐसा अनुमान है कि इस नमक का अधिकाश गर्मियों में दक्षिण-पश्चिम की तेज हवाओं द्वारा महीन धूल के रूप में आता है। ये हवाएँ नमक से परिपूर्ण 'कच्छ के रन' के आर-पार चलती हैं और समुद्र से उठे हुए नमक के महीन कणों को विशाल मात्राओं में राजस्थान में ले आती हैं। वहाँ वह नमक जमा पड़ा रहता है। जब पानी बरसता है तब यही नमक बह कर अन्तर्देशीय बहाव द्वारा छोटी-छोटी झीलों मे जमा हो जाता है।

इन नमक की झीलों मे साँभर सबसे बड़ी है। जब यह पूरी प्रकार से भरी होती है तब इसका क्षेत्रफल ६० वर्ग मील के लगभग होता है। मगर मार्च और अप्रैल के महीनों में सूख कर यह बहुत छोटी हो जाती है। इस झील की पेंदी में मिलने वाली मिट्टी में लगभग १२ फीट की गहराई तक ५% नमक रहता है। जब यह झील

चित्र ६२—साभर झील से नमक प्राप्त करना

सूख जाती है, तब उसकी पेंदी की मिट्टी में भरा हुआ जल धीरे-धीरे ऊपर आकर सूख जाता है।

साँभर नगर के निकट झील के आर-पार एक विशाल बाँध बनाया गया है। इसके पीछे प्रधान झील का जल नलो द्वारा लाया जाता है। इस जलसंग्रह से इसे छोटे जलसंग्रहों मे स्थानान्तरित किया जाता है और उसके बाद सूखने वाले क्षेत्रो में। साँभर के नमक का ३/४ से अधिक उत्तर प्रदेश और राजस्थान मे उपभोग होता है।

भारत में सबसे अधिक नमक का उत्पादन साँभर झील से होता है जिससे लगभग १ करोड़ मन नमक प्रति वर्ष निकलता है।

भारत मे नमक सुखाने वाले क्षेत्रों का कुल क्षेत्रफल लगभग ८३ हजार एकड़ है। नमक के उत्पादन में बराबर वृद्धि हो रही है जैसा कि निम्नलिखित अकों से ज्ञात होता है :—

नमक उत्पादन	लाख मन
१९५१	७४०
१९५२	७७०
१९५३	८६०
१९५४	७३९
१९५५	८११
१९५६	८८९
१९५७	९८३

भारत मे नमक का उपभोग प्रधानतया भोजन मे होता है। जानवरो को भी कुछ दिया जाता है। औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण यहाँ नमक का उपयोग औद्योगिक कार्यों के लिए नगण्य है। इसी कारण १९५६ मे यहाँ प्रति व्यक्ति नमक उपभोग (वार्षिक औसत) केवल ८ पौड था, जबकि ससार का औसत नमक-उपभोग ३० पौंड था।

समुद्री नमक के अतिरिक्त भारत मे पहाड़ी नमक भी मिलता है। १९५७ मे ४,३३५ टन चट्टानी नमक प्राप्त हुआ जिसका मूल्य २१२,००० टन था। पहाड़ी नमक भारत में केवल पजाब के मडी जिले से ही प्राप्त होता है। यहाँ द्राग और गुमा की खानों से गहरे आस्मानी रग का नमक मिलता है जिसमे लगभग २५%तक अशुद्धियाँ पाई जाती है।

भारत से कुछ नमक का निर्यात नैपाल, इडोनेशिया, जापान, मलाया और मालद्वीप को किया जाता है।

सोना (Gold)

भारत मे बहुमूल्य धातुएँ बहुत कम मिलती हैं। चाँदी तो यहाँ होती ही नहीं। थोड़ा-सा सोना केवल दक्षिणी पठार के एक कोने में मिलता है। भारत का लगभग सारा सोना मैसूर के कोलार-क्षेत्र से आता है। कोलार-क्षेत्र में भी चार फीट मोटी केवल एक चट्टान है जिसमे सोना मिलता है। इसका विस्तार लगभग ५ मील है। चेम्पियन रीफ और उड़िगामा की खानें सबसे गहरी हैं। इनकी गहराई ९,५०० फीट से भी अधिक है। यह ससार भर की सोने की खानों में सबसे अधिक गहरी है। इतनी गहराई के कारण इन खानों में हवा पहुँचाने की व्यवस्था करना एक बड़ी भारी समस्या है। निचले कार्यस्थानों के तापमान ११८° फा० से ११२° फा० तक रहते हैं। इतनी गहराई के कारण चट्टानों के फटने के फलस्वरूप दुर्घटनाएँ बहुत होती हैं। इन खानों को कावेरी पर स्थित शिवसुन्दरम् द्वारा बिजली प्राप्त होती है।

इस खनिज सोने के अतिरिक्त आसाम और उड़ीसा की नदियों की बालू को धो कर कछारी सोना (एल्यूवियल गोल्ड) भी निकाला जाता है।

सन् १९४८ में लगभग १ लाख टन से अधिक कच्ची धातु से ५२,९०० औंस सोना निकाला गया था। लगभग दो टन चट्टान से १ औंस सोना निकाला गया था। १९५७ में १७९,००० औंस सोना निकाला गया जिसका मूल्य ५ करोड़ रुपया था।
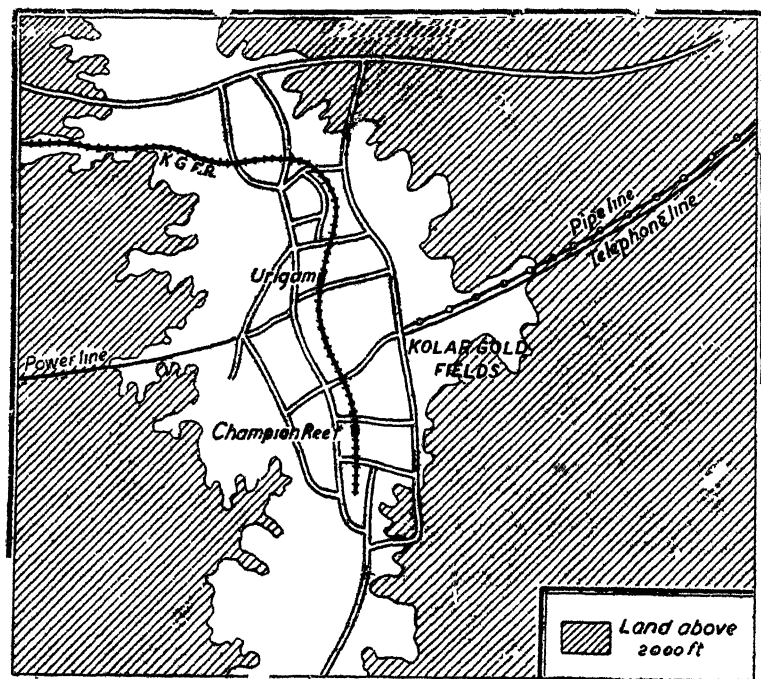
चित्र ६३—मैसूर के निकट स्थित सोने की खानें

अब सरकार भारत के उत्खनन-उद्योग की ओर अधिक ध्यान दे रही है। अधिक विकास के लिए एक खानों का ब्यूरो बनाया गया है।

प्रश्न

१. भारत में कच्चा लोहा-स्रोतों के विस्तार का वर्णन कीजिए। भारतीय कच्चे लोहे में कौन-सी भौगोलिक त्रुटियाँ हैं ?

२. भारत में कच्चा मैंगनीज कहाँ से निकाला जाता है ? भारत में मैंगनीज उत्खनन-उद्योग का भविष्य क्या है ?

३. भारत के अभ्रक-स्रोतों के विस्तार को आँकिए। आजकल अभ्रक-उत्खनन क्यों पिछड़ा है ?

४. भरत में नमक कहाँ होता है ? भारत में नमक का उत्पादन जलवायु पर कहाँ तक निर्भर है ?

५. भारत में सोने का स्रोत कौन-सा है ? यहाँ सोना-उत्खनन में कौन-कौन कठिनाइयाँ होती हैं ?

६. मान लीजिए कि आप किसी ऐसी कम्पनी के सलाहकार हैं, जो कि मैंगनीज-उत्खनन की ओर प्रवृत्त है। तो उसे भारत के किन-किन भागों में कार्य प्रारम्भ करना चाहिए ? विश्व के किन-किन भागों से स्पर्धा होने की आशा है ? अन्य देशों की तुलना में भारत के मैंगनीज-उत्खनन और उसके यातायात की दशाओं का स्थान निर्धारित कीजिए ।

अध्याय ९

उद्योग

(Manufactures)

भारत में अधिकतर लोगों की मुख्य जीविका खेती है। इस देश का अधिकाश आर्थिक जीवन खेती पर ही आधारभूत है। खेती से इस देश के लोगों को केवल भोजन ही नहीं प्राप्त होता है, वरन् यहाँ के अधिकतर उद्योगों के लिए कच्चा माल भी प्राप्त होता है। खेती की मॉग से इस देश के लौह-उद्योग पर भी अधिक प्रभाव पड़ा है। इस देश के पूर्ण लौह-उपभोग का लगभग एक-चौथाई भाग खेती के लिए मशीनें तथा औजार बनाने मे होता है। इस देश मे साधारण दशा में खेती के लिए सुविधाएँ भी पर्याप्त हैं। इसीलिए यहाँ के लोगो की सामान्य रुचि खेती में ही लगने की रही है। इस देश में धार्मिकता का बहुत प्रचार होने से लोगों का ध्यान सदा सादे जीवन की ओर रहा है जिससे लोगों का विचार अपनी आवश्यकताओं को कम करने की ओर अधिक रहा है। परन्तु उद्योगों की उन्नति लोगो का जीवन-स्तर ऊँचा होने से ही होती है। जितना ही ऊँचा जीवन-स्वर होता है, उतनी ही अधिक लोगों की आवश्यकताएँ होती हैं। सादे जीवन की ओर रुचि का होना इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए बहुत बड़ी बाधा रही है। यही कारण है कि प्राचीन काल मे केवल छोटे-मोटे घरेलू उद्योग ही यहाँ उन्नति कर सके। परन्तु पश्चिमी यूरोप के लोगों का रहन-सहन देख कर और अंग्रेजों का राज्य इस देश मे स्थापित होने से स्वभावत. लोगों का ध्यान औद्योगिक उन्नति की ओर गया।

अंग्रेजों के साथ सम्पर्क और उनके द्वारा लाई हुई आधुनिक सभ्यता के कारण यहाँ कुछ आधुनिक ढंग के नगर बस गये। यह आधुनिक नगर आधुनिक सभ्यता के केन्द्र थे। इन नगरों में औद्योगिक उन्नति की ओर सबसे अधिक प्रवृत्ति हुई। पहले जो वस्तुएँ भोग-विलास की वस्तुएँ समझी जाती थीं, वे अब जीवन के लिए आवश्यकीय हो गईं। इसलिए बनाई हुई वस्तुओं की मॉग बहुत अधिक बढ़ गई। इस मॉग को पूरा करने के लिए बहुत से लोग इन आधुनिक नगरों में बस गये और उनका सम्बन्ध खेती से बिल्कुल टूट गया। भारत के लिए यह एक नई बात थी। यहाँ के लोगों का

औद्योगिक तथा कृषक भागो मे बिल्कुल पृथक विभाजन ने औद्योगिक उन्नति की जड़ डाली। बम्बई, कलकत्ता, कानपुर आदि नवीन नगरों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रभुत्व था, नये औद्योगिक केन्द्र बन गये। वास्तव मे इस देश में औद्योगिक उन्नति का आरम्भ बन्दरगाहों से ही हुआ; क्योंकि इन स्थानों मे भीतरी, और बाहरी आवागमन की सुविधा होने से कच्चा माल, मशीनें, श्रमिक तथा पूँजी सरलता से प्राप्त हो जाती थीं। यह स्थान व्यापारिक केन्द्र होने के कारण बनी हुई वस्तुओं को बेचने में भी सहायक थे। आरम्भ मे जो औद्योगिक उन्नति यहाँ पर हुई, उसमें उपभोग की वस्तुएँ ही बनती थी। इन वस्तुओं को बनाने वाली मशीनें अथवा कल-पुर्जे यहाँ नहीं बनते थे। मशीनो के कारखानों का सम्बन्ध कोयले और लोहे से होता है, न कि बंदरगाहों से। इन बदरगाहो मे कोयला और लोहा न होने के कारण लौह-उद्योग की उन्नति न हो सकी। इसीलिए आज भी हमारा देश लौह-उद्योग तथा अन्य आधारभूत उद्योग (Key industries) में पिछड़ा हुआ है। इस देश में मशीनें न बनने के कारण अन्य उद्योग भी प्रायः पिछड़े ही हैं। इस देश में कोयला बहुत थोडा मिलता है और जो मिलता भी है, वह देश के एक कोने में ही है। यहाँ मार्गों की विशेषकर सस्ते जलमार्गों की कमी है। पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका से इस बात की तुलना करने पर हमारे देश का उद्योगों में पिछड़ा होना स्पष्ट हो जाता है। यदि यहाँ अधिक मात्रा में और उत्तम प्रकार का कोयला देश में चारों ओर मिलता होता तो हमारी औद्योगिक उन्नति निश्चित बात थी। कोयले के अच्छा न होने के कारण हमारे देश की औद्योगिक उन्नति का वर्णन पीछे किया गया है। हमारे देश में सबसे अधिक उन्नत उद्योग वे हैं जिनमें कोयले की आवश्यकता बहुत थोड़ी होती है; जैसे सूती वस्त्र, पाट, चीनी और कागज के उद्योग। इन उद्योगों के लिए मशीनें विदेशों से मँगाई जाती हैं।

कुशल श्रमिकों की कमी भी इस देश में उद्योगों के पिछड़े होने का एक प्रमुख कारण है। यहाँ पर पूँजी की भी विशेष कमी रही है। परन्तु यह अड़चनें साधारण अड़चनें हैं जो सरलतापूर्वक दूर हो सकती हैं। मुख्य अड़चन ईंधन अथवा कोयले की है। जैसा कि पीछे कहा गया है, जल-विद्युत की उन्नति ही इस अड़चन को अधिकाश दूर कर सकती है।

लौह और इस्पात उद्योग (Iron & Steel Industry)

आधुनिक उद्योग के आरम्भिक साधन लौह और इस्पात-उद्योग से ही प्राप्त होते

है। इसी उद्योग से कारखाना बनाने के लिए सामान, कारखाना चलाने के लिए इस्पात की मशीनें और इंजिन आवागमन के मार्गों के लिए रेल की पटरी, डिब्बे और मोटरें आदि सभी इसी एक आधारभूत उद्योग पर निर्भर हैं।

भारत मे लोहा गलाने और उत्तम प्रकार की वस्तुओं को बनाने का ज्ञान बहुत प्राचीन काल मे था। इसका प्रमाण दिल्ली मे स्थित लौह-स्तम्भ से मिलता है। वैज्ञानिकों का मत है कि आजकल के कारखानों में इतना उत्तम लोहा बनना कठिन है। लोगो का कहना है कि दमिश्क की ससार प्रसिद्ध तलवारे बनाने के लिए भारत से ही लोहा जाता था। भारत के आधुनिक लौह-उद्योग का आरम्भ एक अँग्रेज व्यक्ति जोशिया हीथ आई० सी० एस० द्वारा किया गया था। परन्तु यह प्रयत्न असफल रहा। वास्तविक सफलता बाराकर आइरन कम्पनी को ही मिली, जिसका कारखाना पहले-पहल १८७१ में धनबाद के निकट कुलटी मे खोला गया था।

परन्तु आजकल के उन्नत इस्पात-उद्योग का आरम्भ ताता आयरन व स्टील कम्पनी के द्वारा इस शताब्दी के आरम्भ मे हुआ। सर जमशेद जी ताता ने अपने बहुत गाढ़े प्रयत्न से जमशेदपुर में इस्पात बनाने का पहला कारखाना स्थापित किया। इस कारखाने मे १६११ में कार्य हुआ, और पहला इस्पात १६१२ में यहाँ बनाया गया। इस देश में प्रथम विश्व-युद्ध के कारण लौह-उद्योग की, विशेषकर ताता के कारखाने की बहुत अधिक उन्नति हुई। उस युद्ध में मैसोपोटामिया में रेल तथा युद्ध का अन्य सामान भारत में ही बनता था। युद्ध के उपरान्त ताता के कारखाने को भारतीय सरकार से बड़ी सहायता मिली। १६२४ में इस कम्पनी की क्षतिपूर्ति करने के लिए करकार ने धन देने की व्यवस्था की। इस सहायता से बाहर आये हुए इस्पात की प्रतियोगिता का सामना यहाँ के बने इस्पात ने किया। ताता के कारखाने की उन्नति बहुत शीघ्र हुई है। आरम्भ में इस कारखाने में लगभग सवा लाख टन ढला लोहा और ७० हजार टन इस्पात प्रति वर्ष तैयार करने का विचार था। परन्तु १६५४ में कम्पनी ने ११·५ लाख टन से अधिक ढला लोहा और ७·८ लाख टन इस्पात बनाया। आजकल ताता के कारखाने से लगभग तीन-चौथाई लोहे तथा इस्पात का सामान बन कर आता है।

नीचे की तालिका में भारत का लौह-उत्पादन दिया गया है :—

	१६५०-५१	१६५७
ढला लोहा	१५½ लाख टन	१७·१ लाख टन
इस्पात	६¾ ,, ,,	१३·४ ,, ,,

भारत में लौह-उद्योग की उन्नति के पिछड़े होने का मुख्य कारण यह है कि निर्धनता के कारण हमारे देश मे लोहे की माँग कम है। इसका ज्ञान निम्नलिखित तालिका से होता है :—

लौह तथा इस्पात का प्रति जन वार्षिक उपभोग

	वार्षिक उपभोग	वार्षिक उत्पादन
संयुक्त राज्य अमेरिका	१,२३७ पौंड	१ अरब टन
ब्रिटेन	६२८ ,,	२ करोड़ टन
आस्ट्रेलिया	४८० ,,	—
रूस	२४० ,,	५० करोड़ टन
भारत	१२ ,,	६० लाख टन
पश्चिमी जर्मनी	३८२ ,,	२ करोड़ टन

इस्पात बनाने मे लगभग दो-तिहाई लागत कच्चे माल की ही होती है। यह कच्चा माल अधिकतर बोझीला और कम मूल्य वाला होता है। इसलिए यथासम्भव इस्पात के कारखाने अपने कच्चे माल के निकट ही बनते हैं। इस उद्योग मे ३ मुख्य कच्चे माल आवश्यक होते हैं—कोयला, कच्चा लोहा और चूने की चट्टान। इन तीन मुख्य कच्चे मालों के अतिरिक्त धातु को कड़ा बनाने के लिए थोड़ा मैंगनीज और कोई और धातु जैसे टंगस्टन या वूलफ्रॉम आदि भी आवश्यक होते हैं। किसी विशेष प्रकार का इस्पात बनाने के लिए आवश्यकतानुसार कोई अन्य धातु भी मिलाई जाती है, जैसे क्रोमियम। कोयला और चूने की चट्टान के अतिरिक्त भारत में इस्पात के लिए बहुत उत्तम कच्चे माल प्राप्त हैं। यहाँ के मैंगनीज में ४० से ५० प्रतिशत धातु है। ६५ से ६८% धातु वाली क्वार्टज़ाइट चट्टानें भी यहाँ मिलती हैं। ४० से ५० प्रतिशत क्रोमाइड वाली चट्टानें भी यहाँ सिंहभूमि और मैसूर में मिलती हैं वैनेडियम भी सिंहभूमि और मयूरभंज मे उत्तम प्रकार की मिलती है। जोधपुर और मिदनापुर मे टंगस्टन भी उपलब्ध है। टाइटेनियम (इलमेनाइट) भी दक्षिणी भारत मे मिलता है। इस प्रकार इस्पात के लिए छोटे-छोटे कच्चे माल यहाँ बड़ी मात्रा में प्राप्य हैं।

एक टन ढला लोहा बनाने के लिए ताता के कारखाने में प्रमुख कच्चे माल की निम्नलिखित मात्राएँ आवश्यक होती है : कच्चा लोहा १·६, कोयला १·५, चूने

की चट्टान ·५, मैंगनीज ·१ । १ टन इस्पात बनाने के लिए २ टन कच्चा लोहा और १⅚ टन कोकिंग कोयला ।

हमारे देश में संसार में सबसे सस्ता इस्पात बनता है क्योंकि यहाँ के कच्चे लोहे में फासफोरस केवल नाम मात्र को (·२५%) है। इसकी अपेक्षा यूरोप में इस्पात बनाने के लिए जो कच्चा लोहा प्रयुक्त है उसमें १॥% फासफोरस रहता है। हमारे देश के कोयले में गंधक का प्रायः अभाव है। यूरोप तथा अमेरिका के कोयले में काफी गन्धक रहता है जिसको दूर करने मे कुछ व्यय लगता है। हमारे देश में जो कच्चा लोहा इस्पात के लिए प्रयुक्त है उसमें ६० से ६६% धातु रहती है। इसकी अपेक्षा यूरोप में ४०% धातु और अमेरिका में ५०% धातु ही कच्चे लोहे में प्रायः मिलती है। भारतीय लोहे में फास्फोरस का अंश केवल ½% पाया गया है, जबकि यूरोप के लोहे मे यह मात्रा १½% तक है। हमारे देश में लोहे का बहुत बड़ा भण्डार है। सिंहभूमि की लौह पट्टी में लगभग १००० करोड़ टन उत्तम प्रकार का लोहा भरा पड़ा है, जो कि आधुनिक उपभोग की दर से लगभग २ हजार वर्ष चलेगा।

हमारी मुख्य कठिनाई कोयले की है। इस देश मे लगभग १५० करोड़ टन कोयला इस्पात-उद्योग के योग्य है। यह कोयला अधिक से अधिक ७५ वर्ष तक चल सकता है। परन्तु हमारे देश में लगभग ५ सौ करोड़ टन कोयला मध्यम कोटि का है जिसको जल से धोकर इस्पात के उद्योग मे प्रयोग किया जा सकता है। ताता कम्पनी ने कोयला धोने का प्रबन्ध अपनी बुकारो तथा जमदोबा की कोयले की खानों पर इसी विचार से कर लिया है। यह कोयला कम से कम दो सौ वर्ष चल सकता है। परन्तु यदि हमारे कारखानों में नये ढंग से (क्रूपेरन ढंग से) इस्पात बनाया जाय तो हमको कोयले की कमी कभी नहीं होगी। क्रूपेरन ढग में पहले कच्चे लोहे को मामूली कोयले से गला कर धातु अलग कर ली जाती है। उसके बाद यह धातु बिजली द्वारा शुद्ध की जाती है और उससे इस्पात बनाया जाता है। हमारे देश मे इस समय २० लाख टन इस्पात की माँग है। परन्तु इसका उत्पादन केवल १३½ लाख टन ही है। निकट भविष्य में यह माँग लगभग ४५ लाख टन प्रति वर्ष हो जाने की संभावना है।

इस समय भारत में इस्पात बनाने के ३ मुख्य कारखाने हैं (१) जमशेदपुर मे टाटा लोहे और इस्पात का कारखाना, (२) नुपूरया मे इंडियन आयरन एंड स्टील कम्पनी और (३) भद्रावती में मैसूर लोहे और इस्पात का कारखाना। इनका ढला

लोहा और तैयार इस्पात बनाने की कुल क्षमता क्रमश १८,७८,००० और १०,५०,००० टन वार्षिक है। (१) इस्पात का सबमे बडा कारखाना ताता का जमशेदपुर मे स्थित है।
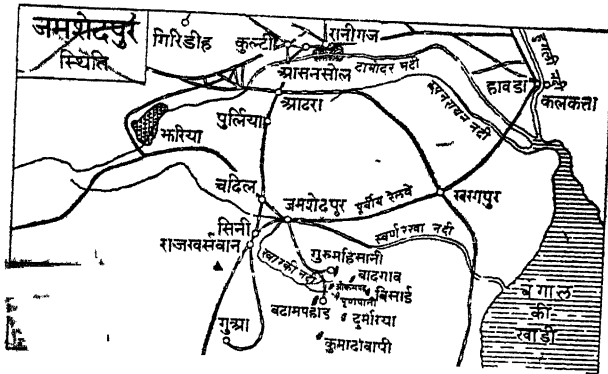
चित्र ६४—जमशेदपुर

चित्र ६४ में जमशेदपुर की स्थिति दिखाई गई है। इस चित्र मे खुरकई और सुवर्ण रेखा नदियों का जल तथा सुवर्णरेखा की घाटी का चौड़ा मैदान महत्वपूर्ण है। कलकत्ता शेष और बम्बई को जोड़ने वाली रेलवे लाइन की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है। जमशेदपुर झरिया के कोयला-क्षेत्र से लगभग १०० मील दूरी पर तथा गुरुमहिषानी और बादाम-पहाड़ के लोह क्षेत्र के लगभग ६० मील दूर स्थित है। पागपोश की डोलोमाइट की चट्टाने भी यहाँ से लगभग २०० मील दूर स्थित हैं। इसके निकट ही गगा के घने बसे हुए मैदान भी हैं जहाँ से अधिक संख्या में श्रमिक यहाँ आ जाते हैं। कलकत्ता और बम्बई के बड़े नगरों का सम्बन्ध भी इस नगर की उन्नति के लिए सहायक है। कलकत्ते से यह १५६ मील दूर स्थित है। सुवर्णरेखा से कारखाने के लिए केवल जल ही नहीं प्राप्त है वरन् वहाँ से लोहा ढालने के लिए बालू भी उपलब्ध है। इन्हीं सब कारणों से जमशेदपुर की विशाल उन्नति हुई है और इसीलिए इस्पात पर निर्भर अन्य उद्योग भी यहाँ चलने लगे हैं। पाने के जल की कमी होने से निकट में एक नाले में बाँध बनाकर जल सग्रह किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है जमशेदपुर क निकट ही सिंहभूमि का प्रसिद्ध खनिज-क्षेत्र है जहाँ स अनेक कच्चे माल जमशेदपुर के कारखाने को प्राप्त हैं।

जमशेदपुर के कारखाने मे पॉच धातु-शोधक भट्ठियॉ है। इनसे प्राप्त ढला लोहा इसी कारखाने मे भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग मे आता है। गत युद्ध मे मशीनों की कमी के कारण इस्पात-उद्योग मे अधिक उन्नति न हो सकी। परन्तु इस काल मे नये-नये प्रकार के इस्पात यहॉ बनने लगे। कुछ नई प्रकार की वस्तुएँ भी जो पहले यहॉ नही बनती थीं अब जमशेदपुर मे बनने लगी हैं; जैसे रेलगाड़ी के पहिए, धुरी आदि, मिलावट वाले इस्पात, छड़े, चादरे आदि।

१९५३ ५४ मे टाटा के कारखाने मे १,१५० हजार टन ढला लोहा, १,०६७ ह० टन इस्पात की ईंटे और ७८० ह० टन गोल इस्पात बनाया गया।

ताता के कारखाने की वर्तमान उत्पादन क्षमता ७ लाख ५० हजार टन थी। इसे बढ़ाकर १९५८ मे १५ लाख टन कर लिया गया है। यह वृद्धि दो चरणो मे की गई है। प्रथम चरण मे आधुनिकीकरण के अन्तर्गत कोक भट्ठी, प्रवात भट्ठी, इस्पात पिघलाने की भट्ठी आदि की क्षमता बढ़ाई गई है और चादरे इस्पात खड बनाने की मिल तथा स्लीपर बनाने का नया यन्त्र लगाया गया है। इससे क्षमता बढ़ कर ९ लाख ३१ हजार टन हो गई।

दूसरे चरण में उत्पादन क्षमता १५ लाख टन बढ़ाई गई। इस कार्य के लिए भारत सरकार द्वारा इस कारखाने को १० करोड़ रुपये दिए गये तथा विश्व बैंक से क्रमशः ७५० लाख डालर और ३२५ लाख डालर के दो ऋणो की मिलने की भी गारटी की है।

(२) मैसूर राज्य मे पत्थर का कोयला न होते हुए भी अधिक आवश्यकता के कारण लकड़ी के कोयले से ही लोहा गला कर इस्पात बनता है। यह कारखाना भद्रा नदी पर भद्रावती स्थान में स्थित है। इसकी स्थापना १९२४ मे हुई थी। यह कारखाना छोटा ही है। यहाँ पर लगभग २६ हजार टन गला लोहा और लगभग २५ हजार टन इस्पात प्रति वर्ष तैयार होता है। यह कारखाना बिरुर-शिमोगा रेलवे लाइन पर स्थित है। यहाँ पर लगभग ८ मील चौड़ा मैदान भद्रा नदी की घाटी मे है। निकट-वर्ती प्रदेश मे यहां जगल अधिक मिलते हैं, जिनसे कारखाने के लिए कोयला प्राप्त होता है। इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा दक्षिण में लगभग २६ मील दूर बाबा-बूदन पहाड़ी से आता है। पूर्व में १३ मील दूर स्थित भंडी गुड्डा से चूना आता है। बाबाबूदन के कच्चे लोहे में बालू मिला हुआ कच्चा लोहा मिलाने की आवश्यकता होती है। यह कच्चा लोहा बिरूर से आता है। भारत में अन्य कोई भी इस्पात का

कारखाना इतनी सुविधापूर्ण दशा मे नहीं है। इस कारखाने में केवल दो मुख्य त्रुटियाँ है :—

१. यहाँ पर प्रयुक्त कच्चे लोहे मे धातु की मात्रा केवल ४० प्रतिशत है।

२. यहाँ पर आवागमन के मार्गों की बहुत कमी है, जिससे इस कारखाने का माल बहुत दूर नहीं भेजा जा सकता।

लकड़ी का कोयला बनाने के लिए यहाँ पर विशेष प्रकार की भट्ठियाँ हैं, जिनमे लकड़ी से तारपीन भी निकलती है।

मैसूर की स्वय माँग इतनी अधिक हो गई है कि इस कारखाने का विस्तार आवश्यक हो गया है। विस्तार के लिए निकटवर्ती महात्मा गाधी जलप्रपात (जोगफाल्स) से बिजली बनाई जाती है। इस बिजली की सहायता से इस्पात बनाने की दो भट्ठियाँ चलाई गई हैं, जिनकी प्रत्येक की वार्षिक उत्पादन क्षमता ३३,००० टन की है। यह उत्पादन क्षमता बढ़ाकर १ लाख टन की जायगी।
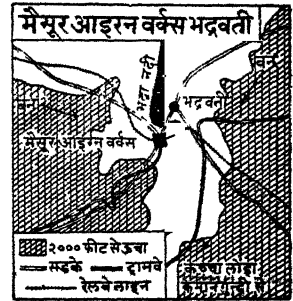
चित्र ६५—मैसूर आयरन वर्क्स

(३) हीरापुर (बर्नपुर) के कारखाने मे लोहे की ढली हुई वस्तुएँ, जैसे पाइप आदि, बनती हैं। यहाँ पर केवल गला हुआ लोहा ही बनाया जाता है। हीरापुर के निकट ही कुल्टी का कारखाना भी है। ये दोनों कारखाने एक ही प्रबन्ध में हैं और एक-दूसरे के बहुत निकट स्थित हैं। कुलटी से गला हुआ लोहा हीरापुर भेजा जाता है। बिजली और पानी भी इन कारखानों में एक-दूसरे को दिया जाता है। कुलटी भारत का सबसे पुराना लोहे का कारखाना है, जहाँ भारत का सबसे अधिक लोहे की ढलाई का काम होता है। यहाँ पर प्रति वर्ष लगभग २६ लाख टन लोहा ढाला जाता है। हीरापुर में लोहा गलाने की दो भट्ठियाँ हैं जिनमे से पहली १६२१ मे तैयार हुई थी और दूसरी १६२४ मे। इन भट्ठियों से लगभग ७५० टन ढला लोहा प्रति दिन बनता है। १६५५ में इस कारखाने मे ८ लाख टन गला लोहा तैयार हुआ था। इन दोनों कारखानों के लिए कच्चा लोहा उड़ीसा से आता है।

कोयला कुलटी से दो मील दूर रामनगर कोल क्षेत्र तथा नूनोदिह और जितपुर की खानों से प्राप्त किया जाता है। चूने का पत्थर गगपुर के निकट बिसरा तथा

बरादौर और पाराघाट से प्राप्त किया जाता है। कारखाने के लिए जल की पूर्ति दामोदर नदी पर बनाये गए एक बड़े हौज से की जाती है। इस कम्पनी की विस्तार योजनाओं से इसकी उत्पादन क्षमता ३ लाख टन से बढ़ कर ८ लाख टन इस्पात प्रति वर्ष और ४ लाख टन कच्चा लोहा (बिक्री के लिए) प्रति वर्ष हो जायगी। यह विस्तार दिसम्बर १९५९ तक हो जायेगा। भारत सरकार ने इस कम्पनी को ७·९ करोड़ रुपये का ऋण दिया है। इसके अतिरिक्त १० करोड़ रु० की विशेष राशि और दी है। विश्व बैंक भी इसे दो ऋण क्रमशः ३०० लाख डालर और २०० लाख डालर के देगा।

नीचे की तालिका में भारत में तैयार होने वाले ढले लोहे और इस्पात का उत्पादन बताया गया है :—

लोहे और इस्पात का उत्पादन

	१९५०	१९५७
	(००० टनों में)	
कच्चा लोहा	१,५६२ ४	१,७८९·२
सीधी ढलाई	९- ४	११२८
लोह मिश्रित धातु	१८·०	६ ६
इस्पात के पिंड और ढलाई	१,४३७ ६	१,७१४ ८
अधूरा तैयार इस्पात	१,१४२ ४	१,४४ ०
तैयार इस्पात	१,००४ ४	१,३४६·४

द्वितीय योजना के अन्तर्गत इस्पात और ढले लोहे की माँग ४५ लाख टन और ७·५ लाख टन हो जाने का अनुमान लगाया गया है इस हेतु ६० लाख टन (लगभग ४५ लाख टन तैयार इस्पात) कच्चा इस्पात तैयार करने का जो लक्ष्य रखा गया है उसे जमशेदपुर और बर्नपुर के वर्तमान कारखानों का विस्तार करके भी पूरा किया जायेगा। इन दोनों कारखानों के विस्तार हो जाने के बाद लगभग ३० लाख टन इस्पात तैयार होगा। इसके अतिरिक्त तीन नये कारखाने भी स्थापित किए जा रहे हैं उनमें भी १०-१० लाख टन इस्पात तैयार होगा।

पहला कारखाना उड़ीसा में रूरकेला स्थान पर १७० करोड़ रुपये की लागत से बनाया जा रहा है। इसमें १९५९ तक कार्य आरम्भ हो जायेगा। यह ढलाई का

कारखाना होगा जहाँ केवल चपटे आकार की वस्तुएँ— अलग-अलग मोटाई की प्लेट, चादरे, पत्तियाँ और टिन की प्लेटे तैयार की जायेगी। इनका उपयोग जहाज और रेल के डिब्बे बनाने मे किया जायेगा। इस कारखाने के लिए १७० मील की दूरी पर स्थित बोकारो तथा २०० मील की दूरी झरिया से मिलेगा। ५० मील दूर बोनाई रियासत में तालडीह स्थान पर अच्छे किस्म की लोहे की खनिज मिलती है। चूने का पत्थर और मैगनीज भी निकट ही उपलब्ध है। विद्युत् शक्ति हीराकुड योजना से और जल ब्राह्म और कोइल नदियो से मिलेगा। यह कारखाना जर्मन फर्म के सहयोग से बन रहा है।

दूसरा कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई स्थान पर १३१ करोड रुपये की लागत से बनाया जा रहा है। इसमें भी १९५९ तक कार्य आरम्भ हो जायगा। इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लियों की है जिनसे ७५,००० लाख टन चादर तैयार की जा सकेगी। इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा २० मील दूर धाली राजहरा की पहाड़ियो से प्राप्त होगा। उत्तम कोकिंग कोयला १४० मील दूर झरिया से प्राप्त होगा। जल तन्दुला नहर से और चूना दुर्ग, रायपुर तथा बिलासपुर जिलो से और डालोमाइट मानेबर, पारसोदा, रामतोला और मारपारा तथा पाटपुर से प्राप्त किया जायगा। यह कारखाना रूसी सहयोग से बनाया जा रहा है।

तीसरा कारखाना दुर्गापुर मे १३८ करोड़ रुपय की लागत से बनाया जा रहा है। इसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लयों की होगी। यह कारखाना १९६० तक तैयार हो जायेगा। इसके लिए कोयला और लोहा बिहार की खानों से प्राप्त होगा।

चौथा कारखाना विशेष प्रकार का इस्पात बनाने के लिए बोकारो मे बनाया जायेगा।

भारत से अधिकतर ढला लोहा सयुक्त राज्य, इगलैंड, जापान और चीन को निर्यात किया जाता है। १९५५-५६ मे ८२ लाख रुपये के मूल्य का ढला लोहा और २६८ लाख का पुराना लोहा (Scrap) विदेशों को निर्यात किया गया।

सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Industry)

कपड़ा बुनने का उद्योग भारत का पुराना उद्योग है। आजकल बड़े पैमाने पर मिलों के विभिन्न भागों की सहायता से कपड़ा बुना जाता है, मशीनी शक्ति के बिना

चलने वाले हाथ करघों तथा विद्युत् चालित करघो से भी कपड़ा तैयार होता है। कहीं इसे बनाने के कारखाने छोटे हैं तो कहीं मझोले प्रकार के और कही कुटीर कर्मचारी अपने एक करघे से ही कपड़ा तैयार करता है। उद्योग मे लगी पूँजी, तैयार होने वाले माल के मूल्य, उद्योग मे काम करने वाले श्रमिकों की सख्या तथा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था मे महत्व की दृष्टि से कोई भी बड़ा उद्योग वस्त्र उद्योग से अधिक महत्व का नहीं है। कपड़े की सिर्फ बड़ी-बड़ी मिलों की प्राप्त पूँजी ११५ करोड रुपये के आस पास है और उनका उत्पादन ४०० करोड रुपये मे अधिक है तथा उनमे ८ करोड़ से अधिक लोग काम करते हैं।

सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्रीकरण विशेषतः कच्चे माल, ईंधन, रसायन, मशीन, श्रमिक और यातायात के मार्ग पर निर्भर रहता है। दिये हुए कारणों में से किसी एक की प्रचुरता इस उद्योग की उन्नति के लिए प्रायः पर्याप्त है। उदाहरण के लिए इगलैंड मे लकाशायर मे न तो कपास उगती है और न अधिक माँग ही है परन्तु भारत की विशाल माँग अँग्रेजी राज्य के समय उसके अधीन थी। इसीलिए कपास न होते हुए भी ब्रिटेन का सर्वप्रमुख उद्योग लङ्काशायर में उन्नत हुआ। इसी प्रकार भारतीय माँग पर ही जापान के सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति भी निर्भर थी। जापान मे भी कपास केवल नाम मात्र को ही पैदा होती है। उसकी आवश्यक उपलब्धि भारत से ही वहाँ जाती थी।

भारत में सूती वस्त्र के उद्योग की उन्नति निम्नलिखित कारणों से हुई :—

(अ) प्रचुर मात्रा में कच्चे माल की प्राप्ति।

(ब) मशीनों तथा कारखानों के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं के आयात की सुविधा।

(स) माँग क्षेत्रों के लिए सुगमता।

इस उद्योग की उन्नति में कोयले का कोई महत्व नहीं रहा है क्योंकि इसमे कोयले की खपत बहुत थोड़ी होती है। इस उद्योग पर जलवायु का प्रभाव केवल अदृष्ट रूप से होता है क्योंकि आजकल कारखानों में भाप द्वारा कृत्रिम आर्द्रता से सूत की कताई को सहायता मिल जाती है। आर्द्र वायु के लिए कारखानों को जलवायु पर निर्भर नहीं रहना पड़ता।

१ जनवरी १९५८ में भारत में ४७० वस्त्र बनाने के कारखाने थे जिनमें ३९५ कारखाने सूत भी कातते थे और कपड़ा भी बुनते थे और सिर्फ १७५ कारखाने केवल

सूत ही कातते थे। इन सब कारखानों में २,०१,२८० करघे और १३०.५४ लाख तकुए थे।

इन करघों और तकुओं का प्रयोग श्रमिकों के परिवर्तन (शिफ्ट) द्वारा बराबर रात और दिन होता रहता है। सूती कारखानों में जो सूत काता जाता है उसी से भारत

चित्र ६६—सूती वस्त्र उद्योग

के हाथ से चलने वाले करघों वाला घरेलू उद्योग भी उन्नत है। इस उद्योग के विकेन्द्रीकृत क्षेत्र में लगभग २५ लाख हाथ करघे वस्त्र उत्पादन में लगे हुए हैं। लगभग २७,६०० विद्युत्चालित करघे सूती कपड़ा बनाते हैं उनका उत्पादन २०-२२ करोड़ गज है।

१९५० मे भारत में ११,७४८ लाल पौड सूत और ३६,६६८ लाख गज सूती कपड़ा बनाया गया। १९५७ में यह उत्पादन क्रमशः १७,८०१ लाख पौंड और ५२,१७४ लाख गज था। इतना अधिक उत्पादन होते हुए भी हमारे देश मे कपड़े-की प्रति व्यक्ति खपत का औसत युद्ध के पहले केवल १५ गज ही था। १९५८ मे यह प्रति व्यक्ति खपत केवल १६·८ गज प्रति व्यक्ति ही थी। इसकी तुलना सयुक्त राज्य अमेरिका के ६४ गज प्रति व्यक्ति की खपत से की जा सकती है।

हमारे देश मे विभाजन के उपरान्त इस उद्योग के लिए पर्याप्त रुई उपलब्ध नहीं है। इस समय हमारे देश मे प्रति वर्ष लगभग ५० लाख गाँठे कपास आवश्यक हैं। देश में उपजी कपास इसका केवल ४४ लाख गाँठे ही है। इसलिए हमको विदेशों से लगभग ६ लाख गाँठे कपास मँगानी पडती है। यह कपास सयुक्त राज्य अमेरिका और मिस्र देश से आती है।*

बाहर से आई हुई कपास प्रायः लम्बे रेशे की होती है, और इसलिए अब हमारे देश में महीन कपड़ा अधिक बनने लगा है। हमारी अपनी कपास मोटे रेशे की होती है, जिससे केवल मोटा तथा मध्यम कोटि का कपड़ा ही बन सकता है। नीचे दी हुई तालिका में सूती उत्पादन दिया हुआ है। विदेशी रुई विशेषकर मिस्र, पूर्वी अफ्रीका और सयुक्त राज्य से आती है।

---

* कपास की खपत (लाख गाँठे)

वर्ष	निजी उपज	विदेशी	कुल
१९४७	३५	११	४६
१९५०	२४	१०	३४
१९५१	२७	११	३८
१९५२	३२	१०	४२
१९५३	३७	७	४५
१९५४	४०	७	४७
१९५५	४३	६	४९
१९५६	४४	६	५०

वर्ष	सूत (करोड़ पौंड)	वस्त्र (करोड़ गज)
१६५०	११७	३३६
१६५१	१३०	४०७
’६५२	१४५	४५६
१६५३	१४६	४८५
१ ५४	१५६	४६६
१६५५	१६ः	५०६
१६५६	१६७	५३०
१६५७	१७८	५३१

मिलों मे सूती कपड़े का उत्पान कुछ हद तक उपलब्ध मशीनों के अनुसार तथा कुछ हद तक देश मे ही उपलब्ध रुई के अनुरूप होता है। उद्योग के लिए आवश्यक ८८% रुई देश मे ही प्राप्त होती है। देश की रुई का अधिकाश भाग मोटे और मध्यम श्रेणी के कपड़े के उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त है। कपड़ा मिलों मे विभिन्न श्रेणी के कपड़े का उत्पादन कितना होता है यह नीचे की तालिका से ज्ञात होता है :—

कपड़े का उत्पादन का स्वरूप (प्रतिशत में)

वर्ष	मोटा कपड़ा	मध्यम	बारीक	बहुत बारीक
१६५३	१२ ३	६४ ३	१७·२	६·२
१६५४	१०.२	७३·६	६·२	६ ७
१६५५	११·२	७३·८	६·२	५·६
१६५६	१३ ६	७१ ५	८ ४	६·५
१६५७	२१ ६	६५·६	७ २	५·०

योजना में—प्रथम पचवर्षीय योजना के अधीन ४७० करोड गज कपड़ा और १६४ करोड़ पौंड सूत पैदा करने के लक्ष्य रखे गए थे जो योजना की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही पूरे कर लिए गए थे। द्वितीय योजना के अतर्गत सूती वस्त्र उद्योग के लक्ष्य घोषित किये गये। यह मान कर कि १६६० ६१ तक प्रति व्यक्ति पीछे कपड़े की औसत खपत बढ कर १८·५ गज हो जायगी, ७४० करोड़ गज कपड़ा प्रति वर्ष तैयार करने का लक्ष्य रखा गया। १०० करोड़ गज कपड़े का निर्यात होने

का अनुमान लगाया और इस प्रकार कुल उत्पादन ८४० करोड़ गज का रखा गया। उस समय मिलों, हाथ करघों तथा विद्युत्चालित करघों का वर्तमान उत्पादन ६७० करोड़ गज आका गया था इसलिए उत्पादन लक्ष्य के आधार पर तीन क्षेत्रो के द्वारा शेष १७० करोड़ गज का उत्पादन करने की व्यवस्था की गई। मिलों मे १८,००० करघे और लगाये जायेंगे जो सिर्फ निर्यात के लिए ३५ करोड़ गज कपडा प्रति वर्ष तैयार करेंगे।

निर्यात व्यापार—भारत अनेक वर्षों से कपड़े का एक बहुत बड़ा निर्यातक चला आ रहा है। पिछले युद्ध के सालों मे भारत का निर्यात काफी बढा है। १९५० मे उसका निर्यात ११०·९ करोड़ गज कपड़े का हो गया और विश्व के कपड़े के व्यापार मे उसका भाग १७·३% हो गया। कोरिया युद्ध मे हमारा कपड़े का निर्यात १३० करोड़ गज हो गया। हाल के वर्षों में कपड़े का निर्यात निम्नानुसार रहा :—

वर्ष	मिल का बना कपड़ा (करोड़ गज मे)
१९५४	८९ ८०
१९५५	८१ ५४
१९५६	७४ ४२
१९५७	८५·४९

१९५७ मे ८५ ४ करोड़ गज कपड़े का निर्यात किया गया इसमे से २३ ३ करोड़ गज मोटा कपड़ा, ५९ ० करोड़ गज मध्यम श्रेणी का कपड़ा, १·२ करोड़ गज बारीक कपड़ा और १·७ करोड़ गज बहुत बारीक कपड़ा था। यह निर्यात दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका, ईराक, फारस, लङ्का, ब्रह्मा, अदन, सीरिया, थाइलैण्ड और अरब आदि देशों को होता है।

सूती कपड़े के हमारे निर्यात की महत्वपूर्ण बातें ये हैं :—

(१) हमारे कुल निर्यात का ९०–९२% भाग मोटा तथा मध्यम श्रेणी का कपड़ा होता है।

(२) कपड़े के कुल निर्यात मे बहुत बड़ा भाग बिना धुले कोरे कपड़े का होता है जिसे आयातक देश पुनर्निर्यात के लिए मँगवाते हैं।

(३) निर्यात का अधिकाश भाग एशिया तथा अफ्रीका के देशों को जाता है।

(४) निर्यात का बहुत कम प्रतिशत रंगा या छपा और अन्य प्रकार से भेजा जाता है।

भारत सरकार ने सूती कपड़े के निर्यात को बढ़ाने मे निम्न महत्वपूर्ण कदम उठाये है :—

(१) विदेशों मे सूती कपड़े के बाजारों की स्थितियों का गहन अध्ययन करने तथा निर्यात बढ़ाने के लिए सूती वस्त्र निर्यात संवर्धन परिषद की स्थापना की गई है।

(२) निर्यात होने वाले माल पर लगे उत्पादन शुल्क में छूट देना।

(३, निर्यात किए जाने वाले कपड़े पर किस्म नियंत्रण तथा निरीक्षण की योजनाएँ लागू करना।

(४) निर्माताओं और निर्यातकों को निर्यात के लिए माल बनाने के आवश्यक कच्चा माल समय पर तथा उचित दामों पर दिलाने में सहायता करना.

(५) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों मे भाग लेना और ससार के मुख्य केन्द्रों में व्यापार केन्द्र और वाणिज्यिक प्रदर्शन कक्ष चालन।

इस समय सूती वस्त्र उद्योग के सम्मुख निम्न समस्याए हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है :—

(१) देश मे अभी भी लम्बे रेशे वाली उत्तम कपास का उत्पादन आवश्यकता से कम होने के कारण विदेशों से आयात करना पड़ता है। किन्तु अब कुछ समय से नवीन सिंचित क्षेत्रों मे लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन बढ़ाये जाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। आंध्र और मध्य प्रदेश में देशी तथा अमरीकन कपास की किस्मों में सुधार किया गया है। बम्बई मे भी लम्बे रेशे वाली एशियाई कपास पैदा करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(२) यह उद्योग १०० वर्षों से भी पुराना है किन्तु अब भी मिलों में काम में आने वाले यत्रादि विदेशों से ही मॅगवाये जाते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए द्वितीय योजना के अन्तर्गत देश में ही मशीनों के उत्पादन के लिए १७ करोड़ रुपयों का आयोजन किया गया है।

(३) भारत मे लगभग १५० मिल ऐसी हैं जो अपने आकार की तुलना में कम उत्पादन करती है। ६० मिलों म ता उत्पादन केवल सीमान्त रेखा तक ही है। अतः स्पष्ट है कि अधिकाश मिल अनार्थिक इकाइयाँ ही हैं। इसी कारण मिलों की सख्या अधिक होते हुए भी उत्पादन कम है।

(४) सूती वस्त्र उद्योग की कार्य-समिति के अनुसार कताई विभाग में ६५%

मशीनें सन् १६२५ के पहले लगाई गई थीं और ३०% तो सन् १६१० से भी पहले। बुनाई विभाग मे स्थिति और भी असतोषजनक है। ७५% कर्घे १६२५ के पूर्व के और ४६% सन् १६१० के पूर्व के हैं। साधारणत. एक मशीन ३० वर्ष तक काम दे सकती है। अधिक घिस जाने पर उत्पादन व्यय अधिक हो जाता है। इसीलिए भारतीय कपड़ा विदेशी प्रतियोगिता मे नही टिक पाता। अत. उत्पादन व्यय को कम करने के लिए कारखानों के आधुनीकरण और वैज्ञानिककरण की बड़ी आवश्यकता है।

(५) हाथ करघा उद्योग ' पूर्ण सामजस्य होना चाहिए।

उद्योग का केन्द्रीयकरण—इस देश मे थोड़ा बहुत सूती वस्त्र-उद्योग लगभग सभी बड़े-बड़े नगरों में होता है परन्तु इस उद्योग के मुख्य क्षेत्र बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, बङ्गाल तथा मध्य प्रदेश में है। सबसे बड़े केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद, नागपुर, मद्रास, कानपुर, और कलकत्ता हैं। इस उद्योग का विवरण चित्र में दिया है।

नीचे दी हुई तालिका मे इस उद्योग का प्रादेशिक विवरण दिया गया है '—

राज्य	कारखाने	तकुए (हजार मे)	करघे (हजार मे)
बम्बई	२११	६,५०६	१३६
मद्रास	६५	२,०३४	६
उत्तर प्रदेश	२६	८११	१३
मध्य भारत	१८	४४५	११
बङ्गाल	४०	५०५	११
मध्य प्रदेश	११	३६७	७
मैसूर	११	२२३	३
हैदराबाद	७	१५८	३
राजस्थान	१२	१६६	४
पूर्वी पंजाब व दिल्ली	११	२१३	५
बम्बई नगर	६५	३०१७	६५
अहमदाबाद	७४	२,०५५	४२
योग भारत	४६१	१,१८,८८	२०७

चित्र ६७ – गुजरात मे सूती कपड़े के उद्योग केन्द्र

करघा उद्योग (Handloom Industry)

सूती वस्त्र-उद्योग का एक महत्वपूर्ण अंग करघा उद्योग है। भारत के कोने-कोने में यह उद्योग प्राचीन समय से चलता आया है। इस समय देश भर में प्रायः २८½ लाख हाथ से चलने वाले करघे कार्य कर रहे हैं। युद्ध-काल में हाथ से चलने वाले करघों द्वारा लगभग १७० करोड़ गज कपड़ा प्रति वर्ष बनता था। परन्तु १९५७ में यह उत्पादन १६८ करोड़ गज का हुआ। कमी का मुख्य कारण सूती कारखानों को सूत मिलने की कठिनाई है। निम्नलिखित विवरण मे भिन्न भिन्न राज्यों में हाथ से चलने वाले करघा की संख्या दी हुई है :—

	करघों की संख्या	
मद्रास	८½	लाख
उत्तर प्रदेश	२½	”
बिहार	२	”
बम्बई	१½	”
हैदराबाद	१½	”
बङ्गाल	१	”
मध्य प्रदेश	१	”
उड़ीसा	१¼	”
त्रावणकोर	१	”

हाथ से चलने वाले करघो के कुछ केन्द्र ये हैं, नागपुर, बनारस, गोरखपुर, टॉडा, पूना, मदुरा, कालीकट, लुधियाना और अमृतसर। करघे की अधिक उन्नति करने के लिए सरकार बड़ा प्रयत्न कर रही है। अभी हाल मे एक नए प्रकार का चरखा बनाया गया है इसको अम्बर चरखा कहते है। इससे मजबूत सूत शीघ्र काता जा सकेगा। अगली विकास योजना में करघों से ३०० करोड़ गज कपड़ा बनवाया जायगा।

खादी का उत्पादन तथा विक्रय

वर्ष	परिणाम (दस लाख गजों मे)	मूल्य (करोड़ रु० में)	बिक्री का मूल्य (करोड़ रु० में)
१९५३-५४	१०·२६	१·७३	१·८
१९५४ ५५	१६ ३६	३·३१	२ ६८
१९५५-५६	२४·७७	४·७८	४·२६
१९५६-५७	२२·९५	४·३३	४·७७

पाट-उद्योग (Jute Industry)

लाभ की दृष्टि से भारत का पाट उद्योग बहुत महत्वपूर्ण है। इस महत्व का कारण पाट से बनी हुई वस्तुओं की उपयोगिता है। सामान बाँधने के लिए संसार में अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नही है जिसमें पाट की सी मजबूती और सस्तापन प्राप्त हो। पाट के बने हुए बोरे अथवा रस्सी इतने मजबूत होते हैं कि सामान बाँधने के लिए उनका प्रयोग अनेक बार किया जा सकता है। भारत को देश के विभाजन के पहले पाट की उपज में एकाधिकार प्राप्त था। भारत और पाकिस्तान को छोड़ कर और कहीं भी पाट नहीं उपजता है। विभाजन के बाद भारत मे एक-चौथाई से कम पाट की खेती का क्षेत्र रह गया है।

पाट की वस्तुओं से हमारे देश को विदेशी मुद्राएँ प्राप्त होती हैं; क्योंकि ससार में कोई भी और देश ऐसा नहीं है जहाँ कि पाट का उद्योग इतना उन्नत हो जितना कि भारत में। अनुमानतः एक वर्ष मे तैयार किए जाने वाले जूट के माल का कुल मूल्य लगभग १३० करोड़ रु० होता है। १९५० में इस देश मे १० लाख टन पाट का सामान बनाने की शक्ति कारखानों में थी। इस वर्ष यहाँ पर लगभग ७२,३६५

करघे थे जिनमे से लगभग ६८ हजार टाट बनाने के लिए और शेष अन्य वस्तुएँ बनाने में लगे थे। इस उद्योग मे लगभग ३ लाख मजदूर लगे है।

इस उद्योग का विवरण नीचे दिया गया है।

पाट-उद्योग १६५७

प्रदेश	कारखाने	टाट के करघे	बोरे के करघे	प्रतिशत	करघों का योग
बगाल	१०१	४३,२०८	२२,२२०	६५%	६५,४२८
आंध्र	४	२८७	७५५	१%	१,०४२
बिहार	३	८६	८३७	१%	६२६
उत्तर प्रदेश	३	३०२	५१६	१%	८२१
मध्य प्रदेश	१	४२	१७८	—	२२०
कुल सख्या	११२	४३,६२८	२४,५०६		६८,४३७

संसार में पाट के करघों का वितरण (१६५६)

देश	करघे	प्रतिशत
भारत	६८,४३७	५३%
जर्मनी	६,६००	८%
ब्रिटेन	८,५००	७%
फ्रास	७,०००	६%
इटली	५, ००	४%
बेल्जियम	३,०००	२½%

हमारे देश में पाट की सबसे अधिक वृद्धि बगाल में ही हुई क्योंकि यहीं पर पाट के लिए उपयुक्त जलवायु प्राप्त है। इस देश का प्रायः पाट-उद्योग कलकत्ता के निकट ही केंद्रित है क्योंकि वहीं इस उद्योग के लिए अनेक सुविधाएँ मिलती हैं। हुगली नदी

के दोनो किनारो पर पाट के कारखाने बने हुए हैं। इन कारखानों के लिए देश के भीतरी भाग से नावों द्वारा कच्चा पाट आता है। कारखानों को चलाने के लिए रानीगंज से कोयला लाने मे भी सुविधा है। कलकत्ता के बन्दरगाह द्वारा बाहर से मशीने आसानी से आ जाती हैं। आसाम से बैंचिंग तेल (मिट्टी का तेल) भी आसानी से इन कारखानों को मिल जाता है। गंगा के मैदान की घनी जनसंख्या से इन कारखानों को श्रमिक भी सरलतापूर्वक मिल जाते हैं। यहाँ का बना हुआ माल भी हुगली द्वारा विदेशों को सरलतापूर्वक जाता है। कलकत्ते के अतिरिक्त पाट के कारखाने बिमलीपट्टम, कानपुर और समस्तीपुर, शाहजहाँनवाँ मे हैं।
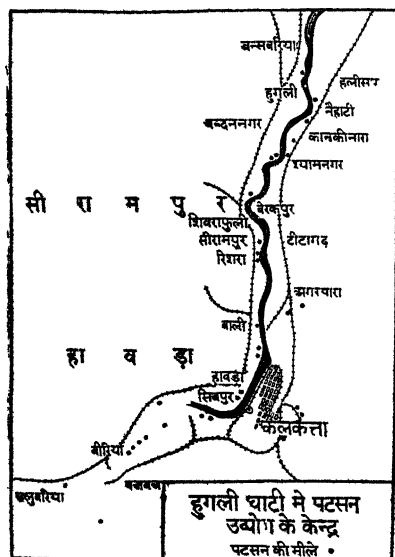
चित्र ९८—पटसन उद्योग के केन्द्र

भारतीय पाट-उद्योग की उन्नति का सम्बन्ध युद्धों से अधिक है। पहले इस उद्योग की उन्नति १६वीं शताब्दी मे क्रीमिया युद्ध के समय हुई थी। प्रथम विश्व-युद्ध में और द्वितीय विश्व-युद्ध मे पाट के बोरों की माँग अधिक हुई, जिससे इस उद्योग का विकास हुआ।

पाट का स्थान लेने के लिए ससार में कई देशों ने अन्य वस्तुओं का उपयोग करना चाहा था, परन्तु अभी तक इस ओर कोई पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई है। पूर्वी अफ्रीका में सीसल का उपयोग किया गया। ब्राजील में करोवा का प्रयोग किया गया। यह एक ऐसा पौधा है जिसकी पत्तियाँ ५ या ६ फीट लम्बी होती हैं, जिनमें से प्रत्येक पत्ती में प्रायः २५ ग्राम सूखा रेशा निकलता है। यह पौधा सानफ्रांसिसको नदी की घाटी में अधिकतर पाया जाता है। यह रेशा सफेद होता है और इसकी कताई सरलता से हो सकती है। सयुक्त राज्य अमेरिका में कपड़े तथा मोटे कागज के बोरे

पाट के बोरों के स्थान मे कभी-कभी प्रयोग होते हैं। परन्तु न तो यह इतने सस्ते और न इतने मजबूत होते हैं जितना कि पाट क बोरे होते हैं।

भारत से जूट के सामान का निर्यात इग्लैंड, जर्मनी, फ्रास, इटली, दक्षिण अफ्रीका, मिश्र, इडोनेशिया, जापान, कनाडा, क्यूबा, थाईलैंड और अर्जेनटाइना देशों को होता है। १९५५-५६ में भारत से ११३ करोड़ रुपये का जूट का माल इन देशों को निर्यात किया गया।

जूट उद्योग की समस्यायें

इस समय जूट उद्योग क सम्मुख निम्न समस्याय हैं :—

(१) **कच्चे जूट की कमी**—इसे भारत मे जूट का अधिक उत्पादन बढ़ा कर हल किया जाय और जूट उद्योग को स्वावलम्बी बनाया जाय। कच्चे जूट के उत्पादन में सरकारी प्रयत्नों द्वारा काफी वृद्धि हुई है। १९४७-४८ में जहाँ १६.५ लाख गाँठें पैदा होती थी वहाँ १९५७ ५८ मे ४०.८ लाख गाँठे पैदा हुई। अब जूट उत्पादन मे देश इतना आत्मनिर्भर हो गया है कि उसे अपनी कुल आवश्यकता का केवल १०% कच्चा जूट ही पाकिस्तान से मँगवाना पड़ता है। जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की हलचलों का एकीकरण करने के हेतु भारत-सरकार ने एक केन्द्रीय देख-रेख सगठन स्थापित किया है। यह सगठन प्रति एकड अधिक उपज करने, फसल की किस्म को सुधारने का ध्यान रखता है। इसके लिए यह अच्छे बीज, उर्वरक, खेती की अच्छी प्रणालियों, पौधों की रक्षा, डठल सड़ाने के लिए अधिक तालाबों की व्यवस्था करने की ओर भी ध्यान देता है।

(२) **युक्तियुक्त संगठन और आधुनिकीकरण**—उत्पादन विधियाँ युक्तियुक्त और उन्नत की जायें और इसके लिए नवीनतम ढग की मशीनें तथा उपकरण लगाये जायें। कताई-बुनाई विभाग मे नई मशीने लगाने और आधुनिक प्रणालियाँ काम में लाने की आवश्यकता है। इससे काम अच्छा हो सके और उत्पादन की लागत भी घटाई जा सके। अभी तक आधुनिकीकरण क कार्यक्रम को भी उद्योग ५०% पूरा कर चुका है। जिन मिलों में नई मशीनें लग चुकी हैं उनमें तीन पालियाँ चलाई जाती हैं। इनके द्वारा तैयार की गई सुतली से अधिक करघे चलाये जा सकते हैं।

(३) जूट के माल के उत्पादन को ऐसे कारखानों में ही केन्द्रित किया जाय जो श्रेष्ठ और आधुनिक ढङ्ग के हों। जो कारखाने अनार्थिक हैं उन्हें बन्द कर दिया

जाय और उनमें होने वाला उत्पादन आधुनिक मशीनो वाले अन्य कारखानों में किया जाय।

(४) निर्यात सवर्द्धन का कार्यक्रम उत्साह के साथ चलाया जाय जिससे खोये हुए बाजार फिर हाथ में आ जायें और वर्तमान बाजार भी बने रहें। जूट के माल के प्रतिवर्ष बिक्री के विकास के लिए भारत सरकार निरतर सहायता दे रही है। भारतीय जूट मिल्स एसोसियेशन के ब्रिटेन और अमरीका मे शाखा कार्यालय हैं। पहला कार्यालय यूरोपीय क्षेत्र मे और दूसरा अमरीका, कनाडा और मध्य तथा दक्षिण अमरीका मे व्यापारिक सम्पर्क करता है। इसके अतिरिक्त सद्भावना मडल विदेशों मे बाजारों का अध्ययन करने के हेतु जाते हैं।

(५) उद्योग के उत्पादन विविध प्रकार के किये जायें और जूट का नये-नये कार्यों में प्रयाग किया जाय। इस सम्बन्ध मे जूट मिल्स एसोसियेशन कई नए परीक्षण करा रहा है। दरियों के नीचे अस्तर लगाने मे भी जूट का प्रयोग आरम्भ हुआ है।

नीचे दी गई तालिका में जूट के माल का उत्पादन निर्यात और आन्तरिक उपयोग द्वारा हुई खपत को दिखाया गया है :—

वर्ष	उत्पादन (००० टनों में)	निर्यात	उपयोग आतरिक उपयोग	योग
१९५४-५५	१००३ २	८५६ ९	१३७·६	९९४·७
१९५५-५६	१०९५ ०	८७१ ६	१९०·०	१०६१ ६
१९५६ ५७	१०२५ २	८५९ १	१७९ ०	१०३८ १

पाकिस्तान निर्माण के बाद से ही भारत मे जूट की कमी होने लगी थी किन्तु इस कमी को अब अतिरिक्त उत्पादन बढ़ाकर दूर किया जा रहा है। जूट उद्योग को ६५ लाख गाँठों की आवश्यकता पड़ती है और इसलिए अपनी आवश्यकता की कुछ पूर्ति हमें पाकिस्तान से आयात कर पूरी करनी पड़ती है। कलकत्ते में जो भारतीय और पाकिस्तानी जूट पहुँचता है उसका विवरण इस प्रकार है :—

वर्ष	भारत से (००० गाँठे)	पाकिस्तान से	योग
१९५४-५५	४,३०५	[illegible]	५,५१६
१९५५ ५६	४,७५३	१,४२९	६.१८२
१९५६ ५७	५,४६३	६२५	६,०८८

१६५५-५६ में हुए निर्यात (८७५ हजार टन) और विदेशो से बढती हुई प्रतिस्पर्धा को ध्यान मे रखते हुए द्वितीय योजना मे निर्यात का लक्ष्य ६०० हजार टन रखा गया है। इस अवधि मे घरेलू आवश्यकता में भी वृद्धि होने की आशा है। अस्तु योजना काल मे १२ लाख टन जूट क माल की माँग का अनुमान लगाया गया है अतः उत्पादन भी इतना ही होगा।

ऊनी वस्त्र-उद्योग

ऊनी वस्त्र-उद्योग का महत्व इस देश में बहुत थोड़ा है। यहाँ के गर्म जलवायु
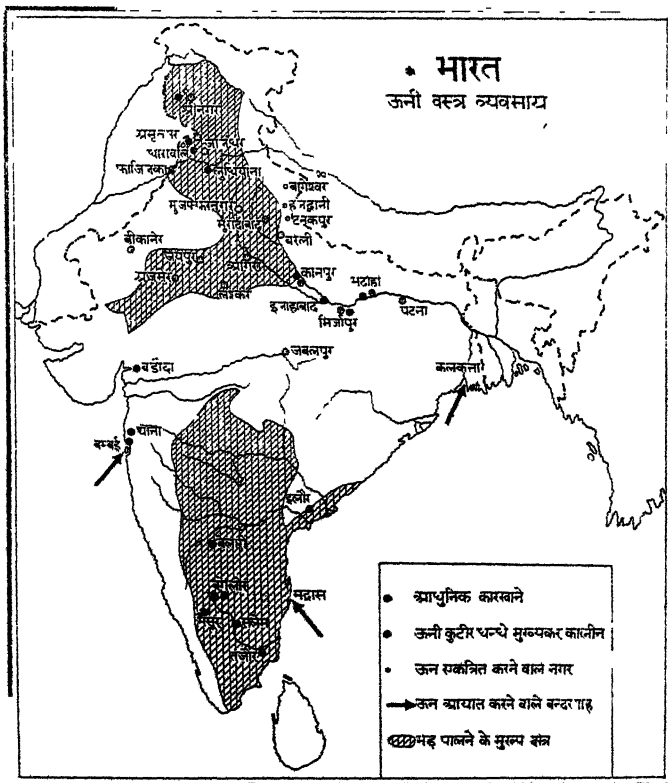
चित्र ६६—ऊनी वस्त्र उद्योग

के कारण ऊनी वस्त्रो का प्रयोग कम होता है। यहाँ पर ऊन भी बहुत थोड़ा होता है और इसलिए कोई विशेष सुविधा इस उद्योग के लिए यहाँ नही है। भारत मे सबसे बड़ा ऊनी कपडे का कारखाना कानपुर मे स्थित है। अहमदाबाद, लुधियाना, बम्बई और बगलोर मे भी ऊनी कपड़े क कारखाने बने है। १६५६ मे भारत मे ऊनी कपड़े के २२ कारखाने थे। इनमे लगभग ६ ५ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा १७ हजार मजदूर काम करते हैं। भारत मे ऊनी वस्त्र का विस्तार मुख्यरूप से १६१६-२० और १६५०-५७ के बीच हुआ है, जैसा कि नीचे की तालिका मे स्पष्ट होगा :—

उद्योग की क्षमता

	१६०६	१६५०
ऊन कातने के तकुए	५०,०००	६०,६७६
वर्स्टेड कातने के तकुए	३७,५००	१,१७,३५६
शक्तिचालित कर्घे	२,३००	४,०४१

भारत मे कई प्रकार के ऊनी कपड़े बनाये जाते हैं जिनमे मुख्य कोटि का कपड़ा, पट्टू, ट्वीड, गलीचे, शाल, दुशाले, मफलर जर्सियाँ आदि हैं। १६५७ मे २७६ लाख पौंड ऊनी कपड़े का उत्पादन किया गया। विभिन्न प्रकार के ऊनी कपड़ों का उत्पादन इस प्रकार था :

	१६५५	१६५७
ऊनी तागा (लाख पौंड)	१०३	१३१
वर्स्टेड तागा ,,	१०४	१३७
ऊनी वर्स्टेड कपडा (ला० गज)	१४०	१८४

ऊनी माल म सबसे अधिक निर्यात होने वाली वस्तु गलीचे और कम्बल हैं। ये गलीचे उत्तर प्रदेश क मिर्जापुर, भदोही, बनारस और आगरा मे तथा काश्मीर मे श्रीनगर मे बनते है।

शक्कर उद्योग (Sugar Industrry)

क्यूबा के बाद गन्ना पैदा करने में भारत का स्थान प्रमुख है। गन्ने की खेती में लगभग १ करोड़ किसान लगे हैं, जो ५० लाख एकड़ भूमि पर ६७५ लाख टन [illegible] पैदा करते हैं। इस उद्योग ने विदेशी शक्कर के आयात मे खर्च होने वाले

वार्षिक विदेशी विनिमय में १६ करोड़ रुपये की बचत कर भारत को शक्कर के उत्पादन मे स्वावलम्बी बनाया है। इस उद्योग से आबकारी-कर के रूप में सरकार को १६३४-३५ से लगा कर सन् १६५४-५५ तक १२२७ करोड़ रुपये दिए हैं। इस अवधि में इस उद्योग से किसानों को ६२ करोड़ रुपये और मजदूरों को १३ करोड़ रुपये चुकाये गये। इस उद्योग में १६० मिलें है जिनके द्वारा १६ लाख टन से २० लाख टन तक शक्कर का उत्पादन किया जाता है, जिसका मूल्य १२० करोड़ रुपये हैं। इस उद्योग मे ७२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। देश मे शक्कर का उपभोग (गुड सहित) केवल २६५ पौंड प्रति व्यक्ति है। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

प्रति व्यक्ति चीनी की वार्षिक खपत

डेनमार्क	१०० पौंड	कनाडा	१०० पौंड
इंग्लैंड	८६ ५ ,,	आस्ट्रेलिया और क्यूबा	१३० ,,
सयुक्त राज्य अमेरिका	१०२ ,,		
भारत (गुड़ सहित)	२६ ५ ,,	न्यूजी लैंड	१०८ ,,
		आयर लैंड	११६ ,,

इस तालिका से यह ज्ञात होता है कि चीनी की वृद्धि के लिए इस देश में अभी बहुत बड़ा क्षेत्र है। जिस समय इस देश के ३६ करोड़ व्यक्तियों मे चीनी की खपत का औसत १२८ पौंड हो जायगा, उस समय यहाँ पर हजारों चीनी के कारखानों की आवश्यकता होगी। हमारे देश मे गन्ने की चीनी ही बनती है। ससार में सबसे अधिक चीनी गन्ने से ही बनती है। चीनी-उद्योग का विकास अभी थोड़े ही दिनों से इस देश मे हुआ है। इसकी उन्नति का वास्तविक कारण, ब्रिटेन के लौह-उद्योग की चीनी बनाने की मशीनें भारत मे बेचने की प्रबल इच्छा थी। प्रथम विश्व-युद्ध के पहले यहाँ पर प्रायः सब दानेदार चीनी जावा से आती थी। इसलिए कुछ लोगों का यह विचार हुआ कि यदि भारत में जहाँ उस समय ससार का सबसे अधिक गन्ना उपजता था, दानेदार चीनी बनाने का उद्योग चल जाय जिससे अग्रेज व्यापारियों को अपनी मशीनें बेचने का अवसर मिलता और यहाँ के लोगों की जीविका का एक और साधन हो जायगा। इसी उद्देश्य से १६३१ में जावा तथा अन्य विदेशों से आने वाली चीनी पर यहाँ इतना अधिक कर लगाया गया कि विदेशी चीनी का आना यहाँ प्रायः बन्द हो गया और इसी देश में ही दानेदार चीनी बनने लगी। १६१७-१८ में इस देश में लगभग ३० लाख एकड़ क्षेत्रफल में गन्ना बोया गया था। गन्ने के क्षेत्रफल

का प्रायः यही वार्षिक औसत रहता था। परन्तु सरकार द्वारा चीनी-उद्योग को सहायता मिलने के कारण यहाँ गन्ने की माँग बहुत बढ़ गई। इसलिए १९३३-३४ मे गन्ने का क्षेत्रफल बहुत विस्तृत हो गया। इसका औसत लगभग ४० लाख एकड़ क्षेत्रफल था। गन्ने का मूल्य भी चीनी उद्योग की उन्नति के कारण बढ़ गया, जिससे किसानों को गन्ना उपजाने मे अधिक लाभ होने लगा। इसी काल में उत्तम प्रकार का गन्ना कोयम्बटूर की अनुसधानशाला से उपलब्ध हो गया। गन्ने की उन्नति से भारत की खेती में एक प्रकार की क्राति हो गई। प्रायः सभी उपयुक्त क्षेत्रो मे अन्य फसलों की अपेक्षा गन्ना अधिक बोया जाने लगा। गन्ने की प्रकारों मे उन्नति होने के कारण गन्ने की प्रति एकड़ उपज भी बढ़ गई। १९५७-५८ में गन्ने की औसत प्रति एकड़ उपज लगभग १२½ टन थी। चीनी उद्योग की उन्नति से न केवल किसान को ही लाभ हुआ वरन् पूँजीपति को भी और इसलिये, सरक्षण मिलने के दूसरे वर्ष ही यहाँ चीनी के कारखानों की सख्या दुगुनी हो गई। सन् ३४ मे चीनी के कारखानों पर उत्पादन कर लगाया गया जिससे चीनी के प्राप्त लाभ मे कुछ कमी हो गई। इसी कारण नये कारखानों की सख्या अब कम हो गई है। निम्न तालिका में चीनी-उद्योग की उन्नति का वर्णन है।

	कारखाने	उत्पादन (लाखटन)	चीनी प्राप्ति %
१९३८-३९	१३९	६½	९.२
' ४८-४९	१०६	११	९.९
' ४९-५०	१३९	९¾	९.८
' ५०-५१	१३८	११	९.९
' ५१-५२	१३९	१५	९.५
' ५२-५३	१३४	१३	९.९१
' ५३-५४	१३४	१०	१०.०७
' ५४-५५	१३६	१६	९.९३
' ५५-५६	१४३	१६	९.८२
' ५६-५७	१४३	२०	९.७२
' ५७-५८	१४५	२२	१०.००

दानेदार चीनी की उन्नति करने की ओर इतना अधिक ध्यान रहा है कि गुड़ के तथा उसके व्यापार पर सरकार की ओर से समय-समय पर नियत्रण लगाये

गये हैं। परन्तु यह बात ध्यान देने की है कि हमारे देश की मानसूनी जलवायु गन्ने की उपज के लिए सहायक नहीं है। यह जलवायु का ही प्रभाव है कि हमारे देश में गन्ने की औसत प्रति एकड़ उपज केवल १४ से १५ टन है, जब कि जावा में वह ५६ टन, तथा हवाई मे ६२ टन और क्यूबा में २१ टन है। चीनी बनाने का व्यय सभी देशो मे लगभग एक-सा होता है, परन्तु गन्ने की औसत उपज में कमी व बेशी होने के कारण उतने ही व्यय मे किसी देश में अधिक चीनी तैयार होती है और किसी में कम। यही कारण है कि हमारे देश की चीनी जावा की चीनी की अपेक्षा अधिक महँगी पड़ती है। जावा का चीनी ससार मे लगभग सत्रह रुपया मन बिकती है, परन्तु हमारे देश में चीनी का भाव चालीस रुपया मन है।

हमारे देश मे चीनी के कारखाने वर्ष में केवल ३ या ४ महीने काम कर सकते हैं क्योंकि गर्मी की शुष्क ऋतु के कारण गन्ना इससे अधिक समय तक खेतों में नहीं रह सकता।

चीनी उद्योग की उन्नति के लिए गन्ने की फसल का होना ही सबसे बड़ी आवश्यकता है और इसके अतिरिक्त गधक का भी विशेष आवश्यकता पड़ती है। १९४९-५० में इस देश मे लगभग ५०,००० टन गधक की आवश्यकता पड़ी थी। गधक का प्रयोग चीनी को सफेद करने में होता है। कारखाने को चलाने के लिए कोयला, लकड़ी और गन्ने की खोई (बागास) भी आवश्यक होते हैं।

गन्ने की फसल सबसे अधिक सिंधु गंगा के मैदान में स्थित उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पजाब में ही होती है और इसीलिए भारत में सबसे अधिक चीनी का उद्योग इसी क्षेत्र मे हैं। दूसरा मुख्य क्षेत्र बम्बई में और तीसरा पूर्वी समुद्र तट पर है। निम्नलिखित तालिका मे चीनी उद्योग का विवरण दिया गया है :—

	कार्यशील कारखाने	औसत वास्तविक कार्यशील दिन	गन्ना पेरा गया	शक्कर पैदा की गई	शक्कर की प्राप्ति %
राज्य			(लाख टनों में)		
उत्तर प्रदेश	६८	१४७	९४ ८५	९ ४२	९ ७१
बिहार	२८	१३४	२७ ७०	२ ७५	९ ७९
बम्बई	१५	१४१	२८·५७	३·२०	११·६४
आन्ध्र	९	१६०	१५ ७१	१·५३	९·२९
मद्रास	४	१६४	७·३४	०·६४	८·८६
पञ्जाब	४	१६४	८·७४	०·८२	९·०६
बगाल	१	१४०	०·५९	०·०६	१०·४६
उड़ीसा	१	१५३	०·४२	०·०[illegible]	८·०५
मैसूर	४	२२९	७·१२	०·७२	१०·१५
मध्य प्रदेश	५	१२३	३·४७	०·३४	९·५६
केरल	१	१३६	१·०१	०·०८	९·०७
राजस्थान	३	१२८	१·५२	०·१४	९·६१
भारत का योग	१४३	१४५	१९७·०४	१९ ७५	१०·००

कच्चे माल की सुविधा के कारण समस्त देश क लगभग ६५% कारखाने उत्तर प्रदेश और बिहार में केन्द्रित हैं जिनसे देश के उत्पादन का ८५% प्राप्त होता है और शेष ८% बम्बई से, ४% आंध्र और ३% अन्य राज्यों से। उत्तर प्रदेश और बिहार में इस उद्योग के स्थानीयकरण के निम्न कारण हैं—

(१) गगा की ऊपरी मध्य घाटी मे उपजाऊ मिट्टी क कारण देश में सबसे अधिक गन्ना पैदा होता है।

(२) यहाँ बिना सिंचाई के ही गन्ना पैदा किया जा सकता है किन्तु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नलकूपों से सिंचाई करने की सुविधाएँ हैं। गन्ना बड़े-बड़े चकों मे बाया जाता है अतः कारखानों को सीधा ही खेतों से गन्ना मिल जाता है। अधिकाश कारखाने खेतों के निकट ही हैं।

(३) गन्ना पेरने के बाद जो पाते बच जाते हैं उन्हें ही भट्टियों में जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है।

(४) जनसख्या अधिक होने के कारण मजदूरों की कठिनाई नहीं होती।

(५) चीनी के उपभोग के लिए विस्तृत बाजार भी पास ही मे हैं।

उत्तर प्रदेश मे शक्कर बनाने क मुख्य केन्द्र कानपुर, गोरखपुर, मेरठ, पीलीभीत, लखनऊ, बनारस, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, बरेली, फैजाबाद हैं। बिहार में सारन, चम्पारन, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, दरभगा, बिहटा, जामी, बक्सर और डेरी ओन-सोन मुख्य केन्द्र हैं।

पिछले कुछ समय से शक्कर की मिले दक्षिणी भारत मे भी खोली गई हैं विशेषतः बम्बई, आंध्र और मद्रास मे। यहाँ गन्ने की फसल अधिक और उत्तम किस्म की होती है। उदाहरणार्थ बम्बई मे प्रति एकड़ ४० टन गन्ना होता है जिसमें ३ टन शक्कर प्राप्त की जाती है। कहीं कहीं तो १०० टन तक प्रति एकड़ उत्पादन होता है जिसमे ११ टन शक्कर प्राप्त होती है। दूसरे, दक्षिणी भारत मे गन्ना पेरने का समय भी अधिक होना है। औसतन दक्षिणी भारत मे १२२ दिन और उत्तरी भारत मे १२८ दिन गन्ना पेरा जाता है। किन्तु उत्तरी भारत की अपेक्षा यह उद्योग दक्षिण में अधिक विकसित नहीं हुआ है क्योंकि भूमि के असमान धरातल के कारण सिंचाई की सुविधाएँ नहीं हैं। गन्ना भी छोटे छोटे खेतों मे बोया जाता है और कई क्षेत्रों में गन्ने की अपेक्षा अन्य धन देने वाली फसल अधिक बोई जाती हैं।

मद्रास मे मद्रास और कोयम्बटूर, बम्बई में मनमाड़, मिराज, पूना, अहमदनगर, बीजापुर, धारवाड़ और शोलापुर, आंध्र में होजपेट, बेजवाड़ा और पीथापुर; तथा पजाब मे अमृतसर, फागवाड़ा और हमीरा और राजस्थान में भूपालसागर, विजयनगर और गगानगर इस उद्योग के अन्य मुख्य केन्द्र हैं।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अतर्गत चीनी की उत्पादन क्षमता २५ लाख टन प्रति मास बढ़ाने का लक्ष्य रक्खा गया है तथा उत्पादन का लक्ष्य २२½ लाख टन। इस उत्पादन को बढ़ाने के लिए ५४ नये कारखाने खोले जायँगे; ३ पुराने कारखानों को फिर स चलाया जायेगा और ६६ वर्तमान कारखानों का विस्तार किया जायगा।

यही कारण है कि कारखानों के खेतों में प्रति एकड उपज अधिक होती है।

चीनी बनाने मे जो शीरा प्राप्त होता है उसका अधिकतर भाग इस समय फेंक दिया जाता है परन्तु उसका कुछ भाग अलकोहल बनाने में आता है। १९५७ में

चित्र ७०—शक्कर का उद्योग

१०१ लाख गैलन इंजिनों में जलाने वाला, ५० लाख शुद्ध स्प्रिट और ३४ लाख मिश्रित स्प्रिट शीरे से बनाया गया। यह अलकोहल आजकल पैट्रोल के साथ मिलाकर मोटरें चलाने में काम आता है। सरकार की ओर से एक भाग अलकोहल और चार भाग पैट्रोल मिलाकर बेचने की आज्ञा है। भारत मे इस समय १६ कारखाने शीरे से अलकोहल बनाने में लगे हैं। यह सब चीनी-मिलों से सम्बन्धित है। सबसे अधिक कारखाने उत्तर प्रदेश में जहाँ सरदारनगर और कैप्टेनगज के कारखाने सबसे बड़े हैं। इन १६ कारखानों की वार्षिक उत्पादन क्षमता १$\frac{3}{4}$ करोड़ गैलन है। इनमें से १२ कारखाने उत्तर प्रदेश में, २ बिहार में और १-१ आंध्र, मैसूर, बम्बई और पजाब मे है। भारत में सबसे अधिक शीरा उत्तर प्रदेश में ही निकलता है और इसीलिए इसी प्रदेश में

सबसे अधिक अलकोहल बनता है। उत्तर प्रदेश में १९५६-५७ मे ३८ लाख टन शीरा प्राप्त हुआ, बिहार मे १२ लाख टन। चीनी-उद्योग की उन्नति के साथ-साथ शीरे की प्राप्ति भी बढ़ गई है। १९३१-३२ में केवल ६९ हजार टन शीरा निकला था, परन्तु १९५३-५४ में इसकी मात्रा पौने चार लाख टन थी। शीरे के मुख्य उत्पादक निम्न-लिखित थे :--

उत्तर प्रदेश	३,८१३ हजार टन
बिहार	१,२२८ ,, ,,
बम्बई	६८३ ,, ,,
आंध्र	६४३ ,, ,,
बगाल	४३ ,, ,,
मैसूर	१८७ ,, ,,
मध्य प्रदेश	१५० ,, ,,
मद्रास	२७० ,, ,,

अभी तक शीरे का उपयुक्त प्रयोग नहीं निकाला गया है और इसीलिए अधिकतर शीरा फेंक देना पड़ता है। इससे अलकोहल बनाने में कारखाने के लिए बहुत धन की आवश्यकता है तथा उसमे पेट्रोल की अपेक्षा लागत भी अधिक पड़ती है। इसीलिए सभी शीरे स अलकोहल बनाया जा सकता है।

शीरे का उपयोग करने के लिए निम्नलिखित सुझाव रक्खे गये है परन्तु इनमें से कोई भी सुझाव सफल नहीं हुआ है : –

१– पशुओं को खिलाने के लिए।

२—डामर मे मिलाकर सड़क बनाने के लिए।

३—खाद बनाने के लिए।

गन्ने की खोइया (रस निकलने के बाद सूखा भाग) से कागज बनाने का प्रयत्न भी किया गया है। शीरे का कुछ भाग अलकोहल बनाया जाता है। यह अलकोहल मोटर की स्प्रिट में मिलाया जाता है।

हमारे देश में गन्ने की उपज का अधिकतर भाग गुड़ और देशी शक्कर बनाने में काम आता है। १९४२-४३ में भारत में ५६ लाख टन गुड़ बनाया गया था और १९४७-४८ में ३५ लाख टन तथा १९५६-५७ में ५९ लाख टन। सबसे अधिक गुड़

उत्तर प्रदेश मे बनाया जाता है जहाँ उसकी खपत भी सबसे अधिक है। गुड़ का प्रति व्यक्ति औसत उपभोग निम्नलिखित है :—

उत्तर प्रदेश	४० पौंड
पजाब	३६ ”
बम्बई	१८ ”
बङ्गाल	१५ ”
बिहार	१० ”

थोड़ा-सा गुड़ ताड के रस से भी बनता है। यह गुड़ बङ्गाल मे अधिक बनता है क्योंकि ताड़ के पेड़ वहाँ पर अधिक हैं। थोड़ी-सी देशी शक्कर खडसारियो के यहाँ बनती है। १९५६-५७ मे लगभग एक लाख टन ऐसी शक्कर इस देश मे बनी थी।

भारत मे चीनी का उपभोग दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। इसका कारण कुछ तो जनसख्या की वृद्धि है, और कुछ लोगों मे चाय पीने की बढती हुई आदत है।

कागज-उद्योग

कागज का उद्योग केवल इसीलिए महत्वपूर्ण नही है कि इससे पुस्तके छापने का साधन प्राप्त होता है, वरन् समाचार पत्रों का अस्तित्व ही इस पर पूर्णरूपेण निर्भर है। परन्तु हमारा देश इस उद्योग मे बहुत पिछड़ा है। न केवल हमारे देश मे बहुत थोड़ा कागज बनता है वरन् वह निम्न कोटि का होता है। इस पिछड़ेपन के दो मुख्य कारण हैं। उपयुक्त कच्चे माल की कमी तथा रसायनो की कमी। १९५५-५६ में इस देश में २० कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता २०९,५०० टन थी। इनमें लगभग २४ हजार लोग काम करते थे। पिछले विश्व युद्ध के बाद यहाँ कागज की माँग मे अधिक वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का ब्यौरा नीचे दिया गया है :—

१९४८-४९	१¼ लाख टन
१९५०-५१	१½ ” ”
१९५१-५२	१¾ ” ”
१९५५-५६	२ ” ”

द्वितीय विकास-आयोजन आयोग के अनुसार यह माँग की वृद्धि १९६०-६१ में ३½ लाख टन हो जायगी। इतना होते हुए भी हमारे देश में कागज की प्रति वार्षिक खपत बहुत ही कम है। नीचे दिये विवरण से इसका ज्ञान होता है :—

प्रति व्यक्ति कागज की वार्षिक खपत का औसत

संयुक्त राज्य अमेरिका	३०० पौंड
कनाडा	१७५ ”
ब्रिटेन	१५० ”
स्वेडन	८१ ”
जर्मनी	७७ ”
मिस्र	४ ”
भारत	१½ ”

इस प्रति व्यक्ति खपत की कमी का मुख्य कारण इस देश मे अधिकतर लोगों का अशिक्षित होना है। इसका प्रमाण नगरों मे मिलता है। जहाँ शिक्षा अधिक है वहाँ अधिक खपत तथा शिक्षा की वृद्धि होने के कारण आधुनिक खपत मे वृद्धि पाई जाती है। इस देश मे कागज का उत्पादन निम्नलिखित है :—

कागज के प्रकार	१९५५ (हजार टन)		१९५७ (हजार टन)	
छपाई लिखाई का	१०५	”	१२७	”
लपेटने का	२४	”	३८	”
विशेष प्रकार का	५	”	७०	”
दफ्ती	२४	”	३८	”
पूर्ण योग	१६०	”	-१०	”

चित्र ७१—कागज व दियासलाई के कारखाने

भारत का आर्थिक भूगोल

१९५५-५६ में कागज की मिले निम्न प्रकार थी।

	कारखाने
राज्य	४
बगाल	२
उत्तर प्रदेश	१
उड़ीसा	१
बिहार	२
पजाब	४
बम्बई	१
हैदराबाद	१
मैसूर	१
केरल	१
मद्रास	१८

कागज के लिए कच्चा माल और रसायन दोनों ही आवश्यक हैं। जल की आवश्यकता भी बहुत पड़ती है। कारखाना चलाने के लिए कोयला भी चाहिए। कच्चे माल मे लुब्दी बनाने के लिए उत्तम वस्तु मुलायम लकड़ी होती है। परन्तु हमारे देश में ऐसी लकड़ी हिमालय के भीतरी भाग मे मिलती है, जहाँ से उसका निकालना असम्भव है। लकड़ी की कमी के कारण हमारे देश मे बाँस और जङ्गलो में उगने वाली लम्बी सवई घास का प्रयोग किया जाता है। थोड़े-बहुत फटे पुराने कपड़े भी लुब्दी बनाने में काम आते हैं। परन्तु बाँस की लुब्दी से कागज खुरखुरा और कड़ा बनता है। इसलिए विदेश से लकड़ी की लुब्दी उसमें मिलाने के लिए मँगाई जाती है बिना लकड़ी की लुब्दी मिलाये हुए बाँस से कागज बन ही नहीं सकता है। बाँस की उपलब्धि सबसे अधिक पाकिस्तानी क्षेत्र में है। विभाजन के पहले बङ्गाल के कारखानों में पहले यही से बाँस और घास आते थे। परन्तु आजकल उड़ीसा और मद्रास से बाँस मँगाया जाता है। कारखानों में आवश्यक रसायन भी अधिकतर बाहर से मँगाये जाते हैं।

इस उद्योग की उन्नति सरकारी संरक्षण के कारण ही हुई है। १९४७ में यह सरक्षण हटा दिया गया है। सरक्षण का प्रभाव इस बात से देखा जाता है कि १९३१-३२ में यहाँ पर कागज के ८ कारखाने थे जिसमें लगभग ४० हजार टन कागज बनता था। परन्तु १९३६-३७ में ६ कारखाने थे जिनमें ४८ हजार टन कागज बनता था। १९३१ ३२ में बाँस की लुब्दी का उत्पादन केवल ५ हजार टन था और १९३६-३७ में १६ हजार टन।

इस देश के कागज उद्योग की सबसे बड़ी कमी यहाँ पर समाचार पत्रों के कागज का न बनना है। आजकल समाचार-पत्र छापने के लिए इस देश में लगभग ८० हजार टन ऐसे कागज की आवश्यकता पड़ती है। यह कागज विदेशों से ही मँगाना पड़ता है। इस कमी को दूर करने के लिए भारत में इस समय ३ कारखाने बन रहे हैं; मैसूर में, हैदराबाद में सीरपुर और मध्य प्रदेश में नेपा। इनमे सबसे बड़ा कारखाना नेपा कारखाना है जिसमें लगभग ३० हजार टन समाचार पत्र का कागज प्रति वर्ष बनेगा। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि पहले समाचार पत्र का कागज केवल मुलायम लकड़ी से बनता था। परन्तु नवीन आविष्कारों के कारण अब कठोर लकड़ी से भी ऐसा कागज बनाया जा सकता है। कागज के कारखानों का सबसे बड़ा क्षेत्र कलकत्ता के निकट टीटागढ़ में है। यहाँ पर पहले निकटवर्ती क्षेत्र से जो अब पाकिस्तान में सम्मिलित है, कच्चा माल सुविधापूर्वक मिल जाता था। गङ्गा के किनारे होने के कारण यहाँ रसायन, मशीनें आदि मिलने में अधिक सुविधा है। कलकत्ते मे कागज की खपत भी बहुत है। रानीगज के निकट होने से यहाँ कोयला भी सरलता से मिल जाता है। रानीगज, राजमहेंद्री, पुनलूर, दालमियानगर, बृजराजनगर, नैहाटी, सहारनपुर, मैसूर, पूना, लखनऊ, जगाधरी आदि मे भी कागज के बड़े-बड़े कारखाने हैं।

हमारे देश में बाँस की लुग्दी की त्रुटियों को दूर करने के लिए बहुत अनुसधान की आवश्यकता है। यदि इसकी लुग्दी से उत्तम प्रकार का कागज बनने लगे तो ससार में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ कागज का कच्चा माल इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकेगा, जितना कि भारत मे बाँस से। पेड़ों की अपेक्षा बाँस बहुत शीघ्र उगता है और इसलिए इसकी नई-नई उपलब्धि कारखानों को प्रति वर्ष बड़ी सरलता से मिल सकती है। ससार मे पाकिस्तान को छोड़ कर और कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ इतना अधिक बाँस उगता है, जितना कि भारत मे।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत २१ नये कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं तथा ८ वर्तमान कारखानों का विस्तार किया जा रहा है। इनके फलस्वरूप देश में कागज की उत्पादन क्षमता २१०,००० टन से बढ़ कर ४५०,००० टन और वास्तविक उत्पादन २००,००० टन से बढ़ कर ३५०,००० टन हो जायेगा। अखबारी कागज की उत्पादन क्षमता और उत्पादन ३०,००० टन और ४,२०० टन से बढ़ कर ६०,००० और ६०,००० टन हो जायेगी। इससे प्रति व्यक्ति पीछे कागज का उपभोग ३ पौंड हो जायेगा।

सीमेन्ट का उद्योग (Cement Industry)

सीमेन्ट उद्योग भारत मे नवीन उद्योग है। इसकी अधिकतर उन्नति दूसरे विश्व युद्ध के काल में ही हुई। सीमेन्ट बनाने के लिए चूने की चट्टान मे कॉप और शेल एक नियत मात्रा में मिला कर बहुत अधिक तप्त करना पड़ता है। इसके लिए विशेष प्रकार की चूने की चट्टान आवश्यक होती है। इसमे थोड़ा-सा जिप्सम भी मिलाना पड़ता है। चट्टानों को तप्त करने के लिए उत्तम प्रकार का कोयला भी आवश्यक है। हमारे देश मे कुछ स्थान (जैसे लखेरी) ऐसे हैं जहाँ एक प्रकार की चूने की चट्टान मिलती है जिसमे बिना कुछ मिलाये ही उत्तम प्रकार की सीमेन्ट बनती है। सीमेन्ट बनाने में लगभग ५ प्रतिशत जिप्सम की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश में उपयुक्त प्रकार की चूने की चट्टान कोयले से अधिक दूर मिलती है। इसीलिए सीमेन्ट के कारखानो को रेल के निकट स्थापित करना पड़ता है। कहीं-कहीं जैसे पूर्वी तट पर बेजवाड़ा नगर में चूने की चट्टान रेल के अति निकट स्थित है। ऐसे स्थानों को सीमेन्ट बनाने मे विशेष लाभ है। जिप्सम अधिकतर सिंहभूमि में मिलता है और उपयुक्त कॉप (क्ले) देश मे प्रायः सभी क्षेत्रों मे आवश्यकतानुसार मिलती है।

सरकारी संरक्षण के कारण सीमेंट उद्योग की उन्नति यहाँ बहुत शीघ्र हुई है। १९५२ में इस देश में कुल २३ सीमेंट के कारखाने थे। १९३५-३६ मे केवल ६ लाख टन सीमेंट का उत्पादन यहाँ हुआ था। १९५७ मे इसका उत्पादन ५६ लाख टन था। इस उद्योग में लगभग ३३ हजार लोग काम करते हैं और इसमें ३५-४० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा देश में २९ कारखाने हैं। सीमेंट का उत्पादन और शक्ति का ब्यौरा नीचे दिया हुआ है।

	उत्पादन	शक्ति
१९४८—४९	१७ लाख टन	३३ लाख टन
,, ४९—५०	२२ ,, ,,	२९ ,, ,,
,, ५०—५१	२७ ,, ,,	३३ ,, ,,
,, ५१—५२	३३ ,, ,,	३९ ,, ,,
,, ५४—५५	४४ ,, ,,	४४ ,, ,,
,, ५५—५६	४९.९ ,,	४४९ ,, ,,
,, ५६—५७	५८.० ,,	४९.२ ,, ,,
,, ५७—५८	६६.३ ,,	५६.० ,, ,,

सीमेंन्ट के कारखाने भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे निम्नलिखित हैं।

राज्य	कारखाने	शक्ति (लाख टन)
बिहार	६	११
मद्रास + आन्ध्र	६	८
मध्य प्रदेश	२	४
बम्बई	५	८
पजाब	२	३
उत्तर प्रदेश	१	२
राजस्थान	२	५१/४

१९५७ मे देश में २९ कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता ६६ लाख टन की थी और वास्तविक उत्पादन ५६ लाख टन का हुआ। इस प्रकार कुल क्षमता का ८६% प्रयोग हुआ। इन २९ कारखानों मे से १३ कारखाने एसोसियेटेड सीमेट कम्पनी के, २ राज्य सरकारों के और १३ अन्य सीमित कपनियों के हैं।

इस समय सीमेट की कुल आवश्यकता ९० लाख टन से लेकर १ करोड टन प्रति वर्ष का है। १९६०-६१ तक सीमेट की माँग बढ कर १ करोड़ ४० लाख टन तक पहुँच जायेगी जिसके लिए १६० लाख टन सीमेट उत्पादन की क्षमता होगी। इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए कारखानों की सख्या बढ़ कर ५५ हो जायेगी। इन ५५ कारखानो में से २९ योजनायें तो वर्तमान खारखानों का पर्याप्त विस्तार करने की हैं जिससे ४० लाख टन सीमेंट अतिरिक्त पैदा करने की क्षमता होगी और २६ नए कारखाने स्थापित किए जायँगे जिनसे ४७ लाख टन सीमेट बन सकेगा।

दियासलाई उद्योग

भारत में दियासलाई का उद्योग बहुत दिनों से चल रहा है। परन्तु यहाँ पर उपयुक्त कच्चे माल की कमी के कारण इसकी उन्नति अधिक नहीं हो सकी है, परन्तु देश की इतनी बड़ी जनसंख्या मे दियासलाई की माँग बहुत अधिक है। आजकल सिगरेट और बीड़ी का अधिक प्रचार हो जाने से दियासलाई की माँग में अधिक वृद्धि हो गई है। इस उद्योग में मजदूरी का व्यय कच्चे माल के व्यय की अपेक्षा अधिक होता है। इसलिए बाहर से कच्चा माल मँगा कर इस उद्योग के चलाने की लागत में अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। वास्तव मे ससार मे कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ

दियासलाई के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ मिलती हों। भारत मे सीकें बनाने के लिए आम और पपीता की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। थोड़ी-सी मुलायम लकड़ी विलायत से मँगाई जाती है। कहीं-कहीं सेमर की लकड़ी भी सींकें बनाने मे प्रयोग होती है। परन्तु सेमर का मुख्य उपयोग दियासलाई के बक्स बनाने मे होता है। दियासलाई बनाने के लिए बहुत-सी लकड़ी अडमान और सुन्दरबन से आती है। फिनलैंड और रूस से ऐस्पेन नामक लकड़ी यहाँ मँगाई जाती है। गन्धक, फासफोरस तथा अन्य रसायन विदेशों से ही मँगाए जाते हैं। इससे देश मे सरेस और थोड़ी-सी लकड़ी ही दियासलाई के उद्योग क लिए प्राप्त हैं। सबसे अधिक दियासलाइयाँ कलकत्ता
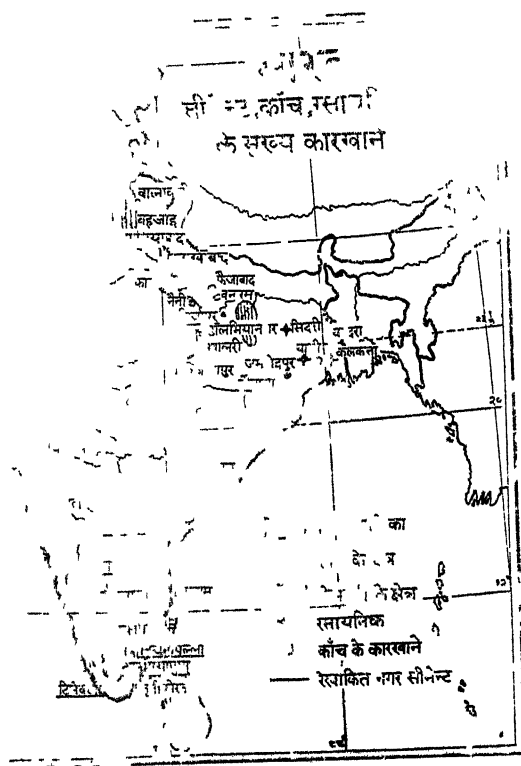
चित्र ७२—सिमेन्ट उद्योग

के निकट बनती हैं। इसके बाद दूसरा स्थान बम्बई का है। बरेली, मैसूर, केरल तथा सौराष्ट्र मे भी अधिक दियासलाइयाँ बनती हैं।

इस देश मे दियासलाई बनाने के छोटे-बड़े सब मिलाकर २४२ कारखाने हैं जिनमे लगभग २४,५०० लोग काम करते है। १६५७ मे इन फैक्ट्रियों मे ६० तीलियों वाली डिब्बियों के ५० ग्रॉस वाली ५.७ लाख पेटियाँ बनाई गई।

शीशे का उद्योग (Glass Industry)

नये प्रकार का शीशा इस देश मे अभी हाल मे ही बनने लगा है। इस उद्योग की उन्नति प्रथम विश्व युद्ध के काल में ही हुई थी। भारत मे इस उद्योग को चलाने के लिए कुशल कारीगरो की कमी है। परन्तु इस देश मे चूड़ियों की माँग अधिक होने के कारण यहाँ शीशे की खपत बहुत होती है। रसायन और उत्तम प्रकार की बालू की भी कमी इस देश में है। यही कारण है कि यहाँ पर योरोप अथवा अमेरिका मे बने हुए शाशे के समान यहाँ का शीशा नही होता है। शीशा बनाने योग्य बालू भारत मे केवल कुछ स्थानो मे इलाहाबाद के निकट स्थित लौहगरा और बड़गड़ मे है जहाँ पहाड़ियो की चट्टान को पीस पर बालू बनाई जाती है। बड़ौदा के निकट शखेड़ा तथा पेढ़ अमली मे साबरमती नदी से शीशा बनाने के लिए बालू मिलती है। जबलपुर, होशियारपुर मे स्थित जेजों—दुआबा, सवाई, माधौपुर, (जयपुर) मैसूर, मगलहाट, पतरा घाटा (राजमहल पहाड़ी), मे शीशा बनाने के योग्य बालू मिलती है। सिहभूमि और मध्य प्रदेश में शीशे की भट्ठी बनाने के लिए अग्नि-मिट्टी भी मिलती है। रसायन, (विशेषकर सोडा-ऐश और गधक) विदेशों से मँगान पड़ते हैं। चूँने का पत्थर, शोरा काफी तादाद मे यहीं मिलते हैं।

इस उद्योग का आवश्यक सामान दूर-दूर से लाना पड़ता है। इसलिए शीशे के कारखानों की स्थिति अधिकतर चतुर कारीगर मिलने पर ही निर्भर है। यह उद्योग अधिकतर गगा के मैदान मे ही केन्द्रित है, क्योकि वहाँ कोयला, शारा, नमक, चतुर कारीगर और रेलमार्गों की सुविधा अधिक है। १६३५ मे भारत के ५५ शीशे के कारखानों में ४७ कारखाने इसी मैदान मे थे। १६५७ मे इस देश में २२५ शीशे के कारखाने थे जिनमे ६३ चूड़ियाँ बनाने के कारखाने थे। इनका विवरण नीचे दिया है :—

प्रदेश	कारखाने	प्रदेश	कारखाने
बगाल	३०	पजाब	४
बम्बई	२२	मध्य प्रदेश	५
उत्तर प्रदेश	२१	दिल्ली	२
बिहार	८	उड़ीसा	१
मद्रास	८	अन्य	८

विशेष प्रकार का प्लेट ग्लास बनाने के लिए यहाँ पर ३ कारखाने हैं, जिनकी शक्ति ११ हजार टन है।

भारत मे काँच का उद्योग कुटीर धंधे और आधुनिक ढग दोनों ही प्रकार से होता है। कुटीर धधे के रूप मे काँच के सामान बनाने के उद्योग का केन्द्र उत्तरी भारत मे फिरोजाबाद और दक्षिण में बेलगाँव है। फिरोजाबाद मे चूड़ियाँ बनाने की लगभग ६३ छोटी-छोटी फैक्ट्रियाँ हैं जहाँ काँच की रेशमी चूडियाँ बनती हैं। उत्तर प्रदेश मे इस उद्योग के अन्य केन्द्र एटा, फतहपुर, शिकोहाबाद आदि हैं। फिरोजाबाद मे इस उद्योग में लगभग ५०००० व्यक्ति लगे हैं। यहाँ का वार्षिक उत्पादन १६ हजार टन का है, जिसका मूल्य ४ करोड रुपये हैं।

आधुनिक ढग के कारखाने उत्तर प्रदेश (बहजोई, हाथरस, नैनी और शिकोहाबाद, सासनी) बगाल (कलकत्ता, चौबीस परगना), बम्बई (बेलगाँव, तैलेगाँव, बम्बई, पूना, शोलापुर) तथा हैदराबाद, अबाला, बगलोर, देहली और मद्रास मे हैं। इन कारखानों मे काँच की चादरे, बल्ब, गुलदस्ते, तश्तरियाँ, गिलास, बोतले, सजावट का सामान, थर्मसफ्लास्क, काँच की नलियाँ आदि बनाई जाती हैं।

भारत मे काँच के सामान का उत्पादन इस प्रकार है :—

	१९५०	११५७
काँच की चादरे	६,५७० ह० वर्ग फुट	४८,२०६ ह० वर्गफुट
प्रयोगशालाओं का सामान	२,१६० टन	३,०६६ टन
बिजली के बल्बों के खोल	१३० ला० बत्तियाँ	३६१ ला० बत्तियाँ
काँच का अन्य सामान	७२, २३६ टन	१,२३,६४८ टन

गत कुछ वर्षों से काँच के सामान का निर्यात अदन, अरब, ईरान, बर्मा, लव मलाया, बहरीन द्वीप, इडोनेशिया, अफगानिस्तान और हिंद चीन को होने लगा है।

द्वितीय योजना के अंतर्गत काच के सामान की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन २६१,००० टन और १२५,००० टन से बढ़कर क्रमशः ३३४,०० और २००,००० टन हो जायेगी।

अल्युम्युनियम उद्योग

अल्युम्युनियम का उद्योग युद्ध काल की ही उन्नति है। भारत में जितने भी धातु उद्योग है उन सब मे इसी उद्योग के लिए सहायक कारण सबसे अधिक प्राप्त हैं। इस देश में अल्युम्युनियम युक्त बाक्साइट नामक कच्ची धातु बहुत बड़ी मात्रा में मिलती है। बिहार, उड़ीसा, मद्रास तथा मध्य प्रदेश आदि पठार के भाग बाक्साइट के बहुत बड़े भण्डार हैं जो लगभग १५० वर्षों के लिए पर्याप्त हैं। अल्युम्युनियम उद्योग में सस्ती बिजली भी बहुत बड़ी मात्रा मे आवश्यक होती है। सस्ती बिजली प्रायः जल-विद्युत ही होती है जिसके लिए भारत मे बहुत बड़ी सम्भावनाएँ हैं। इस समय अल्युम्युनियम का उत्पादन यहाँ पर कोयले से बिजली बना कर होता है। अल्युम्युनियम बनाने क लिए अनेक रसायन भी आवश्यक हैं, जिनका उत्पादन इस समय तक भारत मे नही होता है। यह रसायन विदेश से भी मँगाने पड़ते हैं।

वास्तव मे भारत मे लौह-उद्योग की इतनी अधिक सम्भावनाएँ नहीं हैं, जितनी कि अल्युम्युनियम उद्योग की। यह ध्यान रखना चाहिए कि अल्युम्युनियम को ससार की 'भविष्य की धातु, कहते हैं। इसमें कुछ धातुओं का मिश्रण करने पर यह इस्पात से कहीं अधिक गुणकारी धातु सिद्ध होती है। इसका हल्कापन, इसकी मजबूती और इसकी टिकाऊपन इस्पात अथवा किसी अन्य धातु से श्रेष्ठतर है। इसी कारण इस धातु का अधिकाधिक प्रयोग वायुयान बनाने में हो रहा है। कनाडा मे इस धातु से नदियों के पुल बनाये गये हैं और सयुक्त राज्य अमेरिका मे इसके मकान बनते हैं। आजकल इस धातु से रेल के डिब्बे भी बनने लगे हैं। इतनी लाभकारी धातु की सम्भावनाएँ अधिक मात्रा मे होना भारत के लिए एक गौरव है। इस पर भी इस उद्योग मे भारत बहुत पिछड़ा है।

पिछड़े होने के निम्न-लिखित मुख्य कारण हैं :—(१) पूँजी की कमी (इस उद्योग में बहुत पूँजी चाहिये), (२) बिजली की कमी, (३) निपुण कारीगरों की कमी।

१९३८ में पहली बार अल्युम्युनियम का उत्पादन केरल के अलूपुरम स्थान

में हुआ था। इस समय आसनसोल और मूरी में भी इसका उत्पादन होने लगा है। मूरी में बाक्साइट को शुद्ध करके अल्युमिना बनाते हैं। इस अल्युमिना को अलवाई भेज कर उसको अल्युम्युनियम के टुकड़ों मे ढालते हैं। इन टुकड़ों को कलकत्ते के निकट बेलूर, वस्तुओं के निर्माण के लिए भेज देते हैं। मूरी का कारखाना राँची के निकट स्थित है। केरल में अल्वाई की जल-विद्युत द्वारा उत्पादित अल्युम्युनियम धातु को कलकत्ता के निकट बेलूर मे अनेक वस्तुएँ बनाने में प्रयोग किया जाता है, अर्थात यहाँ पर धातु-शोधन केरल में होता है, लेकिन उसका उपयोग कलकत्ते में। यह व्यवस्था इसलिये करनी पड़ी है कि केरल के निकट मिलने वाली बाक्साइट धातु को निकट मे ही शोधित करने से मार्ग-व्यय बच जाता है। आसनसोल के निकट जे० के० नगर में अल्युम्युनियम कारपोरेशन का कारखाना है जहाँ पड़ोस मे ही कोयला मिलता है जिससे बिजली बनाई जाती है और सिंहभूमि से बाक्साइट की कच्ची धातु आती है। इस कारखाने में धातु-शोधन के पश्चात् वस्तुएँ भी बनाई जाती हैं। बिहार में स्थित मूरी का कारखाना अभी हाल ही मे तैयार हुआ है, जिसमे केवल बाक्साइट शुद्ध किया जाता है और शुद्ध धातु अलवाई भेज दी जाती है। भारत में इस समय लगभग २० हजार टन अल्युम्युनियम की माँग है, परन्तु यहाँ का उत्पादन ४ हजार टन वार्षिक से भी कम है। यह माँग ५,००० टन प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रही है। इसलिए अधिकतर अल्युमूनियम विदेशो से मँगाया जाता है। १९५१-५२ मे लगभग ३½ हजार टन अल्युम्युनियम बाहर से यहाँ आया था। हमारे यहाँ अल्यु-म्युनियम अमेरिका की अपेक्षा बहुत महँगा बनता है। इसका कारण यह है कि अल्यु म्युनियम के कारखाने बहुत छोटे-छोटे हैं। अल्युम्युनियम सस्ती तभी पड़ती है जब कि वह बहुत बड़ी मात्रा में बनाई जाती है। इस उद्योग में अल्युम्युनियम बनाने अर्थात् बाक्साइट को शुद्ध करने में बोझीली वस्तुएँ आवश्यक होती हैं। एक टन अल्युम्यु-नियम बनाने के लिए लगभग ४½ टन बाक्साइत धातु, लगभग ४ टन कोयला और लगभग १ टन मिट्टी के तेल के कोक की आवश्यकता होती है।

इण्डियन अल्युम्युनियम कम्पनी और अल्युम्युनियम कारपोरेशन नामक दो कम्पनियाँ इस देश में इस समय हैं। इनकी उत्पादन-शक्ति बढ़ कर अब क्रमानुसार ५,००० टन और २,२०० टन हो गई है। १९५७ में इन दोनों कम्पनियों द्वारा ७,७७१ टन अल्युम्युनियम बनाया गया था। अल्युम्युनियम के बर्तन तथा अन्य वस्तुओं को ढालने के लिये उपरोक्त कारखानों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे कारखाने

हैं। ये प्राय: उत्तर भारत मे अधिक हैं। १९६०-६१ तक देश मे अल्युम्युनियम की माँग बढ़ कर ४०,००० टन की होने की आशा है। अतएव इसके लिए इस उद्योग का विस्तार किया जा रहा है। हीराकुड सयत्र प्रतिवर्ष १०,००० टन अल्यूम्युनियम तैयार करेगा। इसका उत्पादन बढाकर प्रतिवर्ष २०,००० टन किया जायगा। रिहन्द योजना से भी पूरा उत्पादन होने पर इतना ही अल्यूम्युनियम तैयार किया जायगा। मैसूर योजना से भी १० से लेकर २० ह० टन अल्यूम्युनियम पैदा होने लगेगा। जैके नगर सयंत्र से भी ७½ ह० से लेकर १० ह०टन उत्पादन होगा। इस प्रकार अल्यूम्युनियम का उत्पादन ७५०० टन से बढ़कर १०,००० टन हो जायगा। और कुछ समय बाद यह बढ़ कर ५० ह० से ६० हजार टन का हो जायेगा।

रसायन उद्योग (Chemical Industryy)

हमारा देश रसायन उद्योग मे बहुत ही पिछड़ा है। इस पिछड़ेपन का मुख्य कारण यहाँ पर नमक, गधक और ताँबे की कमी है। परन्तु बिना रसायन के किसी भी उद्योग की उन्नति असम्भव है। इसलिये युद्ध के पूर्व काल तक अधिकतर रसायन विदेशों से मँगाए जाते थे। परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध के काल मे इस देश मे गन्धक का तेजाब पर्याप्त मात्रा मे बनने लगा था। द्वितीय विश्व-युद्ध के काल में कुछ अन्य रसायन जैसे कास्टिक सोडा, क्लोरीन तथा अमोनियम सल्फेट भी बनने लगे। इस समय गन्धक के तेजाब के लिये बाहर से गन्धक मँगाना पड़ता है।

हमारे देश में शुद्ध गन्धक नहीं मिलता है। जो कुछ गन्धक मिलता है वह पाइरायट के रूप में अन्य धातुओं में मिला हुआ निकलता है। आसाम, नेपाल, काश्मीर, आदि में यहाँ इस रूप में गन्धक प्राप्त होता है। घाटशिला के ताँबे के कारखाने में भी इसी रूप मे लगभग ७ हजार टन वार्षिक गधक निकलता है। गधक के तेजाब के सबसे बड़े कारखाने जमशेदपुर में ताता का कारखाना, डिगबोई मे तेल का कारखाना तथा मैसूर में हैं। १९५७ मे इस देश का रसायन-उत्पादन निम्न प्रकार था :—

	१९५०	१९५७
गन्धक का तेजाब	१ लाख टन	१.६ ला० टन
सोडा ऐश	४४ हजार टन	६२ ह० टन
कास्टिक सोडा	११ ,, ,,	४२ ह० टन
सुपर फास्फेट	५२ ,, ,,	१.४ ला० टन
अमोनियम सल्फेट	४७ ,, ,,	३.७ ,,
क्लोरीन	४ ,, ,,	१६ ह० टन
ब्लीचिग पाउडर	३ ,, ,,	५ ,,
बाइक्रोमाइट	२ ,, ,,	४ ,,

इस देश मे इस समय लगभग ४३ कारखाने गधक का तेजाब बनाने के लिए हैं। सबसे अधिक कारखाने बगाल, बिहार और बम्बई मे हैं। इन कारखानों की पूर्ण शक्ति लगभग २ लाख टन वार्षिक है।

हमारे देश मे आसनसोल के निकट सिंदरी नामक स्थान में, १९५१ मे, खाद बनाने का सबसे बड़ा कारखाना खुलना बहुत महत्त्व की बात हुई। १९४३ मे खेती की उन्नति का विचार करने वाली एक सरकारी समिति ने इस कारखाने के बनाने की सम्मति दी। इसकी आवश्यकता हमारे देश के लिए इसलिए अधिक थी कि प्रति वर्ष यहाँ कई करोड़ रुपये की खाद विदेशो से मँगानी पड़ती है। सिंदरी मे खाद बनाने से हमारे देश मे न केवल कृषि की उन्नति होगी, वरन् उद्योग की भी। इस कारखाने के लिए इस समय बीकानेर और जोधपुर से जिप्सम की चट्टानें आती हैं। जिस समय सिंदरी का कारखाना पूरी शक्ति से चलने लगेगा उस समय वहाँ लगभग १ हजार टन जिप्सम प्रति दिन आवश्यक होगा। इसीलिए कारखाना पूरा होने से पहले ही कई लाख टन जिप्सम यहाँ एकत्रित कर लिया गया है। इस कारखाने की योजना बनते समय देश का विभाजन नहीं हुआ था और इसलिए पाकिस्तान में स्थित नमक की पहाड़ी से जिप्सम मॉगने का विचार था। सिंदरी के कारखाने में जल की आवश्यकता भी बहुत बड़ी मात्रा में है। प्रायः सवा करोड़ गैलन जल की आवश्यकता प्रति दिन अनुमानित है। इसके लिए निम्नलिखित ३ प्रबन्ध किए गए हैं:

१. दामोदर की सहायक गोबाई नदी में सिंदरी से ४ मील पर एक बहुत बड़ी झील तैयार की गई है।

२ दामोदर नदी मे नीचे से एक सुरङ्ग बनाई गई है, जिससे गर्मी के दिनों मे भी जल मिलेगा।

३. दामोदर नदी मे एक पम्प लगाकर कारखाने मे जल पहुँचाने की भी व्यवस्था है

इस कारखाने के ४ भाग हैं :

१. बिजली बनाने का कारखाना,

२. गैस बनाने का कारखाना,

३. अमोनिया निकालने का कारखाना, तथा

४. सल्फेट जमा करने का कारखाना।

इसमे ८०,००० हजार किलोवाट बिजली ८ मशीनों से बनती है। यह दामोदर घाटी योजना को बेच दी जाती है, और उसका प्रयोग विशेषतः मिहीजाम के निकट स्थित रेल के एंजिन बनाने के कारखाने मे होता है। यहाँ लगभग ३$\frac{1}{4}$ करोड़ घन फीट गैस प्रति दिन बनाने का प्रबन्ध है। इसके लिए बहुत बड़ी मात्रा मे बुझाए हुए कोयले की आवश्यकता पड़ती। इस कारखाने में प्रति वर्ष लगभग ३$\frac{1}{2}$ लाख टन अमोनियम सलफेट तैयार होता है। सिंदरी मे बचे हुए कैल्शियम कारबोनेट से उत्तम प्रकार की सीमेंट भी बनने लगी है। यह बात कारखाने के लिए महत्त्व की है। इसके खाद बनाने मे प्राप्त फजूल वस्तु का प्रयोग लाभ सहित हो जाता है। इसका फल यह है कि हमारे
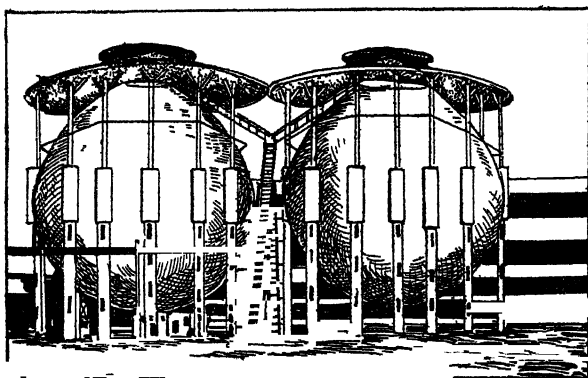
चित्र ७३—सिन्दरी में अमोनियम प्लान्ट

किसान को खाद सस्ती मिलती है। सिंदरी मे अमोनिया, अमोनिया सल्फेट, बुझा कोयला और सीमेंट बनते हैं। खाद की मात्रा प्रायः १००० टन प्रति दिन है।

देश मे उर्वरको की माँग बढती जा रही है। अतएव इसके लिए सिंदरी के कारखाने की उत्पादन क्षमता बढेगी। यह उत्पादन लगभग १,६०० टन प्रतिदिन अथवा अमोनियम सल्फेट के रूप मे प्रति वर्ष ५ ला० टन होगी। नागल मे नागल फर्टीलाइजर्स क० की उत्पादन क्षमता ७०,००० टन नाइट्रोजन, नैवेली में ७०,००० यूरिया और रूरकेला इस्पात कारखाने से ८०,००० टन नाइट्रोलाइम तैयार करने का प्रस्ताव है। तेल शोधक कारखानों से निकलने वाली गैसो से उर्वरको के उत्पादन मे प्रयोग करने के भी प्रस्ताव हैं।

सिगरेट बनाने का उद्योग

हमारे देश में सिगरेट की बहुत बड़ी माँग है। साथ ही यहाँ तम्बाकू की उपज भी बहुत है। इस देश में तम्बाकू का प्रयोग अनेक रूपों मे होता है, जैसे सिगरेट, बीड़ी, सिगार, चुरुट और नश (सुँघनी) आदि। इसके अतिरिक्त हुक्के मे भी तम्बाकू का बहुत बड़ा भाग खपता है। इस समय भारत मे सिगरेट और बीड़ी का प्रयोग अधिक वृद्धि पर है। यहाँ पर लगभग २५ सिगरेट बनाने क कारखाने हैं जिममें प्रति दिन लगभग १० हजार लोग काम करते हैं, परन्तु लगभग तीन-चौथाई भाग उत्पादन केवल चार कारखानों मे होता है। यह बड़े-बड़े कारखाने बगलौर, सहारनपुर, मुँगेर और कलकत्ता में स्थापित हैं। मुँगेर और कलकत्ता के कारखानों का प्रबन्ध विदेशी कम्पनी के हाथ में है। सिगरेट बनाने मे यहाँ पर लगभग दो करोड़ पौंड तम्बाकू प्रयोग होती है। थोड़ी-सी तम्बाकू सयुक्त राज्य से भी मँगाई जाती है। इस समय देश में लगभग २,८०३ करोड़ सिगरेटें प्रति वर्ष बनती हैं जिनका मूल्य १० करोड़ रुपये से अधिक है।

बीड़ी बनाने का काम देश में आजकल प्रायः सभी नगरों मे होता है, परन्तु इसका अधिकतर कार्य दक्षिणी भारत में होता है; जहाँ निकटवर्ती बनों से बीड़ी बनाने के लिए पत्ती सरलता से प्राप्त होती है। बीड़ी बनाने के लिए तम्बाकू दूसरे नगरों से मँगाना पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि लगभग ७ करोड़ पौंड तम्बाकू प्रति वर्ष बीड़ी बनाने में लगती है। पूना, जबलपुर, सागर, गोंदिया, नागपुर आदि नगर बीड़ी बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं। ऐसा अनुमान है कि केवल भंडारा जिले में ही लगभग

३१ हजार लोग बीड़ी बनाने का काम करते हैं। बीड़ी बनाने में केवल निम्न कोटि की तम्बाकू का ही प्रयोग होता है। बीड़ी बनाने का कार्य घरेलू धन्धा है।

सिगार के लिए मद्रास प्रदेश अधिक प्रसिद्ध है। गुंटूर, त्रिचनापली और मद्रास इसके केन्द्र हैं। सिगार बनाने मे तम्बाकू के पत्ते में ही कुटी हुई तम्बाकू भर दी जाती है। सिगार बनाकर उसको बड़े ऊँचे तापमान पर (१५०° से १६०° फा०) मे रख कर सुखाते हैं जिसमे यह तम्बाकू बिगड़े नहीं। सिगार की ही भाँति चुरुट भी बनाये जाते हैं। केवल यह सिगार की अपेक्षा पतले और लम्बे होते हैं। बीड़ी और चुरुट मे मुख्य अन्तर यह है कि बीड़ी मे लपेटने के लिए वन के किसी वृक्ष का पत्ता होता है, परन्तु सिगार और चुरुट मे तम्बाकू का ही पत्ता लपेटने में प्रयोग होता है।

चमड़े का उद्योग

भारत में चमड़े का उद्योग महत्वपूर्ण है। ससार के किसी भी अन्य देश मे इतने पशु नही हैं, जितने भारत में। इसीलिये ससार में सबसे अधिक खालें और चमड़ा भारत में प्राप्त है। परन्तु रासायनिक उद्योग की कमी के कारण इन खालों से बना चमड़ा इतना अच्छा नही तैयार होता, जितना विदेशों मे। इसीलिये अभी तक यहाँ की अधिकतर खालें और चमड़ा विदेशों को भेज दिये जाते थे।

भारत में कुछ नगर ऐसे हैं, जहाँ चमड़ा रँगने के कुशल कारीगर अधिक सख्या में मिलते हैं। ऐसे नगर मद्रास, आगरा और कानपुर हैं। परन्तु १९५७ मे देश में चमड़ा तैयार करने के २५ कारखाने थे। इन कारखानों में निम्न प्रकार का उत्पादन होता है।

	१९५०	१९५७
वनस्पति से रँगा चमड़ा	१५१४ हजार	१७१४ ह०
रसायन से रँगा चमड़ा	४९६ ,,	६३० ,,
जूतों के जोड़े—पश्चिमी ढग के	२८३७ हजार जोड़े	४,३६६ ह० जोड़े
देशी ढग के	१,६६७ ,, ,,	३,०३८ ,,

हमारे देश के चमड़े का उद्योग पाकिस्तान से आई हुई खालों पर बहुत निर्भर है। इस देश मे खालों की पर्याप्त सख्या नहीं होती, क्योंकि यहाँ पर पशुओं का वध कम होता है।

चमड़े के उद्योग के लिए हमारे देश में वनस्पति से प्राप्त रग बहुत मिलते हैं,

जिनका प्रयोग इस उद्योग मे यहाँ अधिक मात्रा मे होता है। बबूल की छाल, बहेड़ा, (मैराबोलम) आदि वस्तुओं से चमड़ा रँगने के लिए रग बनाये जाते हैं।

भारत के औद्योगिक प्रदेश

उद्योग की दृष्टि से भारत एक पिछड़ा हुआ देश है। यहाँ के कारखानों में केवल २४ लाख लोग काम करते है, जो इस देश के श्रम करने योग्य लोगों का लगभग २ प्रतिशत भाग ही है। फिर भी कतिपय स्थलों पर कुछ कारखानों के केन्द्रित हो जाने से वहाँ औद्योगिक प्रदेशों की विशेषताएँ उत्पन्न हो गई हैं। ये विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(1) विशाल नागरिक जनसख्या,

(11) बड़े-बड़े बैंक,

(111) किसी प्रमुख उद्योग का गठन और उस पर निर्भर कुछ अन्य छोटे-छोटे कारखाने,

(1v) यातायात की बड़ी सुविधाएँ और

(v) श्रमिकों के लिए काम।

इन विशेषताओं को ध्यान में रखने से किसी भी नगर को जहाँ कुछ निर्माण होता है, औद्योगिक प्रदेश नही कह सकते। इस विशेषण को उन्हीं स्थलो के लिए प्रयोग करना चाहिए जिनमे उपर्युक्त सब विशेषताएँ हों। निहित तात्पर्य यह है कि एक औद्योगिक क्षेत्र में एक ही उद्योग और तत्सम्बन्धी कार्य द्वारा वहाँ की अधिकाश जनता की अधिक जीविका चलती है। इस दृष्टिकोण से वे अनेक स्थल हमारे अध्ययन के बाहर हैं जहाँ कुछ स्थानीय भौगोलिक कारणों से कुछ छोटे मोटे कारखाने बन गये हैं। ऐसे स्थल जहाँ इक्का-दुक्का रुई धुनने, या कपड़ा बनाने, या शीशा, सीमेंट, चूना बनाने के कारखाने हों, औद्योगिक प्रदेश नही कहलाते। 'औद्योगिक प्रदेश' वे हैं जहाँ अधिकतर लोगों की जीविका उद्योग से चलती है।

भारत के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश नीचे दिये हैं :

१. कलकत्ता

२. बम्बई

३. कोयम्बटूर

५. टाटानगर
६. अहमदाबाद
७. कानपुर

कलकत्ता क्षेत्र

कलकत्ता भारत का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश है। कलकत्ता में अनेक उद्योग हैं जिनमे से पाट, कागज, लोहा और सूती कपड़ा प्रमुख हैं। इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग पाट का है। ये उद्योग प्रधानतया कलकत्ता की घनी बस्ती के बाहर स्थित हैं। हावड़ा, लिलुआ, बेलूर, दमदम और बजबज आदि कलकत्ता के प्रमुख उप-नगर हैं, इनमें ही उद्योग स्थापित है। कारखाने अधिकतर हुगली नदी के किनारे ही बनाये गये हैं। कलकत्ता नगर तथा समुद्र के मध्य, रेलों के अतिरिक्त, हुगली नदी से ही अधिकतर यातायात होता है। बम्बई के औद्योगिक क्षेत्र को देखते हुए कलकत्ता में यह विशेषता है कि यहाँ कारखाने के पास ही मजदूरों के रहने के लिए स्थान बने हैं। बस्ती से दूर होने के कारण इन कारखानो को ऐसी व्यस्वथा करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त, फैक्ट्रियों के निकट प्रचुर स्थल होने के कारण यह व्यवस्था सम्भव भी है। बम्बई में मिलें सघन आबादी के क्षेत्रों में ही बनी हुई हैं, इसलिए (बम्बई मिल मजदूरों के आवास) नगर के ही भाग हैं।

कलकत्ता क्षेत्र में निम्नलिखित कारणों से औद्योगिक उन्नति सम्भव है :

(१) हुगली के यातायात मार्ग पर स्थित होने के कारण विदेशी व्यापार यहाँ बहुत बड़ी मात्रा में केन्द्रित है। भीतर की ओर आने-जाने वाले मार्ग गंगा के सम्पन्न मैदान के व्यापार को भी यहीं एकत्रित करते हैं। मार्ग की सुविधा जितनी कलकत्ता क्षेत्र को है, उतनी अन्य किसी क्षेत्र को नहीं है। कोयले की निकटता भी भारत में कलकत्ता क्षेत्र को ही अधिकतर प्राप्त है। रानीगञ्ज तथा झरिया के विशाल कोयला क्षेत्र यहाँ कोयला भेजते हैं। इस कोयले से न केवल कारखाने ही चलते हैं, वरन् उससे बिजली बनाई जाती और पूरे औद्योगिक क्षेत्र में वितरित की जाती है।

(२) जल की पूर्ति यहाँ बहुत बड़ी मात्रा में है। हुगली नदी से आवश्यकतानुसार कितनी ही मात्रा में जल प्राप्त हो सकता है। औद्योगिक क्षेत्रों में जल की आवश्यकता केवल घनी जनसख्या के लिए नहीं होती वरन् कारखानों में उसका प्रयोग अनेक ढगों से होता है। औद्योगिक क्षेत्रों मे स्वच्छता के लिए भी बहुत बड़ी मात्रा में जल की आवश्यकता रहती है।

(३) कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति भी कलकत्ता क्षेत्र के निकट है। मार्ग साधन की सहायता से कलकत्ता को दूर-दूर से कच्चा माल सरलता से ही मिल जाता है। यहाँ का प्रमुख उद्योग पाट-उद्योग कच्चे माल की सुविधा होने से ही उन्नत हुआ है। अन्य उद्योग के लिए भी, जैसे—लोहा-उद्योग, कागज-उद्योग, चमड़ा उद्योग, रसायन-उद्योग तथा सूती वस्त्र उद्योग के कच्चे माल भी निकटवर्ती क्षेत्र मे ही मिलते हैं।

(४) कलकत्ता क्षेत्र में श्रमिक भी बहुत मिलते हैं। प्राचीन समय मे इस क्षेत्र के निकट ही मुर्शिदाबाद और ढाका में कलाकौशल की उन्नति बहुत हुई थी। इस उन्नति के कारण यहाँ पर कुशल श्रमिक पहले से ही मिलते थे। आजकल आधुनिक कारखानों के लिए यद्यपि कुछ दूसरे ढग की ही कुशलता चाहिए, परन्तु उसमें भी श्रमिकों की यहाँ कभी कमी नहीं पड़ती। प्रायः पूरे गंगा के मैदान से यहाँ श्रमिक आते हैं।

(५) माँग की भी यहाँ अधिकता है। बनी हुई वस्तुओं का क्रय विक्रय गगा के मैदान की घनी जनसख्या मे बहुत है। यहाँ की बनी हुई पाट की वस्तुएँ संसार के प्रायः सभी देशों मे बिकती हैं।

(७) पूँजी की सुविधा भी कलकत्ता क्षेत्र में अधिक है। अँग्रेजों के आने से कलकत्ता नगर मे बहुत समय से ही बड़े-बड़े बैङ्क यहाँ काम कर रहे हैं। भारत में पूँजी का सबसे बड़ा केन्द्र कलकत्ता है।

बम्बई क्षेत्र

बम्बई क्षेत्र भी एक औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ का प्रमुख उद्योग सूती वस्त्र का उद्योग है। यह उद्योग भारत का सबसे बड़ा उद्योग है जिससे बम्बई का महत्व अधिक है। बम्बई का क्षेत्र मुख्यतः कपास का क्षेत्र है। इसलिए सूती वस्त्र-उद्योग को कच्चे माल की पूर्ति सरलता से होती है। यहाँ के बन्दरगाह के द्वारा विदेशों से मशीने तथा अन्य आवश्यक सामान मँगाने की यहाँ बहुत बड़ी सुविधा है। परन्तु बम्बई देश के भीतरी भागों से इतनी सरलता से आना-जाना सम्भव नहीं है जितना कि कलकत्ता से। बम्बई में द्वीप होने के कारण अधिक उद्योगों की उन्नति करने के लिए स्थान की भी कमी है। इसके अतिरिक्त कोयला तथा अन्य खनिज पदार्थ भी नहीं मिलते हैं। परन्तु बम्बई के निकट इस समय भारत में सबसे अधिक जलविद्युत बनती है। इसका प्रयोग बम्बई के सूती तथा रासायनिक तथा मशीन के कारखानों मे अधिक होता है।

बम्बई के निकट ही अन्य बड़े-बड़े सूती उद्योग के केन्द्र जैसे अहमदाबाद, शोलापुर आदि स्थित हैं। भारत में सबसे अधिक श्रमिक बम्बई प्रदेश के कारखानो मे ही हैं।

मद्रास क्षेत्र

यद्यपि मद्रास भारत मे अँग्रेजों के आने पर ही उन्नत हुआ था, वहाँ की औद्योगिक उन्नति प्रायः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही हुई। मद्रास एक कृषि क्षेत्र मे स्थित है, जहाँ न तो कोयला और न कच्चे माल की विशेष सुविधा है। यहाँ का बन्दरगाह भी बहुत छोटा और कृत्रिम बन्दरगाह है जिसमें केवल छोटे-छोटे जहाज ही आ सकते हैं। जलविद्युत भी मद्रास से बहुत अधिक दूरी पर बनती है। यही कारण है कि मद्रास का औद्योगिक महत्व कम है। यहाँ का प्रमुख उद्योग सूती वस्त्र निर्माण है। यहाँ पर विशेष प्रकार के उत्तम वस्त्रों का बनना विशेषता है। चमड़े का उद्योग भी यहाँ बहुत उन्नत है। इसके लिए कच्चा माल अधिकतर पाकिस्तान से आता है। चीनी, दियासलाई, सीमेट उद्योग आदि भी यहाँ मिलते हैं।

रानीगंज-झरिया क्षेत्र

यह क्षेत्र कलकत्ता से लगभग सवा सौ मील दूर स्थित है। इसकी औद्योगिक उन्नति अभी थोड़े दिन से ही अधिक हुई है। इसका मुख्य महत्व यहाँ के कोयले मे है। इसलिए यहाँ ऐसे ही उद्योग अधिकतर उन्नत हैं जिनमे कोयले की माँग बहुत होती है। नई दामोदर घाटी योजना के पूरा होने पर इस क्षेत्र का औद्योगिक महत्व बहुत बढ़ जायगा। इस क्षेत्र का प्रमुख उद्योग लौह उद्योग है, जिसके लिए कच्चा लोहा और चूना लगभग सौ मील की दूरी से आता है। इस क्षेत्र मे भट्ठी बनाने के लिए ईंटे बहुत बनाई जाती हैं। इन ईंटों का व्यापार भारत के सभी भागों से होता है। इन ईंटों का महत्व औद्योगिक उन्नति के लिए बहुत ही बड़ा है। बिना इन ईंटों के कारखाना चलाने की शक्ति ही उत्पन्न नहीं हो सकती। सिंदरी का रासायनिक कारखाना कुल्टी और हीरापुर के लोहे के कारखाने, रानीगंज का कागज का कारखाना तथा जे० के० नगर का अल्युम्युनियम का कारखाना, सब इसी क्षेत्र के अन्तर्गत हैं।

इसी क्षेत्र के निकट डालमियानगर भी स्थित है। डालमियानगर में रसायन, कागज, सीमेट आदि के कारखाने हैं।

निम्न विवरण से भारत के भिन्न-भिन्न राज्यो का औद्योगिक महत्व ज्ञात होता है (१६५६) :—

राज्य	श्रामक (हजार)	राज्य	श्रामक (हजार)
बगाल	६५३,२७२	आंध्र	१६६,८७६
बम्बई	६६८,२५१	आसाम	१७५,४७२
मद्रास	२६६,७१६	मध्य प्रदेश	६७,८४८
उत्तर प्रदेश	२६७,६६३	उड़ीसा	२१,५५६
पजाब	८२,८४१	दिल्ली	४७,५५६

योजनाओ के अन्तर्गत उद्योगो का विकास—उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि करने के महत्व पर १६४८ से ही बल दिया जाना आरम्भ हो गया था और सरकार ने देश के औद्योगीकरण मे अधिकाधिक सक्रिय भाग लेने का निश्चय किया परन्तु इस दिशा में दृढ़ सकल्प के साथ प्रयत्न पंच-वर्षीय योजना के द्वारा ही आरम्भ हो सका।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की अवधि मे कृषि उत्पादन में बल दिया गया था। इस अवधि मे भी औद्योगीकरण के लिये प्रारम्भिक प्रयत्न किये गये। देश मे सरकार द्वारा उर्वरक उत्पादन का कारखाना खोला गया तथा विदेशी साधनों तथा सहायता से तेल शोधन के दो कारखाने स्थापित किये गये है। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र के उद्योगों का उत्पादन भी काफी बढ़ा है। इन उद्योगो मे चीनी, हल्के इंजीनियरी के सामान आदि का उत्पादन उल्लेखनीय हैं। प्रथम आयोजन की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन मे लगभग ३८ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन मे भी लगभग ७० प्रतिशत वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त अर्ध-तैयार वस्तुओं, विशेषतः उद्योगों मे प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल और उपभोग्य वस्तुओं के उत्पादन में भी लगभग ३४ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है। सरकार ने कुछ आधारभूत तथा सामरिक महत्व के उद्योग तथा सार्वजनिक सेवा से सम्बन्ध रखने वाले उद्योगों अथवा ऐसे विशाल उद्योगो के विकास का भार भी अपने ऊपर ले लिया है जिन्हें कि केवल वही चालू कर सकती है। इसी प्रकार कुछ विशिष्ट उद्योगो का नया विकास करने का दायित्व विशेषतः सरकार के ऊपर आ गया है और इस दायित्व के अनुभूत होने पर उसे यह ध्यान रखना है कि उसके कारण निजी उद्योगों के विस्तार में बाधा न पड़े। अनेक प्रकार के उद्योगो को स्थापित करने और चलाने का दायित्व अब भी निजी क्षेत्रों पर ही छोड़ दिया गया है यद्यपि आवश्यकता होने पर सरकार इनके विषय में भी कदम उठा सकती है।

सरकार के लिए निजी क्षेत्र सीमेंट, मोटर गाड़ियाँ, रसायनिक पदार्थ, कागज और हल्के इजीनियरी की वस्तुओं के उद्योगों का विकास करने मे पूरा-पूरा भाग ले सकते है। इसके साथ ही इस्पात, कोयला, उर्वरक, भारी मशीनें, भारी विद्युत् सयन्त्र, रेलगाड़ियों के इजन और डिब्बे, कीटनाशक पदार्थ, मशीनी औजार आदि के उद्योग स्थापित करने का दायित्व सरकार पर है। औद्योगिक विकास पर हमारा जो खर्चा बढ़ता जा रहा है उसका पता हमे अपने उद्योग सम्बन्धी उत्पादनों की निरतर वृद्धि से चल जाता है। १९५४ से यह वृद्धि ४ " लेकर ११ प्रतिशत प्रति वर्ष तक हुई है। नीचे कुछ आकड़े दिये गये हैं जिनसे प्रकट होता है कि हमारे औद्योगिक उत्पादन कितने व्यापक रूप से बढे हैं। इसके साथ ही गत दस वर्षों मे उत्पादन मे हुई वृद्धि भी प्रकट होती है :—

उद्योग का नाम	१९४७ मे उत्पादन	१९५७ मे उत्पादन
धातुऐं	टन	टन
अल्युम्युनियम	शून्य	१०,९२३
ताँबा (चादरे और चक्कर)	शून्य	२,३८०
इस्पात (समापित)	८९०,०००	१,३५०,०००
इजीनियरी उद्योग	सख्या	सख्या
मोटर गाड़ियाँ	शून्य	३१,९००
साइकिले (पूर्ण)	३१,९००	७९०,५००
डीजल इजन		
(क) अचल	६८४	१६,६४४
(ख) चल	—	३,३३६
बिजली के पखे	१९०,०००	५२४,०००
बिजली की बत्तियाँ	७,९००,०००	३३१,२००,०००
	अश्व शक्ति	अश्व शक्ति
बिजली के मोटर	३८,४००	४९९,२००
	लाख रु०	लाख रु०
मशीनी औजार	४६	२५१
	सख्या	संख्या
शक्ति चालित पम्प	६,०००	६३,९००
रेडियो रिसीवर	३,०४०	१९०,७००
सग्रह बैटरियाँ	७०,०००	३२४,०००

उद्योग का नाम	१९४७ में उत्पादन	१९५७ में उत्पादन
	के० वि० ए०	के० वि० ए०
ट्रांसफार्मर (बिजली)	३२,४००	१,२१९,२००
गैर इंजीनियरी उद्योग	टन	टन
सीमेन्ट	१,४५०,०००	५,६००,०००
कोयला	३०,०००,०००	४३,५३०,०००
अमोनियम सल्फेट	२१,३००	३७९,७००
कास्टिक सोडा	३,३००	४२,७००
अखबारी कागज	शून्य	१०,०००
कागज और गत्ता	९३,१००	२१०,१००
	मन	मन
नमक	१,८८९,०००	३६,००,०००
	टन	टन
सोडा एश	१३,६००	९१,६००
चीनी	१,०७५,०००	२,०३८,०००
गंधक का तेजाब	६०,०००	१९६,१००
सुपर फास्फेट	५ ०००	१४१,७००
बुना हुआ माल	दस लाख गज	दस लाख गज
(क) सूती		
(१) कपड़ा	३,७६२	५,३१७
	दस लाख पौंड	दस लाख पौंड
(२) सूत	१,२९६	१७८०
(ख) ऊनी वस्टेड	मन	मन
कपड़े	शून्य	१५८
	टन	टन
(ग) जूट का टाट	१५१,२००	१,०२९,६००
	सख्या	सख्या
टायर (मोटर गाड़ियों के)	८१०,०००	९९०,०००
टायर (साइकिलों के)	३,२२८,०००	७,१५२,०००
ट्यूब (मोटर गाड़ियों की)	८२०,८००	१,१३६,०००
ट्यूब (साइकिलों की)	४,३२२,४००	७,०२७,२००

इञ्जिनियरी वर्ग के उद्योगों के अन्तर्गत रेल के इञ्जन बनाने के कारखाने किये गये हैं। एक तो सरकारी क्षेत्र में चित्तरंजन में और दूसरा निजी क्षेत्र

का, जिसका मालिक (टैल्को) है। इसके अतिरिक्त इस्पात के कारखाने, तेल साफ करने के कारखाने, रेलों के डिब्बे बनाने के लिये पेराम्बूर का कारखाना, हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान मशीनी औजार बनाने का कारखाना, मोटर गाडी बनाने का उद्योग आदि भी चालू किये गये हैं। निजी क्षेत्र मे जूट, चीनी, कपड़ा, मशीनी औजार, इस्पात की नलियाँ, बायलर, इस्पात के ढाँचे, रेल के डिब्बे, संग्रह बैटरियाँ, ट्रासफार्मर, बिजली के कंडक्टर, रेडियो रिसीवर, बिजली के मोटर और डीजल इञ्जन बनाने के कारखाने भी खोले गये हैं।

रसायनिक उद्योगो की प्रगति—रसायनिक पदार्थ उद्योग ने तेजी से प्रगति की है इसके फलस्वरूप देश हाइड्रोजन-पर-आक्साइड, बाइक्रोमेर, सल्फर ब्लैक, काँच की चादरें, सीमेन्ट सैल्यूलोज, ऐसीटेट का तागा, स्टेपल रेशे, टायर और ट्यूब, वारनिश और रङ्गलेप तथा स्याही के लिये आत्मनिर्भर हो गया है। सिन्दरी, नागल और अलवाई के उर्वरक कारखाने, पिम्परी की कीट नाशक फैक्टरी तथा अनेक प्रकार के रसायनिक पदार्थ, मेषज और औषधियाँ बनाने में भी देश में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की गई है। उर्वरक, गन्धक के तेजाब और कास्टिक सोडा में हमने उल्लेखनीय उन्नति की है। जैसा कि नीचे के आँकड़ों से प्रकट होता है :—

(उत्पादन, टन प्रति वर्ष)

	स्वतन्त्रता से पहले	अब
उर्वरक (सुपर फास्फेट के रूप में)	५,०००	१४१,७००
सल्फ्यूरिक एसिड	६३,०००	१६६,१००
कास्टिक सोडा	४,०००	४२,७००

१९५१ को आधार मान कर औद्योगिक उत्पादन सूचक अक बराबर बढ़ रहा है। १९५२ मे यह १०३·६ ; १९५३ में १०५·६ ; १९५४ में ११२·९ ; १९५५ मे, ११२ १ ; १९५६ में १३३·० ; १९५७ में १३७·२ और जून १९५८ मे १४१ हो गया। प्रगति की रफ्तार प्रति वर्ष १०% की है। यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि कपड़े और जूट उद्योग की उत्पादन वृद्धि इतनी अधिक नहीं है जितनी अन्य उद्योगों की। उदाहरणार्थ, जूट और कपड़ा उद्योग अंक जून १९५८ केवल १०५·९ था जब कि रबड़ की वस्तुओं के निर्माण का सूचक अक १९२·७; रासायनिक पदार्थों का

२०४ ०; खनिज उत्पादन का २०८.३ तथा इंजीनियरी और विद्युत उद्योगों का २४१० था।

१६५६ की नयी औद्योगिक नीति के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने और विशाल और फैलते हुए सरकारी क्षेत्र की स्थापना पर जोर दिया गया है जिससे औद्योगीकरण तेजी से किया जा सके। इस प्रस्ताव की तालिका मे १७ उद्योगों की सूची दी गई है, जिनमे से कुछ जनोपयोगी सेवाओं को भी सम्मिलित किया गया है। इसके अनुसार उनके भावी विकास करने की जिम्मेदारी पूर्णतः राज्य की होगी। यह १७ उद्योग ये हैं :—

(१) सुरक्षा के लिए हथियार व गोला बारूद तथा युद्ध की अन्य सामग्री सम्बन्धी उद्योग, (२) अणु-शक्ति, (३) लोह-इस्पात, (४) भारी मशीन निर्माण, (५) भारी बिजली की मशीनें; (६) लोहा और इस्पात ढालने के उद्योग, (७) कोयला और लिग्नाइट; (८) खनिज तेल, (९) वायुयान, (१०) वायुयातायात, (११) रेल निर्माण; (१२) जल पोत निर्माण; (१४) ताँबा, जस्त, शीसा, जिप्सम, गंधक, सोना और हीरा आदि का उत्खनन और सफाई, (१५) टेलीफून और टेलीफून के तार, १६) बिजली का उत्पादन और वितरण, (१७) ऐसे खनिज जिनका वर्णन अणुशक्ति-विधेयक, १९५३ में किया गया है।

दूसरे प्रकार के वे उद्योग हैं जिनमे राज्य तथा वैयक्तिक प्रयास दोनों सम्मिलित होंगे। ये उद्योग 'ख' सूची में दिए गए हैं और इनकी सख्या १२ है। इनका धीरे-धीरे राष्ट्रीयकरण किया जायेगा। ये उद्योग इस प्रकार हैं :–

(१) सभी खनिज पदार्थ (केवल उनको छोड़ कर जिनका उल्लेख (Minerals Concession Rules 1949) में किया गया है। (२) अल्यूम्युनियम और अन्य अलोह-धातुएँ; (३) मशीन-टूल रासायनिक पदार्थ, दवाइयाँ और प्लास्टिक, (४) अन्य आवश्यक दवाइयाँ; (५) खाद; (६) बनावटी खाद, (७) कोयले का कारबनीकरण; (८) फैरो अलॉय और टूल्स; (१०) रासायनिक लुब्दी; (११) सड़क और (१२) जल यातायात।

तीसरे प्रकार के उद्योग वे होंगे जो पूर्णतः वैयक्तिक क्षेत्र मे छोड़ दिए जायेंगे और निजी उद्योगपतियों के अधिकार में रहेंगे।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत उद्योगों को निम्नरूप से प्राथमिकता दी गई है :—

(१) लोहा व इस्पात और भारी रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि,

रासायनिक पदार्थों मे नेत्रजनीय खादे सम्मिलित हैं। भारी इजीनियरी सामान तथा मशीने बनाने वाले उद्योगो का विकास;

(२) अन्य विकास उपयोगी पदार्थों के और उत्पादन करने वाले सामान के निर्माण की सामर्थ्य का विकास करना, जैसे, अल्यूम्युनियम, सीमेंट, रासायनिक लुग्दी, रग, फास्फेटीय खाद और आवश्यक दवाये।

(३) राष्ट्र के वर्तमान महत्वपूर्ण उद्योगो का आधुनिकीकरण और नवीनीकरण—जैसे पटसन, सूती कपड़ा और चीनी।

(४) उद्योगो की वर्तमान उस उत्पादन सामर्थ्य का पूरा सदुपयोग, जहाँ कि प्रस्थापित शक्ति क अनुसार पूरा उत्पादन नही होता है, और

(५) साधारण उत्पादन क कार्यक्रमो और उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण की दृष्टि से स्थिर किये गये उत्पादन ध्येयो को सम्मुख रखते हुए उपभोग्य पदार्थों की उत्पादन शक्ति का विकास।

द्वितीय योजना के अतर्गत मुख्य उद्योगो मे इस प्रकार उत्पादन वृद्धि होगी :—

वस्तुएँ	उत्पादन क्षमता मे वृद्धि (%)	उत्पादन म वृद्धि (%)
तैयार इस्पात	२६०	२३१
अल्यूम्युनियम	३००	२३३
नेत्रजन-उर्वरक	३४६	२७७
फास्फेट उर्वरक	२४३	५००
अलकोहल	३३	१००
सिमेंट	२२४	१८३
इजिन	१३५	१२५
शक्कर	४४	२४
नकली रेशम	१६२	२४६
सूती वस्त्र	—	२६
सूत	१३	१६·६
ऊनी वस्त्र	४	३४
कॉच की वस्तुएँ	१६	६०
साइकिले	१७	८२
साबुन	५	५०
वनस्पति	—	४८
कागज और गत्ता	११४	७५

प्रश्न

१. भारत के शक्कर उद्योग के हाल के विकास का भौगोलिक दृष्टिकोण से विवेचना कीजिए।

२ उत्तर प्रदेश में शक्कर-मिलो की विशाल सख्या के भौगोलिक कारणो का उल्लेख कीजिए।

३. भारत में कौन-कौन प्रमुख उद्योग विकसित किये जा सकने हैं? विवेचना कीजिए।

४ टाटानगर में इस्पात-उद्योग किन भौगलिक दशाओ में कार्य करता है ?

५. भारत के वर्तमान औद्योगिक पिछड़ेपन के कारणों की विवेचना कीजिए।

६. भारत के लोहा तथा इस्पात उद्योग के विकास के भौगलिक कारणों को व्याख्या कीजिए।

७. भारत की अर्थ-व्यवस्था में सूती कपडा-उद्योग का क्या महत्व है? किन भौगोलिक कारणो द्वारा उसे यह महत्व मिला है?

८. भौगालिक कारण देते हुए निम्नलिखित भारतीय उद्योगो के महत्व की व्याख्या कीजिए:

कागज, सीमेन्ट, दियासलाई और शीशा।

अध्याय १०

मार्ग

(Communications)

भारत एक बहुत विशाल देश है, जिसकी जनसख्या ससार मे लगभग सबसे बड़ी है। इतना होने हुए भी इस देश मे मार्गों की इतनी अधिक उन्नति नहीं हुई है जितनी कि पश्चिमी देशों मे। मार्गों का पिछड़ापन हमारे देश मे व्यापार की कमी
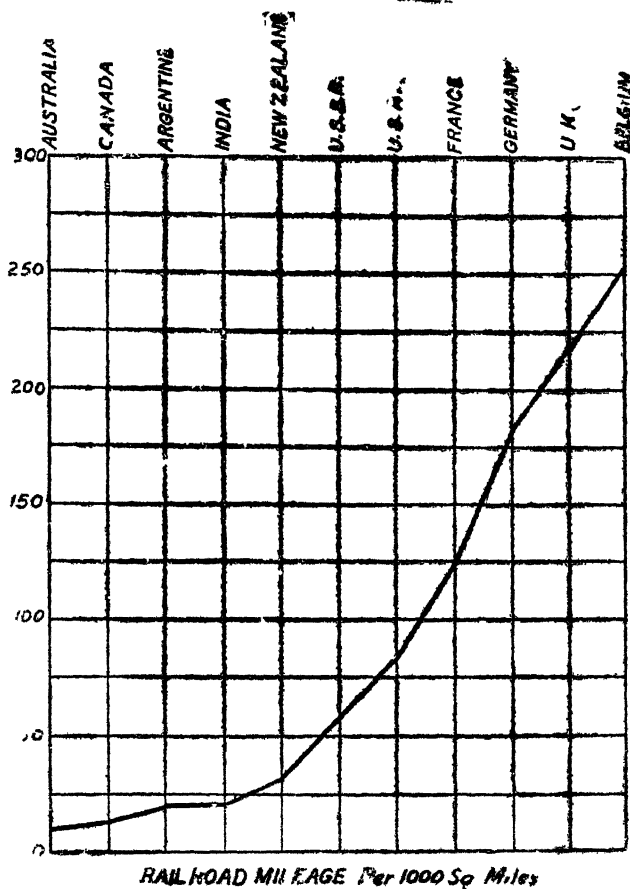
चित्र ७४—सड़कों की लम्बाई

के कारण है। अभी थोड़े ही दिन तक हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था की विशेषता आत्म-निर्भरता रही है। ऐसी व्यवस्था मे मार्गों की उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। मार्गों की उन्नति उस समय आवश्यक होती है जब कि वस्तुओं का आदान-प्रदान होने लगता है और आत्म-निर्भरता नष्ट हो जाती है। मार्गों की जो भी थोड़ी-बहुत उन्नति हमारे देश मे हुई है वह अभी हाल मे आई हुई आधुनिक सभ्यता का फल है। यह आधुनिक सभ्यता हमको पश्चिमी देशो के व्यापार-संसर्ग द्वारा मिली है। आधुनिक व्यापार मे भारी और सस्ती वस्तुओं की प्रधानता है। इन वस्तुओं के यातायात के लिए अच्छे मार्ग नितान्त आवश्यक हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता मे जो कुछ भी थोड़ा-बहुत व्यापार होता था वह बहुमूल्य और हल्की वस्तुओं मे ही होता था। हल्की वस्तुओं की प्रधानता होने के कारण बिना अच्छे मार्गों के भी यह व्यापार हो सकता था। यह व्यापार थल-मार्गों से ही विशेषकर होता था परन्तु आजकल का व्यापार विशेषतः जलमार्गों द्वारा होता है जिनको अन्दर देश से सम्बन्धित करने के लिए नये प्रकार के थल मार्ग आवश्यक होते हैं।

प्राचीन समय मे जिन स्थानों मे जल द्वारा व्यापार एकत्रित होता था वहाँ शीघ्र ही बन्दरगाह बन गये। कालान्तर मे इन बन्दरगाहों मे नये-नये उद्योग आरम्भ किये गये। इन उद्योगो की पूर्ति के लिए अन्दर देश से बहुत कुछ सामान आने-जाने लगा। इन उद्योगों के उत्पादन की माँग भी विशेषतः देश के भीतरी भागों मे ही थी। इसलिए मार्गों की उन्नति करना भारत के लिए और भी अधिक आवश्यक हो गया। इसीलिए इस देश के मार्गों की मुख्य विशेषता यह है कि वे बन्दरगाहो को उनके पृष्ठ भाग से जोड़ते हैं; क्योंकि देश के भीतरी भागों में उद्योग की उन्नति अधिक नहीं हुई है।

अनेक दृष्टिकोणों से भारत के मुख्य व्यापारिक मार्ग रेलवे लाइनें ही हैं। इस समय इस देश में लगभग ३४७४४ हजार मील लम्बी रेल की लाइनें हैं। यह मात्रा देश की आवश्यकता के लिए बहुत ही थोड़ी है। इसका औसत ३५ मील प्रति सहस्र मील क्षेत्रफल से भी कम पड़ता है। ऊपर दिये हुए चित्र से यह ज्ञात होता है कि पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा हमारे देश में रेलवे लाइनों की बहुत बड़ी कमी है। परन्तु हमारे देश की रेल की लम्बाई औद्योगिक देशों की तुलना में ही है, यदि यूरोप के खेती प्रधान देशों से तुलना की जाय तो हमारा देश उनमे पिछड़ा नहीं है। कुछ

प्रमुख देशों मे रेलमार्गों की लम्बाई तथा उनका प्रति १००० वर्गमील और प्रति १००,००० मनुष्यों पीछे विस्तार इस प्रकार है :—

देश	कुल लम्बाई	प्रति १००० वर्गमील पर	प्रति १००,००० जनसंख्या पर
भारत	३४,७४४ मील	३७ मील	६ मील
कनाडा	४१,११८ ,,	१२ ,,	२७२ ,,
इग्लैंड	१६,१५१ ,,	२०४ ,,	२७ ,,
स०रा०अमरीका	२२४,८१६ ,,	७४ ,,	१३८ ,,
फ्रास	२१,६०० ,,	१२० ,,	६० ,,
जापान	१२,५५६ ,,	८७ ,,	१४ ,,

इस देश मे रेलों की लम्बाई का लगभग आधा भाग उत्तरी भारत के सतलज गगा मैदान में स्थित है। यह स्वभाविक ही है क्योंकि इस मैदान में भारत की बहुत बड़ी जनसख्या बसी हुई है। यहाँ भारत की बहुत ही उपजाऊ भूमि है जहाँ भारत के सबसे अधिक नगर बसे हैं। यहाँ ही देश का सबसे बड़ा नगर और बन्दरगाह कलकत्ता स्थित है, यहाँ प्रायः समतल भूमि होने के कारण रेल बनाने की सबसे अधिक सुविधाएँ भी हैं। देश के विभाजन के पहले यहाँ की सबसे लम्बी रेलवे लाइन एन० डब्लू० आर० (लम्बाई ६,६०० मील) इसी मैदान में थी। इस देश की सबसे अधिक सामान ढोने वाली लाइन ई० आई० आर० जिसकी आय प्रति वर्ष १७ करोड़ रुपये थी, इसी मैदान में है। भारत की सबसे अधिक लाभ देने वाली रेलवे शाहदरा लाइट रेलवे (जिससे दस प्रतिशत मुनाफा प्रति वर्ष होता था), इसी मैदान मे है।

इस मैदान में चलने वाली रेलों की विशेषता यह है कि मीलों तक उनका मार्ग सीधा है उनको अधिक मुड़ने की आवश्यकता नहीं होती है।

यद्यपि इस मैदान में रेले बनाने की अधिक सुविधा है परन्तु वहाँ की घनी जलवर्षा तथा वहाँ पर स्थित हिमालय से आने वाली अनेक नदियाँ रेलवे लाइनों को बहुधा क्षति पहुँचाया करती हैं। बाढ़ के समय कहीं कहीं रेलवे लाइनें कट जाती हैं अथवा उनके पुल टूट जाते हैं। दूसरी असुविधा यह भी होती है कि रेल के किनारे डालने के लिए पत्थर की गिट्टी बहुत दूर से इस मैदान मे मँगानी पड़ती है।

गङ्गा के मैदान में चलने वाली रेलवे लाइनों की अनेक शाखाएँ हैं। जितनी शाखाएँ इस भाग में हैं उतनी देश के अन्य किसी भाग में नहीं हैं। ये शाखाएँ
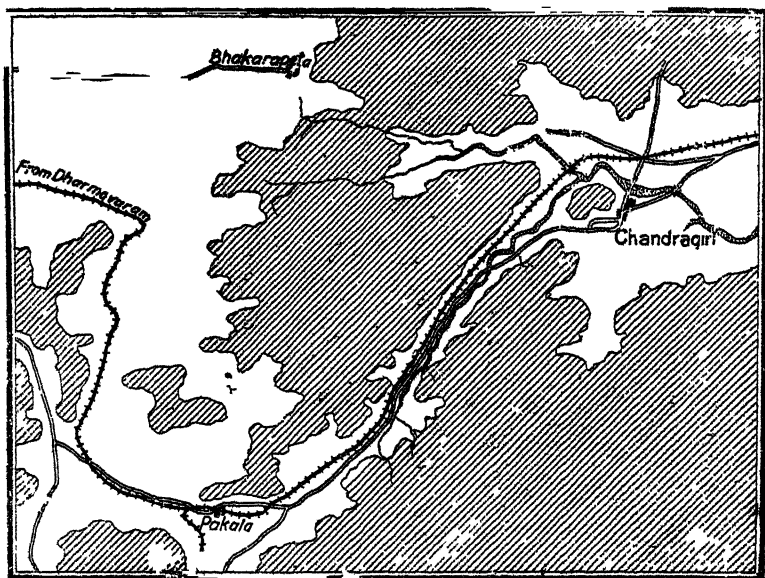
चित्र ७१—भू-रचना का रेल-मार्ग पर प्रभाव

विशेषतः कोयला-क्षेत्रो मे अधिक पाई जाती है। प्रायद्वीप से तुलना करने पर उत्तरी भारत मे स्थित रेलो के घने जाल का महत्व स्पष्ट होता है।

गङ्गा के मैदान मे चलने वाली रेलों का अन्त कलकत्ते मे होता है। वहाँ पर समुद्री व्यापार का सम्बन्ध इन रेलों द्वारा लाये हुए स्थली व्यापार से होता है। इस मैदान के उत्तर की ओर अथवा पश्चिम मे कोई ऐसा एक केन्द्र नही है जहाँ सभी रेलों का अन्त होता हो जैसा कि कलकत्ते मे देखा जाता है। मैदान के उत्तर में हिमालय पर्वत है जिसमे रेलों का प्रवेश प्रायः नही हो सका है। दार्जिलिग, शिमला और कागड़ा ही ऐसे स्थान है जहाँ पहाड़ों को पार कर रेल की छोटी लाइने पहुँची हैं।

भारत के दक्षिणी पठार में जो रेले है उनके मार्ग प्रायः टेढ़े-मेढे हैं। इसका कारण यह है कि पठार में ऊँची-नीची भूमि और टूटी-फूटी पहाड़ियाँ अधिक मिलती हैं। इनको बचाने के लिए और यथासभव समतल भूमि में ही चलने के उद्देश्य से रेलों के मार्ग में मोड़ आवश्यक हो जाती हैं। पठार में कहीं-कही रेल मार्ग को इतने कड़े ढाल पर चलना पड़ता है कि वहाँ रेलगाड़ी में एक इजिन पीछे से ठेलने के लिए

भी यह आवश्यक होता है। इस प्रकार के ढाल होशगाबाद और इगतपुरी मे हैं। पठार मे कहीं-कही रेलों के लिए सुरगे भी बनानी पडती हैं। ऐसा वही होता है जहाँ पर घूम कर पहाड के दूसरी ओर रेलें नही जा सकती हैं। पठार मे चलने वाली सभी
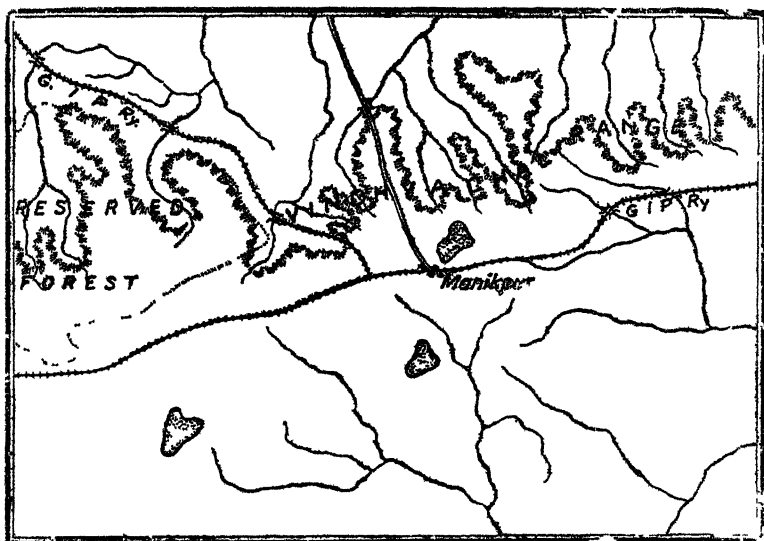
चित्र ७६

रेलों मे कहीं न कही सुरग बनी है। इन सब कारणों से रेल का बनना बहुत कठिन है और अधिक व्यय लेता है। धरातल की आकृतियों का रेल की दिशा पर पठार में बहुत प्रभाव है। कही-कहीं रेल को बहुत धुमाव से चलना पडता है। चित्र ७५ और ७६ मे धरातल के प्रभाव का उदाहरण है।

भारत के रेलों के चित्र को देखने से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर दो क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें रेलों की बहुत कमी है। यह क्षेत्र थर और राजस्थान के मरुभूमि तथा छोटा नागपुर व उड़ीसा के पहाड़ी भाग हैं। इन क्षेत्रों मे बहुत थोड़ी जनसख्या बसी है जिससे वहाँ रेलों की आवश्यकता कम है।

अभी भारत में केवल २५४ मील लम्बे मार्ग पर ही बिजली की रेलें चलती हैं। इनमे से १८४ मील मध्य रेलवे पर (बम्बई—कुरला, कल्याणी, पूना, इगतपुरी और

कुरला, मनखुर्द स्थानों के बीच) ३७ मील पश्चिमी रेलवे पर (बम्बई, बोरीविली, बिहार के बीच) और १८ मील दक्षिणी रेलवे पर (मद्रास, ताम्बरम के बीच) बिजली की रेले दौड़ती हैं। पूर्वी रेलवे पर १४ मील टुकड़े मे ऐसी गाड़ियाँ दौड़ती हैं।

द्वितीय योजना मे ८२६ मील लम्बे रेल मार्ग पर और बिजली की रेले चलाई जावेगी जिनमें से ४९३ मील पूर्वी रेलवे पर, ७२ मील द० पूर्वी रेलवे पर, १६१ मील मध्य रेलवे पर और १०० मील दक्षिणी रेलवे पर चलेगी। इसके अतिरिक्त ८४ मील की नई लाइनें बिछाई जायँगी। १,६०७ मील की लाइनों को दोहरी करना है। ८,००० मील पुरानी लाइनों को बदलना है, २३६४ इजन बनाने हैं, ११,५७५ यात्री गाड़ियों के और १०७,२४७ मालगाड़ी के डिब्बे तैयार करने है।

भारत में अधिकतर रेलें कोयले से चलती हैं। इनके चलाने मे बिजली का प्रयोग बहुत कम होता है। निम्न तालिका में भारत की बिजली से चलने वाली रेलों की तुलना ससार के अन्य देशों की रेलों से की गई है :—

१९५४ मे बिजली से चलने वाली रेलें

देश	मील	प्रतिशत
इटली	३२००	२८
सयुक्त राज्य अमेरिका	२७००	१
स्वेडन	२२००	२१
जर्मनी	२०००	५
फ्रास	१६००	४½
स्विट्जरलैण्ड	१८००	५०
ब्रिटेन	१०००	५
जापान	४५०	२
भारत	२४०	½

राष्ट्रीकरण हो जाने के बाद रेलों को ८ विभिन्न क्षेत्रों मे बाँटा गया है। इसका मुख्य उद्देश्य अनावश्यक खर्चों को कम करना तथा मितव्ययिता बढ़ाना है। १९५७ में भारतीय रेलों ने प्रतिदिन औसत रूप से ३८ लाख यात्रियों को और ३४ लाख टन माल को ढोया। इन रेलों में १,०७८ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा इससे वार्षिक लाभ ३५० करोड़ रुपये का होता है। इनसे १०.५ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

भारतीय रेलों के निम्न ८ क्षेत्र हैं :—

(१) **उत्तरी रेलमार्ग**—इसका उद्घाटन १४ अप्रैल १९५२ को हुआ। इसकी लम्बाई ३३८ मील और कार्यालय दिल्ली में है। पूर्वी पजाब, बीकानेर व जोधपुर स्टेट रेलवे और ईस्टइण्डिया रेलवे की इलाहाबाद, लकनऊ व मुरादाबाद डिवीजनों को मिलाकर यह रेलमार्ग बनाया गया है। यह पूर्वी पजाब, दिल्ली, उत्तरी-पूर्वी राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे फैला है। गेहूँ, ऊन, गन्ना आदि व्यापारिक वस्तुएँ इसी रेलमार्ग द्वारा ढोई जाती हैं। इस मार्ग पर छोटी और बड़ी दोनों ही लाइने जाती हैं।

(२) **उत्तरी पूर्वी रेल मार्ग**—इस क्षेत्र का उद्घाटन भी १४ अप्रैल १९५२ को हुआ। इसकी लम्बाई ३,०६० मील है। अवध, तिरहुत रेलवे और आसाम रेलवे तथा बी० बी० एण्ड सी० आई रेलवे के कुछ भाग (आगरा, कानपुर, ब्राच; आगरा, काठ गोदाम ब्राच) जोडकर यह रेलमार्ग बनाया गया है। यह उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग, उत्तरी बिहार, पश्चिमी बगाल का उत्तरी भाग और आसाम के कुछ भागो मे होकर जाता है। इसके द्वारा तम्बाकू, गन्ना, चाय, चावल, चमडा आदि ढोया जाता है। इसका कार्यालय गोरखपुर मे है।

(३) **पूर्वोत्तर-सीमान्त रेलवे**—इसका उद्घाटन १५ जनवरी सन् १९५८ को किया गया। यह रेलमार्ग १,७३८ मील लम्बा है और इसका कार्यालय पाडु मे है। इसके अन्तर्गत उत्तर पूर्वी रेल का पूर्वी भाग आता है। यह रेलमार्ग समस्त आसाम, प० बगाल और बिहार के कुछ भागों मे जाती है। इसके द्वारा चाय, पेट्रोलियम, कोयला, लकड़ी, पटसन आदि वस्तुएँ ढोयी जाती हैं।

(४) **मध्य रेल मार्ग** - इसका उद्घाटन ५ नवम्बर १९५१ को हुआ। यह रेलमार्ग ५,२९६ मील लम्बा है और इसका कार्यालय बम्बई में है। हैदराबाद स्टेट रेलवे, धौलपुर स्टेट रेलवे तथा सिंधिया रेलवे को जी० आई० पी० रेलवे से मिलाकर इसका निर्माण किया गया है। यह मार्ग मध्य प्रदेश, बम्बई, मद्रास तथा आध्र प्रदेश मे होकर जाता है। इसके द्वारा मैगनीज, ताँबा अल्मूम्युनियम, पीतल, कपास और नारगियाँ ढोई जाती हैं।

(५) **पश्चिमी रेलमार्ग**—इसका उद्घाटन ५ नवम्बर १९५१ को किया गया। इसकी लम्बाई ६०१३ मील है और कार्यालय बम्बई में है। इसमें बी० बी० एण्ड सी० आई की छोटी लाइन, सौराष्ट्र रेलवे, राजस्थान रेलवे व कच्छ रेलवे को समावेश किया गया है। गाधी-डीसा छोटी लाइन इसी रेलवे मे है। यह रेल मार्ग राजस्थान,

बम्बई और मध्य प्रदेश मे होकर जाता है। अनाज, कपास, नमक, तिलहन, अभ्रक, लकड़ियाँ, सूती कपड़े, सीमेंट आदि इस रेल द्वारा ढोये जाते हैं।

(६) **दक्षिणी रेलमार्ग**—इसका उद्घाटन १४ नवम्बर १६५१ को हुआ। यह रेलमार्ग ६,१०० मील लम्बा है और उसका कार्यालय मद्रास मे है। इसमे मद्रास और साउथ मरहठा रेलवे तथा साउथ इडियन रेलवे और मैसूर रेलवे को समावेश किया गया है। यह रेलमार्ग मद्रास, मैसूर, बम्बई तथा आध्र प्रदेश में होकर गुजरता है। इसके द्वारा भी तिलहन, कपास, खाद्यान्न, चमडा आदि ढोये जाते हैं।

(७) **पूर्वी रेलमार्ग**—इसका उद्घाटन अगस्त १६५५ को हुआ। इसकी लबाई २३२१ मील तथा कार्यालय कलकत्ता मे है। इसमे बगाल, नागपुर, रेलवे और ईस्ट इडियन रेलवे के कुछ भाग (दानापुर, सियालदह, धनबाद, हावड़ा और आसनसोल) मिलाये गये हैं। इसी मार्ग पर बर्नपुर और कुल्टी के लोहे के कारखाने, सिंदरी का खाद का कारखाना और चितरजन का इजिन का कारखाना है। यह रेल मार्ग बगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे जाता है। इसके द्वारा सीमेट, लोहा-स्पात, वस्त्र, चावल, जूट आदि ढोये जाते हैं।

(८) **दक्षिणी पूर्वी रेलमार्ग**—इसका उद्घाटन १ अगस्त १६५५ को हुआ। इसकी लबाई ३४२३ मील है और कार्यालय कलकत्ता मे है। इसमे पहले की पूर्वी रेलवे और बङ्गाल-नागपुर रेलवे का ही भाग है। यह मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और बङ्गाल में होकर जाता है। इसके द्वारा मैगनीज, लकडियाँ, लोहा, कोयला ढोया जाता है। टाटानगर, रुरकेला, भिलाई, विशाखापत्तनम आदि इसी रेल मार्ग पर हैं।

सडके

भारत में सड़क ही मुख्य मार्ग है। इस देश का यह बहुत पुराना मार्ग है। भारत के अधिकतर भागों मे सड़क बनाना बहुत आसान है और उसमे व्यय भी बहुत कम होता है। प्राचीन समय मे इन्हीं मार्गों से इधर-उधर आवागमन होता था। मोहनजोदड़ो की खुदाई से यह पता चलता है कि इस देश मे बहुत प्राचीन काल में भी पक्की सड़कें बनी हुई थीं।

रेल की अपेक्षा सड़क बनाने में बहुत कम व्यय होता है। परन्तु इस देश में जलवर्षा की ऋतु में अधिकाश सड़कें कट जाती हैं और इसलिए उनसे बहुत कम लाभ उठाया जा सकता है। सड़कें अधिकतर भाग में केवल जाड़े और गर्मी में ही उपयोगी

सिद्ध होती हैं। इन ऋतुओ मे नदियो को पार करने मे भी अधिक कठिनता नहीं होती। सड़क द्वारा आवागमन प्रायः बन्द हो जाने के कारण वर्षा के दिनों मे अधिकतर गावों का सम्पर्क एक दूसरे से टूट सा जाता है। आधुनिक समय मे जब कि गावों की आर्थिक उन्नति पहले की अपेक्षा अधिक हो चुकी है यह सम्पर्क-विच्छेद बहुत ही असुविधाजनक है। इसीलिए आजकल पक्की सड़कों के बनाने की ओर इस देश में अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इस देश में मोटरों का प्रचार बढ़ जाने के कारण भी यह आवश्यक है कि यहाँ पक्की सड़के अधिक बनाई जायँ।

ससार के उन्नतिशील देशों से तुलना करने पर सड़कों की दृष्टि से भारत की अवस्था बहुत ही पिछड़ी है। निम्न ब्यौरे से इस अवस्था का अनुमान किया जा सकता है।

सड़को का महत्व

	प्रति १ लाख जनसख्या पर	प्रति वर्ग मील पर
संयुक्त राज्य अमेरिका	२,५००	१
ब्रिटेन	३६२	२
फ्रान्स	६३४	१
भारत	३	$\frac{१}{१०}$

इस देश में न केवल अच्छी सड़कों की ही कमो है वरन् यहाँ मोटरें भी बहुत कम हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति तीन जनों पर एक मोटर कार है। ब्रिटेन में प्रति १४ व्यक्तियों पर एक मोटर कार है, फ्रान्स मे प्रति १७ व्यक्तियों पर एक मोटर कार है, परन्तु भारत में प्रति १,२४३ व्यक्तियों पर एक मोटर कार है।

विभाजन के पहले भारत में लगभग ३ लाख मील लम्बी सड़कें थीं जिनमे से लगभग ८२,००० मील पक्की सड़के हैं। इस देश का लगभग ४० से ७५ प्रतिशत क्षेत्रफल ऐसा है जिसको सड़क की सेवा प्राप्त नहीं है। कोई कोई स्थान तो सड़क से लगभग ५० मील पर स्थित है। पक्की सड़कों का लगभग ५० प्रतिशत भारत के दक्षिण पठार में है। पठार में कड़ी चट्टानों के मिलने से सड़क को पक्की बनाना बहुत सरल है। कच्ची सड़कों में लगभग तीन-चौथाई भाग गगा के मैदान मे स्थित है जहाँ कड़ी चट्टानें नहीं मिलती हैं। इस प्रकार कच्ची अथवा पक्की सड़क का होना अधिकतर

कड़ी चट्टान या मुलायम चट्टान के होने पर विशेषतः निर्भर है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए पक्की सड़कें बहुत कम हैं। केवल यही नहीं, बहुत-सी पक्की सड़कों मे अन्त-र्सम्बन्ध भी नहीं है।

इन सब कमियों को दूर करने के लिए १६४३ में मार्ग सुधार योजना (जिसको नागपुर मार्ग योजना कहते हैं) बनाई गई थी। इस योजना के अनुसार भारत की सड़के चार प्रकारों में विभाजित की गई थी : राष्ट्र मार्ग (नेशनल हाई वे), प्रदेश मार्ग

चित्र ७७—सड़कें

(स्टेट हाई वे), जिला मार्ग (डिस्ट्रिक्ट रोड्ज), ग्राम मार्ग (विलेज रोड्ज)। कुल मिलाकर देश में छः राष्ट्र मार्ग होंगे जिनमें से चार मार्ग दिल्ली, कलकत्ता मद्रास और बम्बई के नगरों में अतर्सम्बन्ध स्थापित करेंगे; और दो राष्ट्र मार्ग इस

चतुर्भुज के व्यासों को जोड़ देंगे। यह योजना २० वर्ष मे पूरी होनी थी। राष्ट्र मार्ग की लम्बाई सब मिलाकर १३,८०० मील होगी, परन्तु इसमे से ११,८०० मील इस समय बनी हुई सड़कों का उपयोग राष्ट्र मार्ग मे होगा, अर्थात् केवल १,६०० मील पक्की सकड़ों के बन जाने से ही राष्ट्र मार्ग का जाल पूरा होना था। उपस्थित ११,८०० मील लम्बी सड़को में से (जो राष्ट्र मार्गों में सम्मिलित होंगी) उनका लगभग दो-तिहाई फिर से पक्का करना था। राष्ट्र मार्गों के पूरा करने में १२ नये पुल भी बनाने थे। नागपुर योजना के अन्तर्गत लगभग सवा लाख मील सड़कें अन्य प्रकार की बनेंगी, जिससे इस देश का कोई भी ग्राम ५ मील से अधिक दूरी पर न होगा और कोई भी ग्राम पक्की सड़क से २० मील से अधिक दूर न होगा।

प्रथम पचवर्षीय योजना अवधि मे राष्ट्रीय सड़कों के विकास पर ३४ करोड़ रु० व्यय किया गया। इस अवधि में ७४६ मील छूटे हुए टुकड़े, ३३ पुल और लगभग ५,००० मील वर्तमान सड़कों को दुरुस्त किया गया तथा ४०० मील लम्बे टुकड़े को चौड़ा किया गया। द्वितीय योजना मे सड़कों के लिए ४५ करोड़ रुपया खर्च किया जायगा। इस अवधि में ६०० मील लम्बे छूटे हुए भागों को बनाया जायगा तथा ६० बड़े पुल को बनाने और ४००० मील वर्तमान सड़कों को सुधारने और ३००० मील लम्बी सड़कों को चौड़ा किया जायगा।

भीतरी जल-मार्ग

भारत में अनेक नदियाँ हैं परन्तु जल मार्गों की उन्नति यहाँ बहुत कम हुई है। इसके मुख्य भौगोलिक कारण यहाँ की मानसूनी जलवर्षा से सम्बन्धित हैं। वर्षा ऋतु में नदियों में बहुधा बाढ़ रहती है जिसके कारण नदी का जल नदी-तट के दोनों ओर बहुत दूर तक फैल जाता है। यह जल इतना उथला होता है कि नदी मे चलने वाली नाव के लिए बेकार है। इस जल के कारण नदी तक पहुँचने में बड़ी असुविधा होती है और इसीलिए जलमार्गों के लिए नदी का प्रयोग कठिन है। वर्षा में नदी का बहाव भी बहुत वेगवान होता है जिससे उसमे नावों का चलाना भयपूर्ण है। गर्मियों में अधिकतर नदियाँ (यहाँ तक कि बड़ी बड़ी नदियाँ भी) इतनी सूख जाती हैं कि उनमें नाव चलने योग्य जल नहीं रहता है। कुछ नदियों मे तो बहाव विछिन्न हो जाता है और नदी का जल छोटे-छोटे टुकड़ों में भरा रहता है। इसके अतिरिक्त नदी-तट से जल का बहाव बहुत दूर हो जाता है। तट और बहाव के बीच

सूखी बालू की काफी चौड़ी पट्टी हो जाती है जिसको पार करना कठिन होता है। इस बालू की पट्टी में सामान ढोनेवाली गाड़ियों का चलाना प्रायः असम्भव हो जाता है। इन्ही सब कारणों से भारत की नदियों में बहुत कम नावे चलती हैं।

परन्तु आसाम और बगाल की अधिकतर नदियों मे नावें चला करती हैं क्योंकि इन नदियों में प्रायः जल का बहाव वर्ष भर पर्याप्त रहता है। इन प्रदेशों में भूमि नीची होने के कारण सड़के भी बहुत कम हैं। इसलिए जल मार्ग ही यहाँ पर आवागमन का प्रायः एक मात्र साधन है। इसलिए इस मार्ग को सुरक्षित बनाये रखने के लिए कहीं-कहीं मशीनों के द्वारा बालू निकाल कर आवश्यकता पड़ने पर नदी का बहाव गहरा कर दिया जाता है। गङ्गा, ब्रह्मपुत्र तथा अन्य बड़ी नदियों मे कोयले से चलने वाली बड़ी-बड़ी नावे चला करती हैं। बहुध्येय योजनाओं के पूरा होने पर भारत की कई नदियों मे नाव चलाने की सुविधा प्राप्त हो जायगी। दामोदर तथा महानदी मे बाँध बँध जाने के कारण जल का बहाव नियमित हो जायगा। इस देश मे प्राचीन समय मे नाव चलाने के लिए कुछ नहरें बनाई गई थीं। रेलों के बनने के उपरान्त इन नहरों का उपयोग प्रायः बन्द हो गया क्योंकि रेल का किराया नहरों की अपेक्षा कम था। इसके अतिरिक्त रेलों की गति भी नहर की गति से बहुत अधिक थी। भारत मे नाव चलने वाली नहरों की लम्बाई लगभग ३,८०० मील थी। इस लम्बाई का लगभग दो-तिहाई भाग बगाल और मद्रास मे है। बगाल मे नहरों के बनाने मे कोई कठिनाई नही पड़ती। समतल मुलायम भूमि को खोद कर अनेक जलाशयों को जोड़ देने से ही बगाल में नहर तैयार हो जाती है। यही कारण है कि बङ्गाल मे नाव चलाने योग्य नहरों की लम्बाई भारत में सबसे अधिक है। मद्रास में डेल्टा में बनाई हुई सिंचाई की नहरों में नावें भी चला करती हैं। इसी प्रकार गङ्गा की ऊपरी नहर में भी थोड़ी दूर तक नावे चलाई जाती हैं। पंजाब की सिंचाई की नहरों में हिमालय से लकड़ी के लट्ठों का यातायात भी होता है। बिहार की सोन नदी की नहरें भी कुछ मात्रा मे नावे चलाने के काम आती हैं। बिहार मे नहरों द्वारा कैमूर पहाड़ी से बालू अधिक ढोई जाती है। वास्तव में पहले जो नहरें सिंचाई के लिए बनाई गई थीं उनमें नाव चलाने का भी प्रबन्ध था। परन्तु आजकल रेलों की प्रतियोगिता इतनी बढ़ गई है कि नाव द्वारा यातायात नगण्य है। यद्यपि नई योजनाओं में गङ्गा में अधिक दूरी तक नाव चलाने का प्रबन्ध किया जाने वाला है।

दक्षिण में बकिंघम नहर और उड़ीसा तटीय नहर विशेषतः नाव चलाने के

लिए ही बनी थीं। नाव चलाने वाली नहरो मे ये सबसे बड़ी नहरे है। बकिंघम नहर समुद्र तट के समानान्तर बनी है, जिसमे अनेक स्थानों पर समुद्र का जल भर जाता है। मद्रास के उत्तर मे इस नहर की लम्बाई १६६ मील है और मद्रास के दक्षिण मे ६६ मील। उत्तर में यह कृष्ण डेल्टा को कन्नूर नहर मे मिल जाती है। पहले इस नहर मे तट की नदियों का जल तथा समुद्र के ज्वार-भाटे का जल बहुधा भर जाया करता था। इसलिए इसमे बालू जमने से यह नहर बहुत शीघ्र उथली हो गई थी। यह नहर समुद्र के इतने निकट बनी थी कि कहीं कही इसमें समुद्र की लहरे भी आ जाती थीं। इसीलिए १८८३ मे इस नहर के सुधारने का कार्य आरम्भ किया गया। कई स्थानो मे इसको समुद्र से काफी दूर हटा दिया गया, जिसमें समुद्र का जल अब नहीं आ सकता। समुद्र की लहरो को रोकने के लिए कही-कही इसमे पूर्वी ओर ऊँचे बाँध बना दिये गये हैं। जहाँ कहीं इसके पथ मे नदियों के बहाव पड़ते हैं, वहाँ लोहे के फाटक इसके दोनो ओर बना दिये गये हैं, जिससे नदियो की बाढ़ का जल नहर में नही भरता। १८६३ के बाद इन फाटकों के स्थान पर बाँधों की शृंखला (लॉक्स) बना दी गई है। इस नहर में आजकल नमक तथा मद्रास के लिये ईंधन की लकड़ी ही ढोई जाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सबसे बड़ी नाव चलने वाली नहरों में करनूल करप्पा नहर, उड़ीसा नहर, मिदनापुर नहर और सोन नहरे हैं।

इस समय भारत मे जलमार्गों की पूर्ण लम्बाई लगभग २५,००० मील है इनमें १०,००० मील नदियो और १५,००० मील नहरों का भाग है। परन्तु इतने बड़े देश के लिए यह लम्बाई बहुत कम है।

कुछ स्थानों में नदियों पर पुल न होने के कारण बड़ी-बड़ी स्टीम बोटों द्वारा नदी के पार करने का प्रबन्ध (फैरी) है। इस प्रकार के प्रमुख घाट पटना में और मोकामा घाट में गंगा पर हैं।

आतरिक जलमार्गों के विकास का कार्यक्रम अब केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग के अधीन है। इस आयोग ने निम्नाकित योजनाएँ प्रस्तुत की हैं :—

(१) दामोदर घाटी योजना के अतर्गत हुगली को रानीगंज कोयला खानों से सबधित करने के लिए दामोदर नदी से नहर बनाई जा रही है।

(२) बम्बई मे सूरत से काकड़ापार बाँध तक काकड़ापार योजना के अंतर्गत ५० मील नहर का मार्ग बनाया जायगा।

(३) हीराकुड बाँध योजना की पूर्ति पर महानदी ३० मील तक नाव्य हो जायेगी।

(४) गंगा-अवरोधक बाँध योजना के अंतर्गत मुर्शिदाबाद जिले से उत्तर प्रदेश और बिहार की गगा नदी पद्धति मे नावे चलाने योग्य जलमार्ग बनाये जायेंगे। इससे कलकत्ता से बिहार की दूरी ५०० मील कम हो जायेगी।

(५) गंगा-ब्रह्मपुत्रा यातायात सभा ने भी तीन योजनाएँ बनाई हैं जिनमें से एक ऊपरी गगा, दूसरी आसाम मे ब्रह्मपुत्रा की सहायक नदियाँ—दिहींग, दीबू, धनसीरी और कलाग—के लिए और नीसरी ब्रह्मपुत्र नदी को यात्री यातायात योग्य बनाने के लिए है।

(६) कलकत्ता, कोचीन नहर की भी एक योजना है। इस योजना में बहुत सी नहरे हैं—मिदनापुर, उड़ीसा, तटीय नहरे गोदावरी एवं कृष्णा डेल्टा नहरे, बकिंधम नहर और वेदारन्यम नहर। इन सब नहरो के सुधार और बीच के टुकड़ों को सबधित करने से कलकत्ते से कावेरी तक जलमार्ग बन सकेगा।

(७) गंगा नदी को ब्रह्मपुत्रा नदी से भारतीय क्षेत्र में ही सबंधित करने की योजना भी है। यह नहर आसाम से माल परिवहन के लिए अत्यन्त उपयोगी होगी।

(८) भारत की बड़ी नदियों को जोड़ने वाली अन्य योजनाएँ निम्न हैं :—

(i) नर्बदा नदी को सोन की सहायक जोहिला नदी से जोड़ना।

(ii) नर्बदा की सहायक बिरन नदी को सोन की सहायक कटनी से जोड़ना।

(iii) नर्बदा को जमुना से मिलने वाली केन की सहायक बिरमा नदी से सबधित करना।

(iv) नर्बदा की सहायक करम नदी को चम्बल नदी मे मिलाना।

(v) नर्बदा को गोदावरी की सहायक बैनगगा से जोड़ना।

(vi) महानदी की सहायक हसदो नदी को सोन की सहायक रिहेड नदी से सबधित करना।

(vii) गोदावरी की सहायक वर्धा को ताप्ती नदी से जोड़ना।

इन योजनाओ के कार्यान्वित हो जाने से गगा और जमुना का सबध नर्बदा और महानदी से तथा गोदावरी का संबध नर्बदा और ताप्ती से हो जायेगा। इससे बगाल की खाड़ी के बदरगाहों से अरब सागर के समुद्र तट तक आतरिक जलमार्गों से माल एव यात्री परिवहन संभव हो जायगा।

भारतीय जहाजी-बेड़ा

भारत की तट-रेखा लगभग ३५०० मील है किंतु इसका जहाजी बेड़ा, अन्य देशो की तुलना मे बहुत ही अपर्याप्त है। हमारे जहाजी बेड़े का भार ५८१,६८६ ग्रॉस टन है, जो विश्व के जहाजी बेड़े का केवल ०.५२% है। यह सम्पूर्ण तटीय व्यापार के लिए पर्याप्त है किंतु विदेशी व्यापार का केवल ५% ही भारतीय जहाजों द्वारा होता है। हमारे तटीय जहाज प्रतिवर्ष लगभग २० लाख यात्रियो को ले जाते हैं।

१९४७ की जहाजी नीति के अनुसार यह तय किया गया कि भारत के जहाजी बेड़े की शक्ति २० लाख टन की होनी चाहिए। यह इस प्रकार निर्धारित की गई है।

(1) तटीय व्यापार में भारतीय जहाजों का भाग १००% रहे।

(11) निकटवर्ती देशों के व्यापार में ७५% भाग रहे।

(111) विदेशी व्यापार मे ५०%, और

(1v) पूर्वी देशों के व्यापार में भारतीय जहाजों का भाग ३०% हो।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत हमारे जहाजी बेड़ों का भार ३९०,७०७ ग्रास टन से बढ़कर ६००,००० टन होने का अनुमान रखा गया था। द्वितीय योजना के अतर्गत टन भार में ३००,००० टन की वृद्धि का आयोजन करने का कार्यक्रम रखा गया है। इस वृद्धि के फलस्वरूप भारतीय जहाजों द्वारा विदेशी व्यापार का १२ से १५% भाग, निकटवर्ती देशों के व्यापार का ५०%भाग सम्पन्न किया जा सकेगा। अभी यह भाग क्रमशः ५% और ४०% है।

इस समय भारत के पास १३२ जहाज हैं जिनमें से २५७,४५६ ग्रास टन वाले ८४ जहाज तटीय व्यापार में और ३२४,२३३ ग्रॉस टन वाले ४८ जहाज विदेशी व्यापार में लगे हैं। भारतीय जहाज ६ मार्गों पर चलते हैं।

भारतीय जहाजी बेड़े की उन्नति के लिए भारत सरकार ने प्रयत्न किए हैं :—

(१) १९५० से तटीय व्यापार भारतीय जहाजो के लिए सुरक्षित रखा गया है। १९५४ में भारतीय जहाजों ने २८ लाख टन माल ढोया। भारतीय सरकार ने विदेशी कपनियों से भी इस आशय के समझौते किये हैं कि पाकिस्तान, बर्मा और लंका को होने वाले व्यापार मे भी भारत का कुछ भाग रहे।

(२) जहाजों और उनसे सबधित आवश्यक वस्तुओं के लिए आर्थिक सहा-

यता दी है। १९५१-५६ की अवधि मे निजी उद्योग को सरकार से २४ करोड़ रुपये की राशि ऋण के रूप में मिली है तथा १९५६-६१ की अवधि मे १२½ करोड़ रुपये और देने का आयोजन किया है। इससे जहाजी शक्ति में ६८,००० ग्रॉस टन की वृद्धि होगी।

(३) हिन्दुस्तान शिपयार्ड में बने जहाजों को इग्लैंड मे बने जहाजों की कीमत पर ही बेचा जाता है।

(४) देश मे दो जहाजी निगमों की स्थापना की गई है। प्रथम निगम 'ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन' के नाम से १९५० मे स्थापित किया गया। इसके ६ जहाज हैं जिनका टन भार ४२,२९३ ग्रास टन है। इसकी सेवायें आस्ट्रेलिया, पूर्वी अफ्रीका मलाया और जापान के बीच नियमित रूप से चल रही है।

दूसरा निगम वैस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन की स्थापना जून १९५६ में की गई। इसके जहाज भारत फारस की खाड़ी, भारत-लालसागर, भारत-पोलैंड और भारत रूसी मार्गों पर चलते हैं।

विदेशी व्यापार मे भाग लेने वाली ५ भारतीय जहाजी कपनियाँ ये हैं।—

(१) सिंधिया क०—टन भार १९७,२७८ ग्रॉस टन
(२) भारत-स्टीम शिप—,,७३,२९३"
(३) भारत लाइन्स—.,६४,८४९"
(४) पूर्वी शिपिंग कार्पोरेशन—३८,१६७"
(५) पश्चिमी शिपिंग कार्पोरेशन—

वायु-मार्ग

इस समय भारत में वायु-मार्ग का बहुत ही कम महत्व है। परन्तु भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यूरोप और आस्ट्रेलिया के बीच का वायु मार्ग इस देश में होकर ही जा सकता है। इसलिए बाहरी वायु-मार्गों का अधिक महत्व होने के कारण देश के भीतर भी कुछ वायुमार्ग उन्नत हो गये हैं। बाहरी वायुमार्गों में अँग्रेजी मार्ग (बी०ओ०ए०सी०), फ्रासीसी मार्ग (एयर फ्रास), डच मार्ग (के०एल०एम) और अमेरिकन मार्ग (टी० डब्ल्यू० ए०) मुख्य हैं।

इस समय भारत मे ८५ वायुयान स्टेशन हैं। इसमे सबसे महत्त्वपूर्ण और बड़ा वायु-मार्ग स्टेशन कलकत्ता के निकटस्थ दमदम है। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में

वायुयान अधिक उतरते हैं इसलिए वहाँ पर कई वायु मार्ग स्टेशन बने हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली मे पालम और सफदरजग, कलकत्ता में दमदम और बारिकपुर, बम्बई मे सैन्टाक्रूज और जुहू। मद्रास का सैन्ट टामस माउन्ट और इलाहाबाद का बमरौली स्टेशन भी बड़े स्टेशनों मे सम्मिलित किये जाते हैं। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तिरुचिरापल्ली, विशाखापट्टम, जोधपुर, भुज, अमृतसर, अगरतला और अहमदाबाद के वायुमार्ग स्टेशनों पर सामान की जाँच और उस पर चुंगी लगती है। नियमित रूप से चलने वाले वायुमार्ग स्टेशनों के अतिरिक्त वायुमान उतरने के लिए देश मे अनेकों वायुमार्ग पट्टियाँ (एयर स्ट्रिप) भी सरकार द्वारा बनाई गई हैं। भारत की सरकार इन सब की देख-रेख के लिए लगभग ५० लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय करती है।

नीचे दिये हुए ब्यौरे से भारत के भीतरी वायुमार्गों की उन्नति का ज्ञान होता है :—

वर्ष	मील उड़ान	यात्री ले जाये गये	सामान ढोया गया
१६४८	१२६ लाख	३ लाख	१२० लाख पौंड
१६४६	१५१ ,,	३½ ,,	२२५ ,, ,,
१६५०	१८६ ,,	४½ ,,	८०० ,, ,,
१६५१	१६५ ,,	४½ ,,	८३५ ,, ,,
१६५३	१६२ ,,	४ ,,	८४८ ,, ,,
१६५५	२१३ ,,	४६ ,,	६८२ ,, ,,
१६५६	२३५ ,,	५·५ ,,	६६२ ,, ,,
१६५७	२३३ ,,	५·६ ,,	८५१ ,, ,,

१६४७ की तुलना में यात्रियो के ट्रैफिक में दुगुनी, माल ढोने मे १५ गुनी; डाक ढोने मे १६ गुनी और उड़ान मे २½ गुनी प्रगति हुई है।

भारत के भीतरी वायुमार्गों की उन्नति मे सरकारी डाक बहुत सहायक हुई है। इसलिए यहाँ पर संक्षिप्त में हवाई डाक की उन्नति का वर्णन दिया जाता है।

१६२६ की अप्रैल मे भारत में पहली बार वायुमार्ग से डाक भेजी गई थी। इगलैंड और भारत के बीच तथा यूरोप के अधिकतर देश, ईराक और मिस्र आदि देशों को उस समय डाक जाती थी। १६२६ के दिसम्बर मे दिल्ली और करॉची के बीच सरकारी हवाई जहाजो द्वारा हवाई डाक जाने लगी। १६३० में डच वायुमार्ग की
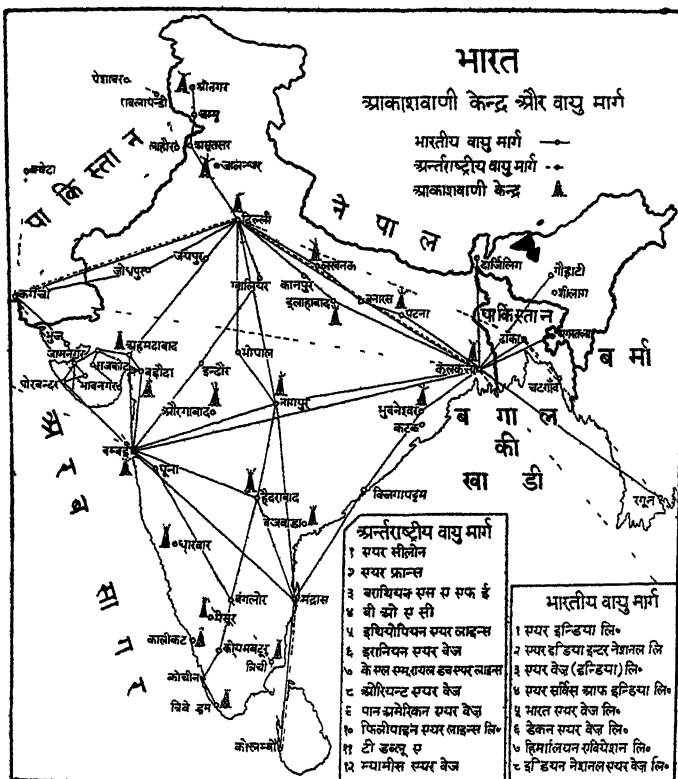
चित्र ७८—वायुमार्ग

स्थापना हुई। यह मार्ग हालैंड और पूर्वी द्वीपसमूह के बीच भारत से होकर जाता है। उसी वर्ष मार्सेल्स और सेगॉव के बीच भारत से होकर फ्रांसीसी वायुमार्ग भी स्थापित हुआ। यह विदेशी मार्ग केवल बाहरी डाक ही ले जा सकते थे। देश के भीतरी मार्गों में नहीं। १९३२ में इन मार्गों से भी इस देश की हवाई डाक जाने लगी। १९३२ में कराँची, बम्बई और मद्रास को हवाई डाक ले जाने के लिए वायु-मार्ग से जोड़ दिया गया। इस मार्ग पर टाटा कम्पनी के वायुयान चलते थे। १९३३ में कराँची और कलकत्ता के बीच हवाई डाक ले जाने के लिए एक भारतीय कम्पनी, 'इंडियन ट्रांस कान्टिनेन्टल एयरवेज' खोली गई। १९३२ के दिसम्बर में कलकत्ता

और ढाका के बीच हवाई डाक ले जाने के लिए 'इंडियन नेशनल एयरवेज' नामक कम्पनी खोली गई, जो कलकत्ता से रंगून तक अपने वायुयान चलाती थी। १९३४ में करॉची और लाहौर के बीच भी हवाई डाक चलने लगी। इसके बाद अन्य-अन्य स्थानो के लिए भी हवाई डाक ले जाने का प्रबन्ध हो गया।

१, अगस्त, १९५३ को वायु यातायात राष्ट्रीयकरण के साथ भारत में दो निगमों का निर्माण हुआ : (१) पहला निगम इडियन एयरलाइन्स कार्पोरेशन बनाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य भारत के आतरिक भागों में वायु-यातायात की सुविधाएँ प्रदान करना है। इसके अंतर्गत भूतपूर्व की आठ बड़ी-बड़ी वायुयातायात कम्पनियाँ हैं। एयरवेज लि०, हिमालियन एविएशन लि०, कलिंगा एयर लायंस, भारत एयरवेज, एयर इडिया लि०, एयर सर्विसेज आफ इंडिया लि०, दकन एयरवेज और इंडियन नेशनल एयरवेज। इस निगम के अधिकार में ऐसे वायुयान हैं जो देश के २२,७०० मील लम्बे मार्ग पर चलते हैं। प्रमुख वायु मार्ग ये हैं:—

(क) मद्रास : (१) मद्रास—त्रिवेन्द्र—मद्रास
(२) मद्रास—हैदराबाद—नागपुर—दिल्ली
(३) मद्रास—नागपुर—दिल्ली (रात्रिसेवा)

(ख) कलकत्ता—(१) कलकत्ता—गोहाटी—तेजपुर—जोरहट—मोहनबारी
(२) कलकत्ता—गोहाटी—जोरहट – लीलाबारी—जोरहट—पासीघाट
(३) कलकत्ता —अगरतला—गोहाटी—करवी—सिलचर
(४) कलकत्ता अगरतला—गोहाटी—कांची, कमालपुर—कैलाशपुर—सिलचर—इम्फाल।
(५) कलकत्ता—बगलौर—कलकत्ता।
(६) कलकत्ता—ढाका—कलकत्ता।
(७) कलकत्ता—चिरगॉव—कलकत्ता।
(८) कलकत्ता – रगून—कलकत्ता
(९) कलकत्ता—बागडोगरा—कलकत्ता

(ग) बबई—(१) बबई—पूना—हैदराबाद—बगलौर
(२) बंबई—नागपुर—कलकत्ता (रात्रिसेवा)
(३) बबई—करॉची—बबई
(४) बबई—अहमदाबाद—भुज—कराँची

(५) बबई—भावनगर—राजकोट—जामनगर—भुज

(६) बबई—बेलगाँव—मंगलौर—कोचीन

(७) बबई—केसोद—पोरबदर—जामनगर

(८) बबई—कलकत्ता—बबई

(९) बंबई—कोलबो—बबई

(१०) बबई—दिल्ली—बबई

(घ) दिल्ली—(१) दिल्ली—कलकत्ता—दिल्ली

(२) दिल्ली—लखनऊ—गोरखपुर—बनारस—पटना—कलकत्ता

(३) दिल्ली—श्रीनगर—दिल्ली

(४) दिल्ली—लाहौर—दिल्ली

(५) दिल्ली—करॉची—दिल्ली

(६) दिल्ली—अमृतसर—काबुल

(७) दिल्ली—आगरा—गवालियर—भोपाल—इन्दौर—औरंगाबाद—बबई

(८) दिल्ली—बीकानेर—जोधपुर—अहमदाबाद—राजकोट

इस निगम के हवाई जहाजों ने ३० जून १९५८ मे समाप्त होनेवाली छमाही में ८७,५१३०५ मील की उड़ान की, ३,१६४१७ यात्री ले गये, तथा ४,७८,५८,०८५ पौंड माल और ५७,०३,८६२ पौंड डाक होगी।

(२) दूसरा निगम 'एयर इडिया इटरनेशल' भारत के विदेशों के लिए वायु यातायात की सुविधाये प्रस्तुत करता है। इसके पास १२ हवाई जहाज है जो लगभग १७ देशों को जाते हैं। इसका वायु मार्ग २३,४८३ मील है। इस निगम के हवाई जहाजों ने ३० जून १९५८ मे समाप्त होने वाली छ:माही में ३१,८०,३८७ मील की उड़ान की तथा २७,८३१ यात्री, १५,६७,५२७ पौंड माल और ७,८०,९३२ पौंड डाक ढोयी। इसके मुख्य मार्ग ये हैं:—

(१) देहली—बबई—कलकत्ता—बबई—काहिरा—रोम—जिनेवा—पेरिस और लदन

(२) लदन—डुसलडर्फ—रोम—काहिरा—बंबई

(३) बबई—काहिरा—रोम—डुसलडर्फ—लदन

(४) लंदन—जिनेवा—रोम—काहिरा—बंबई

(५) कलकत्ता—बबई—दिल्ली

(६) कराची—अदन—नैरोबी
(७) नैरोबी—अदन—कराची—बम्बई

प्रश्न

१ भारत में वायु मार्गों के पिछड़े होने का भौगोलिक कारण क्या है? विवरण सहित लिखिये।
२ भारत की भू रचना का प्रभाव सड़कों और रेलों पर क्या है? व्याख्यापूर्ण उत्तर लिखिये।
३. भारत में जल-मार्गों की उन्नति कहाँ तक हुई है? इस उन्नति में भौगोलिक बाधाएँ क्या हैं?
४ भारत में मुख्य वायु-मार्ग कौन-कौन हैं? इन मार्गों पर भौगोलिक प्रभाव का वर्णन कीजिये।
५. भारत में सिन्धु, गंगा के मैदान का निम्नलिखित मार्गों में क्या स्थान है?
(अ) सड़कें, (ब) रेलें, (स) जल मार्ग।

अध्याय ११

व्यापार

(Trade)

व्यापार सभ्यता का एक लक्षण है। किसी भी देश अथवा व्यक्ति की आर्थिक उन्नति व्यापार पर ही निर्भर है। कोई देश अथवा व्यक्ति अपनी बचत को दूसरे देश अथवा व्यक्ति की बचत से अपनी आवश्यकता पूर्ण करने के लिए विनिमय करता है। साधारण दशा में प्रत्येक व्यक्ति वही काम करता है जिससे उसकी बचत अधिक हो। अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए इसी बचत के द्वारा वह दूसरों की बचत प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति प्रायः वह कार्य करता है जिसमें उसकी रुचि होती है जिसके लिए वह प्रकृति द्वारा सर्वोच्च माना गया है। जलवायु, धरातल की आकृतियाँ और सामाजिक संगठन का प्रभाव उत्पादन पर बहुत घनिष्ठ होता है। इन्हीं कारणों से व्यक्तियों की आवश्यकताएँ भी उत्पन्न होती हैं अर्थात् क्रय-विक्रय का भूगोल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। किसी स्थान के भूगोल के द्वारा ही वहाँ का व्यापार घटता-बढ़ता है।

भारत मे ससार की पूर्ण जनसंख्या का लगभग पाँचवाँ भाग बसा हुआ है। इतनी बड़ी जनसख्या के होते हुए भी इस देश का व्यापार बहुत थोड़ा है। भारत का पूर्ण विदेशी व्यापार ब्रिटेन के विदेशी व्यापार से बहुत कम है यद्यपि वहाँ की जनसख्या भारत की जनसख्या का केवल छठवाँ भाग ही है। भारत का भीतरी व्यापार भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही थोड़ा है। हमारे व्यापार के पिछड़े होने का मुख्य कारण हमारी निर्धनता है।*

निर्धनता के कारण हमारे देश के लोगों की आवश्यकताएँ पूरी ही नहीं होतीं

---

*प्रति व्यक्ति की आय	(रुपयो मे)
संयुक्त राज्य अमेरिका	६,४१०
ब्रिटेन	४,३५१
आस्ट्रेलिया	४,६६४
न्यूजीलैंड	५,२६६
भारत	२८३
फ्रास	३,६३१
जापान	६७८
कनाडा	६,५१६

हैं, जिससे यहाँ के व्यापार मे कमी है। आवश्यकताओं की पूर्ति न होने का कारण यह है कि उत्पादन थोड़ा होने के कारण यहाँ की बचत बहुत ही थोड़ी है। थोड़ी बचत के बदले मे दूसरे को थोड़ी ही बचत मिलती है और इसलिए थोड़ा ही व्यापार होता है। पीछे यह देखा गया है कि इस देश की खेती पिछड़ी है, इस देश के बन पिछड़े हैं और इस देश के उद्योग पिछड़े हैं। ऐसी दशा में व्यापार भी पिछड़ा ही होगा। इसलिए भारत की मुख्य आर्थिक समस्या उत्पादन बढ़ाने की है।

भारत मुख्यतः एक खेतिहर देश है। इसीलिए यहाँ के भीतरी तथा बाहरी व्यापार में खेती की उपज ही प्रधान है। खेती की उपज प्रायः सस्ती और बोझीली होती है जिस पर मार्ग-व्यय अपेक्षाकृत अधिक होता है। इस देश में सड़कों तथा रेलों की कमी के कारण खेती की उपज के व्यापार में मार्ग की कमी से बड़ी अड़चन है। यह उपज बहुत दूर तक नहीं भेजी जा सकती। पिछली शताब्दी में स्वेज नहर के बन जाने से तथा यहाँ पर रेलो की उन्नति हो जाने से पहले की अपेक्षा खेती की उपज का व्यापार यकायक बढ़ गया। परन्तु अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा यह व्यापार अब भी बहुत थोड़ा है। व्यापार की इस वृद्धि के फलस्वरूप भारत के व्यापार में सामान्यतः वृद्धि हुई है।

भारत का विदेशी व्यापार बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी व्यापार की सहायता से अपनी उन्नति करने के लिए हमको अन्य देशों से मशीनें, रसायन, कच्चे माल तथा पक्के माल मिलते हैं।

भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

१. इस देश का बाहरी व्यापार मुख्यतः समुद्र द्वारा होता है। साधारण दशा मे इस व्यापार का मूल्य लगभग ३५० करोड़ रुपया है। समुद्र द्वारा अधिक व्यापार होने के कारण इस देश के बन्दरगाहों का महत्व बहुत है। वास्तव में यही कारण है कि इस देश के सबसे बड़े व्यापार केन्द्र बन्दरगाहों में ही हैं।

२. बाहरी व्यापार का प्रति व्यक्ति भाग इस देश में बहुत ही थोड़ा है, क्योंकि निर्धनता के कारण यहाँ का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। साधारणतः प्रति व्यक्ति पीछे भारत में केवल ८ रु० का व्यापार होता है, संयुक्तराज्य अमरीका मे १३१ रु०; कनाडा ४४४ रु० आस्ट्रेलिया ४१५ रु०; इगलैंड ३०५ रु० का होता है।

गत वर्षों मे भारत के विदेशी व्यापार मे अधिक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का कारण पिछला विश्व युद्ध और देश का विभाजन है। नवीन अवस्था में

निर्यात अथवा आयात स्वतन्त्र नहीं है। बाहरी व्यापार के लिए सरकारी लाइसेंस आजकल आवश्यक है। इसलिए किसी विशेष वस्तु का आयात अथवा निर्यात जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर नही है जितना कि सरकारी नियन्त्रण की आवश्यकताओं पर। हमारे देश के बाहरी व्यापार पर अग्रलिखित कारणों से नियन्त्रण आवश्यक है।

१ कुछ कच्चे माल की इस देश मे बहुत कमी है, जैसे कपास और पाट। इनका स्वतन्त्रत निर्यात होने से देश का उद्योग प्रायः रुक जायगा।

२. विदेशी मुद्रा की कमी होने से निर्यात तथा आयात उन्ही देशों से विशेष रूप से होता है, जो हमारे देश का सामान मोल लेते हैं। इस समय डालर की विशेष माँग है, क्योंकि अमेरिका से ही हमको बहुत-सा भोजन का सामान, मशीनें अथवा अन्य निर्मित वस्तुएँ मिलती हैं।

३ द्वितीय महायुद्ध काल और उसके बाद के वर्षों मे भारत के विदेशी व्यापार को वस्तुओं मे कच्चे माल के निर्यात का भाग कम हो रहा है किन्तु आयात मे कच्चे माल का भाग अधिक है। इसका मुख्य कारण देश का विभाजन हो जाना है जिसके फलस्वरूप कपास, जूट एव खाद्यान्न उत्पन्न करने वाले भाग पाकिस्तान मे रह गए। दूसरे, देश मे योजनाओ के अन्तर्गत जो औद्योगिक विकास के कार्यक्रम रखे गये हैं उनके लिए हमे मशीनो का भारी आयात करना पड़ रहा है। भारत के निर्यात व्यापार मे कपास, जूट, तिलहन, लाख, चमड़ा और खाले, तम्बाकू आदि का भाग काफी कम हो गया है।

४. विदेशों से निर्यात माल का आयात कम हो गया है किन्तु भारत से इनका निर्यात बढ़ता जा रहा है।

५. हमारे विदेशी व्यापार में इंग्लैण्ड और सं० रा० अमरीका का बडा हाथ है। १९५७ में हमारे आयात का २५ ७% और ११·६% इन देशों से आया। हमारे निर्यात व्यापार में इन दोनों देशों का भाग क्रमशः ३०·६% और १४ ६% था। अन्य यूरोपीय देशों से भी हमारा व्यापार बढ़ रहा है।

६. पिछले कुछ वर्षों से व्यापार का संतुलन भारत के विपक्ष में रह रहा है, इसका मुख्य कारण निर्यात की कमी और आयात की अधिकता है। १९५७ में व्यापार की बाकी हमारे विपक्ष में ३,०४·७ करोड़ रुपये की रही। १९५६ में यह २१७ ६ करोड़ रु० और १९५५ में ६५·३ करोड़ रु० की थी।

हमारे देश के आयात और निर्यात का विवरण इस प्रकार है :—

वर्ष	आयात (करोड़ रु०)	निर्यात (करोड़ रु०)
१९५०-५१	५८१	५७९
१९५१ ५२	९४३	७३३
१९५२-५३	६७०	५७७
१९५३-५४	५७२	५३१
१९५४-५५	६५६	६९४
१९५५-५६	७०५	६०९
१९५६-५७	८००	६००

आयात और निर्यात में तीन प्रकार का सामान सम्मिलित है : (१) भोजन, पेय और तम्बाकू; (२) कच्चा माल तथा अर्द्ध-निर्मित माल और (३) निर्मित माल। इन प्रकारो का विवरण करोड़ रुपयों में इस भाँति है :—

वर्ष	(१) आ०	(१) नि०	(२) आ०	(२) नि०	(३) आ०	(३) नि०
१९४९-५०	१२२	११७	१४४	११०	२८८	५५३
१९५४-५५	१३२	२०४	१८७	१२३	३११	२५७
१९५५-५६	५५	१६७	१६४	१६९	४२७	२५१

अगले पृष्ठ की तालिका में भारत के प्रमुख आयात एवं निर्यातों को दर्शाया गया है :—

आयात (करोड़ रु० में)

वस्तुएँ	१९५५	१९५७
धातु एवं निर्मित वस्तुएँ	७५·६३	२२६·१६
मशीनें (बिजली की मशीनों को छोड़कर)	६१·६२	१०७·५१
खनिज तैल		७५·८१
गाड़ियाँ	५१·३८	६१·१४
बिजली की मशीनें और सामान	३१·८७	५५·३६
अनाज, दालें और आटा	३५·१०	५१·८०
रासायनिक पदार्थ, दवाई आदि	३४·४५	४८ ६२
रुई	५३ ५०	
फल और सब्जियाँ	१२·६६	२१·२७
कागज, गन्ना, स्टेशनरी	१५·३१	१७·००
लोहे के यंत्र, औजार, कटलरी आदि	२२·८३	१४·३१
प्रोवीजन्स	११·७१	१४·२४
नकली रेशम	१४·३२	१२·६६
ऊन	८·८६	१२·६८
जूट	१७·४२	७·२०
मसाले	५·६८	२·६३
योग (कुल आयात का)	६७३·०५	१०२५·८२

निर्यात (करोड़ रुपयों में)

वस्तुएँ	१६५५	१६५७
चाय	११३·५५	१२३·४०
जूट का सूत और तैयार माल	१२३·५८	११३·२०
सूती वस्त्र	५७·७८	६५·१६
मैगनीज अयस	१४·३७	३१·५१
चमड़ा और खाले (रंगे हुए)	२२·५६	२१·७५
कपास	३४·६७	१८·६६
काजू	११ ६५	१४·७६
ऊन	८·१०	१२·६३
शक्कर	०·७६	१२·८८
तम्बाकू	१३·३६	१२·८३
लोह-अयस	५·६२	११·७६
वनस्पति तैल	३७·४०	११·४२
नारियल की जटा और माल	६·०३	६·७८
अभ्रक	८·०५	६·६६
मसालें	१०·५६	८·४३
कहवा	२·३८	७·७३
लाख	१२·५४	७·०५
कच्चा चमड़ा और खालें	६·७३	६·६६
पेट्रोलियम की वस्तुएँ	१·८५	६·६२
कुल निर्यात	६०८·०	३३८·०

हमारे देश के निर्यात व्यापार का सबसे अधिक भाग ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य को जाता है। १६५७ में हमारे देश के निर्यात का २६ और आयात का ३१% ब्रिटेन से सम्बन्धित था। आस्ट्रेलिया, मिस्र, ईरान इटली और हमारे विदेशी व्यापार में अन्य महत्वपूर्ण देश हैं। अगले पृष्ठ पर दिये हुए ब्यौरे में हमारे आयात और निर्यात की दशाओं का १६५७ का वर्णन है :—

देश	आयात (करोड़ रुपया)	निर्यात (करोड़ रुपया)
ब्रिटेन	२३८.५	१६१.०
संयुक्त राज्य अमेरिका	१७० ३	१४२ ६
आस्ट्रेलिया	१६ ४	२४ ७
फ्रांस	२८.६	१०.२
जापान	५४.४	२७ ३
बर्मा	१३.१	१३ ३
कनाडा	१३.५	१३·६
इटली	३० ३	७.३
रूस	२२·६	१७.४
प० जर्मनी	१२२.८	१६ २

ब्रिटेन से हमारा सबसे अधिक व्यापार है। यह केवल इसलिए नहीं है कि ब्रिटेन का राज्य इस पर बहुत दिनों तक रहा है, वरन् इसलिए भी कि गत विश्व युद्ध में ब्रिटेन को हमारे देश का सामान और हमारे देश के लोगों की सेवाएँ बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त थीं। इनके भुगतान का साधन व्यापार ही है। ब्रिटेन से हमारे देश में अधिकतर आयात स्टर्लिङ्ग बैलेन्सेज के भुगतान के लिए ही है। ब्रिटेन से हमारे यहाँ मुख्यतः कारखानों का तैयार माल आता है और यहाँ से चाय तथा अन्य कच्चा माल ब्रिटेन को निर्यात किया जाता है जैसा कि अगले पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट होगा :—

भारत का ब्रिटेन से व्यापार

ब्रिटेन को प्रमुख निर्यात

वस्तुएँ	पूर्ण वर्ष १६५४ (लाख पौंड)	१६५७ (लाख पौंड)
निर्यातों का पूर्ण योग	१,४८५	
जिसमें		
सूती सामान	१,७२२	
चाय	७६६	८४३
तम्बाकू	६६१	७१
पत्थर आदि	३०	
रुई व रूहड़	२५८	
ऊन	५५	
कच्चा पाट	—	
तेलहन	१६	
खालें	६	
चमड़ा आदि	१३२	

ब्रिटेन से प्रमुख आयात (लाख पौंड में)

वस्तुएँ	पूर्ण वर्ष १६५४	१६५७
आयातों का पूर्ण योग	११४६	१७६४
जिसमे		
मशीनें	२,८१५	४,५५०
गाड़ियाँ (जहाज, एंजिन वायुयान आदि)	१२४	
लोहा, इस्पात व उससे निर्मित वस्तुएँ	५६	
शीशा, वर्तन, आदि	१६	
ताँबे आदि की निर्मित वस्तुएँ	५०	
बिजली का सामान	१४८	२१६
ऊनी धागा आदि	४६	
कागज व पट्ठा आदि	१३	

भारत का ब्रिटेन से व्यापार

ब्रिटेन को मुख्य निर्यात

वस्तुएँ	१९५७ (हजार पौंड में)
निर्यातों का पूर्ण योग	१४८,५९५
जिसमें :	
चाय	८४,३४५
चमड़ा और चमड़े का सामान	१३,३४८
कच्चा चमड़ा और खालें	—
तम्बाकू और तम्बाकू की वस्तुएँ	७,१४१
ऊन और अन्य पशुओं के बाल	४,५७६
कपास	२,२६३
अन्य सूती वस्त्र एवं रद्दी	१,१३७
धातुदार अयस	४,५५९
पशुओं एव वनस्पतिजन्य अन्य वस्तुएँ	४,३७०
पशु व वनस्पतिक तेल, चरबी आदि	३,७४३
अन्य प्रकार के वस्त्र आदि	१२,१०५

ब्रिटेन से प्रमुख आयात

आयातों का पूर्ण योग	१७६,४१५ (हजार पौंड)
जिसमें :	
मशीनें (बिजली की मशीनों को छोड़कर)	४५,५०२
बिजली की मशीनें एवं यन्त्र आदि	२१,९७३
ऊन और अन्य प्रकार के बाल	६,०८७
पैट्रोलियम और पैट्रोलियम की वस्तुएँ	२,२६६
रसायन	१६,५६१
कागज, गत्ता आदि	१,६५८
लोहा और इस्पात	१३,२८०
लोह-रहित धातुएँ	३,१०५
धातुओं का बना सामान	१७,२६२
रेलों की गाड़ियाँ	५,५५९
हवाई जहाज, मोटरें आदि	२१,०३७
वैज्ञानिक यन्त्र आदि	२,८४६

भीतरी व्यापार

भारत की इतनी बड़ी जनसंख्या होने के कारण यह स्वाभाविक है कि यहाँ का भीतरी व्यापार विशाल मात्रा में हो। परन्तु अनेक कारणों से यह व्यापार बहुत थोड़ा है। इस देश में मार्गों की कमी है। यहाँ निर्धनता अधिक है, तथा यहाँ के जीवन में सादगी अधिक है। इसीलिए अधिक जनसंख्या होते हुए भी भीतरी व्यापार कम है। युद्ध के पहले इस देश के भीतरी व्यापार में अन्नों का व्यापार बहुत होता था। युद्ध के उपरान्त इस व्यापार में बहुत बड़ी कमी हो गई है। इस अन्न व्यापार में गेहूँ और धान अधिक महत्वपूर्ण थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस देश में गेहूँ तथा धान की उपज केवल विशेष क्षेत्रों में ही होती है, देश के सभी भागों में नहीं; परन्तु उनकी माँग देश के हर कोने में है। इसीलिए इन दो अन्नों का व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था। चित्र ७२ में गेहूँ की बचत तथा उसकी माँग के क्षेत्र दिखाये गये हैं। माँग के सबसे बड़े केन्द्र कलकत्ता और बम्बई के नगर हैं। इस क्षेत्र में बिन्दु द्वारा चिन्हित भाग बचत अर्थात् व्यापार दिखाते हैं। बिना चिन्ह वाला भाग स्थानीय खपत दिखाता है। स्थानीय खपत की अपेक्षा व्यापार का अंश बहुत ही थोड़ा है। गेहूँ का व्यापार अधिकतर आटे के रूप में होता है, इसलिए देश के भिन्न-भिन्न भागों में बड़ी-बड़ी आटा की चक्कियाँ लगाई गई हैं।

निम्नलिखित विवरण से भारत के १९४८-४९ और १९५६-५७ के भीतरी व्यापार का ज्ञान होगा :—

वस्तुएँ	१९४८-४९ (दस लाख मन)	१९५६-५७ (दस लाख मन)
कोयला	४[illegible]	४७५
तेलहन	२२	२५
लोहा व इस्पात	३७	६६
पाट	८	९
नमक	३१	२९
कपास	१४	८
चीनी व गुड़	२९	२४
सू[illegible]	६	७
दाल व आटा	२४	७५

नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा कि भीतरी व्यापार में मुख्य-मुख्य वस्तुओं के कितने मालगाड़ी के डिब्बों का लदान हुआ :—

वस्तुएँ	१९५२-५३
कोक और कोयला	२,६३५
अनाज और दालें	[illegible]
तिलहन	१७१
कपास	[illegible]
सूती वस्त्र	६१
जूट	१८८
जूट का सामान	२१
शक्कर	१६९
सीमेंट	२९७
ढला लोहा	२५
लोहा और इस्पात	२६०
चाय	४६
मैंगनीज अयस	१५६
लोह अयस	३२५
कुल लदान	११,४१३

इस देश के भीतरी व्यापार में रेलों की विभिन्नता से भी कठिनता पड़ती है। जहाँ पर एक प्रकार की रेल से दूसरी प्रकार की रेल में सामान बदला जाता है, वहाँ प्रायः अधिक समय तक गाड़ियों का प्रबन्ध नहीं हो पाता। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस देश के बाहरी व्यापार का बहुत बड़ा भाग समुद्र द्वारा होता है। हमारा व्यापार स्थल मार्गों से कम इसलिए है कि हमारे देश के पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम पहाड़ों की दीवार खड़ी है। बोझीली वस्तुओं के व्यापार को इन पहाड़ों को पार करना बहुत कठिन है। इसलिए हमारे निकटवर्ती देशों से भी हमारा व्यापार अधिकतर समुद्र द्वारा ही होता है। हमारे पड़ोसी देश आर्थिक दृष्टि से प्रायः पिछड़े हुए देश हैं। इसलिए वहाँ स्थल मार्गों की सुविधा भी कम है। परन्तु देश के बँटवारे के उपरान्त पाकिस्तान

बन जाने से पड़ोसी देशों से जैसे अफ़गानिस्तान तथा ईरान आदि से व्यापार करना और भी कठिन हो गया है।

भारत के बन्दरगाह (Ports)

पाकिस्तान के प्रति हमारा व्यापार राजनैतिक कारणों से बहुत अनिश्चित है। इसलिए हमारे व्यापार में बन्दरगाहों का ही मुख्य महत्व है। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास से ही हमारे देश का प्रायः सब बाहरी व्यापार होता है। अन्य छोटे-छोटे बन्दरगाहों से देश का भीतरी व्यापार ही होता है; यद्यपि कोचीन, विशाखापटनम् से कुछ विदेशी व्यापार भी होता है।

पूर्वी तथा पश्चिमी तटों पर बन्दगाह बनाने के भौगोलिक कारण भिन्न हैं। पश्चिमी तट पर मोंज अन्तरीप से ले कर बुलसार तक नीचा तटीत मैदान पाया जाता है। इस मैदान मे जहाँ-तहाँ विशेष कर कच्छ और काठियावाड़ में कुछ प्राचीन ज्वाला-मुखी पहाड़ियाँ हैं। परन्तु इस तट का नीचापन सभी जगह प्रधान है। इस निचले तटीय मैदान में कच्छ का रन तथा कच्छ और काम्बे की खाड़ियाँ स्थित हैं। कच्छ के रन में केवल वर्षा ऋतु में ही जल पाया जाता है। जाड़े के ऋतु में यह केवल एक दलदल ही रह जाता है। इसलिए जलमार्ग की दृष्टि से कच्छ के रन का कोई भी महत्व नहीं है। खम्भात और कच्छ की खड़ियों में इतनी अधिक बालू जम जाती है कि यहाँ भी साधारण दशा में उपयुक्त बन्दरगाह नहीं मिलते। यहाँ पर अधिक बालू जमने के दो मुख्य कारण हैं। मानसूनी वर्षा के जल मे बालू और मिट्टी का अधिक होना, समुद्र में थल की ओर चलने वाली पवनों तथा जल-धाराओं द्वारा इस बालू का रुक जाना। इस भाग में बालू के अधिक जमाव का अनुमान इस बात से लगता है कि गत पचास वर्षों में भावनगर बन्दरगाह के निकट ४० फुट मोटी बालू जम गई है।

खम्भात की खाड़ी के दक्षिण में स्थित तट उसके उत्तर में स्थित तट से पूर्णतया भिन्न है। इस भाग में अनेक कटाव हैं। इन कटावों में प्रायः उथला ही जल है। तट के निकट विशेष कर बुलसार के दक्षिण में जल के भीतर पहाड़ी शिलाएँ भी मिलती हैं। इसलिए इस तट पर अधिकतर भागों में अच्छे बन्दरगाहों का होना कठिन है। इस भाग में तटीय मैदान बहुत ही कम चौड़ा है। इसकी चौड़ाई ३० मील से १० मील तक बदलती रहती है। भीतर की ओर इस मैदान के पीछे पश्चिमी घाट पहाड़ की लगभग सीधी दीवार खड़ी है। इसलिए तट और भीतरी भागों के बीच

आवागमन कठिन है। धुर दक्षिण में इस तट पर अनेक दलदल अथवा लैगून है। इन सब कारणों से इस तट से व्यापार करना बहुत कठिन है। इस तट के कुछ दोष निम्नलिखित हैं :

१. उथला जल।
२. वेगवती भीतरी जल धाराएँ।
३. ज्वार-भाटे के उच्च और निम्न बिन्दुओं में अधिक अन्तर।
४. ज्वार-भाटा की बलवती धाराएँ।

भारत में मुख्यतः दो प्रकार के बन्दरगाह हैं : बड़े और छोटे जिनका सचालन क्रमशः केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा होता है। बड़े मुख्य बन्दरगाह कलकत्ता,
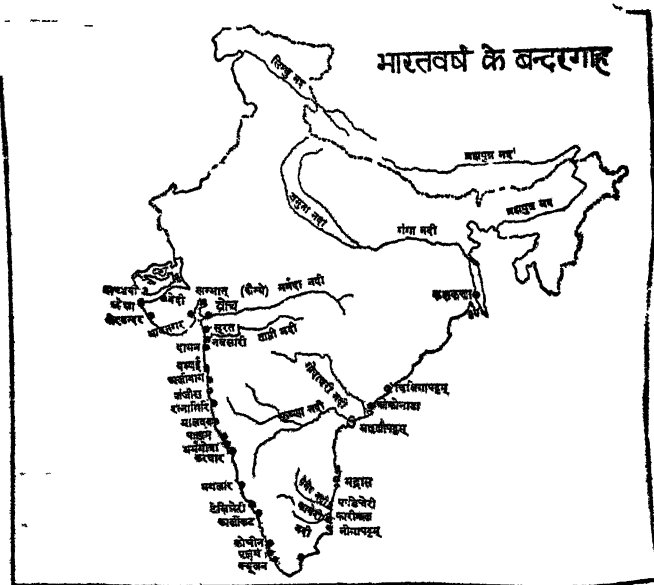
चित्र ७९—भारत के बन्दरगाह

विशाखापट्टनम्, मद्रास, कोचीन, बम्बई और कादला हैं। छोटे बन्दरगाह लगभग २२५ हैं जिनमें से कार्यशील केवल १५० है। मुख्य छोटे बन्दरगाह काकीनाड़ा, मसुलीपट्टम, एलप्पी, भावनगर, पोरबन्दर, बेदी, नव-

लखी, क्विलोन और सूरत हैं। भारतीय बन्दरगाहों की व्यापार-शक्ति २६० लाख टन की है।

भारत के मुख्य बन्दरगाहों का व्यापार इस प्रकार है (१९५६-५७)

बन्दरगाह	जहाज आये		आयात	निर्यात
	संख्या	ग्रासटन भार (लाख)	(लाखटन)	
कलकत्ता	१,३८३	८५.६३	४३.५३	४३.४२
बम्बई	२,६४०	१४० ३७	८२.३९	३७.४०
मद्रास	८७३	५४.४३	२० ३३	६ ३२
काचीन	९६५	२८.७५	१३ ०८	४ १९
विशाखापट्टनम	४९४	३१ ९०	४ ९४	९ ६६

(१) बम्बई

पश्चिमी तट पर सबसे बड़ा बन्दरगाह बम्बई है। जिस स्थान पर यह बन्दरगाह बना है वहाँ पर जल की गहराई कम से कम ३२ फीट है। यह गहरा जल ही बम्बई को उत्तम बन्दरगाह बनाने में सहायक हुआ है। ३२ फुट जल की गहराई में वे सभी जहाज चल सकते हैं जो स्वेज नहर से होकर निकलते हैं; क्योंकि स्वेज नहर की गहराई भी इतनी ही है। चित्र को देखने से यह ज्ञात होता है कि स्थल भाग की रचना बम्बई में इस प्रकार की है कि जिससे जहाजों की समुद्र से रक्षा सरलता से हो सकती है। बम्बई के जिस भाग में जहाजों के ठहरने का स्थान (डॉक) है, वह भाग स्थल भाग से सुरक्षित है। बम्बई की स्थिति बन्दरगाह बनाने के लिए इस कारण भी सहायक है कि इसके पीछे पश्चिमी घाट पहाड़ में थाल घाट और भोर घाट नामक दो नीचे स्थान हैं। इन नीचे स्थानों से देश के भीतर जाने वाले मार्ग सरलतापूर्वक बम्बई तक बने हैं। इन मार्गों से देश के बहुत बड़े भीतरी क्षेत्रफल से बम्बई के लिए माल आता-जाता है। इसीलिए बम्बई का पृष्ठ प्रदेश बहुत विशाल है। इस पृष्ठ-प्रदेश में उत्तम कृषि क्षेत्र, जैसे लावा के क्षेत्र तथा गङ्गा के मैदान, अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर, दिल्ली जैसे औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र और मध्य प्रदेश तथा मैसूर के प्रसिद्ध खनिज क्षेत्र आदि सम्मिलित हैं। बम्बई की स्थिति उसके दोनों छोटे द्वीपों (बम्बई और सालसेट) के प्रायः एक-दूसरे से जुड़े होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है। इन द्वीपों के आस-पास होने से बम्बई नगर का विकास सरलता से हो सका है। इसके निकट पश्चिमी घाट पहाड़ होने से यहाँ पीने का जल भी सुविधापूर्वक मिल जाता है। इस

वर्ष	आयात (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)	योग (लाख टन)
१९४५-४६	४५·४८	१९·०२	६४·५०
१९५१-५२	५८·०६	१६ ७३	७४·७९
१९५४-५५	५६·३०	१५·९४	७२·२४
१९५५-५६	६६ ४७	३५·२८	१०१·७५
१९५६-५७	८२ ३९	३७·४०	११९ ७९

सौराष्ट्र के बन्दरगाह

सौराष्ट्र का तट लगभग ५०० मील लम्बा है जहाँ कई छोटे-छोटे महत्वपूर्ण बन्दरगाह बने हैं। सौराष्ट्र के बन्दरगाहों से राजस्थान तथा मध्य प्रदेश का व्यापार विशेष रूप से होता है। यहाँ के बन्दरगाहों में बम्बई की अपेक्षा सस्ती मजदूरी और जहाजों पर थोड़ा कर लगता है। सौराष्ट्र से देश के भीतरी भागों के लिए छोटी लाइन द्वारा सरल रेल-मार्ग बना हुआ है। सौराष्ट्र के बन्दरगाहों में निम्नलिखित मुख्य हैं:—

१. भावनगर
२ बेदी बन्दर
३. ओखा
४. नौलखी
५. बिरावल
६. पोरबन्दर

१—भावनगर खम्भात की खाड़ी में स्थित है। यहाँ पर तट से लगभग ८ मील दूर पर जहाज ठहरते हैं जहाँ से नावों द्वारा सामान चढ़ाया-उतारा जाता है। यहाँ बालू बहुत जमा होती रहती है इसलिए १९३७ में बालू की खुदाई करके गहरे जल वाला बन्दरगाह बनाया गया था। इस बन्दरगाह में एक समय में केवल दो जहाज ही ठहर सकते हैं। भावनगर से रेल की छोटी लाइन द्वारा देश के भीतरी भाग से आना जाना होता है।

२—बेदी बन्दर सौराष्ट्र का सबसे पुराना बन्दरगाह है। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित है। यहाँ पर तट के किनारे बालू की एक दीवार बहुत दूर तक चली गई है। इस दीवार के पीछे जहाजों के लिए सुरक्षित जल रहता है। इसीलिए सौराष्ट्र के अन्य बन्दरगाहों की भाँति वर्षा ऋतु में इस बन्दरगाह में जहाजों का आना-जाना बन्द नहीं होता।

३—ओखा बन्दरगाह एकान्त भाग में स्थित है। यह सौराष्ट्र प्रायद्वीप के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित है जहाँ जहाज आसानी से आ जा सकते हैं। इस बन्दरगाह का मुख्य दोष यह है कि यहाँ तक पहुँचने के लिए जहाजों के टेढ़े-मेढ़े मार्ग से चलना पड़ता है। टेढ़ा-मेढ़ा होने के कारण इस मार्ग में जहाजों के टकरा जाने का बहुत भय रहता है। ओखा के आस-पास जनसंख्या बहुत थोड़ी है। बन्दरगाह की उन्नति में इससे भी अड़चन पड़ती है।

४—नौलखी मोरवी का मुख्य बन्दरगाह है जो कि कच्छ की छोटी खाड़ी में स्थल के एक निकले हुए भाग पर बसा है। यहाँ तक पहुँचने मे जहाजों को बड़ी कठिनाई होती है। तट के लगभग एक मील दूरी पर जहाजों को रुकना पड़ता है। बेदी बन्दर की भाँति यह भी वर्षा के दिनों में खुला रहता है क्योंकि निकले हुए थल भाग से जहाजों की रक्षा होती है।

५—बिरावल छोटे जहाजों के ही लंगर डालने का स्थान है। जहाजों की रक्षा करने के लिए यहाँ पर तट से समकोण बनाती हुई एक पक्की दीवार है। यहाँ केवल बहुत ही छोटे जहाज आते हैं। छोटे होने के कारण उनको ज्वारभाटा की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है।

६—पोरबन्दर भी जहाजों के लगर डालने का खुला हुआ स्थान है। यहाँ पर भीतरी भाग में मूँगे की दीवारों के कारण जहाजों की समुद्र से रक्षा होती है। इस बन्दरगाह से पूर्वी अफ्रीका से बहुत जहाज आते-जाते हैं। यह बन्दरगार वर्षा के दिनों में बन्द रहता है।

७—काँधला देश के विभाजन के पहले हमारा बहुत-कुछ बाहरी व्यापार कराँची द्वारा होता था। कराँची एक बड़ा बन्दरगाह है जिसके द्वारा राजस्थान तथा गगा के मैदान का काफी व्यापार होता था। कराँची का स्थान लेने के लिए सरकार द्वारा इसी भाग में काँधला नामक बन्दरगाह बनाया गया है। काँधला पहले बहुत छोटा स्थान था परन्तु आजकल इसके निकट गाँधीधाम नगर बन जाने से अब इसका महत्व अधिक हो गया है। काँधला भुजनगर से लगभग ३० मील दूर कच्छ के रन में स्थित है। यहाँ जल की गहराई लगभग ३० फुट रहा करती है। परन्तु इस गहराई के मुख पर समुद्र की ओर बालू की एक दीवार बन गई है जिससे वहाँ जल बहुत उथला हो जाता है। इस दीवार को खोदकर गहरा जल-मार्ग बना देने से काँधला एक उत्तम बन्दरगाह बन गया है जो वर्ष भर खुला रह सकता है। काँधला में रेलें अथवा सड़कें

भी पहले नहीं थीं। इसलिए देश के भीतरी भाग से जोड़ने के लिए सड़क और रेलें बनाई गई हैं। दीसा-राधानपुर से छोटी लाइन यहाँ तक बनी है। इसी प्रकार भण्ड
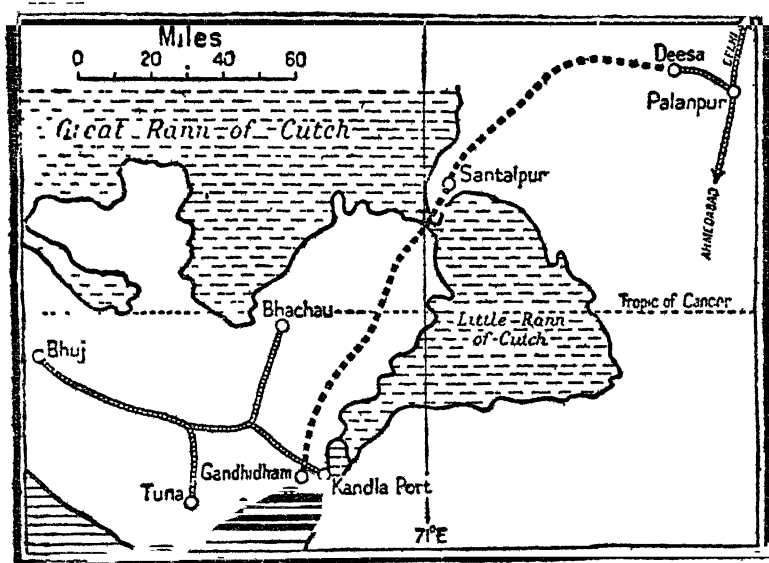
चित्र ८१—काँधला का बन्दरगाह

से यहाँ तक बड़ी लाइन गई है। यहाँ पर केवल खारा जल मिलता है इसलिए पीने योग्य मीठा जल प्राप्त करने के लिए नलदार कुएँ बनाये गये हैं। इस बन्दरगाह का पृष्ठ देश लगभग २,७५,००० वर्ग मील है जिसमें ४½ जन-संख्या है। इसका पृष्ठ देश कच्छ, सौराष्ट्र से लगाकर उत्तरी बम्बई, राजस्थान, काश्मीर, पंजाब तक फैला है। यह पृष्ठदेश मछलियों, सीमेंट और काँच के कच्चे सामान तथा बाक्साइट, जिप्सम और लिग्नाइट में धनी है। इस बन्दरगाह द्वारा १९५६-५७ में ३.१६ लाख टन का आयात और १.५३ लाख टन का निर्यात व्यापार हुआ।

कोचीन—पश्चिमी तट पर कोचीन एक मुख्य बन्दरगाह है। यह मालाबार तट पर एक लैगून पर स्थित है। इस लैगून के मुख पर केवल उथला जल है जिससे बड़े जहाज कोचीन के बन्दरगाह में नहीं आ सकते हैं। कोचीन में जहाजों को सुरक्षित जल सदा मिलता है जिससे वर्षा में भी जहाज आते-जाते रहते हैं। कोचीन का लैगून

लगभग १०० मील लम्बा है, जिससे नावों द्वारा जहाज का सामान बहुत दूर तक पहुँच जाता है। इस बन्दरगाह से जटा और नारियल का सामान, सूत, चटाइयाँ, खोपरा, मसाले, चाय, कहवा, रबड़ और नारियल का तेल निर्यात किया जाता है। १६५६-५७ में इस बन्दरगाह द्वारा १३.०८ लाख टन का आयात और ४.१६ ला० टन का निर्यात व्यापार हुआ।

पूर्वी तट के बन्दरगाह

पूर्वी-तट पर कई छोटे-छोटे बन्दरगाह हैं। परंतु इस तट पर जहाजों की सुरक्षा के लिए पक्की दीवारें बनानी हैं। तूनीकोरीन, मद्रास, विशाखापटनम (विजगापट्टम) आदि छोटे-छोटे बन्दरगाह इस तट पर बने हैं। इनमें मद्रास और विशाखापटनम् ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। विशाखापटनम थोड़े समय से ही महत्वपूर्ण हुआ है। इस बन्दरगाह के पृष्ठ-प्रदेश में मैंगनीज बहुत मिलता है। इस धातु का निर्यात सुविधा-पूर्वक करने के लिए ही आरम्भ में विशाखापटनम की उन्नति की गई थी। इस बन्दर-गाह के बनाने के लिए तट के निकट स्थित एक दलदल को खोद कर गहरा बनाया गया है। यह स्थान समुद्र की ओर से डालफिन्सनोज नामक अन्तरीप से सुरक्षित है। समुद्र की ओर दो छोटे-छोटे पहाड़ी टीले भी हैं जिनके पीछे यह बन्दरगाह सुरक्षित रहता है। बन्दरगाह से रेल और सड़क द्वारा भीतरी भागों के लिए मार्ग की सुविधाएँ प्राप्त हैं। इस बन्दर की पूरी उन्नति करने के लिए उद्योग चलाने का प्रयत्न भी किया गया है। सिंधिया कम्पनी का जहाज बनाने और मरम्मत करने का कारखाना तथा मोटर बनाने का कारखाना यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं। इसका पृष्ठदेश उत्तरी मद्रास और आन्ध्र से लगाकर उड़ीसा और मध्यप्रदेश तक फैला है। यहाँ के मुख्य निर्यात चमड़ा और खाले, लकड़ी; हड्डी, बहेड़ा, आँवला, मूँगफली और मैंगनीज तथा मुख्य आयात सूती कपड़े, लोहे और इस्पात का सामान तथा मशीन हैं।

कलकत्ता

कलत्ता भारत का सबसे बड़ा बन्दरगाह है। हुगली नदी पर समुद्र तट से लग-भग ८० मील दूरी पर यह स्थित है। यहाँ जहाजों का आना-जाना केवल ज्वार के समय ही हो सकता है इसलिए अन्य समयों में जहाजों के ठहरने के लिए समुद्र के निकट डायमंड हारबर स्थान बना दिया गया है, जहाँ जहाजों के केवल रुकने की

सुविधा है; माल चढ़ाने-उतारने की सुविधा नहीं है। हुगली नदी से होकर जहाजों को कलकत्ता पहुँचने में लगभग एक दिन लग जाता है। कलकत्ता में जहाजों को ठहरने के लिए किदरपुर में नदी के किनारे एक गहरा स्थान बना लिया गया है।

चित्र ८२—कलकत्ता

हुगली नदी में कलकत्ते से समुद्र तट तक अनेक मोड़ हैं, तथा कई स्थानों पर बालू पड़ गया है, जहाँ बहुत ही उथला जल मिलता है, जिसमे से जहाज नहीं निकल सकता। इसलिए बड़ी सावधानी से जहाज चलाना पड़ता है। हुगली नदी में निम्नलिखित स्थानों मे बालू पड़ गई है, पचपरिया, संकराल, मनीखोली, पीर सिराग, पुजाली, मोयापुर, रायपुर, फुल्ता जेम्स और मेरी कुकराहाटी, बलारी, ऑकलैण्ड, गङ्गासागर और मिडिलटन। इन स्थानों मे गगासागर का सबसे अधिक महत्व है। इस स्थान पर २४ से ३० फुट गहरा जल रहता है। सबसे गहरा जल होने से जहाज इस स्थान को नहीं पार कर सकते हैं। जब तक इतना जल इस स्थान पर नहीं होता है तब तक कलकत्ता अथवा डायमड हारबर से जहाज नहीं खोले जाते हैं। यदि किसी कारणवश जहाज छोड़ने के बाद गगासागर में जल कम हो तो जहाजों को हुगली के गहरे पानी में ही रुका रहना पड़ता है। हुगली नदी की मोड़ों के कारण जहाजों को काफी लम्बा मार्ग पूरा करना पड़ता है। इस मार्ग को छोटा करने के लिए कलकत्ता और डायमंड हारबर के बीच एक तीस मील लम्बी नेहर खोदने का विचार हो रहा है। इस नहर से कलकत्ता के निकटवर्ती दलदलों का जल भी बह जायगा और जहाजों का मार्ग भी छोटा और सुविधाजनक हो जायगा। हुगली नदी में कभी-कभी इतना ऊँचा ज्वार आता है कि उससे छोटी-मोटी नावों को बड़ी क्षति पहुँचती है। यह ज्वार हुगली के सँकरे मार्ग में एक बड़ी लहर के रूप में चलता है। इस लहर का जल नदी में चलने वाली नावों को नदी के बाहर फेंक देता है अथवा उनको डुबा देता है।

कलकत्ता का बन्दरगाह एक ओर सतलज गंगा के मैदान के द्वार पर स्थित है

और दूसरी ओर संसार की सबसे बड़ी इसचुअरी हुगली के अन्त पर स्थित है। सिन्धु गंगा का मैदान सबसे घना बसा हुआ और भारत का बहुत सम्पन्न प्रदेश है। हुगली की इसचुअरी बंगाल की खाड़ी सबसे चौड़ी है और इसलिए समुद्र में चलने वाले जहाज गंगा की अन्य किसी शाखा में नहीं चलते हैं, वरन् हुगली में ही चलते हैं। कलकत्ता चारों ओर से आने वाले मार्गों का केन्द्र भी है। पठार की ओर से तथा पूर्वी तट के मैदानों की ओर से, गंगा की घाटी की ओर से तथा ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर से सड़कें आकर कलकत्ते में मिलती हैं। यहाँ पर गगा, ब्रह्मपुत्र और दामोदर आदि नदियों में चलने वाली नावें भी एकत्रित होती हैं। इसलिए कलकत्ता बन्दरगाह का पृष्ठ-प्रदेश बहुत ही विशाल है। इसके पृष्ठ-प्रदेश मे पाट, लोहा और इस्पात, रसायन, सीमेंट, कागज, सूती वस्त्र आदि अनेकों उद्योग चलते हैं। इसके पृष्ठ-प्रदेश में भारत की खेती की प्रमुख उपजें भी होती हैं जैसे, चाय, पाट, तेलहन, चीनी तथा कपास।

कलकत्ता बन्दरगाह की स्थिति ऐसे स्थान पर है जिसके आगे नदी की गहराई बहुत थोड़ी है। इसलिए इसके आगे समुद्र में चलने वाले जहाज नहीं जा सकते। जहाज चलने का यही भीतरी अन्त स्थान है। चित्र ८२ को देखने से यह ज्ञात होता है कि हुगली नदी में उत्तर और दक्षिण की ओर मोड़े इस प्रकार हैं, कि जिससे नदी का एक चौड़ा और अधिक सीधा लम्बा भाग जहाजों के लिए प्राप्त है। समुद्र की ओर से आने पर यहाँ पर यकायक नदी का चौडा पाट मिलता है जहाँ कोई अन्य नदी इसमें बालू नहीं गिराती। इस स्थान से नीचे दामोदर तथा रूपनारायण नदियाँ हुगली मे अधिक बालू डालती हैं। कलकत्ता ऐसे स्थान पर अँग्रेजों ने बनाया था जिसके एक ओर हुगली नदी का जल है और दूसरी ओर बड़े-बड़े दलदल। इसलिए यह स्थान स्वाभाविक ही सुरक्षित स्थान था।

कलकत्ता का पृष्ठदेश आसाम, उत्तरप्रदेश, बिहार से लगाकर पजाब, उड़ीसा और मध्यप्रदेश तक फैला है। इसमें सड़कों, नदियों और रेलमार्गों का जाल-सा बिछा है। इसके पृष्ठ देश में जूट, चाय, तिलहन, लाख और पैट्रोलियम, चावल, गन्ना अधिक पैदा होता है तथा हुगली का औद्योगिक क्षेत्र भी है जिसमे कागज, जूट, सिमेंट, चमड़ा, रासायनिक पदार्थ, रंग, रोगन और मशीनरी आदि के कारखाने हैं।

इस बन्दर के मुख्य आयात अनाज, मोटरकारें, कागज, पैट्रोलियम, रबड़, लोहे और इस्पात का सामान, रेडियो, रासायनिक पदार्थ आदि हैं। यहाँ के बन्दर-

गाह द्वारा चाय, जूट का सामान, कोयला, इस्पात, मैंगनीज, लाख, लकड़ी, तेलहन, अभ्रक, चमड़ा आदि वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं।

इस बन्दरगाह द्वारा होने वाला आयात, निर्यात व्यापार निम्न तालिका में बताया गया है :—

वर्ष	आयात (ला० टन)	निर्यात (ला० टन)	योग
१६५१-५२	४०,६३	५४.८६	६५.८२
१६५३-५४	२७ २३	५३.३६	८०.५६
१६५५-५६	३४ ०६	४६ २१	८०.३०
१६५६-५७	४३.५३	४३.४२	८६ ६५

मद्रास

यह पूर्वीतट का कृत्रिम पोताश्रय है। यहाँ तेज लहरों को रोकने तथा लगर डालने के लिए कक्रीट की दो बड़ी दीवारे समुद्र मे बनाई गई हैं। इनके द्वारा लगभग २०० एकड़ समुद्र को रोका गया है। इसका पृष्ठ देश द० आंध्र, मद्रास, पश्चिमी मैसूर तक फैला है। किन्तु इसके पृष्ठ देश का मुख्य दोष यह है कि इसमे अधिक उत्पादन नहीं होता तथा पूर्वी तट पर अन्य बन्दरगाहों के विकास हो जाने से इसे उनसे प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

चित्र ८३—मद्रास

यहाँ के मुख्य आयात कोयला, कोक, अनाज, पैट्रोलियम, धातुएँ, लोहे और इस्पात का सामान, मशीनें, साइकिलें, मोटरें, रासायनिक पदार्थ आदि हैं। इस बन्दरगाह द्वारा तिलहन, मूँगफली, खालें और चमड़ा, तम्बाकू, मैगनीज, अभ्रक, चाय और कहवा आदि निर्यात किया जाता है।

१६५६-५७ में इस बन्दरगाह द्वारा २०.३३ लाख टन का आयात और ६.३२ लाख टन का निर्यात व्यापार हुआ।
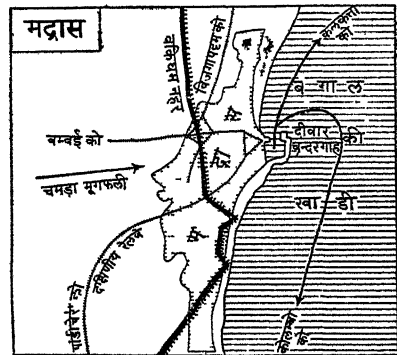
प्रश्न

१. भारत के विदेशी व्यापार का समीक्षापूर्ण वर्णन कीजिये ।

२. भारत के पश्चिमी तट पर बन्दरगाहों की उन्नति में कौन प्रमुख भौगोलिक कारण हैं ? व्याख्यापूर्ण वर्णन कीजिये ।

३. किन भौगोलिक कारणों से बम्बई के बन्दरगाह की उन्नति हुई ? पूर्ण विवरण लिखिये ।

४. कलकत्ते की स्थिति पर बन्दरगाह की दृष्टि से व्याख्या कीजिये ।

५ बम्बई तथा मद्रास के व्यापार का अलग अलग वर्णन कीजिए और उनकी भिन्नता का कारण बताइये ।

६. भारत और ब्रिटेन एक-दूसरे पर कच्चे माल और पक्के माल पर कहाँ तक निर्भर हैं ? विवरण सहित उत्तर लिखिये ।

७ हमारे देश के सूती वस्त्र, तेलहन और चाय संसार के किन-किन देशों को जाते हैं ? हमारे देश में मशीन, रेशम और कागज किन देशों से मँगाये जाते हैं ।

८ भारत के मुख्य निर्यात क्या हैं ? इनमें से प्रत्येक की उत्पत्ति के क्षेत्र और निर्यात के स्थान का उल्लेख कीजिये ।

९. निम्नलिखित पर व्याख्यापूर्ण विवरण लिखिये :
(अ) दक्षिणी भारत के बन्दरगाह, (ब) भारत के तेलहन का व्यापार, (स) भारत के वायु-मार्ग ।

अध्याय १२

जनसंख्या

(Population)

जनसख्या के वितरण मे विश्व में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। यद्यपि भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का केवल २% है किन्तु यहाँ सम्पूर्ण विश्व की लगभग १५% जनसख्या निवास करती है अर्थात् प्रति ६ व्यक्तियों मे एक भारतवासी है। भारत की जनसख्या की विशेषता इसकी बहुत बड़ी सख्या का होना है। चीन को छोड़ कर (जहाँ की जनसख्या अधिक है) यह सख्या ससार में सबसे बड़ी है। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका की सम्मिलित जनसख्या की दुगुनी, आस्ट्रेलिया की ४४ गुनी और अफ्रीका की दुगुनी जनसख्या यहाँ रहती है। देशों की तुलना में रूस की लगभग पौने दो गुनी; संयुक्त राज्य अमरीका की २¼ गुनी और इङ्गलैंड की ८ गुनी जनसख्या भारत में है।

नीचे की तालिका मे प्रमुख महाद्वीपो और देशों की जनसख्या बताई गई है:—

विश्व की जनसंख्या (१९५५)

महाद्वीप		प्रमुख देश		
अफ्रीका	२२०,०००,०००	आस्ट्रेलिया	९,२०२	(हजार)
उत्तरी अमरीका	२३८,०००,०००	ब्राजील	५८,४५६	”
दक्षिणी अमरीका	१२४,०००,०००	बर्मा	१९,४३४	”
एशिया	१,४८१,०००,०००	कनाडा	१५,६०१	”
यूरोप (रूस को छोड़ कर)	४११,०००,०००	फ्रांस	४३,३००	”
ओसीनिया	१४,५००,०००	प० जर्मनी	४९,९९५	”
रूस	२००,०००,०००	चीन	५८२,६०३	”
सम्पूर्ण विश्व	२,६८९,०००,०००	भारत	३९९,०००	”
		जापान	८८,९००	”
		पाकिस्तान	८०,१६७	”

भारत की जनसंख्या आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई है। वास्तव में यह देश इतिहास की मध्यकालीन अवस्था में ही है, जिससे इसका जीवन-स्तर बहुत निम्न है। ज्यों-ज्यों मध्यकालीन अवस्था दूर हो कर आधुनिक युग की अवस्थाएँ इस देश में पूर्ण रूप से फैल जायँगी त्यों-त्यों यहाँ व्यापार, उद्योग आदि की महान् उन्नति होना आवश्यक है। जिस समय इतनी बड़ी जनसंख्या पर औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ेगा, उस समय ससार मे एक महत्वपूर्ण क्रान्ति हो जायगी। उस समय संसार का कोई भी देश भारत की बराबरी नहीं कर सकेगा, क्योंकि किसी भी देश की वास्तविक शक्ति वहाँ की जनसंख्या में होती है। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि चीन की जनसंख्या हमारे देश से अधिक है, परन्तु हमारे देश की भावी-सम्पत्ति का सामना चीन नहीं कर सकता। चीन मे न तो इतनी खनिज सम्पत्ति है जितनी भारत में और न इतनी जल-विद्युत् शक्ति। चीन की अपेक्षा हमारे देश की वन-सम्पत्ति भी अधिक है। वहाँ की अपेक्षा हमारे देश में मार्ग-सुविधा भी अधिक है। इसलिए भारत की जनसंख्या का महत्व अनुभव करने के लिए केवल समय की देर है। वह समय आधुनिक युग की औद्योगिक क्रान्ति के साथ आयेगा।

भारत एक मानसूनी जलवायु का देश है। इस जलवायु में अन्य जलवायु की अपेक्षा खेती का महत्व आजकल अधिक है। इस जलवायु की घनी जल-वर्षा के कारण भारत में नदियों के बनाये हुए विस्तृत मैदान हैं। इन मैदानों में उपजाऊ मिट्टी है, जो प्रति वर्ष नई होती रहती है। यहाँ की जलवायु धान की खेती के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। धान ही एक ऐसा अन्न है, जिस पर बहुत बड़ी जनसंख्या अपना निर्वाह कर सकती है। इसीलिए भारत में खेती और जनसंख्या में घनिष्ठ सम्बन्ध है। साधारण दशा में जनसंख्या का वितरण निम्नलिखित कारणों पर निर्भर होता है :—

१. भोजन की उत्पत्ति, या

२. भोजन प्राप्त करने के साधन।

औद्योगिक अथवा व्यावसायिक क्षेत्रों में लोगों के पास इतना धन होता है कि वे अपना भोजन दूसरों से मोल ले सकते हैं। इसलिए औद्योगिक क्षेत्रों मे भोजन की उत्पत्ति न होते हुए भी मोल लेने के साधनों की प्राप्ति के कारण वहाँ घनी जनसंख्या होती है।

कृषि क्षेत्रों में लोगों की आय कम होती है; परन्तु उनके पास भोजन उत्पन्न
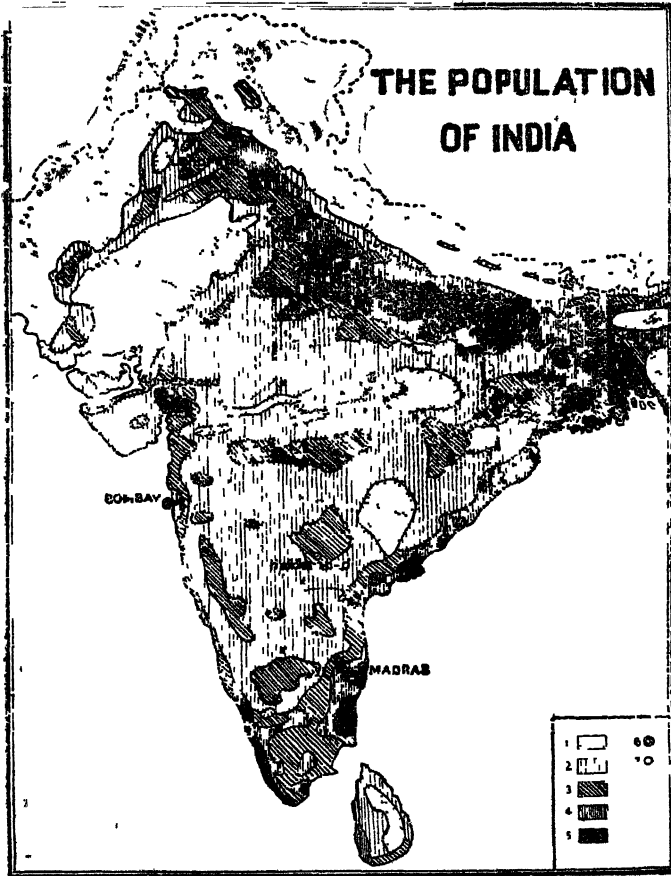
चित्र ८४—जनसंख्या

(१) २५ से कम, (२) २५-७५, (३) ७५-१५०, (४) १५०-२५०, (५) २५० से अधिक, (६) नगर ५ लाख से अधिक, (७) नगर २½ लाख से ५ लाख।

करने के लिए भूमि होती है। कृषि क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व वहाँ पर उत्पन्न होने

वाले भोजन पर ही निर्भर है। धान वाले क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक है और गेहूँ वाले क्षेत्रों में जनसंख्या कम।

जनसख्या का वितरण और भोजन प्राप्ति एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। जितना ही अधिक भोजन, प्रायः उतनी ही अधिक जनसंख्या होती है।

भारत में उपरोक्त बातों का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ऐसा देखा जाता है कि धान की खेती के पीछे-पीछे इस देश की जनसंख्या फैली है। धान की खेती उपजाऊ मिट्टी और घनी जलवर्षा पर निर्भर है। इसीलिए भारत की सबसे घनी जनसंख्या प्रायः अधिक धान वाले क्षेत्रों मे है और ये क्षेत्र अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों से संबधित है।

उद्योग की उन्नति के लिए खनिज-पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे क्षेत्र में जहाँ खनिज अधिक मिलते हैं वहाँ काम मिलने से जनसंख्या प्रायः घनी होती है। औद्योगिक क्षेत्र में भी यह सुविधा अधिक मिलती है और इसलिए वहाँ भी घनी जनसंख्या है। पीछे दिये हुए चित्र में भारत की जनसंख्या का वितरण दिखाया गया है।

घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र ये हैं :

१. गंगा की घाटी।

२. पूर्वी तट के नदी के डेल्टा।

३. मलाबार का समुद्री तट।

भारत में प्रति वर्ग मील सबसे अधिक लोग केरल और आसाम के कुछ भाग में हैं। यहाँ पर प्रति वर्ग मील की औसत लगभग १,००० है।

भारत की सबसे कम घनी जनसंख्या निम्नलिखित क्षेत्र में है :

१. हिमालय तथा उससे मिले हुए पहाड़ी क्षेत्र।

२. राजस्थान की मरु-भूमि।

३. छोटा नागपुर, बस्तर और उड़ीसा के कुछ भाग।

इन क्षेत्रों मे जनसख्या का प्रति वर्ग मील औसत २५ से भी कम है।

गङ्गा के मैदान में समुद्र से भीतर की ओर चलने पर जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है, क्योंकि वहाँ जलवर्षा कम होती जाती है और इसलिए धान की खेती कम होती जाती है। परन्तु इस मैदान में जिन क्षेत्रों मे सिंचाई का पूरा प्रबन्ध है उनमें जनसंख्या का घनत्व ऊँचा है। उदाहरण के लिए मेरठ के आस-पास का क्षेत्र नहरों की सिंचाई का एक केन्द्र है। वहाँ पर उपजाऊ मिट्टी भी है। इसलिए वहाँ जलवर्षा

कम होते हुए भी जनसंख्या का घनत्व अधिक है। गङ्गा के डेल्टा के उस भाग में जहाँ समुद्र का जल बहुधा फैल जाता है और इसलिए जहाँ खेती कम होती है, जनसख्या का घनत्व बहुत कम है।

पंजाब का घनी जनसंख्या का क्षेत्र हिमालय के निकट है, जहाँ सिंचाई की भरपूर सुविधा है।

दक्षिणी पठार में जनसख्या का घनत्व साधारणतया कम है, क्योंकि यहाँ ऊबड़-खाबड़ भूमि अधिक है तथा यहाँ बनों से ढँका हुआ क्षेत्र भी अधिक है। इसलिए यहाँ भोजन की खुराक कम है।

भारत कृषि प्रधान देश है। इसलिए यहाँ की लगभग ८३ प्रतिशत जनसंख्या (२९५० लाख) गाँवों मे रहती है। इस देश मे लगभग ५,५८,०८९ लाख गाँव हैं। इन गाँवों मे अधिकतर छोटे-छोटे गाँव हैं, जिनकी जनसख्या ५०० से कम है। लगभग तीन-चौथाई गाँव इसी श्रेणी में हैं। इन्हीं छोटे छोटे गाँवों में भारत की जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग रहता है।

१९५१ में पूरे भारत मे ५,५८,०८९ गाँव और ३०१८ नगर थे; इनकी पूर्ण जनसंख्या ३५,६८,७९,३०४ थी। पूरे देश मे लगभग ६$\frac{1}{2}$ करोड़ मकान हैं जिनमें से लगभग ५$\frac{1}{2}$ करोड़ मकान गाँव मे हैं। गाँव में रहने वाली जनसख्या लगभग २९$\frac{1}{2}$ करोड़ है, और नगरों में रहने वाली लगभग ६ करोड़। नीचे दी हुई तालिका में इसका विवरण है।

१९३१ और १९५१ में जनसंख्या का वितरण।

गाँव अथवा नगर का आकार	गाँव की सख्या (हजारों में) १९३१		कुल जनसख्या का प्रतिशत १९३१	जनसख्या १९५१ लाख मे
५०० से कम जनसख्या वाले	१५०	३८०	२७·६	७८३
५०० से १००० ,, ,,	११३	१०४	२२	७२९
१००० से २००० ,, ,,	५४	५२	२०·५	७११
२००० से ५००० ,, ,,	१९	२१	१५	५९१
नगर				
५००० से १०,००० ,, ,,	२	३	४	२०७
१०,००० से ५०,००० ,, ,,	—	.८	२	११६
२०,००० से ५०,००० ,, ,,	—	.४	२	७५
५०,००० से अधिक ,, ,,	—	.१	७	२३५
ग्रामों का पूर्ण योग	६,९६,८३१	५५८	१००.०	२९५०
नगरों का पूर्ण योग	२,५७५	३,०१८		६१८

१६५१ में जनसख्या का वितरण

	सख्या	जनसख्या का प्रतिशत
००० से कम वाले गाँव	५३६०५७	६१%
५००० से १०,००० वाले	२३६०६	२४%
१०.००० से अधिक वाले	१४४१	१५%

भारत में नागरिक जनसख्या बहुत कम है। यद्यपि यह देश आकार में लगभग यूरोप के बराबर है, परन्तु यहा पर केवल १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले केवल ७३ नगर ही हैं। इनमे से १२ बम्बई में, १६ उत्तर प्रदेश में, ८ बंगाल में, ६ मद्रास मे, ५ बिहार, ६ आध्र, ५ मध्य प्रदेश, ४ राजस्थान, ३-३ पजाब और मैसूर में, २ केरल में और १ उड़ीसा में है। इनमें से ३२ नगर गगा-सतलज के मैदान में हैं। इसी मैदान में भारत के सबसे बड़े गाँव भी स्थित हैं। यहाँ पर लगभग २३/४ लाख गाँव हैं; उपजाऊ भागों मे गाँवों का आकार बहुत छोटा है और पास-पास हैं। साधारण उपज वाले क्षेत्रों में गाँव बड़े-बड़े और प्रायः दूर-दूर हैं। बंगाल में औसत गाँव का क्षेत्रफल लगभग एक वर्गमील है। परन्तु बम्बई प्रदेश में औसत गाँव का क्षेत्रफल ५ वर्गमील है।

भारत की जनसख्या का औसत घनत्व प्रति वर्गमील ३१२ है। इसकी तुलना अन्य देशों से नीचे की गई है।

जनसख्या का घनत्व प्रति वर्गमील

बेल्जियम	७३४
जापान	५८३
जर्मनी	५०५
ब्रिटेन	७२४
इटली	३६६
पाकिस्तान	२१०
फ्रास	१६३
चीन	१२३
इडोनेशिया	१०३
संयुक्त राज्य अमेरिका	५०
रूस	२३
ब्राजील	१५
नीदर लैण्ड	८२६

सन् १९५१ की जनगणना में जनसंख्या के घनत्व के दृष्टिकोण से देश को १५ उप-विभागों में बाँटा गया। ये विभाग पुनः तीन क्षेत्रों में निम्न प्रकार से बाँटे गये—

(i) अधिक घनत्व वाले विभाग :

	प्रति वर्ग मील पीछे घनत्व
गंगा का निचला मैदान	८३२ व्यक्ति
गंगा का ऊपरी मैदान	६८१ ,,
मलाबार-कोंकन	६३८ ,,
दक्षिणी मद्रास	५५४ ,,
उत्तरी मद्रास व उड़ीसा तट	४६१ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	६६० ,,

(ii) मध्यम घनत्व वाले विभाग

गंगा का मध्यवर्ती भाग	३३२ ,,
दक्षिणी दकन	२४७ ,,
उत्तरी दकन	२४६ ,,
गुजरात-सौराष्ट्र	२२६ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	२६६ ,,

(iii) निम्न घनत्व वाले विभाग

मरुस्थल	६१ ,,
पश्चिमी हिमालय	६८ ,,
पूर्वी हिमालय	११८ ,,
उ० पू० पहाड़ियाँ	१६३ ,,
उ० मध्यवर्ती पठार और पहाड़ियाँ	१६४ ,,
उ० पू० पठार	१६२ ,,
सम्पूर्ण क्षेत्र का घनत्व	१२६ ,,

आगे की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का वितरण और प्रति वर्गमील पीछे घनत्व बताया गया है :—

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील में)	जनसंख्या	घनत्व
आंध्र प्रदेश	१,०५,७००	३,१२६०,१३३	२९६
आसाम	८५,०६२	९०,४३,७०७	१७१
बिहार	६७,११३	३,८७,८३,७७८	५७८
बम्बई	१,९०,६६८	४,८२,५६,२२१	२५३
जम्मू काश्मीर	८५,८६१	४४,१०,०००	५१
केरल	१४,९३७	१,३५,४९,११८	९०७
मध्य प्रदेश	१,७१,३००	२,६०,७१,६३७	१५२
मद्रास	५०,१७४	२,९९,७४,९३६	५९७
मैसूर	७४,८६१	१९४,०१,१९३	२५९
उड़ीसा	६०,२५०	१,४६,४५,९४६	२४३
पजाब	४७,०६२	१,६१,३४,८९०	३४३
राजस्थान	१,३२,०९८	१,५९,७०,७७४	१२१
उत्तर प्रदेश	१,१३,४२३	६,३२,१५,७४२	५५७
प० बंगाल	३३,८८५	२,६३,०२,३८६	७७६
अंडमान और नीकोबार द्वीप	३,२१५	३०,९७१	१०
दिल्ली	५७३	१७,४४,०७२	३०४४
हिमाचल प्रदेश	१०,९२२	११,०९,४६६	१०२
लकदीप मीनीकाय और अमीन द्वीप	४२	२१,७३५	५०१
मनीपुर	८,६२९	५,७७,६३५	६७
त्रिपुरा	४,०२२	६,३९,०२९	१५९
योग	१२,५९,७९७	३६,११,५१,६६९	३१२

भारतीय जनसंख्या की विशेषताएँ

(१) भारत में जनसंख्या का वितरण समान नहीं है, कुछ भागो में जनसख्या का घनत्व बहुत अधिक है और कुछ में साधारण से भी कम। यद्यपि देश का औसत घनत्व ३१२ व्यक्ति प्रति वर्गमील है, किंतु दिल्ली में ३,०१७ व्यक्ति, केरल मे १,०१५ बंगाल में ८४१; बिहार में ५७२; ५६२ उत्तर प्रदेश में और पंजाब मे ३३८ तथा

राजस्थान में १२० ही है। इसका अर्थ यह है कि कुछ भागों में भूमि पर बहुत अधिक भार है।

(२) भारत में जनसख्या की वृद्धि निरंतर हो रही है। यद्यपि कुछ अवधि में यह कम और कुछ में अधिक है। १८९१-१९२१ के बीच प्लेग, हैजा, अकाल और मलेरिया तथा इनफ्लुएंजा आदि महामारियों के कारण—तीस वर्षों मे १२.२ करोड़ की ही वृद्धि हुई किंतु आगामी तीस वर्षों मे १९२१-१९५१ के बीच यह वृद्धि २७·४ करोड़ की हुई। अर्थात् पहले तीस वर्षों की अपेक्षा दूसरे तीस वर्षों में वृद्धि दुगुनी से भी अधिक हो गई। इसका मुख्य कारण देश में यातायात के साधनों का विकास, चिकित्सा सुविधाओं की अधिक मात्रा मे उपलब्धि, तथा अधिक मृत्यु और जन्मदर का होना है। यह अनुमान लगाया गया है कि यदि प्रतिवर्ष १½% के हिसाब से वृद्धि होती रही तो १९६१ मे हमारी जनसख्या ४१ करोड़, १९७१ मे ४६ करोड़ और १९८१ में ५२ करोड़ हो जायेगी।

(३) देश की ८२.७% जनसख्या अभी भी गाँवों में और केवल १७.३% नगरों में रहती है।

(४) आयु के आधार पर कुल जनसंख्या मे से ३८·३% शिशु व बच्चे; ३३% युवा स्त्री पुरुष, २०·४% प्रौढ़ स्त्री पुरुष और ८·३% वृद्ध स्त्री पुरुष हैं। इसका अर्थ यह है कि देश के ३७ करोड़ व्यक्तियों में से केवल १८ करोड़ व्यक्ति ही काम करने वाले हैं। शेष इन्हीं की आय पर निर्भर करते हैं। अतः देश में सम्पत्ति का उत्पादन अधिक नही हो पाता।

(५) औसत भारतवासी की जीवन अवधि केवल पुरुषों के लिए ३२·४ वर्ष और स्त्रियों के लिए ३१·६ वर्ष है। यह जीवन अवधि अन्य देशों की तुलना मे कम है।

(६) भारतीय जनसख्या में प्रति एक हजार पुरुषों पीछे केवल ९४७ स्त्रियाँ हैं।

(७) जनगणना के आधार पर ७०% लोग कृषि में और शेष ३०% अन्य व्यवसायों में लगे है। प्रत्येक १०० व्यक्तियों मे से ४६.९ भूमिदार कृषक, ८·८ कृषक, १२·६ भूमिरहित किसान, १·५ जमींदार; १०·५ कृषि के अतिरिक्त अन्य उद्योगों मे लगे हुए ६ वाणिज्य में; १·६ यातायात में और १२.१ सेवाओं और अन्य कार्यों में लगे हैं।

(८) औसत भारतवासी का रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है और देश की औसत प्रति व्यक्ति आय भी केवल २६६ रु० ही है।

(६) खाद्यान्नों के उत्पादन की दृष्टि से भारत में जनाधिक्य है। जनसंख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है किन्तु उसी अनुपात में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है।

अतः इस बात की आवश्यकता है कि जनसंख्या की वृद्धि को और अधिक बढ़ने से रोका जाय। इसके लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं :—

(i) जनसंख्या का रहन-सहन का स्तर बढ़ाया जाय; शिक्षा का प्रसार हो और स्त्रियों के विवाह की आयु २० वर्ष से कम न हो।

(ii) कृषि उत्पादन में अधिक भूमि पर अच्छे बीज, उत्तम खाद और अधिक सिंचाई की सुविधाएँ देकर वृद्धि की जाय।

(iii) देश मे उद्योगों का विकास कर खेतों में लगे लोगों की संख्या घटाई जाये।

(iv) बंगाल, केरल और उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से जनसंख्या का अन्तर्राज्यीय प्रवास राजस्थान, आसाम, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश को समुचित व्यवस्था कर किया जाय।

(v) जनसख्या में परिवार-नियोजन करने की भावना बढ़ाई जाये।*

जातियाँ (Raes)

संसार में भारत ही ऐसा देश है जहाँ सभ्यता के हर काल में कई प्रकार की जातियाँ वर्तमान रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि विभिन्न समय में भारत में भिन्न-भिन्न जातियाँ आकर बसती रही हैं। फलतः आजकल के भारतीय विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण मात्र हैं।

भारत की प्राकृतिक बनावट के कारण यहाँ पर विभिन्न काल में आई हुई जातियाँ नष्ट न हुईं बल्कि बाद में आने वाली जातियों के दबाव से पहले से आई हुई जाति के लोग दक्षिण या पूर्व मे जाकर बस गये। ये जातियाँ वर्तमान भारत का मुख्य अंग हैं। आदि जातियों की भारतीय पहाड़ों व जंगलों ने शरण दी और इसलिए अभी भी बहुत-सी भारतीय जातियों में आदि गुण वर्तमान हैं।

---

*इस पुस्तक का संशोधन डा० सी० बी० ममोरिया द्वारा किया गया है।
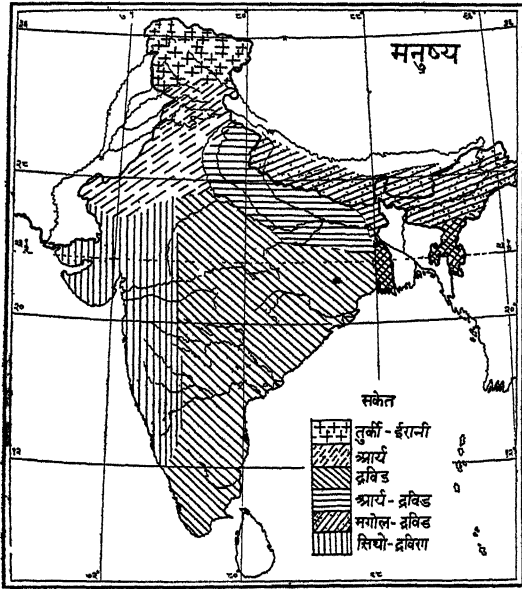
चित्र ८५—मनुष्य

(१) निग्रायड जाति के लोग सबसे प्रथम अफ्रीका से आकर भारत में बसे। इस जाति के चिह्न अब बिल्कुल मिट चुके हैं और अंडमान द्वीप के आदि निवासियों को छोड़ कर और कोई भी भारतीय इनसे उद्भूत नहीं है। इस जाति के कुछ लोग राममहल पहाड़ो में भी पाये जाते हैं।

(२) इसके बाद पैलस्टाइन से प्रोटो-आस्ट्रालायड जाति के लोग आये। उनका सर लम्बा, रंग काला और नाक चपटी थी। मध्यभारत, मध्य प्रदेश और लंका के आदि निवास इसी जाति के हैं। ये ही वास्तव में प्राचीन भारतीय हैं और आस्ट्रेलिया के आदि निवासियों से रूप, रंग व कद में मिलने के कारण इनका नाम प्रोटा आस्ट्रालायड पड़ गया।

(३) अति प्राचीन समय में भूमध्यसागर जाति की एक शाखा जिसका नाम आस्ट्रिक था मेसोपोटामिया द्वारा भारत में आई। इन लोगों के सर लम्बे रङ्ग कुछ साफ और नाक लम्बी व सीधी होती है। यह लोग उत्तरी भारत में बसे और बाद में

बर्मा, इण्डोचीन, मलाया और इण्डोनेशिया में फैल गये। आजकल इस जाति के लोग मध्य तथा उत्तरी-पूर्वी भारत के पहाड़ों व जंगलों में पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या देश की आबादी की १.३ प्रतिशत है। कोल, सथाल, खासी, निकोबारी लोग इसी जाति के हैं।

(४) ईसा मसीह से ३५०० वर्ष पूर्व ईसवी में एशिया माइनर और ऐशियन द्वीप समूह से द्रविड़ लोग भारत मे आये। ये लोग बहुत सभ्य थे। इन्होंने पंजाब और सिंध में बहुत से नगर स्थापित किये। जब इन्होंने दक्षिण और पूर्व में गंगा के मैदान में फैलना शुरू किया तो वे आस्ट्रिक जाति के लोगों के सम्पर्क में आये और दोनों ने मिलकर वर्तमान हिन्दू धर्म की नींव डाली। आजकल द्रविड़ जाति के लोग दक्षिण भारत में रहते हैं। इनकी सख्या भारतीय आबादी की २० प्रतिशत है।

(५) इसके बाद ईसा मसीह से २५०० वर्ष पूर्व ईसवी मे उत्तरी मेसोपोटामिया के प्रदेश से ईरान होते हुए आर्य जाति के लोग आये। उनका रङ्ग गोरा, चेहरा सुडौल और कद लम्बा था। इस समय भारत के ७३ प्रतिशत लोग इसी जाति के हैं और पूर्वी पजाब, काश्मीर, राजपूताना तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फैले हुए हैं।

(६) आर्यों के बाद मंगोल जाति के लोगों ने भारत में प्रवेश किया। इनका घर उत्तरी-पश्चिमी चीन था और यहाँ से यह तिब्बत में फैले फिर हिमालय तथा आसाम से होते हुए उत्तरी पूर्वी बङ्गाल के मैदानी भागों में तथा आसाम की पहाड़ियों व मैदानों में फैल गये। आज भी इस जाति के लोग नैपाल, तिब्बत, काश्मीर के पूर्वी भाग और आसाम में मिलते हैं। इनका रङ्ग पीला होता है।

वर्तमान समय मे अधिकतर भारतीय इन जातियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न और इसी कारण उनमें एक जाति की विशेषताएँ नहीं पाई जातीं। इस प्रकार मिश्रित तीन जातियाँ प्रधान हैं।

(१) आर्य द्राविड़ जाति के लोग उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, बम्बई, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बङ्गाल के कुछ भागों में पाये जाते हैं।

(२) मंगोल द्राविड़ जाति के लोग आसाम व बङ्गाल के पूर्वी भागों मे पाये जाते हैं। इनका रङ्ग काला कद मध्यम और नाक चौड़ी होती है।

(३) स्काइथो द्राविड़ जाति के लोग द्राविड़ और स्काइथ जाति के सम्मिश्रण हैं। ये लोग गुजरात और पश्चिमी प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। महराठा लोग इसी जाति के हैं।

भाषाएँ (Languages)

भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत की भाषाओं के अन्वेषण से पता चलता है कि यहाँ पर कुल १७६ भाषाएँ बोली जाती हैं। जिनमें से करीब ११६ भाषाएँ १ प्रतिशत से भी कम लोगों मे प्रचलित हैं। इस प्रकार पूर्णतया उन्नत व विकसित केवल १४ भाषाएँ हैं—(१) हिन्दी, (२) उर्दू, (३) बङ्गाली, (४) उड़िया, (५) मराठी, (६) गुजराती, (७) काश्मीरी, (८) पंजाबी, (६) नेपाली, (१०) आसामी,
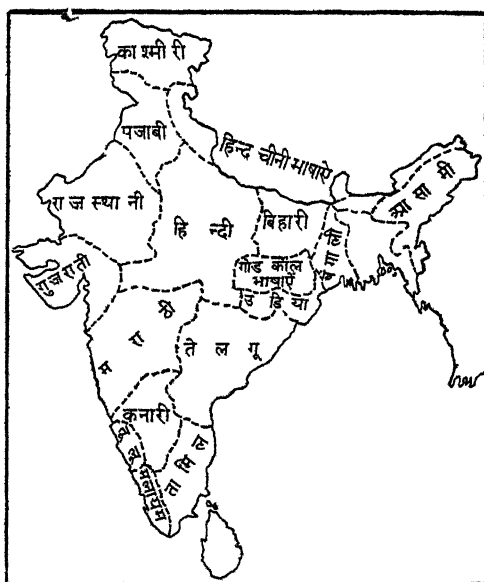
चित्र ८६—भाषाएँ

(११) तेलगू, (१२) कनाड़ा, (१३) तामिल और (१४) मलायम। पंजाबी और नेपाली हिन्दी से मिलती-जुलती है। और उड़िया व आसामी भाषाएँ बङ्गाली से मिलती हैं। अन्तिम चार भाषाएँ दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। लगभग २३०० लाख आदमी पहली १० भाषाओं का प्रयोग करते हैं। और ६६० लाख मनुष्य अन्तिम चार भाषाओं को बोलते हैं।

विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रकार है (लाख में)

हिन्दी	७६०	कनाड़ा	१२०
बङ्गाली	५४०	उड़िया	११०
तेलगू	२६०	गुजराती	११०
मराठी	२१०	मलयालम	१००
तामिल	२००	सिंधी	१४०
पंजाबी	१६०	आसामी	२०
राजस्थानी	१४०	काश्मीरी	१५
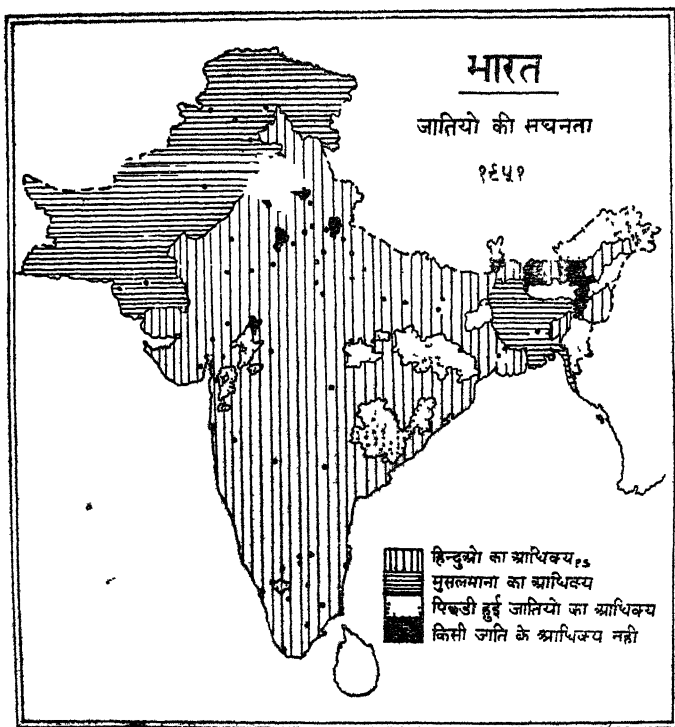
चित्र ८७—जातियों की सघनता

धर्म (Religion)

भारत में जातियों और भाषाओं की विभिन्नता के साथ-साथ विभिन्न धर्म भी मिलते हैं। सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार प्रति १०० पीछे भारत में ८५ हिन्दू, ९ मुस्लिम, २ ईसाई, ४ जंगली जातियाँ, बौद्ध, जैन और सिक्ख आदि थे। इस समय समस्त देश में ही हिन्दू मिलते हैं, किन्तु हिन्दुओ की अधिक सख्या उत्तर प्रदेश, मद्रास बिहार, मध्य प्रदेश, बम्बई और राजस्थान में; ईसाई केरल, मद्रास और उत्तरी भारत मे; सिक्ख पजाब और दिल्ली में, जैन पूर्वी राजस्थान में तथा जंगली जातियाँ आसाम, बिहार, राजस्थान और आध्र, मध्य प्रदेश के जंगली भागों में रहती हैं।

प्रश्न

१. भारत में जनसंख्या के वितरण पर भौगोलिक कारणों का क्या प्रभाव है ?

२. निम्नलिखित क्षेत्रों में जनसंख्या के वितरण की विशेषताओं की विवेचना कीजिये।—

(अ) गगा का मैदान, (ब) दक्षिणी पठार।

३. भारत की अधिकतर जनसंख्या नगरों की अपेक्षा गाँवों में क्यों रहती है ?

४. भारत के भिन्न प्रदेशों के गाँवों की विशेषताएँ क्या हैं ? विवेचना सहित लिखिये।

५ भारत में इतनी अधिक मृत्युएँ क्यों होती हैं ?

६. भारत की जनसंख्या का वितरण असमान क्यों है ?

७. व्याख्या-सहित लिखिये कि जनसंख्या का वितरण जलवर्षा पर किस प्रकार निर्भर रहता है।

अध्याय १३

प्राकृतिक खंड

(Major Natural Regions)

प्राकृतिक खंड से हमारा अभिप्राय उस भूभाग से होता है जिसमें भौतिक परिस्थितियाँ, जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति में समानता होती है। इन तीनों समानताओं के फलस्वरूप उस समस्त भू-भाग की कृषिगत उपज, जीव-जन्तु, मनुष्यों की आर्थिक क्रियाएँ, जनसख्या का घनत्व और रहन-सहन प्रायः समान होता है। भारत के प्राकृति खंडों को निर्धारण करने में देशी और विदेशी दोनों ही विद्वानो ने योग दिया है। सर्वमान्य धारणा डा० स्टॉम्प की मानी जाती है। भौतिक आकृति के आधार पर भारत के तीन मुख्य विभाग किये गए हैं। डा० स्टाम्प ने इन्हीं तीन विभागों को उनकी भौतिक रूपरेखा जलवायु और सम्बन्धित वनस्पति के कारण निम्न भागों में विभाजित किया है :—

(क) **हिमालय प्रदेश**—इसके अन्तर्गत ये प्राकृतिक खड माने गए हैं :—

(१) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश,
(२) हिमालय प्रदेश,
(३) उप-हिमालय प्रदेश,
(४) तिब्बत का पठार,

(ख) **गंगा सतलज का मैदान**—इसमें निम्न प्राकृतिक खंड अवस्थित हैं:—

(५) पंजाब का मैदान,
(६) गङ्गा का ऊपरी मैदान,
(७) गङ्गा का मध्य मैदान,
(८) गङ्गा का निचला मैदान,
(९) ब्रह्मपुत्र की घाटी,

(ग) **दक्षिण का पठार**—इसमें निम्न खंड सम्मिलित किये गये हैं :—

(१०) कच्छ, सौराष्ट्र प्रदेश,
(११) पश्चिमी तटीय प्रदेश,

(१२) तामील नाड़ प्रदेश अथवा कर्नाटक

(१३) कलिग प्रदेश अथवा उत्तरी सरकार,

(१४) दक्षिणी दक्कन,

(१५) दक्षिण का लावा प्रदेश,

(१६) उत्तरी-पूर्वी दक्कन,

(१७) थार मरुस्थल,

(१८) मालवा; बुन्देलखंड-बघेलखंड और छोटा नागपुर का पठार,

(१९) राजपूत पठार,
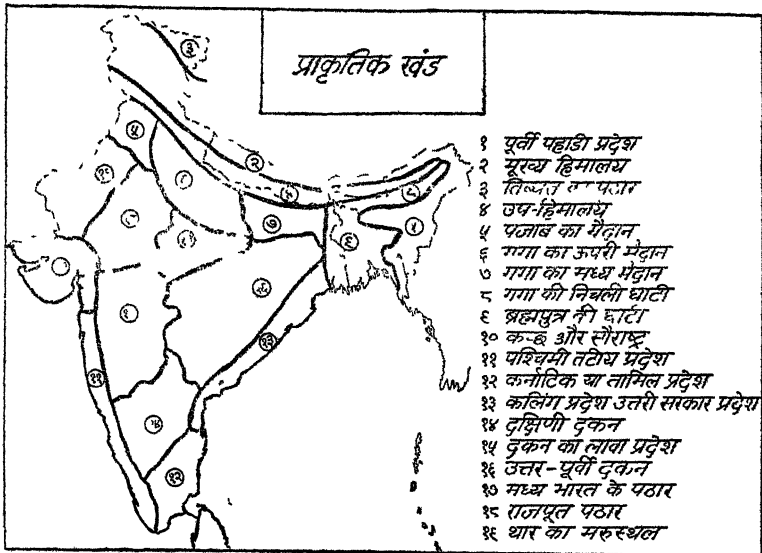
चित्र ८८—प्राकृतिक खंड

(१) **पूर्वी पहाड़ी प्रदेश** (Eastern Hilly Region)—इस प्रदेश में भारत ब्रह्मा की सीमा पर स्थित पहाड़ियाँ हैं। इन्हें उत्तर में पटकोई, मध्य में नागा और दक्षिण मे लुशाई कहते हैं। यह धनुषाकार रूप में फैली हैं। इसी श्रृङ्खला की एक शाखा पश्चिम की ओर आसाम राज्य से होती हुई पूर्वी पाकिस्तान तक चली गई है। इसमें खासी, जयन्तिया और गारो मुख्य हैं। इन पहाड़ियों में होकर ही ब्रह्मपुत्र

नदी २५० मील दक्षिण में बहने के बाद पूर्वी पाकिस्तान मे चली जाती है। ये पहाड़ियाँ साधारणतः ६००० फीट से अधिक ऊँची नहीं हैं। किन्तु कुछ चोटियाँ १०,००० फीट तक भी ऊँची हैं।

चूँकि ये पहाड़ियाँ बंगाल की खाड़ी की मानसून की पूर्वी शाखा के मार्ग में ठीक सामने पड़ती हैं अतः इस प्रदेश में बहुत अधिक वर्षा होती है। चेरापूँजी नामक स्थान पर ४५७ इंच तक वर्षा होती है किन्तु पहाड़ की चोटियों और उसके पठारी भागों पर वर्षा की मात्रा कम रह जाती है। इसी कारण शिलांग में केवल ५५ इंच ही वर्षा होती है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण तापक्रम कम ही रहता है। यह गर्मी मे भी ८५° फा० से अधिक नहीं बढ़ता। इस प्रदेश में अधिकतर भूचाल आते हैं।

अधिक वर्षा होने के कारण इन पहाड़ियों पर उष्ण कटिबन्धीय वन मिलते हैं। ये काफी घने और दुर्गम होते हैं। इन्हीं के बीच-बीच में बाँस और बेत के वृक्ष भी पाये जाते हैं। पहाड़ों की चोटियों और पठारों पर घास मिलती है। अधिकतर वनों को जलाकर आदिमवासी झूमिंग प्रणाली द्वारा भूमि साफ कर मोटे अनाज आदि बोते हैं। २-३ वर्षों के बाद जब भूमि के उपजाऊ तत्व समाप्त हो जाते हैं तो नई भूमि साफ कर ली जाती है। खेती केवल ४% भाग पर ही की जाती है—शेष भाग पहाड़ी होने के कारण कृषि के अयोग्य है। कई भागों में सीढ़ीदार खेत भी पाये जाते हैं। इस प्रदेश की मुख्य उपज चावल और चाय है। पहाड़ी ढालों पर चाय के बगीचे मिलते हैं—मुख्यतः धरांग, शिवसागर और लखीमपुर जिलों में—गारो और लुसाई की पहाड़ियों पर निम्न श्रेणी की कपास तथा गारो पर सन्तरे भी पैदा किये जाते हैं। जंगलों से लाख भी प्राप्त किया जाता है। इस प्रदेश में जंगलों को साफ कर तथा जलवायु को स्वास्थ्यप्रद बना कर खेती का क्षेत्र बढ़ाया जा रहा है। चाय के बगीचों के लिए कुली बिहार से आते हैं।

इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व ५०-६० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। यहाँ अधिकतर गाँव पानी के सोतों के समीप ऐसी जगहों पर बसे हैं जहाँ आक्रमण के समय उनका बचाव हो सके। बड़े नगर केवल शिलांग, सिलहट, और मणीपुर ही हैं। आने-जाने के मार्ग बड़े ही दुर्गम और थोड़े हैं। अतः यहाँ जो भी लोग रहते हैं वे आपस में बहुत ही कम मिल पाते हैं। इसी कारण इस प्रदेश में आज भी सभ्यता की छाप से अछूते निवासी पाये जाते हैं जिनमें मुख्य नागा, अगामी नामा, अभोर, मिशमी, मिकिर, मिरी आदि हैं। ये लोग मुख्यतः मासाहारी हैं। नर हत्या करना

शौक है। केवल एक रेल मार्ग है जो उत्तर में ब्रह्मपुत्रा की घाटी को दक्षिण में गङ्गा के डेल्टा-प्रदेश से मिलाता है। इसी की एक शाखा सिलहट तक जाती है।

समुद्र तट तक पहुँच न होने के कारण इस प्रदेश का कोई बन्दरगाह नहीं है। चाय मुख्यतः पाकिस्तान के चिटगॉव बन्दरगाह से अथवा कलकत्ता से निर्यात की जाती है।

(२) हिमालय प्रदेश—(Himalayan Region) यह प्रदेश ७५° पूर्वी देशान्तर से लेकर ६७° पूर्वी देशान्तर तक फैला है। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई ५,००० फीट से भी अधिक है। इस प्रदेश के अतर्गत पूरा काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल के कुछ भाग आते हैं। इन्ही भागों में भारत के स्वास्थ्य-वर्धक स्थान—श्रीनगर, शिमला, मंसूरी, नैनीताल और दार्जिलिंग आदि बसे हैं।

भौतिक रचना और जलवायु तथा वनस्पति के आधार पर हिमालय प्रदेश के दो भाग किए गए हैं :—

(1) पूर्वी हिमालय प्रदेश-- यह भाग हिमालय के पूर्वी मोड़ से गङ्गा नदी तक चला गया है। इस प्रदेश की श्रेणियाँ एकदम ऊँची होती चली गई हैं। इसी से यहॉ चरण पर्वतों का प्रदेश कम चौड़ा है। अंतर्हिमालय सब जगह १८,००० से १६००० फीट तक ऊँचे हैं। इन्हीं में भारत की उच्चतम चोटियॉ पाई जाती हैं—एवरेस्ट, धौलागिर, कचनजंघा आदि। बहिर्हिमालय काफी नीचे हैं। इसी पर दार्जिलिंग स्थित है। यहॉ की औसत वर्षा १००″ है।

यहॉ तीन प्रकार की बनस्पति पाई जाती है। ५००० से ६००० फीट की ऊँचाई तक सदाबहार बन (विशेषकर बाँस); ६००० से १२००० फीट तक नुकीली पत्ती के बन (चीड़, देवदार आदि); और १२००० से १६००० फीट तक पहाड़ी वन तथा झाड़ियाँ मिलती हैं। १६००० फीट से ऊपर हिमरेखा आ जाती है जहॉ सदैव बर्फ जमा रहता है।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण कृषि की दृष्टि से इस प्रदेश का कोई महत्व नहीं है। वन ही यहाँ की आर्थिक उपज हैं। किंतु ये वन घने, दुर्गम और दूर होने के कारण अधिक व्यवहृत नहीं किये जा सकते हैं। कुछ क्षेत्रों में पहाड़ों पर जगलों का कुछ भाग जला कर सीढ़ीदार खेत बना लिये जाते हैं। जली हुई राख में मोटे अनाज बोये जाते हैं। चावल भी पैदा किया जाता है।

जीवकोपार्जन की कठिनाइयाँ होने के कारण इस प्रदेश की औसत जनसंख्या प्र ोवर्ग १०० से भी कम है। सिकिम रियासत में तो प्रति वर्ग मील ३० मनुष्य ही रहते हैं। पहाड़ों में थोड़े से गाँव इधर-उधर बिखरे हुए पाये जाते हैं। ये छोटे होते हैं। अधिकाश निवासी पहाड़ी मंगोल हैं जिनमें अनेक जातियाँ और भाषाये हैं। नैपाल देश भी इसी ओर है जहाँ नैपाली लोग रहते हैं। सिक्किम में भोटिया रहते हैं।

इस प्रदेश के मुख्य नगर दार्जिलिंग और काठमाडू है। पहला स्थान पश्चिमी बंगाल की ग्रीष्मकाल की राजधानी और चाय का केन्द्र है। यहाँ से लासा को मार्ग जाता है। काठमाडू नैपाल की राजधानी है। कालिमपोंग नगर ऊन का केन्द्र है।

(ii) **पश्चिमी हिमालय प्रदेश**—इसमें सम्पूर्ण काश्मीर, और पजाब तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित हैं। काश्मीर में हिमालय की श्रेणियाँ अधिक जटिल हो गई हैं। यहाँ हिमालय चार श्रेणियों मे फैले हैं। वहिर्हिमालय में पीर पजाल है। इनकी सामान्य ऊँचाई १०,००० से २०,००० फीट तक है। मध्य हिमालय इतने ऊँचे नहीं हैं किंतु इनकी अनेक चोटियाँ १५,००० फीट से भी अधिक ऊँची हैं। इनमें पजी पर्वत हैं। अन्तर्हिमालय की कुछ चोटियाँ २०,००० फीट से भी अधिक ऊँची हैं। इनमें जस्कर हिमालय मुख्य हैं। करोकोरम श्रेणी की कई चोटियाँ २५,००० फीट से भी अधिक ऊँची हैं। K^2 ऐसी ही एक चोटी है। इस प्रदेश में अनेक नदियाँ तिब्बत के पठार से तथा हिमालय के हिमागारों से निकल कर सैकड़ों मील तक हिमालय की श्रेणियों में बहती हुई फिर हिमालय के बीच से होकर मैदान में आती हैं। बहिर्हिमालय और मध्य हिमालय के बीच इस प्रदेश का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग काश्मीर की घाटी स्थित है। जो ८४ मील लंबी और २५ मील चौड़ी है। इसमें वूलर झील स्थित है। यहाँ झेलम नदी में नौ-संचालन होता है। काश्मीर की घाटी में जाड़े का तापक्रम बहुत नीचा हो जाता है, किन्तु गर्मी में बढ़ जाता है। दक्षिणी पश्चिमी मानसून यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते सूख जाते हैं अतः वहाँ वर्षा कम होती है। औसत वर्षा ४०″ है। वर्षा गर्मी मे कम और सर्दी में अधिक होती है।

वर्षा कम होने के कारण ही इस प्रदेश के वन सघन नहीं हैं। १०,००० फीट की ऊँचाई तक शीतोष्ण कोणधारी वन; १०,००० फीट से १७००० फीट तक पहाड़ी वन और १५,००० फीट से ऊपर केवल बर्फ मिलती है। वन पहाड़ियों के उत्तरी ढालों पर अधिक पाये जाते हैं जिससे वहाँ छाया में सूर्य की गर्मी से बच सकें। दक्षिणी ढालों पर नंगी चट्टाने मिलती हैं जिनपर केवल छोटी-छोटी झाड़ियाँ और घास उगती है।

पहाड़ी ढालो पर रंग-बिरंगे फूल आदि भी मिलते हैं। काश्मीर की घाटी की ठंडी और शुष्क जलवायु के कारण अधिकांशतः सीढ़ीदार खेतों में नाशपाती, सेव, खूबानी, आडू, अखरोट, आलूचा, बादाम आदि के फलदार वृक्ष मिलते हैं। वनों से चीड़ और देवदार की लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं।

झेलम नदी के समीप भूमि खेती के लिए बड़ी उपजाऊ है। अधिकतर छोटी-छोटी नावों या लकड़ी के बेड़ो पर मिट्टी की बारीक परतें बिछा देते हैं। इस पर फल-फूल पैदा किये जाते है। नदी में तैरते हुए ये हरे-भरे खेत बड़े सुन्दर लगते हैं। कभी-कभी ऐसे खेत खो या भटक जाते हैं अथवा चुरा लिये जाते हैं। इस घाटी में केसर और चाय भी पैदा की जाती है।

काश्मीर राज्य कुटीर-उद्योगों में बड़ा प्रसिद्ध है। उत्तम श्रेणी की मुलायम ऊन अधिक होने से पश्मीने, शाल, दुशाले और कालीन अधिक बनाये जाते हैं। रेशम के कीड़े पाल कर रेशम प्राप्त किया जाता है। यहाँ लकड़ी पर नक्काशी तथा कागज की वस्तुएँ बनाने का काम भी बहुत होता है। बारामूला पर जल से शक्ति उत्पादन कर श्रीनगर तथा जम्मू नगरों को प्रकाश करने, मकानों को गरम करने और रेशमी तथा ऊनी कपड़ों के कारखानों को दी जाती है। यहाँ थोड़ा एन्थ्रेसाइट कोयला और लाल भी मिलते हैं।

काशमीर घाटी को छोड़कर शेष भाग में जनसंख्या बहुत कम है। जहाँ काश्मीर की घाटी में जनसंख्या का औसत घनत्व १८३ है वहाँ अन्य क्षेत्रों में ५ से भी कम है।

श्रीनगर, लेह, शिमला, मरी, मसूरी, नैनीताल और अल्मोड़ा आदि इस प्रदेश के मुख्य नगर हैं। इसी प्रदेश में बद्रीनाथ और केदारनाथ दो प्रसिद्ध धार्मिक स्थान हैं।

(३) उप-हिमालय प्रदेश (Sub-Himalayan Region) इस प्रदेश में हिमालय के वे भाग सम्मिलित हैं जो ५,००० फीट से अधिक ऊँचे नहीं हैं। ये या तो हिमालय के निचले ढाल हैं या मैदान और हिमालय के बीच के पहाड़ हैं। इस प्रदेश में पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और आसाम के कुछ भाग हैं।

जलवायु की दृष्टि से इस प्रदेश के भी दो उपविभाग किये जाते हैं :—

(1) पूर्वी उप-हिमालय प्रदेश—यह प्रदेश ५००० फीट से कम ऊँचा है। यह हिमालय और गंगा के मैदान के बीच में गङ्गा से पूर्व की ओर हिमालय के

सहारे-सहारे फैला है। इस प्रदेश में दो समानान्तर पेटियाँ हैं जो पूर्व-पश्चिम फैली हैं। मैदान की समीपवर्ती पेटी तराई या दुआर कहलाती है। यहाँ प्रायः दलदल और लम्बी मोटी घास पाई जाती है। दूसरी पेटी हिमालय से लगी है और इसमें हिमालय के निचले ढाल और पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। इनमे मुख्य ये हैं : बंगाल की सिंधुला और बिहार व उत्तर प्रदेश की दून की पहाड़ियाँ।

यह प्रदेश अधिकतर गर्म-तर घने जंगलों से ढका है। यहाँ वर्षा ४०" से १००" तक होती है किंतु पश्चिम की ओर कम तथा पूर्व की ओर अधिक। इस भाग में बहुत दलदल रहता है अत: जलवायु अस्वाथ्यकर और कृषि के लिए सर्वथा अयोग्य था किंतु पिछले कुछ वर्षों से उत्तर प्रदेश सरकार ने ट्रैक्टरों की सहायता से भूमि को साफ कर कृषि योग्य बनाया है। इसमें चावल, गन्ना, गेहूँ आदि पैदा किये जाते हैं। अन्य स्थानों में लम्बी घास पैदा होती है—जैसे सवाई, भाबर, हाथीघास। इनसे कागज बनाया जाता है। दोआर क्षेत्र के जलपाइगुरी जिले में चाय और जूट पैदा किये जाते हैं।

दलदली भाग होने से तराई में मलेरिया का प्रकोप अधिक रहता है। जंगलों में सर्प और अन्य विषैले पशु—गैंड़े, हाथी, रीछ आदि पाये जाते हैं। अतः जनसंख्या का प्रति वर्ग मील घनत्व बहुत कम है।

इस प्रदेश में तराई की सीमा से लगे कई नगर हैं—जैसे सहारनपुर, पीलीभीत खैरी, बहराइच, मोतीहारी आदि। ये तराई प्रदेश की मंडियाँ हैं जहाँ गेहूँ, गन्ना, शक्कर और चावल का व्यापार होता है। ये मैदान के नगरों द्वारा रेल से मिले है। हरिद्वार और देहरादून अन्य मुख्य स्थान हैं।

(11) **पश्चिमी उप-हिमालय प्रदेश**—यह प्रदेश गगा-सतलज के मैदान के उत्तर में ५,००० फीट की ऊँचाई तक गंगा के पश्चिम की ओर सिंध की घाटी तक फैला है। इस प्रदेश में पूर्वी हिमालय प्रदेश की तरह तराई की पट्टी नहीं मिलती किन्तु फिर भी यहाँ दो समानान्तर पट्टियाँ मिलती हैं। मैदान की समीपवर्ती पट्टी ३,००० फीट की ऊँचाई तक सीमित हैं। इसमें शिवालिक की पहाड़ियाँ और अन्य निचले पहाड़ी ढाल हैं। यहाँ वर्षा कम होती है इसलिए शुष्क काँटेदार झाड़ियाँ और मामूली वन मिलते हैं। विशेषतः बाँस और ढाक के। दूसरी पट्टी ३००० से ५,००० फीट ऊँची पहाड़ियों वाला भाग है। इस भाग में चीड़ के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं।

इस प्रदेश में वर्षा ३०" से ४०" तक होती है। पूर्वी भाग में अधिक और

पश्चिमी भाग मे कम। अधिक वर्षा वाले भागों में गेहूँ, चना, बाजरा और मक्का पैदा की जाती है। इसी भाग में जनसख्या भी अधिक है। वनों से चीड़, देवदार आदि लकड़ियों और तारपीन का तेल तथा गंधा बिरोजा, ढाक के वृक्षों से गोंद, लकड़ियाँ तथा फूलों से रंग प्राप्त होता है।

इस प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर अनेक नदियाँ पहाड़ों से मैदान मे उतरती हैं। .यहाँ उनमें बाँध बनाकर नहरे निकाली गई हैं—जैसे हरिद्वार से ऊपरी गंगा नहर; तेजवाला से पश्चिमी यमुना नहर; रोपड़ से सरहिन्द नहर आदि।

कृषि के विकास के साथ-साथ यहाँ जनसंख्या का घनत्व भी बढ़ता जा रहा है।

(४) तिब्बत का पठारीय प्रदेश (Tibetan Region)—यह प्रदेश हिमालय के पार सुदूर उत्तर की ओर स्थित है। इसका कुछ भाग काश्मीर राज्य के अन्तर्गत आता है। काश्मीर का उत्तरी-पूर्वी भाग-लद्दाख जिला जिसे हुण्ड कहते हैं, इसी पठार का भाग है। यह १२,००० फीट से भी अधिक ऊँचा है। वृष्टि छाया मे होने से यह वर्षाशून्य रहता है। जलवायु बड़ी विषम है। जाड़े में कड़ी सर्दी और ठण्डी तेज वायु वहती है तथा गर्मी मे कठोर गर्मी पड़ती है।

पहाड़ी ढालों पर केवल भेड़ें पाली जाती हैं जिनसे ऊन प्राप्त होता है। खारी झीलो से नमक और सुहागा प्राप्त किया जाता है। यहाँ के निवासी चरवाहे हैं। यातायात की बड़ी कठिनाई है। प्रसिद्ध मार्ग श्रीनगर से लेह जाता है और वहाँ से कराकोरम दर्रे होता हुआ लाशा को। जनसंख्या बहुत ही कम पाई जाती है।

(५) पंजाब का मैदानी प्रदेश (The Punjab Plain's Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत पंजाब का अधिकाश भाग सम्मिलित किया जाता है। यह सिंधु के मैदान का पूर्वी भाग है जिसका अधिकांश अब पश्चिमी पाकिस्तान के अन्तर्गत है। यह प्रदेश सतलज और जमुना नदियों के बीच में हैं। थार के मरुस्थल के उत्तर से लेकर उप-हिमालय प्रदेश तक का १,००० फीट से निचला भाग इसी प्रदेश में है। यह सम्पूर्ण प्रदेश समतल मैदान है। जिसका ढाल दक्षिण-पश्चिम की ओर है, जैसा कि सतलज और व्यास नदियों के बहाव की दिशा से ज्ञात होता है। इन नदियों में गर्मियों के आरम्भ में बर्फ के पिघलने पर और वर्षा ऋतु में वर्षा के कारण भयंकर बाढ़े आती हैं। इन नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना होने के कारण यह बड़ा उपजाऊ है।

सामुद्रिक प्रभाव से दूर होने के कारण यहाँ की जलवायु बड़ी विषम है। गर्मी में बड़ी कड़ी गर्मी पड़ती है और औसत तापक्रम कई स्थानों पर ११५° से १२०° फा० तक पाया जाता है और रात के समय यह ८०° फा० से नीचे नही रहता। सर्दी में कठोर सर्दी पड़ती है। रात्रि के समय तापक्रम ३२° फा० से भी नीचे हो जाता है और दिन में ७५° फा० से अधिक नहीं रहता। यहाँ वर्षा की मात्रा अधिक नहीं होती। वर्षा का औसत ४०" तक रहता है। गर्मी में वर्षा अरब सागर के मानसूनों द्वारा और शीतकाल मे भूमध्य सागर की ओर से आने वाले चक्रवातों से होती है। उत्तरी मैदान में उप-हिमालय के निकट होने के कारण वर्षा २५"-३०" हो जाती है किन्तु दक्षिणी मैदान में २०"-२५" ही। अतः उत्तरी मैदान में सिचाई के लिए कुएँ और नहरें पाई जाती हैं। उत्तरी मैदान का ढाल दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर है। दक्षिणी मैदान में भी नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है।

भूमि के उपजाऊ होने और नहरों के जाल-सा बिछा होने के कारण इस प्रदेश में खेती खूब की जाती है। सिंचाई के वरदान के फलस्वरूप ही यह प्रदेश इतना हरा-भरा और अन्न उत्पादन में प्रमुख हो गया है। लगभग ५०% भाग में खेती की जाती है और गेहूँ, चना, ज्वार-बाजरा, मकई, गन्ना, कपास तथा तिलहन पैदा किया जाता है। पशुओं के लिए चरी भी बोई जाती है। इस प्रदेश में, भेड़, बकरियाँ और गायें काफी पाली जाती हैं। हरियाना के बैल और गायें तथा हासी की भैंसे बड़ी प्रसिद्ध हैं।

नहरों के कारण पंजाब की आर्थिक स्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। समतल भूमि, मुलायम मिट्टी और नदियों में जल की मात्रा निरन्तर मिलते रहने के कारण यहाँ नहरों का जाल-सा बिछा है। पश्चिमी यमुना नहर, सरहिंद नहर, ऊपरी बारी दोआब नहर, नागल नहर, गगा नहर और बिस्त-दोआब नहर यहाँ की मुख्य नहरे हैं। भाखरा नांगल योजना एक बहुमुखी योजना है जो यहाँ बनाई जा रही है।

खनिज सम्पत्ति में यह प्रदेश निर्धन है। केवल कंकड़ मिलता है। यहाँ कुछ उद्योगों का अच्छा विकास हुआ है। सूती और रेशमी कपडों की मिले अमृतसर और लुधियाना में, ऊनी कपड़े की मिल धारीवाल में, कागज तथा चीनी के कारखाने जगाधरी में, साइकिल बनाने का कारखाना सोनीपत में और देशी मशीने तथा खेती के औजार के कारखाने बटाला, जलधर और लुधियाना में हैं।

दक्षिणी मैदान की अपेक्षा उत्तरी मैदान मे जनसंख्या अधिक पाई जाती है। मुख्यतः सिंचित क्षेत्रों में जहाँ जनसंख्या अधिकाशतः गाँवों में रहती है जो मैदान में

सर्वत्र फैले हैं। पत्थरो का अभाव होने के कारण घर कच्ची मिट्टी के बने होते हैं और छतें पेड़ों की टहनियों और घास-फूस की बनी होती है। वहाँ हिन्दू, गूजर, राजपूत तथा सिक्ख रहते हैं।

इस प्रदेश मे उत्तर रेलवे है तथा पक्की सड़को का भी अच्छा प्रबन्ध है। अमृतसर, लुधियाना, पटियाला और चंडीगढ आदि मुख्य नगर हैं।

(६) **गंगा का ऊपरी मैदान** (Upper Ganges Plain Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश मे गगा-जमुना का दोआब और गंगा के उत्तर पूर्व का बहुत-सा भाग आता है। दिल्ली राज्य, तथा उत्तर प्रदेश के गंगा-जमुना के संगम तक का खादर इसमें शामिल है। यह प्रदेश भी पूर्णतः समतल है और गंगा तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है। भौतिक रचना के अनुसार यह मैदान दो भागो में विभक्त है—खादर भाग नया ही बना है। इसमें प्रतिवर्ष बाढ़ के समय नदी का जल और मिट्टी फैल जाती है। इसका कुछ भाग उपजाऊ है किन्तु अधिकांश बलुआ और खेती के अयोग्य है। दूसरा भाग बागड़ है जिसे नदियों ने बहुत पहले बनाया था। सम्पूर्ण मैदान का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है तथा ढाल बहुत ही धीमा है। इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ गगा, जमुना, और रामगंगा हैं।

यह प्रदेश सामुद्रिक प्रभाव से दूर है अतः जलवायु बड़ा विषम है। गर्मी मे तापक्रम साधारणतः ११०° फा० से भी अधिक हो जाता है और गर्म लू हवायें तथा धूलभरी मिट्टी उड़ाने लगती हैं। शीतकाल मे तापक्रम ६०° फा० तक नीचा हो जाता है। कभी-कभी तो सर्दी बड़ी असहनीय हो जाती है। वर्षा जुलाई के आरम्भ में बगाल के खाड़ी के मानसूनों द्वारा होती है। वर्षा का औसत २५" से ४०" तक होता है। पश्चिमी भाग में वर्षा कम होने से नहरों और कुओं द्वारा सिंचाई की सुविधायें प्राप्त की गई हैं। पश्चिमी भाग मे कई नहरे हैं—ऊपरी गंगा की नहर, घाघरा नहर, निचली गंगा की नहर, बेतवा नहर, केन नहर, पूर्वी यमुना नहर, आगरा नहर और शारदा नहर आदि। कुछ साधारण और नलकूप दोनों ही प्रकार के पाये जाते हैं।

भूमि के लगभग ७०% भाग में खेती की जाती है। रबी की फसल में गेहूँ, जौ, चना, मटर और सरसों तथा खरीफ में धान, मकई, ज्वार, बाजरा, दाले और नील तथा गन्ना पैदा किये जाते हैं। फल तथा तरकारियाँ जायद में पैदा की जाती हैं। जनसंख्या अधिक होने के कारण वन प्रदेशों का अभाव है। गंगा जल-विद्युत् योजना के अतर्गत सात स्थानो पर—भोला, पालरा, सुमेरा, चितौरा, मोहम्मदपुर, बहादुराबाद,

और मालवा—जल विद्युत् पैदा की जाती है और उसका उपयोग ट्यूब वेलों से जल प्राप्त करने, नगरों और गाँवों में रोशनी करने तथा मशीनें चलाने के लिए उपयोग किया जाता है।

इस प्रदेश में खनिज पदार्थों का अभाव पाया जाता है। किन्तु खेती के उपज से संबंधित कई उद्योगों का बड़ा विकास हुआ है। सूती कपड़ा न केवल घरेलू उद्योग के रूप में ही बनाया जाता है वरन् कपड़े की बड़ी मिलें कानपुर, मेरठ, दिल्ली, बरेली, मुराबाद, आगरा, अलीगढ़, लखनऊ और हाथरस में हैं। रेशमी कपड़ा मऊ, शाहजहाँपुर और इटावा में बुना जाता है। काँच की वस्तुएँ फिरोजाबाद, साखनी, बहजोई, और नैनी में; चीनी के बर्तन खुरजा में, मिट्टी के खिलौने लखनऊ में; शक्कर मेरठ, बरेली में; कागज सहारनपुर और लखनऊ में तथा ताले अलीगढ में; कैंचियाँ और सरोते मेरठ में और साबुन, तेल, बिस्कुट और वनस्पति तैल मोदीनगर में बनाया जाता है।

इस प्रदेश के अधिकाश निवासी ग्रामीण हैं। मैदान मे जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग ५०० मनुष्य है। रेलमार्गों और सड़कों का जाल-सा बिछा है। नदियों में नावे चलाई जाती हैं। दिल्ली, आगरा, कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद प्रसिद्ध नगर हैं।

(७) **गंगा का मध्यवर्ती मैदान** (Middle Ganges Plain)—इस प्रदेश के अतर्गत उत्तप्ररदेश में इलाहाबाद के पूर्व का गंगा के उत्तर का भाग; बिहार में गङ्गा के उत्तर का लगभग समस्त भाग और गंगा के दक्षिण के इलाहाबाद, पटना और गया जिलों के भाग आते हैं। इस प्रदेश में गोमती, घाघरा, गंडक, कोसी, सोन आदि नदियाँ बहती हैं। सोन के अतिरिक्त सभी नदियाँ गंगा में बायें किनारें पर मिलती हैं। इन नदियों द्वारा इतनी अधिक मात्रा में मिट्टी लाकर बिछा दी गई है कि उससे आस पास की भूमि ऊँची हो गई है और जल-तल भी ऊँचा उठ गया है। वर्षा ऋतु में बाढ़ आने पर जल सभी ओर फैल जाता है और दलदल बन जाते हैं।

इस भाग का ग्रीष्मकाल में तापक्रम ९०° फा० तक पहुँच जाता है किन्तु शीतकाल में यह ६०° फा० तक ही रहता है। वर्षा का औसत ४०″ से ६०″ तक है किन्तु पूर्णिया जिले में ७०″ से भी अधिक वर्षा होती है। यहाँ का जलवायु भी विषम ही है।

इस प्रदेश में उपजाऊ मिट्टी और पर्याप्त वर्षा के कारण धान खूब पैदा होता

है। ज्वार-बाजरा कम होता है। गेहूँ भी पैदा किया जाता है। वर्षा अधिक होने से नहरों द्वारा सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। गन्ना और अफीम भी यहाँ काफी पैदा किया जाता है। यहाँ जनसंख्या अधिक होने से जगलों का सर्वथा अभाव है। लगभग ७५% भूमि पर खेती की जाती है।

खनिज सम्पत्ति में यह प्रदेश धनी नहीं है किन्तु समीप ही कोयला, लोहा, मैगनीज, अभ्रक आदि खनिजे दक्षिण-पूर्व मे मिलती हैं। इन्हीं के कारण इस प्रदेश में कुछ अच्छे उद्योग धंधे पनप गये हैं। मिर्जापुर जिले में रिहन्द बाँध सिंचाई तथा शक्ति के लिए बनाया जा रहा है।

यातायात के साधनों का विकास इस प्रदेश मे अच्छा और बहुत हुआ है। रेलों और सड़कों का जाल बिछा हुआ है।

शक्कर बनाने की मिले गोरखपुर और बनारस में; दरियाँ और कालीन मिरजापुर में; रेशम का कपड़ा भागलपुर और बनारस में; और सिगरेट मुंगेर में बनाये जाते हैं। बनारस में किमखाब बुनने और पीतल के बर्तनों पर नक्काशी करने का काम बड़ी मात्रा में किया जाता है।

इस प्रदेश की जनसंख्या घनी है। अधिकतर मनुष्य खेतों में ही झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। गाँवों में इकट्ठे होकर नही। जनसंख्या का घनत्व अधिक होने के कारण बहुत से लोग आसाम के चाय के बागों में और बगाल के कारखानों में काम करने के लिए चले जाते हैं। यहाँ के निवासी बिहारी हैं।

बनारस, गोरखपुर, मिर्जापुर, पटना, मुंगेर, दरभगा और छपरा इस प्रदेश के मुख्य नगर है।

(८) **गंगा का निचला मैदानी प्रदेश** (Lower Ganges Plains Region) इस प्रदेश में पश्चिमी बंगाल का राज्य सम्मिलित है। सम्पूर्ण प्रदेश समतल मैदान है जो गंगा-ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है। इसमें कंकड़-पत्थर बिल्कुल नहीं पाये जाते। इस मैदानी भाग का ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है तथा ढाल बहुत ही धीमा है। हुगली नदी के पश्चिमी भाग की भूमि कुछ ऊँची और कठोर होकर छोटे नागपुर के पठारी प्रदेश में मिल जाती है। इसी पठार से दामोदर नदी निकलती है।

इस प्रदेश की जलवायु समुद्र की निकटता के कारण सम रहती है। गर्मी और सर्दी के तापक्रम में अधिक अंतर नहीं रहता। गर्मी में तापक्रम ८५° फा० तक और

सर्दियों में ६५°-७०° फा० तक रहता है। अतः न तो गर्मी अधिक पड़ती है और न सर्दी ही। वर्षा ग्रीष्म ऋतु मे बंगाल की खाड़ी के मानसून से होती है। यहाँ गगा के ऊपरी और मध्यवर्ती मैदान की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। ६०" से भी अधिक।

इस प्रदेश के लगभग ६६% भाग पर खेती की जाती है। धान और जूट ही यहाँ की मुख्य पैदावार है। खेतीहर भूमि के ६०% भाग पर धान बोया जाता है। इसके अतिरिक्त गन्ना, जूट, तेलहन, दालें आदि भी बोई जाती हैं। वर्षा अधिक होने से सिंचाई का कोई महत्व नहीं है। दक्षिणी भाग में दलदल अधिक होने से सुन्दरवन में सुन्दरी नामक लकड़ी अधिक होती है। समुद्र तट के निकट मछलियाँ भी खूब मिलती हैं।

गगा के डेल्टा की पश्चिमी सीमा पर छोटा नागपुर के पठार के किनारे दामोदर नदी की घाटी में रानीगंज, आसनसोल और झरिया में कोयला तथा लोहा मिलता है। सुन्दरवन मे मिट्टी का तेल पाये जाने की संभावनाएँ हैं।

इस प्रदेश में रेशम के कीड़े पालने और रेशम तथा रेशमी कपडा तैयार करने का घरेलू उद्योग किया जाता है। इस प्रदेश में भारत की जूट की मिलों का लगभग ६८% है। जूट की मिले कलकत्ता नगर के २५ मील ऊपर और २५ मील नीचे की ओर हैं। सूती कपड़े की मिले भी कलकत्ता के समीपवर्ती नगरों में स्थित हैं। चावल साफ करने की मिलें टीटागढ़, कलकत्ता और श्रीरामपुर मे हैं। टीटागढ़ में कागज की मील है। समुद्रतटीय भागों के निकट खारी पानी से नमक बनाया जाता है।

इस प्रदेश की आबादी बड़ी घनी है। प्रति वर्ग मील पीछे ८०० से भी अधिक मनुष्य रहते हैं। ७५% से अधिक व्यक्ति खेती करने में लगे हैं। ये लोग खेतों के बीच में ही झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। इनके चारों ओर आम, केला, कटहल और सुपारी के झुंड रहते हैं। वर्षा अधिक होने से झोंपड़े खपरैलों से छाए जाते हैं।

डेल्टा प्रदेश में आने जाने के मार्ग सुव्यवस्थित और सुलभ हैं। रेलों, सड़कों और नदियों तथा नहरों का अधिक उपयोग किया जाता है।

कलकत्ता, हावड़ा आदि यहाँ के मुख्य नगर हैं।

(६) ब्रह्मपुत्र नदी का घाटी प्रदेश (Brahamputra valley Region)—इस प्रदेश का अधिकाश भाग आसाम राज्य मे फैला है। यह घाटी बड़े

मैदान के पूर्वी छोर पर पूर्व से पश्चिम को प्रायः ५०० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी है। यहाँ नदी का पाट काफी चौड़ा है। नदी के दोनो ओर कुछ दूरी तक दल-दली और ऊँची-नीची भूमि पाई जाती है किंतु आगे चलकर भूमि समतल हो जाती है।

सामुद्रिक प्रभाव से दूर होने के कारण यहाँ का जलवायु विषम रहता है। सर्दी मे तापक्रम ६०° फा० से नीचे गिर जाता है तथा कुहरा भी पड़ता है किन्तु गर्मी में तापक्रम ८५° तक रहता है क्योंकि आकाश मेघाच्छन्न रहता है। वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून से होती है। औसत वर्षा ८०″ से भी अधिक होती है।

इस प्रदेश की मुख्य पैदावार चावल है जो घाटी में बहुत बोया जाता है। पहाड़ी ढालों पर चाय पैदा की जाती है। तेलहन और जूट भी समतल भागों में बोया जाता है। अरंडी के पौधे पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। वनो से बेंत, बाँस और साल की लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं। घाटी के उत्तरी-पूर्वी भाग में लखीमपुर और कच्छार जिलों में डिगबोई के निकट तेल के कुएँ पाये जाते हैं। माकूम में कोयला भी मिलता है। रेशमी और सूती कपड़ा बनाना यहाँ के मुख्य घरेलू उद्योग हैं। आटा पीसने, सूत कातने और तेल पेरने की मिलें गोहाटी में हैं।

इस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व थोड़ा है। प्रति वर्गमील पीछे केवल १५० व्यक्ति रहते हैं। अधिकतर जनसख्या पश्चिमी जिलों में ही पाई जाती है। यहाँ बंगाल और बिहार से लोग आकर बस गए हैं। यहाँ के मुख्य नगर गोहाटी, और डिबूगढ़ हैं।

(१०) कच्छ तथा सौराष्ट्र प्रदेश (Kutch-Saurastra Region)—इस प्रदेश के अतर्गत कच्छ, सौराष्ट्र और बम्बई का उत्तरी भाग है। यह पठार और अरब सागर के बीच में है। यह प्रदेश मरुस्थल और तट पश्चिमी तट के बीच में अवस्थान्तर (Transitional) भाग है। सौराष्ट्र के मध्यवर्ती और दक्षिणी भाग को छोड़कर सारा प्रदेश ६०० फीट से १००० फीट तक नीचा है। इनमें अनेक छोटी पहाड़ियाँ है। कच्छ का भाग तीन ओर दलदलो से और चौथी ओर समुद्र से घिरा हुआ होने के कारण निकम्मा है। यहाँ वनस्पति नाम मात्र को भी नहीं मिलती। नमकीन भाग में गर्मी में केवल जगली गधे रेगा करते हैं। सौराष्ट्र के तीन ओर समुद्र तथा चौथी ओर भूमि है। नीची पहाड़ियों पर घने जंगल में शेर पाये जाते हैं। यहाँ के पशु भी उत्तम किस्म के हैं। यहाँ वर्षा कम होती है। उत्तरी गुजरात की भूमि अधिकतर बलुही है और वर्षा भी यहाँ कम होती है। मध्यवर्ती गुजरात में काली मिट्टी पाई जाती है तथा उसके पूर्वी भाग में पहाड़ियाँ अधिक हैं। वर्षा साधारण हो जाती

है। कपास यहाँ की मुख्य फसल है। दक्षिणी गुजरात में वर्षा ४०" से ८०" तक होती है किन्तु भूमि केवल थोड़े से भागों में ही उपजाऊ है।

सौराष्ट्र के जिन भागों मे सिंचाई की सुविधाएँ हैं गेहूँ की खेती की जाती है। उत्तरी गुजरात में धरती अच्छी होने के कारण ज्वार-बाजरा अधिक पैदा किया जाता है। मध्यवर्ती गुजरात में नदियों की घाटी में चावल और कपास तथा ज्वार-बाजरा पैदा होता है। दक्षिणी गुजरात में चावल, गन्ना और कपास अधिक पैदा होता है।

इस प्रदेश मे खनिज पदार्थों का अभाव है किन्तु कच्छ के रन और सौराष्ट्र के तट पर समुद्र के खारी जल से नमक बनाया जाता है। नवानगर के निकट कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस प्रदेश मे सूती कपड़े के उद्योग का बड़ा विकास हुआ है। कपड़े की मिले बड़ौदा, अहमदाबाद, राजकोट, मोरवी आदि मे है। सीमेन्ट बनाने के कारखाने पोरबन्दर और सिवालिया मे हैं। रेशमी कपड़े, जूते, मिट्टी के बरतन, लकड़ी पर नक्काशी और सोने चाँदी पर काम अधिकतर बड़ौदा मे होता है।

इस प्रदेश में जनसख्या मुख्यत: मध्यवर्ती गुजरात और दक्षिणी गुजरात के तटीय भागो मे पाई जाती है क्योंकि इन्हीं भागों का जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। उत्तरी गुजरात के ऊसर भागो में कोली नामक डाकामार जाति और दक्षिणी गुजरात के पहाड़ी भागो में असभ्य जातियाँ रहती हैं।

अहमदाबाद, बड़ौदा, मोरवी, राजकोट, पोरबन्दर, नवानगर और भुज प्रसिद्ध नगर हैं। कादला का बन्दरगाह का महत्व इस प्रदेश के लिए बहुत है।

इस प्रदेश में पश्चिमी रेलमार्ग की मुख्य लाइन दक्षिण से उत्तर की ओर जाती है। इसकी एक शाखा सौराष्ट्र को जाती है और अहमदाबाद को पोरबन्दर, भावनगर तथा सोमनाथ से जोड़ती है।

(११) पश्चिमी तटीय प्रदेश (West Coast Region)—इस प्रदेश के अंतर्गत अरब सागर तथा पश्चिमी घाट के बीच में स्थित मैदान और पहाड़ी ढाल हैं। सम्पूर्ण प्रदेश का तापान्तर केवल १०° फा० है और वर्षा ८०" से अधिक होती है। जलवायु की दृष्टि से इस प्रदेश के दो भाग किये गए हैं। (क) उत्तरी भाग या कोंकन प्रदेश और (ख) दक्षिणी भाग या मलाबार या केरल प्रदेश।

(क) कोंकन प्रदेश—इस प्रदेश में पश्चिमी तटीय मैदान का उत्तरी भाग गोआ से सूरत तक का शामिल है। इसमें बम्बई राज्य के थाना, कोलाबा, रत्नागिरी और उत्तरी कनारा जिलों के पश्चिमी भाग आते हैं। यह प्रदेश ३०-४० मील चौड़ा

है। इसमें तीन भौतिक स्वरूप मिलते हैं। (i) समुद्र तटीय क्षेत्र मे दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवाओं से उत्पन्न पानी की लहरों द्वारा स्थान-स्थान पर रेत के टीले बना दिये गए है। इसलिए थोड़े-थोड़े अन्तर पर दलदल पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में नारियल के असख्य वृक्ष मिलते हैं। (ii) इस प्रदेश का सर्वोत्तम भाग कॉप मिट्टी का चौरस मैदान है। पश्चिमी घाट से निकलने वाली छोटी किन्तु तीव्रगामी नदियों का जल तट के निकट रेत के कारण समुद्र में नहीं जा पाता किन्तु मैदान में ही बहने लगता है इससे लम्बी झीलें या अनूप (Lagoons) बन जाते हैं। इन अनूपों के किनारे नारियल और सुपारी के वृक्षों के झुंड मिलते हैं। (iii) इस क्षेत्र के पूर्वी भाग मे सहयाद्रि पहाड़ों के ढाल पर अधिक वर्षा के कारण सदाबहार वन और मानसूनी वन पाये जाते हैं।

इस प्रदेश का तापक्रमान्तर बहुत ही कम (१०° फा० के लगभग) रहता है और वार्षिक वर्षा ७०" तक होती है। यह अधिकाशतः जून से सितम्बर तक होती है। पहाड़ी ढालों पर वर्षा अधिक होती है। जलवायु वर्ष भर सम रहता है। यहाँ की मिट्टी लावा से टूट कर बनी होने के कारण बड़ी उपजाऊ होती है।

यहाॅ की मुख्य उपज चावल है। पहाड़ी ढालों पर सागवान के वृक्ष और तटीय भागों में सुपारी और नारियल के वृक्षों के कुंज मिलते हैं। नदियाँ तीव्र एवं छोटी होने के कारण नौसचालन के उपयुक्त नहीं किंतु, उनके जल से विद्युतशक्ति उत्पन्न की जाती है।

इस प्रदेश का औद्योगिक विकास अधिक हुआ है। यहाँ सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ा, काँच, रसायन, कागज, दियासलाई अनेक उद्योग-धन्धे केन्द्रित हैं।

यहाँ की जनसंख्या घनी है। प्रति वर्गमील जनसंख्या का घनत्व २०० व्यक्तियों से भी अधिक है। बम्बई, सूरत यहाँ के मुख नगर और बन्दरगाह हैं।

इस प्रदेश में आवागमन का मुख्य साधन नहरें और अनूप हैं जिनमें नावें चलती हैं। रेलमार्ग बहुत ही कम हैं। पश्चिमी घाट में थालघाट और भोरघाट दो दर्रे हैं जिनमे से होकर बम्बई से रेलमार्ग देश के आतरिक भागों को जाते है।

(ख) **मलाबार तट या केरल प्रदेश**—पश्चिमी तटीय मैदान का गोआ से दक्षिण की ओर का भाग इस प्रदेश के अतर्गत है। इसमें बम्बई का उत्तरी कनारा जिला, पश्चिमी मद्रास और केरल राज्य हैं। यह प्रदेश कोंकन की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। यहाॅ पश्चिमी घाट नीलगिरी मे समाप्त हो जाते हैं। उनके बाद पालघाट का दर्रा और फिर मलय पर्वत हैं। इन पर इलायची अधिक पैदा होती है। इस प्रदेश

मे भी उत्तरी भाग की तरह ही तीन भौतिक विभाग हैं—तटीय विभाग, चौरस मैदान और पहाडी ढाल। केरल राज्य में अनूपों की अधिकता है जिनमे नावें अधिक चलती हैं। इन अनूपों के चारो ओर नारियल, केले और सुपारी के भुण्ड पाये जाते हैं।

इस प्रदेश का तापक्रमान्तर बहुत ही कम रहता है तथा वर्षा साल के लगभग ८ महीने तक होती है। जलवायु नम और गर्म है। वर्षा का औषत ८०" से १००" तक का होता है। अतः पहाड़ी ढालों पर उष्ण कटिबन्धीय बनों की प्रधानता है।

इस प्रदेश की भूमि अधिक उपजाऊ होने और वर्षा अधिक होने से चावल अधिक पैदा किये जाते हैं। केरल मे रबड़ और कहवा के बगीचे खूब मिलते हैं। तटीय क्षेत्रों मे सुपारी, नारियल और केले तथा भीतरी भागों में गरममसाला, इलायची और जायफल अधिक पैदा होते हैं। समुद्र के निकटवर्ती भागों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

केरल मे थोरियम, मोनेजाइट और जिरकन आदि बहुमूल्य खनिज प्राप्त होते हैं। इस प्रदेश में अधिकतर उद्योग नारियल के वृक्ष से सम्बन्धित हैं। नारियल के रेशे के रस्से और जटाये तथा सुतली बनाना; पत्तियों से पखे तथा चटाइयाँ; नारियल के रस से शराब बनाना और गरी से तेल निकालना अधिक किये जाते हैं। रासायनिक पदार्थ, खाद, अल्युम्युनियम, कागज, मिट्टी के बरतन बनाने के कारखाने भी हैं।

इस प्रदेश की जनसख्या अत्यन्त घनी है। प्रति वर्गमील साधारणतः १००० व्यक्ति रहते हैं। गावो में और खेतीहर क्षेत्रों मे यह घनत्व ४००० व्यक्ति तक है। अधिकतर लोग झोपड़ियों मे रहते हैं जिनकी छतें नारियल की पत्तियों से छाई जाती हैं। इस प्रदेश के मुख्य नगर मंगलौर, कोजीखोड़, कोचीन, एलप्पी, क्विलम तथा त्रिवेन्द्रम हैं।

केरल तट पर रेलमार्गों का विकास अच्छा है। पालघाट से होकर एक रेलमार्ग मद्रास को जाता है। दूसरा धुर दक्षिण में क्विलोन और त्रिवेन्द्रम को जाता है।

(१२) तामिलनाड और कर्नाटक प्रदेश (Tamilnad or Carnatic Region)—इस प्रदेश में समस्त मद्रास राज्य सम्मिलित हैं। यह उत्तर में नैलोर से कुमारी अतरीप तक फैला है और मलाबार तथा कोंकन तट से अधिक चौड़ा है। समुद्र तट के निकट चौडी समतल मैदानी पट्टी है—जिसे कोरोमंडल तट कहते हैं। पठार की ओर से उतरने वाली कई छोटी-छोटी नदियाँ इस तट तक बहती हुई बंगाल की खाड़ी में डेल्टा बना कर गिरती हैं। कावेरी का डेल्टा सबसे प्रसिद्ध है। इस

तटीय विभाग के समानान्तर पहाड़ी ढाल फैले हैं। ये पहाड़ियाँ प्राचीन बिल्लौरी चट्टानो से बनी होने के कारण खनिज पदार्थों में धनी हैं ।

यह प्रदेश दक्षिण-पश्चिमी मानसून काल मे मलाई की पहाडियों और पठार की वृष्टि छाया मे आ जाने के कारण ग्रीष्मकाल में प्रायः सूखा रहता है और कहीं भी २०" से अधिक वर्षा नहीं होती। किन्तु बगाल की खाड़ी से लौटने वाले उत्तर-पूर्वी मानसूनों द्वारा सितम्बर से दिसम्बर के बीच अच्छी वर्षा होती है। तटीय भागों में ४०" तक तथा पश्चिम के पहाडी भागों में ३०" तक वर्षा होती है। यहाँ तापक्रमान्तर १५° फा० तक रहता है।

मैदानी भाग में वनस्पति साफ कर दी गई है किंतु, पहाड़ी ढालों पर सागवान और चंदन के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। घास भी ढालो पर पाई जाती है। इन पर भेड़े चराई जाती हैं। वर्षा की कमी और अनियमितता के कारण प्रायः अकाल का भय रहता है। इस अभाव को दूर करने के लिए कुओं, तालाबों और नहरों से सिचाई का प्रबन्ध किया जाता है। नहरें मुख्यतः तीन हैं—पैरियर बाँध की नहरें, कावेरी डेल्टा की नहरें और मैटूर बाँध की नहरें। इनके द्वारा एक बहुत बड़े क्षेत्र में सिंचाई की जाती है। उसी के कारण कावेरी के डेल्टा में इतना अधिक उत्पादन होने लगा है कि इसे 'दक्षिणी भारत का उद्यान' कहा जाने लगा है। सिंचाई के सहारे चावल, गन्ना, कपास, ज्वार, बाजरा, तम्बाकू और तेलहन पैदा किये जाते हैं। तट पर बलुही भूमि में नारियल और पहाड़ी भागों के ढालों पर चाय भी पैदा होती है।

दक्षिणी भारत के इस प्रदेश में जल-विद्युत शक्ति का भी बड़ा विकास हुआ है—पायकरा योजना, मैटूर योजना पापानासम योजना मुख्य हैं। इसके फलस्वरूप अधिकतर रासायनिक पदार्थ, शक्कर, सूती कपड़े, जूते और चमड़े के कारखाने अधिक विकसित हुए हैं। आन्ध्र में नैलोर के निकट अभ्रक निकाला जाता है। समुद्र-तट के निकट नमक बनाया जाता है तथा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस प्रदेश की जनसंख्या भी घनी है। औसत घनत्व प्रतिवर्ग मील पीछे ४०० मनुष्यों का है किन्तु तटीय मैदानों में तो यह कावेरी डेल्टा में १७०० मनुष्य तक है। यहाँ के निवासी मुख्यतः द्रविड़ हैं जो तामिल भाषा-भाषी हैं। नीलगिरी की पहाडियों में टोडा आदिवासी रहते हैं।

मद्रास, मदुराई, तिन्नैवैली, तूतीकोरिन, तंजौर, कोयम्बटूर, पॉडिचेरी, नैलोर और तिरुच्चिरापल्ली मुख्य नगर हैं।

तामिल प्रदेश में अनेक पक्की सडकें और रेल मार्ग हैं। १५०० मील लम्बी बकिंघम नहर नौका संचालन के उपयोग में आती है।

(१३) **कलिंग प्रदेश या उत्तरी सरकार प्रदेश** (Kalinga or Northern Circar Region)—कृष्णा नदी के मुहाने से बंगाल तक तट के सहारे की पतली मैदानी पट्टी को ही कलिग या उत्तरी सरकार प्रदेश कहा जाता है। इस भाग में आंध्र के उत्तरी जिले (विशाखापटनम, गोदावरी, कृष्णा और गंतूर) तथा उड़ीसा राज्य सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र के अधिकाश भाग में कृष्णा, गोदावरी और महानदी के डेल्टा हैं।

इस प्रदेश का दक्षिणी भाग नदियों के विस्तृत डेल्टा क्षेत्र हैं किन्तु उत्तर के मैदान में प्राचीन कठोर चट्टानों की अनेक पहाड़ियों ने इसे तोड़ दिया है। डेल्टाई भागों में काँप और पहाड़ी भागों में अनुपजाऊ मिट्टियाँ मिलती हैं।

इस प्रदेश में वर्षा ग्रीष्म ऋतु में मानसूनों से होती है। वर्षा की मात्रा दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती जाती है। दक्षिण में विशाखापट्टनम के निकट ४० इन्च और उड़ीसा में ५० इंच तक वर्षा होती है। इसका प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है। आंध्र के गन्तूर जिले में चावल का प्रायः अभाव और ज्वार-बाजरे की प्रचुरता रहती है किन्तु उड़ीसा में चावल का प्राधान्य और ज्वार बाजरे का अभाव रहता है। चावल के अतिरिक्त इस प्रदेश में तेलहन और मसाले भी पैदा किये जाते हैं। डेल्टाई भागों में सिंचाई की पूर्ण सुविधा मिलती है। पहाड़ी ढालों पर चरागाह पाये जाते हैं जिनमें भेड़ें चराई जाती हैं। पूर्वी घाटों के पूर्वी ढालों पर वन मिलते हैं जिनमें साल के वृक्ष अधिक उगते हैं।

पहाड़ी भाग की कठोर चट्टानों में मैंगनीज तथा अभ्रक भी मिलती है। तटीय भागों के निकट मछलियाँ अधिक पकडी जाती हैं। इस प्रदेश की जनसंख्या का घनत्व साधारणतः प्रति वर्गमील ४०० मनुष्यों से कम है। यहाँ के निवासियों की मुख्य भाषा तेलगू है। यहाँ के मुख्य नगर विशाखापट्टनम, कोकोनाड़ा, कटक और पुरी हैं। आने-जाने के लिए एक रेल मार्ग कलकत्ता को और दूसरा मद्रास को जाता है।

(१४) **दक्षिणी दक्कन प्रदेश** (South Deccan Region)—इस प्रदेश में पठार के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी भाग सम्मिलित हैं। समस्त मैसूर राज्य, आंध्र के कर्नूल, कडुप्पा, बलारी, अनन्तपुर, तथा, चितूर जिले—हैदाराबाद और बम्बई राज्य का धारवाड़ जिला इसी प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। यह समस्त भाग कृष्णा नदी की घाटी को छोड़ कर ५०० फीट से २००० फीट तक ऊँचा है। नीलगिरि पर्वत

६००० फीट तक ऊँचे हैं। यहाँ के अधिकतर पहाड़ चपटे सिरे वाले हैं। मैसूर का पठार नदियों के जल-विभाजक का काम करता है। इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ कृष्णा, कावेरी और उनकी अनेक सहायक नदियाँ हैं। इन नदियों के मार्ग में अनेक झरने हैं। शिवसमुद्रम झरने से जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है।

पश्चिमी घाट की वृष्टि छाया मे आ जाने से इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है। वर्षा का औसत २० इञ्च से ४० इञ्च तक होता है किन्तु यह सदैव अनिश्चित है अतः अकाल का डर रहता है। इस अभाव को दूर करने के लिए सिंचाई के लिए तालाबों का प्रबन्ध किया गया है।

खेती के अन्तर्गत ज्वार-बाजरा, रागी, चना, कपास और चावल पैदा किये जाते हैं। पर्वतीय ढालों पर चाय के बाग हैं। शुष्क पहाड़ी ढालों पर घास पैदा होती है जिनमें भेड़े चराई जाती हैं। इस प्रदेश मे सोना तथा मैंगनीज पाया जाता है। कुछ लोहा और चूने का पत्थर भी यहाँ मिलता है।

यहाँ जनसख्या का घनत्व प्रति वर्गमील पीछे १७५ मनुष्य हैं। इस प्रदेश के निवासी कनारी और तेलुगू भाषा बोलते हैं। हैदराबाद के आधे पूर्वी भाग में तेलुगू भाषा का प्राधान्य होने के कारण ही उसे 'तेलंगाना' कहते हैं। नीलगिरी के जङ्गलों मे टोडा नामक जंगली जातियाँ भी रहती हैं।

इस प्रदेश में उद्योग-धन्धों का भी अधिक विकास हुआ है। बगलौर मे हवाई जहाज बनाने, टेलीफोन की फैक्टरी और ऊनी तथा रेशमी कपड़े की मिलें हैं। भद्रावती में लोहे और इस्पात का कारखाना तथा मैसूर में सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े के कारखाने हैं। यहाँ चन्दन की लकड़ी पर खुदाई का काम भी बहुत किया जाता है तथा चन्दन का तेल भी निकाला जाता है। हैदराबाद, कर्नूल, बलारी आदि अन्य मुख्य नगर हैं।

(१५) दक्कन का लावा प्रदेश (Deccan Lava Region)—यह प्रदेश सतपुड़ा के दक्षिण में त्रिकोणाकार फैला है। इसमे बम्बई राज्य के उत्तरी-पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश तथा आंध्र का आधा पश्चिमी भाग सम्मिलित है।

यह ऊँची-नीची भूमि का प्रदेश है जिनमें अनेक चपटी चोटियों वाली पहाड़ी श्रेणियाँ पाई जाती हैं। इन पर लावा के परत बिछे हैं। इन चट्टानों से टूट फूट कर बनी काली मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। इसमें अधिक समय तक पानी ठहर सकता है। अतः इसमें बोई गई फसलों को सींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीलिए यहाँ तालाब बिल्कुल नहीं पाये जाते।

तापक्रम ऊँचाई के अनुसार पश्चिमी घाट के पूर्वी ढालों पर कुछ कम और पूर्वी भागों में कुछ अधिक है। वर्षा का औसत ४० इञ्च होता है किन्तु पश्चिमी घाट पूर्वी ढालों और उत्तरी पूर्वी में इससे अधिक वर्षा होती है। लावा मिट्टी मे मुख्यतः कपास की पैदावार होती है। ज्वार, बाजरा, गेहूँ तथा तेलहन भी पैदा किये जाते हैं।

यहाँ अधिकतर सूती कपड़े तथा तेल की मिलें बहुत हैं। कपास की अनेक मंडियाँ भी यहाँ हैं। सूती कपड़ा बनाने के मुख्य केन्द्र बम्बई, शोलापुर, आकोला, अमरावती, आदि हैं। पूना, नासिक आदि अन्य प्रमुख नगर हैं।

यहाँ की जनसंख्या बहुत कम है। प्रति वर्गमील पीछे १६७ व्यक्ति रहते हैं। यहाँ की मुख्य भाषा मराठी है। आंध्र के आधे पश्चिमी भाग में मराठी भाषा का प्राधान्य होने के कारण ही इसे 'मराठवाड़ा' कहते हैं।

इस प्रदेश मे आवागमन के मुख्य साधन रेलें और सड़कें हैं।

(१६) **उत्तर-पूर्वी दक्कन प्रदेश** (North Eastern Deccan Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत छोटा नागपुर का पठार, मध्य पठार, उड़ीसा तथा बस्तर की पहाड़ियाँ, छत्तीसगढ का मैदान तथा गोदावरी घाटी है। इसमें पूर्वी मध्य प्रदेश, पश्चिमी उड़ीसा, दक्षिणी बिहार और आंध्र का थोड़ा-सा पश्चिमोत्तर भाग है।

यह सारा प्रदेश समुद्री धरातल से ५०० फुट से अधिक ऊँचा है। जहाँ नदियाँ पठारी भाग से नीचे उतरती हैं वे अपने मार्ग में अनेक झरने बनाती हैं। सारे क्षेत्र में एक सी ही चट्टानें मिलती हैं किन्तु घाटियों में काँप मिट्टी ने उन्हें पूरी तरह ढँक दिया है। उत्तर-पश्चिमी प्रदेश की प्राकृतिक सीमा उत्तर में नर्बदा सोन की ऊपरी घाटियों से बनती हैं।

समुद्र के धरातल से ऊँचाई तथा समुद्र से दूरी के अनुसार तापक्रम व वर्षा में विभिन्नता पाई जाती है। गर्मी में तापक्रम साधारणतः ६०° से ६५° तक रहता है और सर्दियों में यह ३०° फा० तक उतर जाता है। वर्षा का औसत ४० इञ्च तक होता है किन्तु अधिक भागों में यह ८० इञ्च तक हो जाता है। अतः यहाँ घने वन भी पाये जाते हैं। छोटा नागपुर पठार के वनों से भारत की ६७% लाख प्राप्त की जाती है। पूर्वी घाटों पर साल और सागौन के वृक्ष मिलते हैं।

खेती मुख्यतः घाटियों में ही की जाती है। छत्तीसगढ़ के मैदान में चावल अधिक पैदा किया जाता है। नागपुर प्रदेश मे तालाबों से सिचाई करके चावल, गेहूँ और कपास बोया जाता है।

इस प्रदेश मे खनिज पदार्थों की बहुतायत है। लोहा, कोयला, अभ्रक, मैंगनीज, चूने का पत्थर अधिक पाया जाता है। इसी कारण निकटवर्ती राज्यों में लोहे और इस्पात व सीमेंट आदि के उद्योग विकसित हो सके हैं। पठारी और पहाड़ी भागों में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील पीछे ४० मनुष्यों से भी कम है। इन भागों में मुख्यतः संथाल आदि जंगली जातियाँ रहती हैं। मैदानी भागों में जनसंख्या का घनत्व १५० से २०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील तक है।

यहाँ के प्रमुख नगर नागपुर, आसनसोल, जमशेदपुर, राँची, रायपुर आदि हैं। यहाँ सूती तथा रेशमी कपड़े के कारखाने भी हैं। इस प्रदेश मे केवल एक रेलमार्ग है जो रायपुर से विशाखापट्टनम तक जाता है।

(१७) **राजपूत उच्च भूमि प्रदेश** (Rajput Upland Region)—यह प्रदेश उत्तर-पश्चिम में अरावली की पहाड़ियों से पूर्व की ओर चम्बल नदी तक फैला है। इसमें पूर्वी राजस्थान के कोटा, बूंदी, टोंक, जयपुर, अजमेर, अलवर-भारतपुर तथा उदयपुर जिले हैं। यह प्रदेश पुरानी कड़ी चट्टानों का बना है अतः मैदान छोटे और अधिकतर ऊबड़-खाबड़ हैं। यहाँ तापक्रम ग्रीष्मकाल में ६१° फा० और शीत-काल में ६०° फा० तक रहता है। वर्षा का औसत २०" से ३०" तक का है। यहाँ वर्षा बड़ी अनियमित और कम होती है। किंतु आबू के निकट अरावली के दक्षिणी छोर पर ६०" के लगभग वर्षा हो जाती है।

भूमि की धरातल ऊँचा नीचा होने के कारण नहरें बनाना कठिन है किंतु सिंचाई के लिए मुख्यतः तालाब पाये जाते हैं। खेती बिना सिंचाई के अथवा सिंचाई के सहारे की जाती है। गेहूँ, बाजरा-ज्वार, चना तथा कपास और उपयुक्त क्षेत्रों में गन्ना तथा तम्बाकू भी पैदा की जाती है। चम्बल नदी में तरबूज, खरबूजे तथा ककड़ियाँ भी पैदा की जाती हैं।

इस प्रदेश में खनिज पदार्थ काफी मिलते हैं। अभ्रक, जिप्सम, एस्बस्टस, घीया पत्थर, ताँबा, संगमरमर, इमारती पत्थर, सीसा, जस्ता और कुछ मैगनीज भी मिलता है। साँभर झील से नमक प्राप्त किया जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों से लाख, गोंद, महुआ के बीज, कत्था तथा चमड़ा रंगने के लिए विभिन्न वृक्षों की छालें मिलती हैं।

इस प्रदेश में उद्योगों का विकास पिछले कुछ वर्षों में काफी हुआ है। सूती कपड़े की मिलें, शक्कर के कारखाने, काँच व सिमेंट की फैक्ट्रियाँ पाई जाती हैं। कुटीर उद्योगों के रूप में लकड़ी पर नक्कासी का काम, लकड़ी के खिलौने, मूर्तियाँ,

कपड़े की छपाई और रगाई, चमड़े तथा हाथीदाँत और संगमरमर की वस्तुएँ बनाना, सोने-चाँदी पर काम करना आदि किया जाता है।

इस प्रदेश की जनसख्या का घनत्व बहुत ही कम है। प्रति वर्ग मील पीछे १२५ व्यक्ति तक रहते हैं। जनसख्या अधिकतर बिखरी हुई पाई जाती है। केवल नगरों में जनसंख्या अधिक है। जयपुर, अजमेर, अलवर, भरतपुर, कोटा, बूँदी, उदयपुर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, नाथद्वारा, जोधपुर, आबू इस प्रदेश के मुख्य नगर हैं।

(१८) मालवा का पठार (Malwa Plateau)—यह प्रदेश पूर्व में यमुना की सहायक सिद्ध नदी और दक्षिण में विध्याचल पर्वत तक फैला है। इसमें मध्य प्रदेश के भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, धार आदि जिले सम्मिलित हैं।

इस प्रदेश की भौतिक रचना दक्कन के लावा प्रदेश से मिलती-जुलती है। धरती के ऊबड़-खाबड़ होने के कारण वर्षा ऋतु मे नदियों में बड़ी तेज बाढ़ें आती हैं। इस प्रदेश का शीतकाल का औसत तापक्रम ६०° से ७०° फा० तक तथा गर्मी का औसत तापक्रम ८०° फा० से ८५° फा० तक रहता है। वर्षा ४०" तक हो जाती है। इस प्रदेश में लावा की काली मिट्टी अधिक पाई जाती है इसलिए कपास और गेहूँ अधिक पैदा होता है। पोस्त, गन्ना, ज्वार-बाजरा भी पैदा किये जाते हैं।

इस प्रदेश मे चूना पत्थर, तथा मैंगनीज खनिज पार्थ मिलते हैं। कपास अधिक होने से सूती कपड़े की मिलें, ग्वालियर, उज्जैन, इदौर, देवास और रतलाम में हैं। शक्कर की फैक्ट्रियाँ, रेयन रेशम का कारखाने भी इस प्रदेश में हैं। इंदौर धार, मऊ, उज्जैन, रतलाम, ग्वालियर, और भोपाल यहाँ के मुख्य नगर हैं।

बुंदेलखंड-बघेलखंड पठार (Bundelkhand Baghelkhand Region)—यह प्रदेश उत्तर में गङ्गा के खादर और दक्षिण में नर्मदा तथा सोन नदियों के बीच में है। इसका पश्चिमी भाग बुंदेलखंड और पूर्वी भाग बघेलखंड कहलाता है। इसमें उत्तर प्रदेश का दक्षिणी भाग और मध्य प्रदेश का पूर्वी भाग सम्मिलित है।

यह देश सामान्यतः १०००' से २०००' तक ऊँचा है। इसके दक्षिणी भाग में विंध्याचल और कैमूर की पहाड़ियाँ हैं। इस पठार का ढाल गङ्गा नदी की ओर है। यहाँ का औसत तापक्रम शीतकाल में ६०° से ७०° फा० तक तथा ग्रीष्मकाल में ८०° से ६०° तक रहता है। वर्षा का औसत ५०" तक है। विंध्याचल पर्वतों पर कुछ वन भी पाये जाते हैं।

इस प्रदेश में वर्षा अधिक होने में नर्बदा और सोन नदियों की घाटी में चाव

पैदा किया जाता है। कपास, गेहूँ तथा ज्वार-बाजरा भी बोया जाता है। यहाँ खनिज पदार्थ भी मिलते हैं। मैगनीज, चूना पत्थर, संगमरमर, हीरा, इमारती पत्थर तथा जिप्सम प्राप्त किये जाते हैं। जबलपुर में चीनी मिट्टी, काँच, सूती कपड़े और अस्त्र-शस्त्र बनाने के कारखाने, कटनी में सिमेंट का कारखाना है। इस प्रदेश की जनसंख्या बहुत ही कम है। इसका जमाव केवल नदियों की घाटी में ही अधिक है। जबलपुर, झाँसी, रीवाँ, सतना आदि मुख्य नगर हैं।

छोटा नागपुर का पठार (Chota Nagpur Plateau)—इस प्रदेश के अन्तर्गत बिहार का अधिकाश भाग, थोड़ा उत्तर प्रदेश का मध्यपूर्वी भाग, उड़ीसा का उत्तरी भाग और पश्चिमी बंगाल का दक्षिणी-पश्चिमी भाग सम्मिलित है। यह प्रदेश काफी ऊबड़-खाबड़ और वनों से ढका है। नदियों ने यहाँ कई गहरी घाटियाँ बनाई हैं, जहाँ ये घाटियाँ अधिक चौड़ी है वहाँ खेती की जाती है। गर्मी में तापक्रम काफी ऊँचे रहते हैं किन्तु वर्षा ५०" के लगभग हो जाती है।

पठार के अधिकाश भाग में जंगल हैं जिनमें साल वृक्ष बहुतायत से मिलता है। भारत के लाख के उत्पादन का ६०% यहाँ से प्राप्त होता है। वर्षा अधिक होने से चावल व गन्ना अधिक पैदा होता है। ज्वार-बाजरा, तेलहन, दालें व मकई भी पैदा की जाती है। छोटा नागपुर का पठार खनिज पदार्थों में धनी है। भारत के कोयले के उत्पादन का लगभल ३/४ भाग यहीं से मिलता है। लोहा, ताँबा, अभ्रक, मैगनीज डोलोमाइट, अग्निप्रतिरोधक मिट्टियाँ, क्रोमाइट और चूने का पत्थर कई भागों में मिलता है।

जमशेदपुर और आसनसोल में लोहे और इस्पात के कारखाने हैं। यहाँ का मुख्य नगर राची और हजारीबाग है। वन प्रदेश अधिक होने से जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है। पहाड़ी भागों में संथाल नामक आदिवासी रहते हैं।

(१६) थार मरुस्थल (Thar Desert)—यह प्रदेश अरावली पर्वत के उत्तर व पश्चिम में सिंधु नदी तक फैला है। इसके अन्तर्गत राजस्थान के पश्चिमी और पंजाब के दक्षिणी भाग हैं। यह ऊँची-नीची भूमि का प्रदेश है जो ६००' से १०००' ऊँचा है।

समस्त प्रदेश बालू मिट्टी का है। मिट्टी के कण बड़े तथा नमी और वनस्पति के सड़े-गले अंशों का अभाव पाया जाता है। बालू मिट्टी के टीले हवा के साथ स्थानान्तर होते रहते हैं इससे निकटवर्ती उपजाऊ खेतों को बड़ी हानि पहुँचती है।